अमरीकी दर्शन का इतिहास

लेखक
हर्बर्ट डब्ल्यू० श्नाइडर

अनुवादक
ओमप्रकाश दीपक

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण ५०० १९५४
मूल्य ८.५० रु०

विषय-प्रवेश

जिन सामाजिक परिस्थितियों में दार्शनिक विचार उत्तरी अमरीका में पनपे हैं वे मनुष्य के इतिहास में अद्वितीय हैं। अगर उनकी कुछ तुलना की जा सकती है, तो रोम-साम्राज्य की अन्तिम शताब्दियों से। इस महाद्वीप पर सारी दुनिया से आये हुए लोग मिले हैं और एक राष्ट्र का निर्माण करने में सफल हुए हैं। एक अन्तर्राष्ट्रीय राज्य और बहुदेशीय लोग। दूरस्थ क्षेत्रों और युगों की बौद्धिक परम्पराएँ एक जगह मिली हैं और शीघ्र ही एक साथ बढ़ी हैं। अमरीकी विचार की सारी बानी बाहर से आई हुई सामग्री से बनी है लेकिन बुनाई देशी है और अब उसमें जो प्रतिरूप उभर रहे हैं उनमें कई पीढ़ियों की प्रयोगात्मक अभिकल्पना के सामूहिक प्रभाव दिखाई पड़ रहे हैं।

स्पेनी धर्म प्रचारक अमरीकी आदिवासियों के साथ सम्पर्क और व्यापार के फ्रांसीसी प्रयास, पुरुषार्थी पश्चिम प्रयाणित्व रूस और स्पेन शासन के बयान, कई देशों के लोगों द्वारा बसायी गयी नयी बस्तियाँ अमरीकी 'आध्यात्मिक' गीत एशियाई दर्शन और आत्मज्ञान सुदूर पूर्व की ललित कलाएँ, जर्मन परात्परवाद इंग्लिस्तानी अनुभववाद और साम्राज्यवाद इटालवी वास्तुकला और संगीत यूनानी चर्च (आर्थोडाक्स) धर्म-समुदाय, जेसुइट लोगों के स्कूल, प्रोटेस्टेन्ट धर्मशास्त्र यहूदी क़ानून और पैग़म्बर—अमरीकी मनीषा के इतिहास के निर्माण में इन सभी का और अन्य बहुतों का हाथ रहा है। यहाँ विश्व के सांस्कृतिक चौराहे पर हमें विचारों मूल्यों और आस्थाओं को भौंचक्का कर देने वाली बहुलता के लिए तैयार रहना चाहिये।

अमरीकी लोग अपनी बौद्धिक परम्पराओं के बारे में आंचलिक सन्दर्भों में सोचने के आदी हैं क्योंकि यद्यपि 'राज्य' एक राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे में जुड़े हुए हैं किन्तु देश के अन्दर कई विशिष्ट सांस्कृतिक अंचल पहचाने जा सकते हैं जिनमें से हर-एक अमरीकी विरासत को अपने विशिष्ट विचार और स्थानीय रंग प्रदान करता है। न्यू-इंग्लैंड जो भौगोलिक दृष्टि से देश के उत्तर-पूर्व में एक छोटा-सा कोना है, शुद्धाचार और परात्परवादी आदर्शवाद का घर है—दो भिन्न स्रोतों से निकली परम्पराएँ, जो एमर्सन के व्यक्तित्व और परिवेश में मिल कर रोमानी व्यक्तिवाद की अमरीकी अभिव्यक्ति बन गयीं। वर्जिनिया और उसके दक्षिणी पड़ोसियों ने गणतान्त्रिक और लोकतान्त्रिक आदर्शों तथा बहुदेशीयता के सद्गुणों में देश के संस्थापकों का प्रबुद्ध विश्वास

विनिमाणात्मक आदर्श। विचारों के जो आन्दोलन इनसे सम्बद्ध हैं, उन्हें ऐसे लोगों के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से जो इनके साथ-साथ ही बड़े नहीं हुए, उनकी ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है।

किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुभूति इस कारण कि अमरीकी चेतना इससे सर्वाधिक परिचित है, यह है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमरीकी जीवन और विचार का एक गम्भीर संकट का सामना करना पड़ा। संकट बीत गया लेकिन जिन समस्याओं से संकट उत्पन्न हुआ था, वे अब भी उत्तर और दक्षिण के मन और नैतिकता पर छाई हुई हैं। राजनीतिक और आर्थिक संकट रक्तपात और क्रूरता के द्वारा समाप्त हुआ, किन्तु स्वतन्त्रता समानता और बन्धुत्व की गम्भीर समस्याएँ—जो अपनी प्रकृति में ही ऐसी हैं कि उनका कभी कोई स्थायी हल नहीं हो सकता और हर पीढ़ी में उनका पुन निरूपण और पुनः अध्ययन करना पड़ेगा—आज भी अमरीकियों को उद्वेलित कर रही हैं। उनके गृह-युद्ध के अनुभव ने अमरीकियों को यह भावना प्रदान की है कि वे केवल किसी विद्रोह-भाव से नहीं वरन् एक क्रान्ति से गुजर कर निकले हैं और यह कि व्यावहारिक और दार्शनिक दोनों प्रकार की समस्याएँ धैर्य के साथ और शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझायी जाएँगी। देश में शान्ति बनाये रखने के इस स्पष्ट निश्चय के ऊपर विश्व संघर्षों से निपटने के लिये कोई तर्कसंगत उपाय खोजने का अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास छाया रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विदेशी नीतियों के प्रति विशिष्ट अमरीकी दृष्टिकोणों के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना अन्य देशों के पाठकों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। राजनीति में अमरीकी नैतिकतावाद और धर्मसन्देहवाद के भी बहुतांश को एक व्यापक युग के अमरीकी संकट और शान्ति के सन्दर्भ में समझना चाहिये जिसकी छाया हमारे विचारों को गम्भीरता और मर्यादा प्रदान करती रहती है। इसके फलस्वरूप अमरीकी लोग विश्व-युद्धों की व्याख्या उन लोगों की अपेक्षा कुछ भिन्न रीति से करते हैं जो समझते हैं कि वे इस समय एक क्रान्तिकारी स्थिति में हैं।

अमरीकी दर्शन के इतिहासकार के लिए, ज्ञान मूल्य और नैतिकता सम्बन्धी पराशास्त्री सिद्धान्तों के पिछले दिनों दिखाई पड़ने वाली प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण शायद सबसे कठिन कार्य है। बीसवीं शताब्दी में अमरीकी दार्शनिक विचारधारा में एक ऐसी प्रवृत्ति और ऐसा स्वर विकसित हुआ है जिसकी विशिष्टता महत्वपूर्ण है। इस जैसी कोई चीज अन्यत्र कहीं नहीं है। किन्तु इसमें बहुतेरे तत्व हैं, जिनमें से कई यूरोप से लिए गये हैं। आंशिक रूप में यह अमरीकी दार्शनिकों की उस पीढ़ी के कार्य की परिणति है जो अब जीवित नहीं है, किन्तु जिसके विचार आधुनिक दार्शनिकों के कार्य के मूल में हैं। विलियम जेम्स सी० एस० पीयर्स

भाया और दक्षिण की बगान व्यवस्था ने एक प्रान्तीय खेतिहरवाद और गुलामी पर आधारित अर्थतन्त्र को जन्म दिया। इन दोनों क्षेत्रों के बीच मध्य और पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र में, हम प्राकृतिक विज्ञानों प्रविधियों और पूँजीवाद का घर पाते हैं। मिसीसिपी घाटी के चौड़े मैदाना में जिसका कृषि-धन स्वतन्त्र किसानों ने निर्मित किया एक विशिष्ट घरेलू संस्कृति और लोकतान्त्रिक संस्थाओं को विकसित किया जो विशाल खुले इलाकों के और अधिक खुले हुए समाज के अनुकूल थीं। यहाँ सेण्ट लुई मिसौरी में और उसके आस-पास देश के औद्योगिक केन्द्र में एक आदर्शवादी राष्ट्रवाद का विकास हुआ जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच गृह-युद्ध के संकट के समय और बाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निकटतम अतीत में प्रशान्त महासागर के तट पर एक अलग सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ है। प्राची की ओर खुले इस क्षेत्र ने प्राची के कुछ विचार भी ग्रहण किये और पश्चिम (पश्चिमी अमरीका) को राष्ट्रीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग बनाया।

इस बहुलता के साथ आगामी पृष्ठों में न्याय कर सकना स्पष्टतः असम्भव है। मुझे बाध्य होकर जैसा हर इतिहासकार को करना पड़ता है, सामग्री और परम्परा के अनन्त समुद्र से ऐसी विचार-धाराएँ चुननी पड़ी हैं अमरीकी दिमागों पर जिनका जीवन्त प्रभाव दीर्घजीवी प्रतीत होता है। और अपनी इतिहास पुस्तक के इस संस्करण के लिए मैंने केवल अमरीकी विचार के सारभूत तत्त्व चुने हैं। अमरीका में कोई भी विदेशी पूर्णतः विजातीय नहीं होता। उसकी संस्कृति का हमारी संस्कृति पर कुछ प्रभाव पड़ता ही है। फिर भी अमरीकी दर्शन के विषयों और समस्याओं में बहुत कुछ ऐसा है जिसे ऐतिहासिक सन्दर्भ में रख कर अधिक बोधगम्य बनाने की आवश्यकता है।

संयुक्त राज्य का राजनीतिक रूप-निर्धारण ऐसे काल में हुआ जिसे परम्परानुसार प्रबुद्ध-काल कहा जाता है। फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के ढाँचे को प्रबुद्ध-काल के उन विचारों के सन्दर्भ में समझा जा सकता है जो कई व्यवस्थाओं में व्यक्त हुए हैं और बहुत कुछ सार्वभौमिक हैं। किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के इस निर्माण-काल के पहले और बाद में भी स्थानीय परम्पराएँ रही हैं या उतनी सार्वभौमिक नहीं हैं किन्तु अमरीकी विचारों के गठन में फिर भी जिनका महत्वपूर्ण योग है—मिसाल के लिए न्यू-इंगलैण्ड के शुद्धतावादियों का प्यूरिटावाद दक्षिण और पश्चिम के खेतिहर आदर्श जैफरसन का उग्र लोकतन्त्र पापुलिस्ट आन्दोलन (अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में अर्थतन्त्र पर सार्वजनिक नियन्त्रण और आर्थिक समानता के समर्थक) विभिन्न पन्थों के धर्मोन्मेष प्रकृति और समाज के विकासवादी दर्शन सामाजिक संगठन और व्यवस्था के

भाया और दक्षिण की बागान व्यवस्था ने एक प्रान्तीय खेतिहरवाद और गुलामी पर आधारित अभिजाततन्त्र को जन्म दिया। इन दोनों क्षेत्रों के बीच मध्य और पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र में हम प्राकृतिक विज्ञानों प्रविधियों और पूँजीवाद का घर पाते हैं। मिसीसिपी घाटी के चौड़े मैदानों ने जिसका कृषि-जन स्वतन्त्र किसानों ने निर्मित किया एक विशिष्ट घरेलू संस्कृति और लोकतान्त्रिक संस्थाओं को विकसित किया जो विशाल खुले इलाकों के और अधिक खुले हुए समाज के अनुकूल थी। यहाँ सेण्ट लुई मिसौरी में और उसके आस-पास देश के भौगोलिक केन्द्र में एक आदर्शवादी राष्ट्रवाद का विकास हुआ जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच गृह-युद्ध के संघर्ष के समय और बाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निकटतम अतीत में प्रशान्त महासागर के तट पर एक अलग सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ है। प्राची की ओर खुले इस क्षेत्र ने प्राची के कुछ विचार भी ग्रहण किये और पश्चिम (पश्चिमी अमरीका) को राष्ट्रीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग बनाया।

इस बहुलता के साथ आगामी पृष्ठों में न्याय कर सकना स्पष्टतः असम्भव है। मुझे बाध्य होकर जैसा हर इतिहासकार को करना पड़ता है, सामग्री और परम्परा के अनन्त समुद्र से ऐसी विचार-धाराएँ चुननी पड़ी हैं अमरीकी दिमागों पर जिनका जीवन्त प्रभाव दीर्घजीवी प्रतीत होता है। और अपनी इतिहास-पुस्तक के इस संस्करण के लिए मैंने केवल अमरीकी विचार के सारभूत तत्व चुने हैं। अमरीका में कोई भी विदेशी पूर्णतः विजातीय नहीं होता। उसकी संस्कृति का हमारी संस्कृति पर कुछ प्रभाव पहले से ही है। फिर भी अमरीकी दर्शन के विषयों और शब्दावली में बहुत कुछ ऐसा है जिसे ऐतिहासिक सन्दर्भ में रख कर अधिक बोधगम्य बनाने की आवश्यकता है।

संयुक्त राज्य का राजनीतिक रूप-निर्धारण ऐसे काल में हुआ जिसे परम्परानुसार प्रबुद्ध-काल कहा जाता है। फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के ढाँचे को प्रबुद्ध-काल के उन विचारों के सन्दर्भ में समझा जा सकता है जो कई शताब्दियों में व्यक्त हुए हैं और बहुत कुछ सार्वभौमिक हैं। किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के इस निर्माण-काल के पहले और बाद में भी स्थानीय परम्पराएँ रही हैं जो उतनी सार्वभौमिक नहीं हैं किन्तु अमरीकी विचारों के गठन में फिर भी जिनका महत्वपूर्ण योग है—मिसाल के लिए न्यू-इंगलैण्ड के शुद्धतावादियों का प्लेटोवाद दक्षिण और पश्चिम के खेतिहर आदर्श जैफर्सन का उग्र लोकतन्त्र पापुलिस्ट आन्दोलन (अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में अर्थतन्त्र पर सार्वजनिक नियन्त्रण और आर्थिक समानता के समर्थक) विभिन्न धर्मों के धर्मोपदेश प्रकृति और समाज के विकासवादी दर्शन सामाजिक संगठन और व्यवस्था के

विनिर्माणात्मक धारणाएँ। विचारों के जो आन्दोलन इसमें सम्बद्ध हैं उन्हें ऐसे लोगों के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से जो इनके साथ-साथ ही बड़े नहीं हुए, उनकी ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है।

किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुभूति इस कारण कि अमरीकी चेतना इससे सर्वाधिक परिचित है, यह है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमरीकी जीवन और विचार का एक गम्भीर संकट का सामना करना पड़ा। संकट बीत गया लेकिन जिन समस्याओं से संकट उत्पन्न हुआ था वे अब भी उत्तर और दक्षिण के मन और नैतिकता पर छाई हुई हैं। राजनीतिक और आर्थिक संकट रक्तपात और कटुता के द्वारा समाप्त हुआ, किन्तु स्वतन्त्रता समानता और बन्धुत्व की गम्भीर समस्याएँ—जो अपनी प्रकृति में ही ऐसी हैं कि उनका कभी कोई स्थायी हल नहीं हो सकता और हर पीढ़ी में उनका पुन निरूपण और पुनः अध्ययन करना पड़ेगा—आज भी अमरीकियों को उद्वेलित कर रही हैं। उनके गृह-युद्ध के अनुभव ने अमरीकियों को यह भावना प्रदान की है कि वे केवल किसी विद्रोह-मात्र से नहीं वरन् एक क्रान्ति से गुजर कर निकले हैं और यह कि व्यावहारिक और दार्शनिक दोनों प्रकार की समस्याएँ धैर्य के साथ और शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझायी जाएँगी। देश में शान्ति बनाये रखने के इस स्पष्ट निश्चय के ऊपर, विश्व संघर्षों से निपटने के लिये कोई तर्कसंगत उपाय खोजने का अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास छाया रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विदेशी नीतियों के प्रति विशिष्ट अमरीकी दृष्टिकोणों के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना अन्य देशों के पाठकों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। राजनीति में अमरीकी नीतिज्ञता और धर्मसम्प्रेषवाद के भी अनुराग का एक शताब्दी पूर्व के अमरीकी संकट और क्रान्ति के सन्दर्भ में समझना चाहिये जिसकी छाया हमारे विचारों को गम्भीरता और मर्यादा प्रदान करती रहती है। इसके फलस्वरूप अमरीकी लोग विश्व-युद्धों की व्याख्या उन लोगों की अपेक्षा कुछ भिन्न रीति से करते हैं, जो समझते हैं कि वे इस समय एक क्रान्तिकारी स्थिति में हैं।

अमरीकी दर्शन के इतिहासकार के लिए ज्ञान मूल्य और नैतिकता सम्बन्धी अमरीकी सिद्धान्तों के पिछले दिनों दिखाई पड़ने वाली प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण शायद सबसे कठिन कार्य है। बीसवीं शताब्दी में अमरीकी दार्शनिक विचारधारा में एक ऐसी प्रवृत्ति और ऐसा स्वर विकसित हुआ है जिसकी विशिष्टता महत्त्वपूर्ण है। उस जैसी कोई चीज अन्यत्र कहीं नहीं है। किन्तु इसमें बहुतेरे तत्त्व हैं जिनमें से कुछ यूरोप से लिये गये हैं। आंशिक रूप में यह अमरीकी दार्शनिकों की उस पीढ़ी के कार्य की परिणति है जो अब जीवित नहीं है किन्तु जिनके विचार जीवित दार्शनिकों के कार्य के मूल में हैं। विलियम जेम्स सी० एस० पीयर्स,

आया और दक्षिण की बागान व्यवस्था में एक प्रान्तीय कैवेलियरवाद और गुलामी पर आधारित अर्थतन्त्र को जन्म दिया। इन दोनों क्षेत्रों के बीच मध्य और पूर्वी औद्योगिक क्षेत्र में हम प्राकृतिक विज्ञानों प्रविधियों और पूँजीवाद का घर पाते हैं। मिसीसिपी घाटी के चौड़े मैदानों में जिसका कृषि-धन स्वतन्त्र किसानों ने निर्मित किया एक विशिष्ट घरेलू संस्कृति और लोकतान्त्रिक संस्थाओं को विकसित किया जो विशाल खुले इलाकों के और अधिक खुले हुए समाज के अनुकूल थी। यहाँ सेण्ट लुई मिसौरी में और उसके आस-पास देश के औद्योगिक केन्द्र में एक आदर्शवादी राष्ट्रवाद का विकास हुआ जिसने उत्तर और दक्षिण के बीच गृह-युद्ध के संकट के समय और बाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। निकटतम अतीत में प्रशान्त महासागर के तट पर एक सघन सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ है। प्राची की ओर खुले इस क्षेत्र ने प्राची के कुछ विचार भी ग्रहण किये और पश्चिम (पश्चिमी अमरीका) को राष्ट्रीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग बनाया।

इस बहुलता के साथ आगामी पृष्ठों में न्याय कर सकना स्पष्टतः असम्भव है। मुझे बाध्य होकर, जैसा हर इतिहासकार को करना पड़ता है सामग्री और परम्परा के अनन्त समूह से ऐसी विचार-धाराएँ चुननी पड़ी हैं अमरीकी दिमागों पर जिनका जीवन्त प्रभाव दीर्घजीवी प्रतीत होता है। और अपनी इतिहास-पुस्तक के इस संस्करण के लिए मैंने केवल अमरीकी विचार के सारभूत तत्व चुने हैं। अमरीका में कोई भी विदेशी पूर्णतः विजातीय नहीं होता। उसकी संस्कृति का हमारी संस्कृति पर कुछ प्रभाव पहले से ही है। फिर भी अमरीकी दर्शन के विषयों और शब्दावली में बहुत कुछ ऐसा है जिसे ऐतिहासिक सन्दर्भ में रख कर अधिक बोधगम्य बनाने की आवश्यकता है।

संयुक्त राज्य का राजनीतिक रूप-निर्धारण ऐसे काल में हुआ जिसे परम्परानुसार प्रबुद्ध-काल कहा जाता है। फलस्वरूप हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के ढाँचे को प्रबुद्ध-काल के उन विचारों के सन्दर्भ में समझा जा सकता है जो कई संस्कृतियों में व्याप्त हुए हैं और बहुत कुछ सार्वभौमिक हैं। किन्तु हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं के इस निर्माण-काल के पहले और बाद में भी स्थानीय परम्पराएँ रही हैं जो उतनी सार्वभौमिक नहीं हैं किन्तु अमरीकी विचारों के गठन में फिर भी जिनका महत्वपूर्ण योग है—मिसाल के लिए न्यू-इंगलैण्ड के शुद्धतावादियों का पौरोहित्यवाद दक्षिण और पश्चिम के खेतिहर आदर्श जैक्सन का उग्र लोकतन्त्र पापुलिस्ट आन्दोलन (अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में अर्थतन्त्र पर सार्वजनिक नियन्त्रण और आर्थिक समानता के समर्थक) विभिन्न धर्मों के धर्मोपदेश प्रकृति और समाज के विकासवादी दर्शन सामाजिक संगठन और व्यवस्था के

विनिमयणात्मक आदर्श। विचारों के जो आन्दोलन इनसे सम्बद्ध हैं उन्हें ऐसे लोगों के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से जो इनके साथ-साथ हो बड़े नहीं हुए, उनकी ऐतिहासिक व्याख्या आवश्यक है।

किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुभूति इस कारण कि अमरीकी चेतना इससे सर्वाधिक परिचित है, यह है कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में अमरीकी जीवन और विचार को एक गम्भीर संकट का सामना करना पड़ा। संकट बीत गया लेकिन जिन समस्याओं से संकट उत्पन्न हुआ था वे अब भी उत्तर और दक्षिण के मन और नैतिकता पर छाई हुई हैं। राजनीतिक और आर्थिक संकट रक्तपात और कटुता के द्वारा समाप्त हुआ, किन्तु स्वतन्त्रता समानता और बन्धुत्व की गम्भीर समस्याएँ—जो अपनी प्रकृति में ही ऐसी हैं कि उनका कभी कोई स्थायी हल नहीं है तथा और हर पीढ़ी में उनका पुनः निरूपण और पुनः अध्ययन करना पड़ेगा—आज भी अमरीकियों को उद्वेलित कर रही हैं। उनके गृह-युद्ध के अनुभव ने अमरीकियों का यह भावना प्रदान की है कि वे केवल किसी विद्रोह-मात्र से नहीं वरन् एक क्रान्ति से गुजर कर निकले हैं और यह कि व्यावहारिक और दार्शनिक दोनों प्रकार की समस्याएँ धैर्य के साथ और शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझायी जाएँगी। देश में शान्ति बनाये रखने के इस स्पष्ट निश्चय के ऊपर विश्व संघर्षों से निपटने के लिये कोई तर्कसंगत उपाय खोजने का प्रभाव छाया रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों और विदेशी नीतियों के प्रति विशिष्ट अमरीकी दृष्टिकोणों के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना अन्य देशों के पाठकों के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। राजनीति में अमरीकी नैतिकता और धर्मसम्प्रदायवाद के भी बहुभाग को एक क्रान्तिकारी पूर्व के अमरीकी संकट और क्रान्ति के सन्दर्भ में समझना चाहिये जिसकी छाया हमारे विचारों को गम्भीरता और मर्यादा प्रदान करती रहती है। इसके फलस्वरूप अमरीकी लोग विश्व-युद्धों की व्याख्या उन लोगों की अपेक्षा कुछ भिन्न रीति से करते हैं, जो समझते हैं कि वे इस समय एक क्रान्तिकारी स्थिति में हैं।

अमरीकी दर्शन के इतिहासकार के लिए, ज्ञान मूल्य और नैतिकता सम्बन्धी अमरीकी सिद्धान्तों के पिछले दिनों दिखाई पड़ने वाली प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण शायद सबसे कठिन कार्य है। बीसवीं शताब्दी में अमरीकी दार्शनिक विचारधारा में एक ऐसी प्रवृत्ति और ऐसा स्वर विकसित हुआ है जिसकी विशिष्टता महत्त्वपूर्ण है। उस जैसी कोई चीज अन्यत्र कहीं नहीं है। किन्तु इसमें बहुतेरे तत्व हैं जिनमें से कई यूरोप से लिये गये हैं। आंशिक रूप में यह अमरीकी दार्शनिकों की उस पीढ़ी के कार्य की परिणति है जो अब जीवित नहीं है किन्तु जिसके विचार जीवित दार्शनिकों के कार्य के मूल में हैं। विलियम जेम्स सी एस पीयर्स

जोसिया रॉयस और जार्ज सुई (केवल सर्वप्रमुख नाम ही लें) की क्रान्तिकारी पीढ़ी के श्रम ने इस समय तक उस वस्तु का निर्माण कर लिया है, जिसे आमतौर पर अमरीकी दर्शन के रूप में जाना जाता है। दर्शन और दार्शनिक शिक्षा में राष्ट्रव्यापी रुचि उत्पन्न करने वाले ये व्यक्ति अमरीकी संस्कृति के चार भिन्न अंचलों के प्रतिनिधि थे। किन्तु ये प्रांचलिक व्यक्तित्व नहीं रह गये। बल्कि वे अपने को अमरीकी दार्शनिक भी नहीं समझते थे। ये बहुदेशीय आत्माएँ थीं जो यूरोप के दार्शनिक आन्दोलनों व सम्पर्क की ओर यूरोपीय विचार की सार्वभौम समस्याओं के सन्दर्भ में कार्यरत थीं। रसेल ह्वाइटहेड और जी ई॰ मूर आइन्स्टीन बर्गसन हुसर्ल और क्रॉयड पॉइन्करे, कार्नेप श्वेट्ज़र मैरिटेन सान्तायना टी॰ एस॰ इलियट हैरोल्ड लास्की ओर्टेगा उनामुनो और टिलिच की रचनाओं के द्वारा अटलान्टिक पार से जो नवीन उद्दीपन मिला उसके अभाव में एक विशिष्ट अमरीकी विचार का यह उदय सम्भव न होता। कई प्रकार की सैद्धान्तिक वायु' पिछले दिनों अमरीकी मंच' पर बही है—वह मंच जिसका निर्माण नई सदी के आरम्भ काल के महान् अमरीकियों ने किया और फिर पिछले दशकों के विश्वव्यापी तूफानों के लिये खुला छोड़ दिया। यद्यपि ये हवाएँ अलग अलग क्षेत्रों से आती हैं और विभिन्न प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करती हैं किन्तु वे एक विशिष्ट अमरीकी अनुक्रिया का सृजन करने में भी सहायक हुई। जो विचार अवस्थाएँ और ज्ञान की दिशाएँ इस समय संयुक्त राज्य में उपस्थित हैं उनमें इतनी काफ़ी सत्यनिष्ठा और सार्थकता है कि देश और विदेश में सामान्यतः उनकी ओर ध्यान दिया जाये।

विषय क्रम

गये । धर्म के क्षेत्र में पोप के निरंकुश अधिकारों को चुनौती देने वाले सुधारवादी आंदोलन चले जो मुख्यतः जर्मनी हालैंड फ्रांस स्विट्ज़रलैंड और इंगलिस्तान में फैले । इन प्रोटेस्टेन्ट सुधारवादी आंदोलन की कई धाराएं बनीं । सर्वप्रमुख धारा के मूल प्रवर्तक जान काल्विन थे । ये धर्म को चर्च (धर्म-संगठन) के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य के बीच एक प्रकार का समझौता (अनुबंध) मानते थे । गिरजा-घर का कार्य-संचालन करने वाली अधिकारियों की परिषद् (प्रेसिबटरी) के नाम पर ये प्रेसिबटीरियन कहलाए । धर्म को पूर्णतः शुद्ध करने में विश्वास करने के कारण इन्हें शुद्धतावादी भी कहा गया । फ्रांस में आरम्भ में इन्हें ह्यूगीनाट कहा गया (संभवतः नेता के नाम पर)। बाद में सारे यूरोप में इस मत के लिए सुधारवादी चर्च' का प्रयोग होने लगा ।

दूसरी धारा अनाबैप्टिस्ट (पुन: बपतिस्मावादी) लोगों की थी जिसका प्रसार मुख्यतः जर्मनी में सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ । इसके नेता मुन्त्सर नाम के एक पादरी थे । इस आन्दोलन के समर्थकों ने कई बार राज्य-शक्ति के विरुद्ध विद्रोह किये जो असफल रहे । सुधारवादी आन्दोलनों में यह एक पराकाष्ठावादी आन्दोलन था जिसे सुधारवाद का वामपक्ष कहा जा सकता है । ये निजी आस्था को मानते थे और धर्म-समुदाय में स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्त को सामुदायिक सम्पत्ति की सीमा तक ले जाते थे । शैशव में हुए बपतिस्मा की वैधता को न स्वीकार करने के कारण विरोधियों ने इन्हें पुनः बपतिस्मावादी कहा ।

तीसरी धारा धर्मसंविधानवादियों (एपीस्कोपलिस्ट) की थी । ये धार्मिक व्यक्तिवादी थे और इनके विचारों में रहस्यवाद का भी पुट था । इसके प्रमुख नेता चार्ल्स वेसली जान वेसली और चार्ल्स व्हाइटफ़ील्ड थे । ये ईसा में विश्वास को ही मुक्ति का मार्ग मानते थे । धर्म-संदेश के प्रचार द्वारा इस विश्वास को फैलाना इनका उद्देश्य था । प्रेम अथवा शान्ति को ये विश्वास का माध्यम मानते थे । वैयक्तिक धुचिता में विश्वास करने के कारण ये पवित्रतावादी (पायटिस्ट) भी कहलाए ।

इन मुख्य धाराओं के अन्तर्गत भी बहुतेरी उप-धाराएं थीं । नाना प्रकार के भेद-विभेदों ने बहुसंख्यक सम्प्रदायों को जन्म दिया । वस्तुतः हर विचारधारा के अन्दर विभिन्न प्रभाव उभरे लड़ते थे और धारा-धारा से अन्तर नयी धाराओं और सम्प्रदायों को जन्म देते थे । सामाजिक दर्शन के क्षेत्र से एक उदाहरण लें तो सामाजिक अनुबन्ध (सोशल कान्ट्रैक्ट) सिद्धान्त के तीन मुख्य प्रवक्ताओं में रूसो और लॉक ने जहां विद्रोहों को प्रेरणा दी वहां हॉब्स राजतन्त्र के समर्थक थे । विचार के हर क्षेत्र में ऐसी ही स्थिति थी ।

अमरीकी इतिहास पुनर्जागरण-काल के अन्त और आधुनिक-काल के आरम्भ से शुरू होता है । अमरीकी इतिहास और विचार-धारा पर सबसे अधिक प्रभाव

शुद्धतावादियों का पक्ष। वे राज्य को एक प्रकार का लोकतान्त्रिक धर्मराज्य बनाना चाहते थे, जो ईश्वरीय (धार्मिक) नियमों के आधार पर संचालित हो। इस विचारधारा के बहुत से लोग कभी-कभी तो पूरे के पूरे गाँव, मुख्यत इंग्लिस्तान और हालैंड से आकर, चर्च धर्म और राज्य के कोप से बचने के लिए, न्यू-इंगलैंड (अमरीका में न्यूयार्क के उत्तर में बसे पाँच राज्यों का क्षेत्र) में बस गये थे।

धर्मशास्त्र और तर्कबुद्धि इनके टकराव से ही आधुनिककाल की एक मुख्य प्रवृत्ति अनुभववाद का विकास हुआ अर्थात् जो कुछ प्रयोग अथवा अनुभव से सिद्ध हो सके वही मान्य है, अन्य कुछ नहीं।—अनुवादक]



न्यू-इंगलैंड के शुद्धतावादियों की प्लेटोवादी परम्परा

अमरीकी दर्शन का अध्ययन शुद्धतावादी धर्म-प्रधानतावाद (प्युरिटन स्कॉलैस्टिसिज़्म) की एक शाखा से आरम्भ करना अच्छा होगा। यह विचारधारा अंशत कैम्ब्रिज (इंगलिस्तान) से और अंशत यूरोप में अपने मुख्य केन्द्र हालैंड से बनी-बनायी ही न्यू-इंगलैंड में लायी गयी थी। मैसाचुसेट्स को सर्वप्रथम बसाने वाले धर्म-सम्प्रदायवादियों[1] के पास एक असाधारणत विद्वतापूर्ण विचार दर्शन था। जब चर्च धर्म से अपनी असहमतियों के कारण वे सताये जा रहे थे तब यह दर्शन उन्हें सहारा देने वाले दैवी संदेश का काम देता था। जब अमरीकी वन्य-प्रान्त में उन्होंने अपने को ईश्वर की कृपा से वंचित लोगों[2] के बीच पाया तब भी यह एक दैवी संदेश का काम देता रहा। लेकिन क्रमश उनके धर्म पर

१ कांग्रिगेशनलिस्ट—गिरजाघरों के निश्चित क्षेत्रों में बसे हुए धर्म समुदायों को स्वायत्त अधिकार प्रदान करने के सिद्धान्त को मानने वाले।—अनु०

२ एक प्रचलित धारणा के अनुसार यहूदियों ईसाइयों और मुसलमानों को ईश्वर ने पैगम्बर (मूसा ईसा और मोहम्मद) तथा धर्म-पुस्तक (ओल्ड टेस्टामेन्ट न्यू टेस्टामेन्ट कुरान) प्रदान करने की कृपा की। संसार के अन्य सभी लोग ऐसी कृपा से वंचित रहे।—अनु०

गये। धर्म के क्षेत्र में पोप के निरंकुश अधिकारों को चुनौती देने वाले सुधारवादी आंदोलन चले जो मुख्यतः जर्मनी हालैंड फ्रांस स्विट्जरलैंड और इंगलिस्तान में फैले। इस प्रोटेस्टेन्ट सुधारवादी आंदोलन की कई धाराएं बनी। सर्वप्रमुख धारा के मूल प्रवर्तक जान काल्विन थे। ये धर्म को चर्च (धर्म-संगठन) के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य के बीच एक प्रकार का समझौता (प्रसंविदा) मानते थे। गिरजा-घोष का कार्य-संचालन करने वाली अंग्रेजों की परिषद् (प्रेस्बिटरी) के नाम पर ये प्रेस्बिटीरियन कहलाए। धर्म को पूर्णतः शुद्ध करने में विश्वास करने के कारण इन्हें शुद्धतावादी भी कहा गया। फ्रांस में आरम्भ में इन्हें ह्यूगीनाट कहा गया (संभवतः नेता के नाम पर)। बाद में सारे यूरोप में इस मत के लिए सुधारवादी चर्च का प्रयोग होने लगा।

दूसरी धारा आनाबैप्टिस्ट (पुन बपतिस्मावादी) लोगों की थी जिसका प्रसार मुख्यतः जर्मनी में सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ। इसके नेता मुन्जर नाम के एक पादरी थे। इस आन्दोलन के समर्थकों ने कई बार राज्य-शक्ति के विरुद्ध विद्रोह किये जो असफल रहे। सुधारवादी आन्दोलनों में यह एक पराकाष्ठावादी आन्दोलन था जिसे सुधारवाद का वामपक्ष कहा जा सकता है। ये निजी आस्था को मानते थे और धर्म-समुदाय में स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्त को सामुदायिक सम्पत्ति की सीमा तक ले जाते थे। शैशव में हुए बपतिस्मा की वैधता को न स्वीकार करने के कारण विरोधियों ने इन्हें पुनः बपतिस्मावादी कहा।

तीसरी धारा धर्मसंदेशप्रचारवादियों (एवांजेलिस्ट) की थी। ये अधिक व्यक्तिवादी थे और इनके विचारों में रहस्यवाद का भी पुट था। इसके प्रमुख नेता चार्ल्स वेसली जान वेसली और जार्ज व्हाइटफील्ड थे। ये ईसा में विश्वास को ही मुक्ति का मार्ग मानते थे। धर्म-संदेश के प्रचार द्वारा इस विश्वास को फैलाना इनका उद्देश्य था। प्रेम अथवा शान्ति को ये विश्वास का माध्यम मानते थे। वैयक्तिक शुचिता में विश्वास करने के कारण ये पवित्रतावादी (पायटिस्ट) भी कहलाए।

इन मुख्य धाराओं के अन्तर्गत भी बहुतेरी उप-धाराएं थी। नाना प्रकार के भेद-विभेदों ने बहुसंख्यक सम्प्रदायों को जन्म दिया। वस्तुतः हर विचारधारा के अन्दर विभिन्न प्रभाव काम करते थे और धारा-धारा से अन्तर नयी धाराओं और सम्प्रदायों को जन्म देते थे। सामाजिक दर्शन के क्षेत्र से एक उदाहरण लें तो सामाजिक अनुबन्ध (सोशल कान्ट्रैक्ट) सिद्धान्त के तीन मुख्य प्रवक्ताओं में रूसो और लॉक ने जहाँ विद्रोहों को प्रेरणा दी वहाँ हॉब्स राजतन्त्र के समर्थक थे। विचार के हर क्षेत्र में ऐसी ही स्थिति थी।

अमरीकी इतिहास पुनः जागरण-काल के अन्त और आधुनिककाल के आरम्भ से शुरू होता है। अमरीकी इतिहास और विचार-धारा पर सबसे अधिक प्रभाव

शुद्धतावादियों का पक्ष। वे राज्य को एक प्रकार का लोकतान्त्रिक धर्मराज्य बनाना चाहते थे जो ईश्वरीय (धार्मिक) नियमों के आधार पर संचालित हो। इस विचारधारा के बहुत से लोग कभी कभी तो पूरे के पूरे गाँव, मुख्यत इंग्लिस्तान और हालैंड से आकर, वहाँ धर्म और राज्य के कोप से बचने के लिए, न्यू-इंगलैंड (अमरीका में न्यूयार्क के उत्तर में बसे पाँच राज्यों का क्षेत्र) में बस गये थे।

धर्मवाद और तर्कबुद्धि इनके टकराव से ही आधुनिककाल की एक मुख्य प्रवृत्ति अनुभववाद का विकास हुआ अर्थात् जो कुछ प्रयोग अथवा अनुभव से सिद्ध हो सके वही मान्य है, अन्य कुछ नहीं।—अनुवादक]

• •

न्यू-इंगलैंड के शुद्धतावादियों की प्लेटोवादी परम्परा

अमरीकी दर्शन का अध्ययन शुद्धतावादी धर्म-प्रधानतावाद (प्युरिटन स्कॉलैस्टिसिस्म) की एक शाखा से आरम्भ करना अच्छा होगा। यह विचारधारा अंशत कैम्ब्रिज (इंगलिस्तान) से और अंशत यूरोप में अपने मुख्य केन्द्र हालैंड से बनी-बनायी ही न्यू-इंगलैंड में लायी गयी थी। मैसाचुसेट्स को सर्वप्रथम बसाने वाले धर्म-समुदायवादियों[1] के पास एक असाधारणत विशदतापूर्ण विचार दर्शन था। जब वहाँ धर्म से अपनी असहमतियों के कारण वे सताये जा रहे थे तब यह दर्शन उन्हें सहारा देने वाले दैवी संदेश का काम देता था। जब अमरीकी वन्य-प्रान्त में उन्होंने अपने को ईश्वर की कृपा से वंचित लोगों[2] के बीच पाया तब भी यह एक दैवी संदेश का काम देता रहा। लेकिन अन्तत उनके धर्म पर

---

१ कांग्रेगेशनलिस्ट—गिरजाघरों के निश्चित क्षेत्रों में बसे हुए धर्म समुदायों को स्वायत्त अधिकार प्रदान करने के सिद्धान्त को मानने वाले।—अनु०

२ एक प्रचलित धारणा के अनुसार यहूदियों ईसाइयों और मुसलमानों को ईश्वर ने पैगम्बर (मूसा ईसा और मोहम्मद) तक धर्म-पुस्तक (ओल्ड टेस्टामेन्ट न्यू टेस्टामेन्ट कुरान) प्रदान करने की कृपा की। संसार के अन्य सभी लोग ऐसी कृपा से वंचित रहे।—अनु०

आधारित राज्य संगठनों के लिए एक वैधानिक सिद्धान्त बन गया आस्था की वस्तु न रह जाने पर भी बहुत दिनों तक उसकी कल्पना पर छाया रहा।

धर्म-समुदायवादी शुद्धतावाद की परम्परा का स्रोत हमें पुनः जागरणकालीन प्लेटोवाद में और विशिष्टत पीटर रेमुस (१५१५-७२) में मिलता है। वे एक फ्रांसीसी मानववादी[1] और प्लेटोवादी थे। उन्होंने अरस्तूवादी शास्त्रीयता के तर्कों और भाषा-प्रयोग की बड़ी तीखी आलोचना की, विशेषतः उसके पदार्थ-निरूपण और विधेय रूपों[2] की जो उन्हें बिल्कुल व्यर्थ प्रतीत हुए। १५६१ में उन्होंने काल्विनवाद[3] स्वीकार कर लिया और नाइम्स की धर्म संगोष्ठी[4] (१५७२) में प्रेस्बिटीरियन[5] मत के विरुद्ध एक शुद्ध धर्म-समुदायवादी सिद्धान्त का समर्थन करने के कारण उन्हें काफी कुख्याति मिली। प्रेस्बिटीरियन लोगों ने उनके सिद्धान्त को अत्यधिक आकस्मिक और इस कारण 'बिल्कुल वाहियात और घातक'

---

१ पुनः जागरणकाल में, धर्मशास्त्रों की सीमा लांघ कर यूनानी और रोमी रचनाओं का अध्ययन करने वालों के लिए प्रयुक्त। अंग्रेजी में 'ह्यूमनिस्ट'।—अनु०

२. अरस्तू के तार्किक विचारों का आधार एक मूल-विभाजन है। इसमें एक ओर तो मूल तत्त्व (पदार्थ) हैं जिनमें सृष्टि की सभी वस्तुओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। अरस्तू के अनुसार ये मूल तत्त्व हैं—वस्तु, परिमाण, गुण, सम्बन्ध, स्थान, काल, मुद्रा, अधिकार, क्रिया और आवेग। दूसरी ओर विधेय अर्थात् वे सभी बातें हैं जो उक्त पदार्थों के बारे में कही जा सकती हैं। अंग्रेजी में 'कैटेगोरीज' और 'प्रेडिकेबिल्स'—अनु०

३ जान काल्विन (१५०९-१५६४)—शुद्धतावादी विचारधारा के मूल प्रवर्तक जिन्होंने ईश्वर द्वारा उद्धार के लिए विशिष्ट व्यक्तियों के चयन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त शुद्धतावादियों में यह भावना उत्पन्न करने में सहायक हुआ कि वे ईश्वर के चुने हुए पूत हैं।—अनु०

४ प्रेस्बिटीरियन मत की धर्म-संगोष्ठी (सायनाड) जिसमें सम्बन्धित क्षेत्र (मंडल प्रान्त या देश) के धर्माधिकारी और प्रजा भाग लेते हैं। नाइम्स नगर फ्रान्स में प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायियों का एक गढ़ था जहाँ फ्रान्स में प्रोटेस्टेन्ट मत काफी फैल जाने के बाद उनकी एक संगोष्ठी हुई।

५ प्रेस्बिटीरियन—शुद्धतावादियों का सम्प्रदाय जो गिरजाघर के सभी लोगों द्वारा नहीं वरन् समान अधिकार वाले पंचों द्वारा शासन के सिद्धान्त को मानता था। इसका प्रचार मुख्यतः स्काटलैंड में हुआ।—अनु

कह कर उसकी भर्त्सना की। सेन्ट बार्थोलोम्यू के हत्याकांड[1] में उनकी हत्या हो गयी। इस प्रकार उनके जीवन और उनकी मृत्यु, दोनों ने ही उन्हें एक प्रोटेस्टेन्ट सन्त और शहीद बनाने में योग दिया। दर्शन में उनकी मुख्य देन यह थी कि प्लेटो के विचारों पर आधारित एक प्रकार के द्वन्द्ववाद या हेतु को उन्होंने शास्त्रीय और अरस्तूवादी 'प्रत्यक्ष प्रमाण के तर्क' से अधिक मौलिक और उपयोगी कला कर उसे पुनर्जीवित और व्यवस्थित किया। वे तर्कशास्त्र को प्रमाण के विज्ञान की अपेक्षा प्रमाण की कला मानते थे—मनुष्य की सहज बुद्धि को अनुशासित करने की कला। द्वन्द्व या व्यवस्थित हेतु के द्वारा उन्होंने अन्तर और विवेक की कला सिखाई। तार्किक विश्लेषण की इस कला को उन्होंने आविष्कार कहा। तर्कशास्त्र की दूसरी शाखा को उन्होंने निर्णय या विन्यास कहा जो उन सभी को जोड़ने की कला है जिन्हें द्वन्द्व अलग करता है। रेमुस ने अपनी विचार-व्यवस्था का समर्थन मुख्यतः उसके शैक्षणिक मूल्य के आधार पर किया। लेकिन उनके कुछ शिष्यों ने विशेषतः मेधाभ्ययन के जर्मन छात्रों में, जे० एच० आलस्टेड नामक एक छात्र ने द्वन्द्वात्मक विधि का विकास कलाओं और विज्ञानों के हर क्षेत्र में एक विश्व-कोष के रूप में किया। आलस्टेड का 'एन्साइक्लोपेडिया (विश्व-कोष, १६३०) शुद्धतावादी दर्शन का एक लोकप्रिय ग्रन्थ बन गया। इसमें शिक्षाशास्त्र के अतिरिक्त तीन अन्य मूल-विषय माने गये—'डाइडैक्टिया हेक्सिलॉजिया' दिमाग के गठन और आदतों का ज्ञान 'टेक्नालॉजिया' द्वन्द्वात्मक विधि से प्रस्तुत कलाओं की व्यवस्था जिससे मूल सम्बन्धों और ज्ञान की एकता का पता चले, और 'आर्किलॉजिया' ज्ञान और अस्तित्व दोनों के ही आद्य-स्वरूपी तत्वों और सिद्धान्तों का शास्त्र, जो मोटे तौर पर प्लेटो की विचार-व्यवस्था के समान है। ज्ञान-प्राप्ति, या सभी विषयों को अपनी परिधि में लेने वाले दर्शन का सामान्य लक्ष्य था मनुष्य की सहज (अकृत्रिम) बुद्धि को अनुशासित (कृत्रिम) तर्कशीलता में परिवर्तित करना जब तक कि मनुष्य का दिमाग ईश्वर का एक प्रतिरूप न बन जाए।

सर विलियम टेम्पिल ने १६८० में रेमुस की विचार-व्यवस्था को कैम्ब्रिज

---

१ सेन्ट बार्थोलोम्यू दिवस, २४ अगस्त, १५७२ को आरम्भ हुआ, फ्रांस में प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायियों का हत्याकांड। इस घटना के पीछे मुख्यतः रानी कैथराइन मेडिसी का हाथ था। हत्याकांड पेरिस में १७ सितम्बर तक चलता रहा और देश के अन्य भागों में भी फैला जहाँ ३ अक्तूबर को समाप्त हुआ। अनुमान है कि इसमें लगभग पचास हजार प्रोटेस्टेन्ट (जो फ्रांस में ह्यूगीनोट्स कहलाते थे) मारे गये।—अनु०

विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कराया, जहाँ उसने कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद की अभिवृद्धि में सहायता की। यह विचार-व्यवस्था धर्म-समुदायवाद के समर्थकों का आधार बन गयी। कैम्ब्रिज में शुद्धतावाद के प्रतिनिधि थे अलेक्ज़ेण्डर रिचर्डसन, चार्ल्स चोनासे, ऐम्ब्रो बुटन और विशेषतः विलियम एम्स जिनकी रचनाएँ प्रारम्भिक न्यू-इंगलैंड के प्रिय दर्शन-ग्रन्थ बनीं। १६७२ में एम्स ने रेमुस की रचना 'डायलेक्टिक्स विद कमेण्टरी' (अनुवाद टीका सहित) का एक संस्करण प्रकाशित किया। उसी वर्ष मिल्टन ने अपनी पुस्तक इन्स्टिट्यूशस ऑफ दि आर्ट ऑफ लॉजिक बेस्ड ऑन दी फिलासफ़ी ऑफ पीटर रेमुस (पीटर रेमुस के दर्शन पर आधारित तर्कविद्या की स्थापनाएँ) प्रकाशित की। रेमुस के दर्शन और प्रसंविदात्मक धर्मशास्त्र[1] को लोकप्रिय बनाने वाले अन्य शुद्धतावादी धर्मशास्त्री थे विलियम पर्किन्स जॉन प्रेस्टन और थामस हूकर।

न्यू-इंगलैंड आने के पहले हूकर ने कैम्ब्रिज में रिचर्डसन से रेमुस का दर्शन पढ़ा था। न्यू-इंगलैंड आकर वे इस विचार-व्यवस्था के सर्वाधिक जानकार प्रतिपादक बने और न्यू-इंगलैंड के पादरियों के एक पर्याप्त शिक्षित समूह के साथ मिलकर कई दशकों तक धर्म-समुदायवाद का दार्शनिक समर्थन करते रहे। न्यू इंगलैंड में इस दार्शनिक शुद्धतावाद ने एक निश्चित बौद्धिक परम्परा का निर्माण किया जिसके मुख्य अंग थे धर्म-संघीय नगरों का सिद्धान्त और 'टेक्नोलाजिया (कलाओं की व्यवस्था) का शास्त्रीय विकास।

यूरोप में रेमुस के दर्शन और प्रसंविदात्मक धर्मशास्त्र का प्राथमिक लक्ष्य सामान्य व्यक्ति को ऐसे बौद्धिक औज़ार प्रदान करना था जिससे वह पादरियों के विशेषाधिकार संस्कार विधियों की आवश्यकता और प्रतिष्ठित संस्थाओं की शक्ति को समाप्त कर सके। इंगलिस्तान में धर्म-समुदायवादी अधिक से अधिक यही आशा कर सकते थे कि इंगलिस्तानी चर्च[2] के मान्य और प्रतिष्ठित अंगों के रूप में गिरजा-क्षेत्रों को प्रसंविदात्मक सिद्धान्तों के आधार पर अपना संगठन करने की अनुमति मिल सकेगी। यद्यपि वे काल्विन के सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे कि सभी राज्यों को पवित्र प्रजाधिपत्य (होली कामनवेल्थ) बन जाना चाहिए, किन्तु अपने कार्यक्रम पर वे अमल नहीं कर सकते थे। इसके विपरीत न्यू-इंगलैंड

---

१ धर्म की चर्च (धर्म-संगठन) के माध्यम से ईश्वर और मनुष्य के बीच एक प्रकार का समझौता मानने वाला सिद्धान्त। अंग्रेज़ी में 'कवेनान्ट थियालोजी'।—अनु०

२ इंगलिस्तान की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा स्थापित धर्म-संगठन जिसमें इंगलिस्तान का राजा ही चर्च का भी प्रधान होता है।—अनु०

में छोटे-छोटे स्वतन्त्र समुदायों नगरों या गिरजा-क्षेत्रों को प्रतिज्ञाओं या सामाजिक अनुबन्धों के द्वारा ईसा के छोटे-छोटे राज्यों या धर्मतन्त्रों के रूप में संगठित करना संभव था, जिनमें लोगों द्वारा चुने गये दंडाधिकारी और पादरी ईश्वरीय नियमों को लागू करने के लिए संयुक्त रूप से उत्तरदायी हों। जोनाथन मिचेल ने १६६१ में कहा कि "बाद में सम्पूर्ण समाजों में ईसा के राज्य का निर्माण 'हमारा उद्देश्य था और इस देश में हमारी रुचि का आधार' था। यद्यपि आन्तरिक और सहस्र राज्य के प्रति जो उनका विषय-प्रेम था आदर में भाव।" और प्रोफेसर पेरी मिलर की टीका बड़ी उपयुक्त है। 'सत्रहवीं शताब्दी के ईसाई जगत् में न्यू०-इंगलैंडवासियों को अनुपम बनाने वाला सभी सुधारवादी धर्म संगठनों से उनको अलग करके उन्हें वस्तुतः एक विशिष्ट समाज बनाने वाला उनका यह स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त था कि "ईश्वरीय अनुकम्पा की अविच्छिन्न राजनीति में हठसमान् सर्व-मार्ग की एक सर्व-मतविरता से आवृत है।'[1] यद्यपि न्यू-इंगलैंड के धर्मशास्त्रियों ने अपनी पीठिकाओं से ऐसी घोषणा जारी करने की प्राप्त सत्ता ली और एक विशेषाधिकारयुक्त वर्ग का स्थान और शक्तियाँ ग्रहण कर लीं, किन्तु सामान्य व्यक्ति आगे चल कर अपनी अर्थविचारात्मक अधिकारों को मनवा सके और उन्होंने धीरे-धीरे पादरियों द्वारा संचालित धर्मतन्त्रों को क्षीण करके उन्हें लोकतन्त्र का रूप दिया। निःसन्देह, पादरियों ने अधर्म की वृद्धि के खिलाफ आवाज उठाई किन्तु युवा पीढ़ी ने, जिसमें युवा पादरी भी थे, इस चीत्कार की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। दूसरे शब्दों में जो कोई यूरोप में मुख्यतः पादरियों के विशेषाधिकारों के विरुद्ध मध्यम-वर्ग का विद्रोह थी, वह अमरीका में स्वतन्त्र राजनैतिक समुदायों के निर्माण का ठोस आधार बन गयी। इन समुदायों में पादरियों की शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो गयी और प्रतिष्ठा भी वहीं तक बनी रही जहाँ तक उन्होंने स्वयं 'सामान्य' लोगों के दृष्टिकोण को अपना लिया। न्यू-इंगलैंड के नगर न ग्राम व्यापारी साहसिकों के पूँजी विनियोग थे, न पवित्र प्रजाधिपत्य। वे दोनों होने का दावा करते थे लेकिन धीरे-धीरे एक विशिष्ट प्रकार की स्वतन्त्रता का विकास हुआ, जिसमें प्लेटोवादी आदर्शवाद और यान्की (न्यू-इंगलैंडवासियों का अन्यनाम) व्यापारिक समृद्धि का मिश्रण था। ईश्वरीय 'वचन' और विधान स्वतन्त्र प्रजाधिपत्यों का विचार सर्वत्र या मान्यता का आधार बन गया।

इस पूर्वग्रहवादी प्लेटोवाद से ईश्वरवाद (डाइज्म)[2] और प्राकृतिक धर्म

१ पेरी मिलर 'दी न्यू-इंगलैंड माइण्ड' (न्यूयार्क १९३९), पृष्ठ ४४७।

२. प्राकृतिक धर्म का सिद्धान्त, अर्थात् ईश्वर में विश्वास किन्तु धर्मशास्त्रों के ईश्वर प्रदत्त होने में नहीं।—अनु०

की और संक्रमण आसानी से धीरे-धीरे और बहुत कुछ अचेतन रूप में हुआ। कारण यह था कि शुद्धतावादी स्पष्टतः बाइबिल के धर्मनियमों और प्रसंविदा पर उतने निर्भर नहीं थे जितना वे स्वयं मानते थे। उनकी विचार-व्यवस्था आरम्भ से ही बाइबिल पर आधारित होने की अपेक्षा वास्तविक रूप में तार्किक अधिक थी।

जब न्यू-इंगलैंड में सर्वप्रथम अधिक लोकतांत्रिक शासन के हित में दंडाधिकारियों और पादरियों के विरुद्ध 'प्रकृति-प्रदत्त' अधिकारों को मनवाने का प्रयास किया गया तो गवर्नर विन्थ्रोप ने उसका प्रभावकारी उत्तर दिया और शुद्धतावादी दर्शन के सन्दर्भ में 'प्राकृतिक स्वतन्त्रताओं' के समर्थन को 'भ्रष्ट स्वतन्त्रताओं' का समर्थन कह कर उसकी निन्दा की।

स्वतन्त्रता के दो रूप हैं प्राकृतिक (हमारी प्रकृति अब जैसी भ्रष्ट है मेरा तात्पर्य उससे है) और नागरिक या संघीय। पहले प्रकार की स्वतन्त्रता मनुष्य और पशुओं व अन्य प्राणियों के लिए समान है। इसमें मनुष्य को मनुष्य के साथ अपने सहज-सम्बन्ध में जो कुछ भी चाहे करने की स्वतन्त्रता होती है। यह अच्छाई और बुराई दोनों की स्वतन्त्रता है। यह स्वतन्त्रता सत्ता से बेमेल और असंगत है और अधिकतम न्यायपूर्ण सत्ता द्वारा भी जरा से भी अंकुश को नहीं सह सकती। इस स्वतन्त्रता को कायम रखने और इसका उपभोग करने से मनुष्य में बुराई बढ़ती है और धीरे-धीरे वह विवेकहीन पशुओं से भी गया-गुजरा हो जाता है—पूर्ण उच्छृंखलता से सभी का ह्रास होता है (Omnes sumus licentia deteriores)। यह सत्य और शान्ति का वह महान् शत्रु है, वह जंगली पशु है, जिसे संयमित और शमित करना सभी ईश्वरीय विधानों का लक्ष्य है। दूसरे प्रकार की स्वतन्त्रता को मैं नागरिक या संघीय कहता हूँ। ईश्वर और मनुष्य के बीच की प्रसंविदा के सन्दर्भ में नैतिक नियमों में और मनुष्यों की आपसी राजनैतिक प्रसंविदाओं और संविधानों के सन्दर्भ में इसे नैतिक स्वतन्त्रता भी कहा जा सकता है। यह स्वतन्त्रता सत्ता का समुचित लक्ष्य और उद्देश्य है और उसके बिना नहीं रह सकती। यह केवल अच्छाई न्याय और ईमानदारी की स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता का (न केवल अपनी सम्पत्ति बल्कि) आवश्यकता पड़े तो अपने जीवन को भी खतरे में डालकर आपको समर्थन करना है। 'यह स्वतन्त्रता एक रूप में सत्ता के अधीन रह कर ही कायम रखी और उपयोग की जाती है। यह उसी प्रकार की स्वतन्त्रता है जिसके द्वारा ईसा ने हमें मुक्त किया है।'[1]

---

१ जान विन्थ्रोप, हिस्टरी आफ न्यू-इंगलैंड जेम्स केन्डाल होस्मर द्वारा सम्पादित (न्यूयार्क १९०८) खंड २, पृष्ठ २१८-२१९।

ह्यूम का भी यही उत्तर होता। फिर भी ये नागरिक या धर्मविश्वासात्मक स्वतन्त्रताएँ अधिकाधिक सामने आयीं। जान वाइज ने शुद्धतावादी दृष्टि का भेद खोल दिया। जब उन्होंने घोषित किया कि अगर 'मनुष्य की नैतिक समानता का विचार छोड़ दिया जाए' तो 'ईसाई स्वतन्त्रता के धर्मविश्वासात्मक धर्मोपदेश के समकक्ष धर्म-निरपेक्ष सामाजिक-अनुबन्ध के सिद्धान्त को जैसी पुफेनडोर्फ ने उसकी व्याख्या की थी, रखा जा सकता था।' शुद्धता की चेतना के क्रमिक ह्रास और अंग्रेज व्यापारिकता के विरुद्ध बढ़ती हुई खीझ के साथ-साथ लॉक के 'निबन्धों' (ट्रीटाइजेज) का न्यू-इंग्लैंड में अधिकाधिक स्वागत हुआ और अन्तत विद्रोह का औचित्य सिद्ध करने के लिए उनका उपयोग किया गया।

सामाजिक सिद्धान्त के साथ जो बात हुई वही प्राकृतिक दर्शन के साथ भी हुई। कैम्ब्रिज का प्लेटोवाद न्यूटन के विज्ञान के उदय के साथ निकट से सम्बद्ध था और जब १७०० के लगभग बेकन, न्यूटन और लॉक की रचनाएँ न्यू-इंग्लैंड में उपलब्ध हुईं, तो उन्होंने शीघ्र ही रैमुसवादी ग्रन्थों की पुरानी पड़ चुकी भौतिकी और तर्क-विद्या का स्थान ले लिया।

प्रेम का पवित्रतावादी सिद्धान्त

शुद्धतावादी धर्म-नगरों की पूर्ण स्थापना होने के पहले ही उनमें पवित्रतावादियों के अविश्वासी समूह घुस आये जिन्हें धर्मशास्त्री आमतौर पर केवल 'निप्रतिषेधवादी'—धार्मिक अराजकतावादी कहते थे और अपनी मानुराधिक आस्था का पूर्ण अधिकार मान कर जिनसे भय खाते थे। पहले क्वेकर[2] और अनाबैप्टिस्ट[3] लोग आये, फिर मेथोडिस्ट[4]। ये सभी 'उत्साह

१ पायटिज्म—प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों में श्रद्धा, शुचिता, या भावनात्मकता की वृद्धि के लिए सत्रहवीं शताब्दी में आरम्भ आन्दोलन।—अनु०

२ जार्ज फाक्स द्वारा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में स्थापित मत जिसका वास्तविक नाम 'मित्र-समाज' है। इसके मुख्य सिद्धान्त हैं—*भाषा-भूषा की* सादगी और शान्तिमय आचरण।—अनु०

३ शैशवकालीन बपतिस्मा की वैधता अस्वीकार करने के कारण पुनर्बपतिस्मावादी कहलाते हैं। प्रोटेस्टेन्ट सुधारवाद की एक पराकाष्ठा पूर्ण धारा। ये निजी आस्था और समानता को मानते हैं। यह आन्दोलन मुख्यतः जर्मनी में चला जहाँ इसके समर्थकों ने कई विद्रोह भी किये।—अनु

४ मोटे तौर पर धर्म-नियमवादियों के लिए प्रयुक्त।—अनु०

या पुनरुत्थान को और वैयक्तिक अनुभूति को मानते थे। उत्तरे को समझकर शुद्धतावादी लोग स्नेह उत्पन्न करने या धार्मिक भाव प्रवणता के विरुद्ध सौम्यता और ज्ञान पर जोर देने लगे।

व्यक्तिवाद और धर्म-संघवाद का मूलसंघर्ष 'महान् जागरण' के रूप में चारों ओर से फैला जब यूरोपीय पवित्रतावाद और धर्म-उद्दीपनवाद[1] अमरीका पहुँचे और उन्होंने जनसंख्या के बड़े हिस्से को शीघ्र ही प्रभावित कर लिया। शुद्धतावादियों में इस संघर्ष को सबसे अधिक तीव्रता से अनुभव करने वाले और सबसे अधिक तेजी से उसका उपाय करने वाले जोनाथन एडवर्ड्स थे। उन्होंने रेमुसवाद और कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद का अध्ययन येल कालेज में किया था (सम्भवतः सैमुएल जॉन्सन के शिष्य रूप में जो कुछ समय तक उनके अध्यापक थे)। किन्तु जिन दिनों वे कालेज में थे तभी अमर पुस्तकालय यूरोप से आया जिसमें 'नव-ज्ञान' की मुख्य पुस्तकें थीं और उन्होंने तथा जान्सन ने बड़ी उत्सुकता से उन्हें पढ़ा। दो दार्शनिक रचनाओं ने उन्हें विशेषतः प्रभावित किया: लॉक का 'एसे' (निबन्ध) और हचसन की पुस्तक 'ऐन एन्क्वायरी इन टु दी ओरिजिनल आफ अवर आइडियाज आफ ब्यूटी ऐन्ड वर्चू (सौन्दर्य और सद्गुण सम्बन्धी हमारे विचारों के मूलस्रोत की एक खोज)। पहली पुस्तक उन्होंने १७१७ में पढ़ी जब वे कालेज में ही थे और दूसरी १७३१ के लगभग जब वे नार्थम्पटन में एक युवा पादरी थे। उनका निजी धार्मिक द्वन्द्व १७२१-२५ के वर्षों में सबसे अधिक तीव्र था और १७३४ में उनके गिरजा-क्षेत्र में 'पुनरुत्थान' या जागरण शुरू हो गया। इन वर्षों में उन्होंने 'नये' दार्शनिकों के साथ-साथ एक अन्य रचना को भी बार-बार पढ़ा जिससे शुद्धतावादी धर्मशास्त्री परिचित थे किन्तु जो एडवर्ड्स के लिए विशेष महत्वपूर्ण बन गयी—पेट्रोवान मास्ट्रिक्ट की 'थ्योरेटिको-प्रैक्टिका थियालाजी' (सैद्धान्तिक-व्यावहारिक धर्मशास्त्र) जो एक लोकप्रिय अंग्रेजी संस्करण में भी उपलब्ध थी। वान मास्ट्रिक्ट हालैंड के धर्मविस्तारक धर्मशास्त्रियों से निकट से सम्बद्ध होने पर भी हालैंड में पवित्रतावाद के संस्थापकों में से थे। इस यूरोपीय पवित्रतावाद ने एडवर्ड्स को धर्मशास्त्र के क्षेत्र में 'महान् जागरण' के प्रसिद्ध और अमरीकी पवित्रतावाद के लिए तैयार कर दिया। शीघ्र ही एडवर्ड्स 'नव-ज्योतियों' के—ऐसे शुद्धतावादी जिनका झुकाव धार्मिक व्यक्तिवाद की ओर था और जिन्होंने पुनरुत्थान में भाग लिया—बौद्धिक नेता बन गये। उन्होंने एक दर्शन का निर्माण किया जो निजी तीव्रता और समकालीन बौद्धिक धाराओं के श्रेष्ठ निरूपण की दृष्टि से अत्यधिक प्रभावशाली था। अगले अध्याय

---

१ एवांजेलिकलिज्म—ईसा में भक्ति के प्रचार का आन्दोलन।—अनु०

में हम देखेंगे कि वैज्ञानिकों के रूप में लॉक और न्यूटन के प्रति उनका क्या दृष्टिकोण था। यहाँ हमारा सम्बन्ध उनके द्वारा पवित्रतावादी प्रभाव के अन्तर्गत शुद्धतावादी परम्परा के संशोधन से है।

लॉक के इस सिद्धान्त से कि भावना व सरल विचार ही चिन्तन का मूल स्रोत है और हचिसन के नैतिक भावना के सिद्धान्त से संकेत ग्रहण करके एडवर्ड्स ने कहा कि ईश्वर का अनुभव एक प्रकार के भावानुभव द्वारा ही हो सकता है, 'मनुष्य के प्रति ईश्वरीय विधाता का औचित्य सिद्ध करने के द्वारा नहीं' जैसा शुद्धतावादियों और अन्य तर्कवादी धर्म-शास्त्रियों ने करने की चेष्टा की थी। उन्हें याद था कि युवावस्था में किस प्रकार उनका मन ईश्वर की पूर्ण सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त का विरोध करता था जब तक कि 'ईश्वर में एक आन्तरिक मधुर आनन्द' उन पर नहीं छा गया। उनका अपना प्रभावशाली वर्णन उद्धृत करने योग्य है—

"बचपन से ही मेरे दिमाग में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सिद्धान्त के विरुद्ध आपत्तियाँ भरी थीं कि वह जिसे चाहे अनन्त जीवन के लिए चुन ले और जिसे चाहे अस्वीकार कर दे, हमेशा के लिए नष्ट होने का अनन्तकाल तक नरक-यातना सहने को छोड़ दे। मुझे यह एक भयानक सिद्धान्त प्रतीत होता था। लेकिन मुझे वह समय अच्छी तरह याद है जब ईश्वर की इस सर्वशक्तिमत्ता के प्रति और अपनी निर्णीत इच्छा के अनुसार अनन्तकाल के लिए मनुष्यों की व्यवस्था करने में उसके न्याय के प्रति मैं आश्वस्त और पूर्णतः सन्तुष्ट हो गया। किन्तु मैं यह नहीं बता सकता था कि कैसे या किस माध्यम से मैं इस प्रकार आश्वस्त हो गया। उस समय और बहुत समय बाद तक मुझे कल्पना भी नहीं थी कि इसमें ईश्वरीय प्रेरणा का कोई असाधारण प्रभाव था। केवल इतना ही कि अब मैं अधिक दूर तक देख पाता था और मेरी तर्कबुद्धि उसके न्याय और औचित्य को समझ गयी थी। और इससे उन सभी शंकाओं और आपत्तियों का अन्त हो गया। उस दिन से आज तक ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध में मेरे दिमाग में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आया है। ऐसा कि बिलकुल पूर्ण अर्थ में, कभी कोई शंका इस बारे में उठी ही नहीं कि ईश्वर जिस पर दया करना चाहे दया करे और जिसे चाहे उससे सख्ती करे। स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध में ईश्वर की पूर्ण सर्वशक्तिमत्ता और न्याय के सम्बन्ध में मेरा दिमाग उतना ही आश्वस्त प्रतीत होता है जितना किसी दृष्टिगोचर वस्तु के सम्बन्ध में। कम से कम, कुछ समयों पर ऐसा ही होता है। किन्तु प्रथम विश्वास के बाद ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के सम्बन्ध में बहुधा मुझे बिलकुल भिन्न प्रकार का अनुभव होता है। उस समय के बाद बहुधा मुझे न केवल विश्वास हुआ

है वरन् एक आनन्दपूर्ण विश्वास हुआ है। यह सिद्धान्त मुझे बड़ा ही आनन्ददायक ज्योतिर्मय और मधुर प्रतीत हुआ है। ईश्वर की पूर्ण सर्वशक्तिमत्ता स्वीकार करने में मुझे आनन्द मिलता है। किन्तु मेरा प्रथम विश्वास ऐसा नहीं था।

'ईश्वर और दैवी वस्तुओं में इस प्रकार के आन्तरिक मधुर आनन्द का जिसका अनुभव मुझे बाद में बहुधा हुआ है, पहला अवसर जो मुझे याद है उस समय आया जब मैंने बाइबिल के वे शब्द पढ़े (I टिमोथी I १७) अब अनन्त अनश्वर, अदृश्य नरेश एकमात्र ज्ञानी ईश्वर के लिए हमेशा और हमेशा यश और सम्मान। आमीन। इन शब्दों को पढ़ते हुए दैवी रूप की महिमा की एक भावना मेरी आत्मा में आई और जैसे उसमें फैल कर छा गयी। एक नयी भावना जो मेरे सारे पूर्व अनुभव से बिल्कुल भिन्न थी। धर्मग्रन्थों के कोई शब्द मुझे कभी इन शब्दों जैसे नहीं लगे थे। मैंने अपने मन में सोचा कि कैसा महिमापूर्ण वह रूप है, और मैं कितना सुखी हो जाऊँ अगर मैं उस ईश्वर का आनन्द पा सकूँ और स्वर्ग में उससे मिल जाऊँ और हमेशा के लिए जैसे उसी में खो जाऊँ।

इसके बाद दैवी वस्तुओं की मेरी भावना धीरे-धीरे बढ़ती गयी और अधिकाधिक जीवन्त हुई और उसमें वह आन्तरिक माधुर्य अधिक आया। हर वस्तु का रूप बदल गया और ऐसा प्रतीत हुआ जैसे लगभग हर वस्तु में ईश्वर की महिमा की एक शान्त मधुर छाया या प्रतीति आ गयी हो।'[1]

'लगभग हर वस्तु' की बात महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे आगे बताते हैं कि इस नयी भावना का संस्कार उन्हें एकान्तप्रियता की ओर प्रकृति के साथ समागम की ओर ले गया। दूसरी ओर उनके लौकिक कार्य और सामाजिक सम्बन्ध उन्हें 'एक नीची मनोगति की स्थिति और दशा में ले जाते थे जो 'आध्यात्मिक बातों के सम्बन्ध में अमनीय रूप में जड़ थी'। और इससे उन्हें अनुभव हुआ कि उनके पास 'संसार को झंझट और परेशानी उत्पन्न करने वाला मानने के पर्याप्त कारण थे और यह कि संसार कभी बदलेगा नहीं। वे गर्व और आत्म तुष्टि की भावना' से चिन्तित थे जो उन्हें अपने में और अन्य लोगों में दिखाई देती थी और उन्होंने पूर्ण गम्भीरता से लिखा—

'पिछले दिनों मेरी बड़ी कामना रही है कि मैं टूटा दिल लेकर ईश्वर के चरणों में पड़ूँ। और जब मैं विनय की इच्छा करता हूँ तो मैं यह नहीं सहन

१ क्लैरेन्स एच० फास्ट और थामस एच० जानसन द्वारा सम्पादित, 'जानथन एडवर्ड्स रिप्रेजेन्टेटिव सेलेक्शन्स' (न्यूयार्क १९३५) पृष्ठ ६०।

कर सकता कि मुझमें केवल उतना ही विनय हो जितना अन्य ईसाइयों में। मुझे लगता है कि उनमें जितना विनय है वह उनके लिए उपयुक्त हो सकता है, किन्तु मेरे लिए, सारी मनुष्य-जाति में सबसे अधिक विनयशील न होना नीचतापूर्ण अहंकार होगा।'[1]

इस प्रकार एडवर्ड्स के दिमाग में एक सर्वोच्च कामना उदित हुई एकमात्र यही चिन्ता कि ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता अन्यथा एक सर्वव्यापी और सर्व-ग्राही उद्देश्य बन जाए जो कामना को अधीनता में बदल दे और नैतिक उदारता को 'पवित्र प्रेम' में।

धार्मिक रूप में स्वयं अपने अनुभव की इस व्याख्या के आधार पर, धार्मिक रूप में 'जागरण काल' में 'धार्मिक प्रेम' के अर्थों को देख कर और धार्मिक रूप में पवित्रतावादी धर्मोत्साह के प्रभाव से वे एक 'दिव्य और अलौकिक ज्योति' में विश्वास करने लगे जिसके द्वारा ईश्वर अपने आपको अन्तस् में व्यक्त करता है। उन्होंने सावधानी से समझाया कि "प्राकृतिक मनुष्यों में अपने पाप और पीड़ा सम्बन्धी जो विश्वास रहते हैं यह दिव्य और आध्यात्मिक ज्योति उससे भिन्न है।[2] कि यह आध्यात्मिक और दिव्य ज्योति कल्पना पर पड़ने वाला कोई प्रभाव नहीं है[3] कि यह आध्यात्मिक ज्योति प्रेरणा से बिल्कुल भिन्न वस्तु है, यह किसी नये सिद्धान्त को व्यक्त नहीं करती दिमाग को कोई नयी स्थापनाएं नहीं सुझाती ईश्वर, ईसा या परलोक के सम्बन्ध में कोई नयी बात नहीं सिखाती,[4] और यह कि 'मनुष्यों का धर्म सम्बन्धी हर प्रभावी दृष्टिकोण यह आध्यात्मिक और दिव्य ज्योति नहीं होता।[5] यह 'ईश्वर की महिमा की वास्तविक भावना है।[6]

"यह मत रखना कि ईश्वर पवित्र और कृपालु है, और उस पवित्रता और कृपा के सौन्दर्य और आराध्य रूप की भावना इनमें अन्तर है। मधु मीठा होता है, इसके तार्किक निर्णय में, और उसकी मिठास के आस्वादन में अन्तर है। किसी वस्तु की उत्कृष्टता के परिकल्पित तार्किक निर्णय में और उसके माधुर्य और सौन्दर्य की भावना में बड़ा अन्तर है। पहले का आधार केवल दिमाग में

---

१ वही, पृष्ठ ७०-७१।

२ 'एक दिव्य और अलौकिक ज्योति', वही, पृष्ठ १०२।

३ वही पृष्ठ १०४।

४ वही, पृष्ठ १०५।

५ वही, पृष्ठ १०५।

६ वही, पृष्ठ १०६।

है, उसका सम्बन्ध केवल परिकल्पना से है लेकिन दूसरी बात का सम्बन्ध हृदय से है। जब हृदय में किसी वस्तु के सौन्दर्य और अनुकूलता की अनुभूति होती है, तो अवश्य ही उसे ग्रहण करने में हृदय को सुख मिलता है। [1]

एडवर्ड्स को विश्वास था कि लॉक जिस प्रकार के प्रमाण की माँग कर सकते थे वैसे प्रानुभविक प्रमाण इस बात के लिए उनके पास बहुतेरे थे कि मनुष्यों को ईश्वर में आनन्द मिलता है। किन्तु वे इस बात की ओर भी इंगित करते हैं कि ईश्वर के प्रति प्रेम या 'धर्म की वस्तुओं' में मिलने वाला सुख स्वाभाविक भावनाएँ नहीं हैं क्योंकि प्रयुक्त होने वाले साधन स्वाभाविक नहीं है। लॉक का अनुसरण करते हुए एडवर्ड्स का विश्वास था कि स्वाभाविक 'संकल्प-क्रिया मैं संकल्प समझ के अन्तिम आदेश' द्वारा निर्णीत होता है। इसके विपरीत इस अलौकिक भावना में ईश्वर की महिमा की अनुभूति या प्राह्यता से उसकी समझ उत्पन्न होती है। इस प्रकार एडवर्ड्स ने अलौकिक या पवित्र प्रेम के लिए बड़े ध्यानपूर्वक एक अनुभववादी तर्क निर्मित किया।

किन्तु अनुभववादी दृष्टिकोण से ही सन्तुष्ट न रहकर उन्होंने उसी विचार को एक प्लेटोवादी रूप दिया। उन्होंने न केवल पवित्रतावादियों की भाँति कहा कि ईश्वर तक 'हृदय' के द्वारा ही पहुँचा जा सकता है 'दिमाग' के द्वारा नहीं बल्कि यह भी कि यह 'पवित्र' या अलौकिक प्रेम 'अखिल सृष्टि के प्रति प्रेम है। उन्होंने इसे 'अस्तित्व मात्र के प्रति उदारता' या अस्तित्व की अस्तित्व की सहमति' कहा। सारे प्राकृतिक या नैतिक सद्गुण केवल इस सच्चे सद्गुण की प्रतिछाया और परिणाम हैं। इसका आधार निरपेक्षता के मानवीयतावादी रूप में कोई 'नैतिक भावना' नहीं है, वरन् स्वयं अस्तित्व की उत्कृष्टता अस्तित्व के अंगों में अनुपात और सामंजस्य की उत्कृष्टता है। फलस्वरूप 'दिमागों में मिलने वाला सम्पूर्ण प्राथमिक और मौलिक सौन्दर्य या उत्कृष्टता, प्रेम है। और उनमें हमें जो कुछ मिलता है उसको अन्ततः इस रूप में देखा जा सकता है। [2]

एडवर्ड्स ने दिव्य कृपा की धारणा पर आधारित रैमुस के प्लेटोवाद को प्लेटोनी प्रेम के एक पवित्रतावादी संस्करण के रूप में पुनः निर्मित किया। उन्होंने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि उनका 'पवित्र-प्रेम या उदारता भावुकता या मात्र भावप्रवणता नहीं है। यह प्रानुभविक और अनुभववादी 'भावना' है। और निश्चय ही यह न केवल लोगों को प्रेरणा है न धार्मिक पुनरुत्थान के

१ वही, पृष्ठ १०७।
२. 'नोट्स ऑन दी माइण्ड'।

भावनोन्माद भरे 'अनुराग'। एडवर्ड्स का 'धार्मिक अनुराग पर निबन्ध' (ट्रीटाइज आन रेलिजस ऐफ़ेक्शन्स) बहुत ही आलोचनापूर्ण है और 'ईसाई व्यवहार' या व्यावहारिक पवित्रता सम्बन्धी उनकी धारणा न रहस्यवाद है न उत्साह। य सौन्दर्य की प्लेटोनी भावना और अविरलशीलता से मिश्रित शुद्धतावादी सौम्यता है।

लेकिन न्यू इंगलैंड के शुद्धतावादियों के लिए, इसके अर्थ और परिणाम उद्वेलित करने वाले थे। जब नार्थम्पटन के युवा एडवर्ड्स ने बोस्टन के अभिजात वर्ग के समक्ष मनुष्य की निर्भरता में ईश्वर की महिमा का उपदेश किया त इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ा। काल्विनवादी रूढ़ियाँ—पूर्ण और निरंकुश निर्वस का सिद्धान्त, भूण भ्रष्टता का सिद्धान्त, पूर्वनिर्णय नरकदंड और उद्धार का सिद्धान्त—एक पवित्र प्रजाधिपत्य की प्रस्तावना के रूप में नहीं वरन् ईश्वर के प्रति प्रेम की एक 'आन्तरिक' या 'संवेदनात्मक' अभिव्यक्ति के रूप में पुनर्जीवि हों इसमें ताक़त भी थी और खतरा भी था। 'नव-ज्योतियों' और 'पूर्व ज्योतियों' का अन्तर अधिकाधिक स्पष्ट होने के साथ शुद्धतावाद और पवित्रतावाद में मे मिलाने की एडवर्ड्स की चेष्टा अधिकाधिक अव्यावहारिक सिद्ध हुई। जब उन्होंने और उनसे भी कम चतुराई के साथ उनके शिष्यों बेलामी, एमौन्स और हापकिन्स ने 'अर्ध-मुक्तिवाद' की लोकप्रिय धारणा का खंडन करके न्यू-इंगलैंड के म अनुयायियों में नियमबद्ध समागम और धार्मिकता या पुनरुद्धार की सार्वजनि स्वीकृति की परम्परा को फिर से जगाना चाहा तो वे एक अलोकप्रिय अल्पसंख्य समूह रह गये और अन्त में वे केवल काल्विनवादियों का एक छोटा-सा गुट रह ग जिसमें दार्शनिक विद्वत्ता तो थी, लेकिन जो समाज में अलोकप्रिय था। आत्मर के लिए, और 'पवित्र-प्रेम' के हित में, एडवर्ड्स के समर्थकों को प्रेस्बिटेरिय लोगों से सम्बद्ध होना पड़ा। प्रेस्बिटेरियन लोगों ने उनके दर्शन को भ्रष्ट कि उनके पवित्रतावाद का स्वागत किया उनके व्यक्तिवाद के स्थान पर (बेफ़ज़ंन उपर्युक्त शब्दों में) प्रोटेस्टेन्ट जेसुइटिज़्म[१] के एक प्रेस्बिटेरियन रूप को, 'राजनी में एक ईसाई दल'[२] का केन्द्रीभूत संगठन बनाने की चेष्टा को ले आये।

१ जेसुइट—सोलहवीं शताब्दी में इग्नेशियस लोयोला द्वारा स्थापित संघटन (ईसा का समाज) के सदस्य जिनका लक्ष्य धर्मतन्त्रों की स्था करना था।—अनु०

२ देखिए, एज़रा स्टाइल्स एली की पुस्तिका 'दी ड्यूटी ऑफ़ क्रिश्चि की, मेक द एलेक्ट क्रिश्चियन रूलर्स' (१८२७), जोसेफ़ ब्लॉ द्वारा सम्पा 'अमेरिकन फ़िलासफ़िक ऐड्रेसेज़, १७०० १९०० (न्यूयार्क, १९४६) में मुद्रित, पृष्ठ ५५१-५६२। इसके अतिरिक्त जोसेफ़ ब्लॉ 'दी क्रिश्चियन इन पॉलिटिक्स' रिव्यू आफ़ रेलिजन IX (सितम्बर, १९४५) भी देखिए।

केवल न्यू-इंगलैंड में बल्कि सारे देश में ही दर्शन और पवित्रतावाद में दूरी उत्पन्न हुई, और जिस उद्देश्य के लिए एडवर्ड्स ने प्रयास किया था उसे पूर्ण असफलता मिली।

प्रसारवाद

पुराणवादी शास्त्रीयता ईश्वर को सत्ता के सन्दर्भ में वैसी ही पदार्थ के सन्दर्भ में नहीं। लेकिन कैम्ब्रिज के प्लेटोवादियों में जो लोग रेमुस के अनुयायी नहीं थे उन्हें पदार्थ की शास्त्रीय धारणाओं का खंडन करने की चिन्ता उतनी नहीं थी। वे सत् दर्शन (आन्टोलाजी)[1] में डेकार्ट्स की नयी स्थापनाओं से अधिक चिन्तित थे। डेकार्ट्स ने प्रसारित पदार्थ और वैचारिक पदार्थ में जो अन्तर किया था उससे उत्पन्न होने वाली धर्मशास्त्रीय कठिनाइयों पर हेनरी मोर ने विशेष रूप से विचार किया। फिर, ईश्वर है कहाँ? मोर का उत्तर जिसे न्यूटन ने भी दोहराया यह था कि ईश्वर प्रसारित है, और भौतिक वस्तुओं का अस्तित्व 'अन्तस' और देश-विस्तार में ईश्वर के दिमाग में है। इसके फलस्वरूप न्यूटन ने पूर्ण आकाश (ऐब्सोल्यूट स्पेस) को दैवरूप माना और जोनाथन एडवर्ड्स ने तत्परता से उनका अनुसरण किया।

संसार को प्रकाश और गति से वंचित कर दें तो संसार की हालत यह होगी कि न सफेद होगा न काला न नीला न भूरा चमक न छाया पारदर्शी न अपारदर्शी न ध्वनि या आवाज, न गर्मी न सर्दी न तरल, न गीला, न सूखा न सख्त, न नरम, न ठोसपन, न प्रसार न आकृति न विस्तार, न अनुपात, न शरीर, न आत्मा। फिर सृष्टि का क्या हो? निश्चय ही इसका अस्तित्व और कहीं नहीं केवल ईश्वरीय दिमाग में है।[2]

'मैं' समझता हूँ यह हर व्यक्ति के लिए स्वयंसिद्ध है कि आकाश आवश्यक अनन्त असीम और सर्वव्यापी है। लेकिन अच्छा है कि मैं साफ-साफ कहूँ—मैं पहले ही इतनी बात कह चुका हूँ कि आकाश ईश्वर है।[3]

---

१ आन्टोलाजी—वस्तुओं या अस्तित्व के सार-तत्व का सैद्धान्तिक अध्ययन।

२ 'माइंड बीइंग्स', क्लेरेन्स एच फॉस्ट और थामस एच जॉन्सन द्वारा सम्पादित जोनाथन एडवर्ड्स रिप्रेजेन्टेटिव सलेक्शन्स (न्यूयार्क १९३५) में, पृष्ठ २२-२३।

३ 'नोट्स आन दी माइण्ड'।

जब हम कहते हैं कि जगत् अर्थात् भौतिक सृष्टि का अस्तित्व और कहीं नहीं केवल दिमाग़ में है, तो हम अर्मनभीयता और अमूर्त सिद्धान्त-निरूपण की ऐसी स्थिति पर आ गये हैं जहां हमें बहुत अधिक सावधान रहना होगा ताकि हम उलझन में पड़कर भ्रामक धारणाओं में न खो जाएँ। इस बात का यह अर्थ निकालना असम्भव है कि सारा जगत् थोड़ी सी जगह की संकुचित सीमाओं में मगज़ में रहने वाले छोटे-छोटे विचारों में समाया हुआ है। दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं क्योंकि हम याद रखें कि मानव शरीर का और मगज़ का भी अस्तित्व केवल दिमाग़ी है, उसी तरह जैसे अन्य वस्तुओं का। और जिसे हम जगह कहते हैं वह भी एक विचार ही है। अतः वस्तुएँ सचमुच उस स्थान में हैं। जब हम ऐसा कहते हैं तो हमारा मतलब केवल यह है कि स्थान के हमारे विचार की इस पद्धति का सम्बन्ध ऐसे विचार से है। अतः हमारी बात से यह नहीं समझा जाएगा कि जो वस्तु जहां प्रतीत होती है, उसके वहां होने से हम इनकार करते हैं। जो सिद्धान्त हम निरूपित करते हैं उस पर ध्यान से देखा जाए तो उसका यह नतीजा नहीं निकलता। और न यही निकलेगा कि ये सिद्धान्त प्राकृतिक दर्शन का या भौतिक परिवर्तनों के कारण या हेतु के विज्ञान का खण्डन करते हैं। प्राकृतिक दर्शन में वस्तुओं के कारण का पता लगाना केवल ईश्वरीय क्रिया के अनुपात का पता लगाना है।[1]

अपनी प्रारम्भिक टीकाओं (नोट्स) में एडवर्ड्स ने यह मत प्रतिपादित किया कि कैल्विन के इस प्लेटोवाद से जो न्यूटन तथा बुद्धिवाद की पृष्ठभूमि में भी है, वैज्ञानिक जानकारी में कोई व्यावहारिक अन्तर नहीं पड़ता। उन्होंने कहा कि 'विचारों का अस्तित्व ईश्वरीय दिमाग में है, या कि वस्तुओं का अस्तित्व 'उसी रूप में है जैसा सामान्यतः समझा जाता है' इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। कारण-कार्य के क्रम को ईश्वरीय महिमा के अनुपात के रूप में ग्रहण किया जाए या प्राकृतिक नियम के रूप में इससे विज्ञान में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर केवल धर्म और कल्पना में पड़ता है, क्योंकि आदर्शवाद (आइडियलिज्म) के फलस्वरूप मनुष्य भौतिक वस्तुओं को अस्तित्व की छायाओं के रूप में देखने लगता है और इसमें ईश्वर की कला या सौन्दर्य देखते हैं 'कि एक अंग का दोष के साथ ऐसा अनुकूल अनुपात है जो आपस में एक सामान्य स्वीकृति और सहमति को व्यक्त करता है कि वे एक दूसरे का आदर करते प्रतीत होते हैं जैसे उन्हें एक दूसरे से प्रेम हो। लेकिन एडवर्ड्स ने लॉक की रचनाएँ पढ़ने के बाद और आवश्यक सम्बन्धों की धार प्राकृतिक धर्म के सामान्य झुकाव को रखने के बा-

१ आप्ट वीटम्स प्लाट और जान्सन की पुस्तक पृ० ९८-९९।
२

भाववाद सम्बन्धी अपनी धारणा में कुछ परिवर्तन किया और कारणता के एक भाववादी सिद्धान्त पर ज़ोर दिया। दी ग्रेट क्रिश्चियन डॉक्ट्रिन ऑफ ओरिजिनल सिन डिफेन्डेड (मूल पाप के महान् ईसाई सिद्धान्त का समर्थन) में जिसका प्रकाशन १७५८ में जाकर हुआ उन्होंने आवश्यक सम्बन्ध के विचार का खण्डन किया, जैसा लगभग उसी समय ह्यूम भी कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि एडवर्ड्स ने अपनी आलोचना का विकास ह्यूम से अलग, स्वतन्त्र रूप में किया और निश्चय ही उनके लक्ष्य बिल्कुल भिन्न थे। उन्होंने सारे 'माध्यमिक कारणों' का विरोध किया और सारी कारणता का बोझ ईश्वर के 'निरंकुश विधान' में आरोपित किया। ईश्वर जगत् में एकमात्र 'कर्त्ता' है। भौतिक वस्तुएँ उसके द्वारा माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती हैं लेकिन दरअसल भौतिक वस्तुएँ 'प्रभावी कारणों' के रूप में कार्य नहीं करतीं।

पूर्व अस्तित्व अगले क्षण में या देश-विस्तार के अगले अंश में नये अस्तित्व का उचित कारण नहीं हो सकता जैसे उस सूरत में कि वह (पूर्व अस्तित्व) एक युग पहले या एक हज़ार मील की दूरी पर रहा होता और बीच के देश-काल में कोई अस्तित्व न होता। अतः सर्जित पदार्थों का अस्तित्व ही पूर्वापर क्षण में ईश्वर के निमित्त संकल्प और शक्ति का परिणाम ही हो सकता है।

इससे निश्चय ही यह नतीजा निकलेगा कि ईश्वर द्वारा सर्जित वस्तुओं का परिरक्षण सम्पूर्ण रूप में एक निरन्तर सृजन के समान है या ईश्वर द्वारा शून्य में से उन वस्तुओं के उनके अस्तित्व के हर क्षण में सृजन के समान है।[1]

'प्रकृति का सारा क्रम और जो कुछ भी उसके अन्तर्गत आता है, उसके सारे नियम और विधियाँ समरूपता और नियमितता निरंतरता और क्रमन एक निरंकुश का विधान है। इस अर्थ में जगत् और उसके सारे अंगों के अस्तित्व का ही जारी रहना और निरन्तर अस्तित्व का ढंग भी पूरी तरह एक निरंकुश विधान पर निर्भर है। कारण कि अगर पिछले क्षण में ध्वनि या प्रकाश या रंग या प्रतिरोध या गुरुत्व या विचार, या चेतना या कोई अन्य निर्भर वस्तु थी, तो यह भी बिल्कुल आवश्यक नहीं कि अगले क्षण भी ऐसा ही हो। सारा निर्भर अस्तित्व जो कुछ भी है, एक सतत गति में है, हर समय गुज़रता है और वापस आता है, हर क्षण नया होता है, जैसे वस्तुओं के रंग उन पर पड़ने वाले

[1] डॉक्ट्रिन ऑफ ओरिजिनल सिन डिफेन्डेड, फास्टर और जान्सन की पुस्तक, पृष्ठ १११ ११४।

प्रकाश से हम आलोकित होते हैं। और सब कुछ समरूप में ईश्वर से आता है, जैसे सूर्य से प्रकाश। हम उसी (ईश्वर) में जीवित हैं, गतिशील हैं और अपना अस्तित्व रखते हैं।"[1]

एडवर्ड्स का सिद्धान्त कि ईश्वर सब कुछ का सृजन करने वाला है, केवल परम्परागत "काल्विनवाद" की मात्र उसकी वापसी ही नहीं था बल्कि न्यूटन और लॉक के विचारों पर आधारित, हर वस्तु में ईश्वर की व्याप्ति के पक्ष में एक ठोस तर्क था। यह सिद्धान्त वस्तु (मैटर) के अस्तित्व से इनकार नहीं करता था। इसका कथन था कि वस्तु का अस्तित्व और क्रियाशीलता ईश्वर में ही होती है। यह पदार्थ या पदार्थों के अस्तित्व से इनकार करता था क्योंकि ईश्वर पदार्थ से अधिक कुछ है। ईश्वर अस्तित्व है, निरन्तर सृजनशील है। और यह यान्त्रिक कारणता या आवश्यक सम्बन्धों से इनकार करता था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि एडवर्ड्स के अनुसार मानवीय संकल्पों का अस्तित्व भी ईश्वरीय संकल्प में है, और वे ईश्वर में ही क्रियाशील होते हैं। एडवर्ड्स के भाववाद का तात्कालिक प्रतिवादी स्वर भौतिकवाद का नहीं अर्मिनियनवाद[2] का था। एडवर्ड्स के भाववाद का विरोधी बर्कले[3] का भाववाद था।

अमरीकी दर्शन में इस समय यथार्थवादी सिद्धान्तों के प्रादुर्भाव का अधिक व्यापक महत्त्व इस बात में है कि वे मुख्य प्रश्न जिनसे इन सिद्धान्तों का जन्म हुआ नये प्रश्नों के समक्ष गौण हो गये। अमरीका में भाववाद का प्रसार वास्तव में एक शताब्दी बाद जाकर हुआ और यथार्थवादी भाववाद का सबसे कम।

---

१ वही पृष्ठ १११ ११०।

२ हालैण्डवासी प्रोटेस्टेण्ट धर्मशास्त्री आर्मिनियस के सिद्धान्त, जिन्होंने काल्विन का विरोध कर ईश्वर द्वारा पूर्वनिर्णय के सिद्धान्त का विरोध किया।

३ बर्कले आयरलैण्डवासी दार्शनिक (१६८५-१७५३), जो कुछ वर्ष रोड आइलैंड में भी रहे।—अनु

दूसरा अध्याय



अमरीका का प्रबुद्ध काल

दर्शन सत्तारूढ़

प्रबुद्धता की दार्शनिक परिभाषा नहीं की जा सकती विशेषतः अमरीका में जहाँ इसका रूप सबसे कम साहित्यिक और सबसे अधिक सक्रिय था। इस देश में मानवी तर्क-बुद्धि का कोई व्यवस्थित निरूपण नहीं हुआ—न कोई विश्वकोष न कोई विचार-दर्शन न कोई विचार-व्यवस्था। फिर भी हमारे इतिहास का कोई अन्य काल ऐसा नहीं है जिसमें लोगों की सार्वजनिक रुचियों का इतना निकट सम्बन्ध दार्शनिक प्रश्नों से रहा हो। अमरीका में क्रान्तिकारी पीढ़ी के बौद्धिक जीवन को समुचित रूप में समझने के लिए हमें शास्त्रीय ग्रन्थों या धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र की व्यवस्थाओं या मननशील एकान्त की रचनाओं को न देखकर सार्वजनिक जीवन के केन्द्र पर—राजकीय दस्तावेजों और राजनैतिक मंचों समाचार-पत्रों और भाषण पीठिकाओं पर—नज़र डालनी होगी। अमरीका में कभी भी दार्शनिक विचार और सामाजिक कार्य में इससे अधिक निकट सम्बन्ध नहीं रहा। यद्यपि अधिकांश दार्शनिक विचार तात्कालिक हैं वे विशिष्ट समस्याओं के सार्वभौमिक हल खोजते थे फिर भी प्रबुद्ध-काल के विचारों को केवल युक्तिकरण कह कर छोड़ देने से काम नहीं चलता। उस समय अमरीकी जीवन का सर्वप्रमुख तथ्य यह था कि न केवल संसार की आँखें और आशाएँ अमरीका पर केन्द्रित थीं बल्कि अमरीकी सार्वजनिक जीवन के नेता स्वयं भी अपनी रुचियों और कार्यों के बारे सार्वभौमिक नहीं तो अधिक व्यापक पक्षों के सम्बन्ध में सचमुच चिन्तित थे। उनमें सचमुच 'मनुष्य-जाति के मतों का उचित आदर' था। यह देख कर आश्चर्य होता है कि अपने वर्तमान को समझने के लिये वे अतीत और भविष्य में कितनी दूर तक देखते थे।

इतिहास का निर्माण कभी भी इससे अधिक चेतना और अन्तर्विवेक के साथ नहीं किया गया था और प्राचीन यूनान के बाद ऐसे अवसर बहुत कम आये थे जब दर्शन को सार्वजनिक उत्तरदायित्व वहन करने के अवसर इससे अधिक मिले हों।

अमरीकी प्रबुद्ध-काल के बारे में तटस्थ भाव से लिखना या पढ़ना असम्भव है, क्योंकि उसमें एक राष्ट्र के रूप में हमारे उत्तराधिकार का मर्म और शेष मानवता के साथ हमारे गम्भीरतम सम्बन्ध निहित हैं। अमरीका उस समय दोहरे अर्थ में एक सर्वदेशीय सौभाग्य-क्षेत्र था। एक तो यूरोपीय चिन्तकों की कई पीढ़ियों के विचार और मनोवेग इसमें एकत्र होकर क्रियाशील हुए। दूसरे इसने उन साहसपूर्ण राजनैतिक धार्मिक और नैतिक प्रयोगों में अगुवाई की जिनमें उसके बाद से सारा विश्व ही भाग लेता रहा है। दर्शन के इतिहासकार को इसमें कुछ झेंप होती है कि वह प्रबुद्ध-काल के दर्शन की सर्वदेशीय और विशिष्ट अभिव्यक्तियों के रूप में जॉन ऐडम्स बेन्जामिन फ्रैंकलिन टॉमस जेफ़रसन और जेम्स मैडिसन की ओर इंगित करे और फिर यह स्वीकार करने को बाध्य हो कि उनकी रचनाएँ पिटी-पिटी बातों से और उनके दिमाग भ्रामक धारणाओं से भरे पड़े हैं। उनकी कोई विचार-व्यवस्थाएँ नहीं थीं और जिन बिखरे हुए विचारों पर उन्होंने अमल किया उनमें से अधिकांश सचेत रूप में उधार लिए हुए थे। पठन-पाठन के लिए वे अच्छी सामग्री नहीं हैं लेकिन इसके बावजूद वे अमरीकी दर्शन के चिर-प्रतिष्ठित प्रतीक होने के अलावा अभी भी जीवन्त शक्तियाँ हैं। इन परिस्थितियों में अमरीकी प्रबुद्ध-काल को एक 'यशस्वी क्रान्ति' के रूप में प्रस्तुत न कर पाना निश्चय ही इतिहासकार की ही असफलता होगी स्वयं प्रबुद्धता की नहीं।

फिर भी, एक अर्थ में यह प्रबुद्धता बुरी तरह असफल रही। उसके विचार शीघ्र ही अमान्य या भ्रष्ट हो गये। भविष्य की उसकी योजनाएँ नष्ट कर दी गयीं और उसके तत्काल बाद ही उसके आदर्शों और मान्यताओं के विरुद्ध एक गहरी और आवेशपूर्ण प्रतिक्रिया आई। उसके महान् निरपेक्ष-प्राकृतिक अधिकार धार्मिक स्वतन्त्रता उदार धर्म स्वतन्त्र विचार सार्वभौमिक प्रगति और प्रबुद्धता —कितनी जल्दी उनका स्वर खोखला पड़ गया था। कितना व्यापक भ्रम-निवारण था। वर्जीनिया के एक भूस्वामी ने १८३० के लगभग लिखा कि 'जन-अधिकारों के प्रत्यक्ष विरोधियों की शक्ति अगर उनकी इच्छाओं के अनुरूप होती तो वे जितनी (बुराई) कर सकते थे लोकतान्त्रिक सिद्धान्त 'इससे अधिक बुराई का कारण रहे हैं। बालिग मताधिकार पर आधारित सरकार, सबसे खराब

लोगों द्वारा 'सबसे खराब' लोगों की सरकार होगी।[1] १८५५ में जेफ़रसन को श्रद्धांजलि देते हुए, एक जर्मन उदारवादी ने अमरीकी संस्कृति में स्वतन्त्रता के पूर्ण ह्रास पर शोक प्रकट किया।[2] और १८५९ में लिंकन ने लिखा —

'जेफ़रसन के सिद्धान्त स्वतन्त्र समाज की परिभाषाएँ और स्वयंसिद्ध सिद्धान्त हैं। फिर भी उनसे इनकार करने और बचने में सफलता का बड़ा दिखावा किया जाता है। एक उन्हें बड़े जोश से 'चमक-दमक भरी सामान्यता' कहता है। दूसरा ढिठाई से उन्हें 'स्वयंसिद्ध झूठ' कह देता है। अन्य लोग कुछ भद्दा तर्क देते हैं कि वे (सिद्धान्त) 'उच्च जातियों' पर लागू होते हैं। ये अभिव्यक्तियाँ वापस आती हुई निरंकुशता के अग्रदूत हैं, हरकारे हैं।'[3]

किन्तु इस प्रतिक्रिया से यह प्रमाणित नहीं होता कि प्रबुद्ध-काल सचमुच प्रबुद्ध नहीं था। इसके विपरीत हमें अमरीकी दार्शनिकों में उन महान् दिनों की स्मृति में वापस जाने की प्रवृत्ति अधिकाधिक और कामनाभरे रूप में मिलती है, और कोई भी अमरीकी विचारक जो केवल आध्यापक ही नहीं है कभी-भी कुछ विचारमग्न हो कर उस उपयोगिता और स्वतन्त्रता की इच्छा किये बिना नहीं रह सकता जो उस समय दर्शन को प्राप्त थी।

परहित

प्रबुद्ध-काल का आरम्भ आत्मतोष में हुआ और अन्त भय में। उसकी प्रारम्भिक अवधियों में धर्मशास्त्रीय आशावाद से सार्वभौमिक परहित में विश्वास उत्पन्न हुआ। अमरीका में इस विशेषता को कॉटन मेथर ने प्रमुखता प्रदान की

---

१ ऐवरी क्रेवेन एडमण्ड रफिन सदर्नर (न्यूयार्क १९३२) पृष्ठ ४८; इसी प्रकार जार्ज फिट्ज़ह्यू सोशियालोजी फार दी साउथ (रिचमण्ड, १८५४) विशेषतः १९वाँ अध्याय।

२ जे. बी. स्टालो रैडेन अबहान्डलुन्गेन उंड ब्रीफ़े (सिन्सिनाटी, १८९३) पृष्ठ १६।

३ एल्बर्ट एलेरी बर्ग द्वारा सम्पादित दी राइटिंग्स आफ़ टॉमस जेफ़रसन (वाशिंगटन १९०३) में उद्धृत खण्ड (१) पृष्ठ १६, १७।

जो एक वृद्ध आडम्बर-प्रिय धर्मशास्त्री थे और 'भलाई करना अपने पेशे का कर्तव्य समझते थे। उन्होंने न केवल 'भलाई करने के निबन्ध' (एसेज टु डु गुड) लिखे बल्कि घर-घर जाकर, जहाँ भी उन्हें बुराई का सन्देह होता वहाँ भलाई करते'। अपने अन्तःकरण से प्रेरित होकर वे हर बात में दखल देते। उदारता और 'ईसाई प्रेम' सम्बन्धी एडवर्ड्स की धारणा में विषय ईश्वर है, और लाभ स्वयं अपनी आत्मा को होता है। किन्तु अधिक कट्टर शुद्धतावादियों ने उदारता को दूसरों की भलाई करने के अर्थ में समझा। उनकी यह कल्पना थी कि स्वयं ईश्वर को रुचि अपने यश से अधिक अपने प्राणियों के सुख में है। मेयर की रचना 'क्रिश्चियन फ़िलासफ़र' इस सम्प्रदाय की सर्वप्रथम अमरीकी अभिव्यक्तियों में से है, जो प्रकृति में औचित्य और उद्देश्य के तर्क पर आधारित है। बटलर की रचना 'एनालोजी आफ रेलिजन' (धर्म का सादृश्य) और पेली की रचना 'नेचुरल थियालोजी' (प्राकृतिक धर्मशास्त्र) को सोद्देश्यता के तर्क की व्याख्याओं के रूप में सामयिक लोकप्रियता मिली। सार्वभौमिक ईश्वरीय विधान में विश्वास न्यू-इंग्लैंड के प्रमुख 'विशिष्ट वर्ग' में अधिकाधिक मान्य हुआ। वोलास्टन की रचना 'नेचुरल रेलिजन' (प्राकृतिक धर्म) को बहुत लोगों ने पढ़ा और उसकी प्रशंसा की। सैमुएल जॉन्सन ने उसे अपनी रचना 'एथिका' (नीति) का आधार बनाया। वोलास्टन का अनुसरण करते हुए उन्होंने कहा कि ईश्वर हर वस्तु के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसी वह सचमुच है, 'सत्य के अनुसार', और इसलिये मनुष्य के साथ उसका व्यवहार सुख (निःसन्देह अनन्त) के लिए उत्पन्न किये गये प्राणी के रूप में होता है।

'हमें चाहिये कि चिंतनशील और तर्कनापरक, सामाजिक और अनश्वर प्राणियों के रूप में हम अपनी सारी प्रकृति और कालावधि को ध्यान में रखें। अतः यह (हमारा ध्यान) कालक्रम में और अनन्त काल तक सारी मानवीय प्रकृति और सारी नैतिक व्यवस्था की भलाई और सुख होगा। फलस्वरूप, पशु-शरीर की भलाई, या इन्द्रिय-सुख केवल काल्पनिक है, और जहाँ तक यह आत्मा की भलाई और सुख से मेल नहीं खाता, वहाँ तक यह भला नहीं रह जाता, बल्कि उसकी प्रकृति बुराई की हो जाती है। यही बात किसी भलाई के बारे में भी है, जहाँ तक सार्वजनिक भलाई से उसका मेल न हो और सांसारिक भलाई के बारे में भी जहाँ तक शाश्वत से उसका मेल न हो। और यह हमारी भलाई और सुख सम्पूर्णतः अवश्यमेव सत्य और वस्तुओं की प्रकृति के समरूप है या वस्तुएँ, अनुपात और कार्य वास्तव में जैसे हैं उसी रूप में उन्हें देखने पर उनके सम्बन्ध हैं बल्कि उनका परिणाम है। कारण कि उन्हें वास्तविक में देखने का अर्थ यह मानना है कि वे समुचित हैं और यह उनकी प्रकृति

कि व हमारी बौद्धिक सामाजिक और अमरत्व प्रकृति को उसकी सम्पूर्णता में अन्ततः सुखी बनायें। १

बेन्जामिन फ्रैंकलिन ने न केवल वालास्टन की पुस्तक पढ़ी थी बल्कि जब वे कुछ दिनों के लिए लन्दन में थे तो उन्होंने उसकी छपाई में भी काम किया था। उन्हें ऐसी आत्मतुष्टि हास्यास्पद लगी और अपनी रचना 'डिसर्टेशन आन लिबर्टी ऐण्ड नेसेसिटी प्लेजर एण्ड पेन (स्वतन्त्रता और आवश्यकता आनन्द और पीड़ा पर निबन्ध) में उसका मजाक उड़ाने में प्रशंसनीय सफलता मिली। फ्रेंकलिन सांसारिक मानवीयता के एक अपरिष्कृत और वैचित्र्यमय किन्तु प्रभावशाली प्रतिरूप थे। उन्होंने पूरी तरह और प्रभावकारी रीति से अपने को जनसेवा में और उपयोगी योजनाओं में लगाया। उनकी 'सद्गुण की कला' और 'पुअर रिचर्ड' जिन्हें आमतौर पर मितव्ययिता और पूंजीवादी नैतिकता का निरूपण माना जाता है, उनके अपने मतानुसार 'भलाई करने के प्रयास' थे। फ्रैंकलिन को अमरीका में सचमुच एक क्रान्तिकारी आकृति बनाने वाली चीज थी उनके विचार और नैतिकता की पूर्ण सांसारिकता। यांकी (न्यू-इंगलैंड-वासियों का व्यंग्य-नाम) आत्मतुष्टि को बहुत कुछ अपने अन्दर बनाये रखने के अलावा उन्होंने क्वेकरों की आत्मतुष्टि का भी कुछ अंश प्राप्त कर लिया। कुछलावादी सद्गुणों के धार्मिक मूल्य के सम्बन्ध में उनके अन्दर आत्मतुष्टि की भावना थी। लेकिन उन्होंने उन पर से पवित्रता का आवरण उतार कर उन्हें एक पूर्णतः उपयोगितावादी आधार पर प्रतिष्ठित किया। 'पुअर रिचर्ड्स अलमनक' (पुअर रिचर्ड पञ्चाग) के पाठक को कभी यह सन्देह नहीं होगा कि उसमें प्रस्तुत कहावती ज्ञान और सरल समझ बौद्धिक संघर्ष और असाध्य तृप्ति की उपलब्धि थी। सारी बातें बहुत ही सामान्य और सादगी भरी लगती हैं। किन्तु फ्रैंकलिन की 'आत्मकथा' या उससे भी अधिक डिसरनाल (डायरी) पर उनकी प्रारम्भिक रचनाओं को पढ़कर हम देख सकते हैं कि उस धर्मशास्त्रीय वातावरण और आडम्बर के बीच सरल समझ की उनकी खोज के पीछे कितनी प्रबुद्धता संस्कार और आलोचनात्मक ईमानदारी थी।

'हम कभी-कभी विवाद करते और बहस करना हमें बड़ा प्रिय था जो विवाद की प्रवृत्ति बहुधा बड़ी बुरी आदत बन जाती है बातचीत में कटुता लाने और उसे बिगाड़ने के अतिरिक्त इससे ऐसे लोगों के प्रति क्षोभ और शायद

१ हर्बर्ट और कैरोल श्नाइडर द्वारा सम्पादित 'सैमुएल जान्सन, प्रेसिडेण्ट आफ किंग्स कालेज हिज़ करियर एण्ड राइटिंग्स (न्यूयार्क १९२९) खण्ड २ पृष्ठ ४४८।

शत्रुता उत्पन्न होती है, जिससे मित्रता टूट सकती है। धार्मिक विवाद पर अपने पिता की पुस्तकें पढ़कर मुझे यह आदत पड़ गयी थी। तबसे मैंने देखा है कि समझदार व्यक्ति इसमें बहुत कम पड़ते हैं सिवाय वकीलों, विश्वविद्यालयों के लोगों और आमतौर पर एडिनबरा (स्कॉटलैंड की राजधानी—अनु०) में पले हुए सभी प्रकार के लोगों के।

"मुझे विश्वास हो गया कि सत्य, ईमानदारी और निष्ठा जीवन में सुख के लिए अधिकतम महत्व की है।' "[1]

इस प्रकार फ्रैंकलिन ने शुद्धतावादियों में धीरे-धीरे आ रहे एक दार्शनिक परिवर्तन को पूर्ण और प्रकट रूप दिया। बहुत-कुछ अचेत रूप में वे समझने लगे कि 'शुद्धतावादी नैतिकता' की एक धर्मशास्त्रीय अभिव्यक्ति होने के अलावा उसका एक उपयोगितावादी आधार भी था। न्यू-इंग्लैंड-वासियों का शुद्धतावादी होना उनके आस्तिकतावाद के कारण जरूरी नहीं था, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है बल्कि न्यू-इंग्लैंड का निर्माण करने की उनकी इच्छा के कारण जरूरी था। 'पीड़ित अन्तरात्मा' या पाप की भावना का, जो आमतौर पर पतन और भाग्य के पूर्व-निर्धारण के आस्तिकतावादी सिद्धान्तों का फल समझी जाती है, अस्पष्ट और मुख्य कारण नयी बस रही बस्तियों के जीवन की कठोर आवश्यकताओं में मिलेगा। पादरी ध्यान रखते थे कि जो कुछ करना जरूरी हो, ईश्वर उसके लिए आदेश दे और जो बाधा आये उसे निषिद्ध घोषित करे।

बेन्जामिन फ्रैंकलिन ने प्रयास किया कि शुद्धतावादी सद्गुणों को उनकी पूरी कठोरता के साथ कायम रखें लेकिन उनकी धर्मशास्त्रीय मान्यता का पूरी तरह परित्याग कर दें। उन्होंने सीमान्तक्षेत्रीय नैतिकता को एक उपयोगितावादी आधार दे कर उसे आनुभविक मान्यता प्रदान की। इसमें उन्हें विशेष सफलता मिली। फ्रैंकलिन ने सारी बात को थोड़े से शब्दों में इस प्रकार कहा, 'ईश्वरीय प्रेरणा का अपने-आप में मुझ पर कोई प्रभाव नहीं था। लेकिन मेरी एक राय यह थी कि चाहे कोई कार्य इस कारण बुरे न हों कि वह (ईश्वरीय प्रेरणा) उनका निषेध करती है या इस कारण अच्छे न हों कि वह उनका आदेश देती है, किन्तु शायद वे कार्य निषिद्ध इस कारण किये गये हों कि स्वयं अपनी प्रकृति में, सारी परिस्थितियों को देखते हुए, हमारे लिए बुरे थे या उनका आदेश इस कारण दिया गया हो कि वे हमारे लिए लाभदायक थे।'[2] कहने का मतलब ही बात यही थी जो फ्रैंकलिन ने फिर-फिर कही अगर आप कुछ उपलब्ध करना

१. बेन्जामिन फ्रैंकलिन आटोबायग्राफी।
२. वही।

चाहते हैं, तो उसके आवश्यक साधन ये हैं—मिताहार मौन, व्यवस्था संकल्प मितव्ययिता उद्योग, निष्ठा न्याय आदि। और अगर कोई प्रमाण मांगता तो फ्रैंकलिन स्वयं अपने और उपनिवेशों के अनुभव को प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर सकते थे।

दार्शनिकों को इस दर्शन की सरलता जो लगभग ग्राम्यी है अखर जाती है। साधन-मूल्यों में ध्यान केन्द्रित रखकर फ्रैंकलिन उसी विशिष्टता का प्रदर्शन करते हैं, जिसे यूरोपीय लोग 'अमरीकीपन' कहते हैं। पूर्व-स्वीकृत होने के कारण अन्तिम मूल्यों की सचेत रूप में परिभाषा या चर्चा शायद ही कभी होती है, क्योंकि अमरीका में (और दरअसल सभी जगह) साध्य आरम्भ में ही और आसानी से स्वीकार कर लिये जाते हैं बहुत कुछ वैसे ही जैसे बच्चे धर्मों को अपना लेते हैं। बौद्धिक वातावरण के अंग के रूप में उन्हें पूर्व-स्वीकृति मिली रहती है और गंभीरता से उनकी आलोचना करने का अवसर शायद ही कभी आता है। अपनी शुद्धतावादी विचार-व्यवस्था को स्वयं एक साध्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में फ्रैंकलिन को कोई रुचि नहीं थी। वे यह मानकर चलते थे कि लोगों के अपने लक्ष्य होते हैं कि वे 'मुक्त और अकुण्ठित' स्थिति में रहना चाहते हैं और यह कि धन केवल अवकाशमय समाज के वास्तविक तत्त्वों का उपभोग करने का साधन है। 'जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ समृद्ध और बुद्धिमान् बनाता है।' स्वास्थ्य समृद्धि और ज्ञान मानवीय जीवन की प्राकृतिक वस्तुओं के अर्जन के लिए यह सूत्र बुरा नहीं है। लेकिन फ्रैंकलिन की सद्गुणों की सूची में इनमें से कोई भी नहीं आता। उसका ध्यान केवल जीवन के 'जल्दी सोना और जल्दी उठना' वाले पक्ष की ओर है।

दूसरे शब्दों में मानवीय आदर्शों का दर्शन न होने के कारण शुद्धतावादी सद्गुण न तो अरस्तू की नीति के पर्याय थे और न पूंजीवादी व्यावसायिकता का समाधान। अगर शुद्धतावादी नैतिकता ने किसी का स्थान ग्रहण किया तो परम्परागत 'ईसाई सद्गुणों' का क्योंकि वे भी जीवन के अनुशासन का दर्शन हैं। ईसाई जीवन का परम्परागत चित्रण विनय दयालुता पश्चात्ताप निर्धनता अपने को वंचित करना और समाधीत भावना के रूप में किया जाता है। शुद्धतावादी सद्गुणों की मान्यता का आधार तो ईसाई धर्मशास्त्र ही था किन्तु वे ईसाई सद्गुण नहीं थे। ईसाई नैतिक परम्परा से यह सम्बन्ध-विच्छेद जिसे फ्रैंकलिन ने अपने दर्शन में व्यक्त किया यान्की और ईसाई चरित्रों के वैपरीत्य का मर्म है। यह अमरीकी प्रबुद्धता के सामान्य रूप का भी मर्म है। अमरीकी प्रबुद्धता अगर व्यावहारिक परहित और धर्मनिरपेक्ष मानवीयता के लक्ष्य लेकर ˘ लिन का अनुसरण करती तो उसका इतिहास वही होता जिसकी यूरोप की

उसमें आशा थी। लेकिन वह परहित व भावुक पन्थ को अपनाकर और एक 'उदार धर्म' का निर्माण करके, अधिक रूढ़िगत मार्ग पर चली। उधर फ्रैंकलिन की परहित भावना से विच्छिन्न होकर जिसके कारण उन्होंने अपने सद्गुणों का मुक्त और अकुण्ठित जीवन के साधन के रूप में देखा था ये सद्गुण संकुचित होकर निरंकुश प्रतियोगिता और आदर्शहीन व्यवसाय की सामग्री बन गये।

स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

धर्मक्षेत्र के बाहर इंगलिस्तान में ह्विग (पार्लियामेन्ट-समर्थक) समूह को १६८८ की सफलता मिली वह शुद्धतावादी विद्रोह की ही उपज और उसकी परिणति थी। जॉन लॉक के राजनैतिक दर्शन में इन धर्म विरोधियों के अधिकांश व्यावहारिक लक्ष्य धर्म-निरपेक्ष रूप में मौजूद थे—संवैधानिक अधिकार सहिष्णुता और सुरक्षा। न्यू-इंगलैंड में भी इसी प्रकार शुद्धतावाद एक धर्म निरपेक्ष रूप लेकर स्वतन्त्रता के एक सिद्धान्त में विकसित हुआ। लेकिन पादरियों ने इस संक्रमण का नेतृत्व नहीं किया क्योंकि शुद्धतावादी धर्मशास्त्री धर्म निरपेक्ष प्रवृत्तियों से आशंकित थे और उनमें से कुछ ने अत्याचारियों का प्रतिरोध करने के पुराने काल्विनवादी सिद्धान्त को पुनर्जीवित किया। इसके सर्वाधिक दिलचस्प और मजेदार उदाहरणों में से एक है प्रिन्सीटन कालेज के अध्यक्ष जॉन विदरस्पून द्वारा १७ मई, १७७६ को कालेज के छात्रों के समक्ष दिया गया प्रसिद्ध 'विद्रोह धर्मोपदेश' जिसमें उन्होंने कहा कि ईश्वर की सर्वोच्च इच्छा उपनिवेशों के वासियों 'अव्यवस्थापूर्ण आवेगों' को उनपर अत्याचार करने वालों के विरुद्ध जगा रही है। 'मनुष्य का क्रोध अपने अधिकतम तूफानी उभार में उसकी (ईश्वर की) इच्छा पूर्ण करता है, और अन्ततः उसके कृपापात्रों का भला करता है।'[1] किन्तु विदरस्पून भी ईश्वर द्वारा मनुष्यों के आवेगों के उपयोग के अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के बाद अपने उपदेश के अन्तिम आधे हिस्से

---

१ जान विदरस्पून 'दी डोमिनियन आफ प्राविडेन्स ओवर दी पैशन्स आफ मैन' (मनुष्यों के आवेगों पर विधाता के विधान का प्रभुत्व (फिलाडेल्फिया, १७७७) पृष्ठ १९। इसी परिच्छेद में विदरस्पून अपने सुपरिचित चमत्कारपूर्ण बुद्धि चातुर्य से कहते हैं— विधाता के विधान में बहुधा पापशक्तिमत्ता और औचित्य का मिश्रण पहचाना जा सकता है।'

चाहते हैं तो उसके आवश्यक साधन ये हैं—मिताचार मौन व्यवस्था संकल्प मितव्ययिता उद्योग, निष्ठा न्याय आदि। और अगर कोई प्रमाण मांगता, तो फ्रैंकलिन स्वयं अपने और उपनिवेशों के अनुभव को प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर सकते थे।

दार्शनिकों को इस दर्शन की सरलता जो लगभग सादगी है अखर जाती है। साधन-मूल्यों में ध्यान केन्द्रित रखकर फ्रैंकलिन उसी विशिष्टता का प्रदर्शन करते हैं जिसे यूरोपीय लोग 'अमरीकीपन' कहते हैं। पूर्व-स्वीकृत होने के कारण अन्तिम मूल्यों की सचेत रूप में परिभाषा या चर्चा शायद ही कभी होती है, क्योंकि अमरीका में (और दरअसल सभी जगह) साध्य आरम्भ में ही और आसानी से स्वीकार कर लिये जाते हैं बहुत कुछ वैसे ही जैसे बच्चे धर्मों को अपना लेते हैं। सांस्कृतिक वातावरण के अंग के रूप में उन्हें पूर्व-स्वीकृति मिली रहती है, और गंभीरता से उनकी आलोचना करने का अवसर शायद ही कभी आता है। अपनी मुक्ततावादी विचार-व्यवस्था को स्वयं एक साध्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में फ्रैंकलिन को कोई रुचि नहीं थी। वे यह मानकर चलते थे कि लोगों के अपने लक्ष्य होते हैं कि वे मुक्त और अकुण्ठित' स्थिति में रहना चाहते हैं और यह कि धन केवल अवकाशमय समाज के वास्तविक लक्ष्यों का उपभोग करने का साधन है। 'जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ समृद्ध और बुद्धिमान् बनाता है। स्वास्थ्य समृद्धि और ज्ञान मानवीय जीवन की प्राकृतिक वस्तुओं के वर्णन के लिए यह सूत्र बुरा नहीं है। लेकिन फ्रैंकलिन की सद्गुणों की सूची में इनमें से कोई भी नहीं आता। उसका ध्यान केवल जीवन के 'जल्दी सोना और जल्दी उठना' वाले पक्ष की ओर है।

दूसरे शब्दों में मानवीय आदर्शों का दर्शन न होने के कारण मुक्ततावादी सद्गुण न तो अरस्तू की 'नीति' के पर्याय थे और न पूँजीवादी व्यावसायिकता का यशोगान। अगर मुक्ततावादी नैतिकता ने किसी का स्थान ग्रहण किया तो परम्परागत 'ईसाई' सद्गुणों का क्योंकि वे भी जीवन के अनुशासन का दर्शन हैं। ईसाई जीवन का परम्परागत चित्रण विनय दयानुता पश्चात्ताप निर्धनता अपने को वंचित करना और क्षमाशील भावना के रूप में किया जाता है। मुक्ततावादी सद्गुणों की मान्यता का आधार तो ईसाई धर्मशास्त्र ही था किन्तु वे ईसाई सद्गुण नहीं थे। ईसाई नैतिक परम्परा से यह सम्बन्ध-विच्छेद जिसे फ्रैंकलिन ने अपने दर्शन में व्यक्त किया यान्की और ईसाई चरित्रों के वैपरीत्य का मर्म है। यह अमरीकी मनुष्यता के सामान्य रूप का भी मर्म है। अमरीकी मनुष्यता अगर व्यावहारिक परहित और धर्मनिरपेक्ष मानवीयता के लक्ष्य लेकर फ्रैंकलिन का अनुसरण करती तो उसका कृतित्व नहीं होता जिसकी यूरोप को

उससे आशा थी। लेकिन वह परहित के भावुक पन्थ को अपनाकर और एक 'उदार धर्म' का निर्माण करके अधिक क्रमिक मार्ग पर चलो। उधर फ्रैंकलिन की परहित भावना से विच्छिन्न होकर जिसके कारण उन्होंने अपने सद्गुणों को 'मुक्त और प्रफुल्लित' जीवन के साधन के रूप में देखा था, ये सद्गुण संकुचित होकर निरंकुश प्रतियोगिता और आदर्शहीन व्यवसाय की सामग्री बन गये।

स्वतन्त्रता का सिद्धान्त

धर्मदेश के बाहर इंगलिस्तान के ह्विग (पार्लियामेन्ट-समर्थक) समूह को १६८८ में जो सफलता मिली वह मुक्तवादी विद्रोह की ही उपज और उसकी परिणति थी। जॉन लॉक के राजनैतिक दर्शन में इन अति विरोधियों के अधिकांश व्यावहारिक तत्त्व धर्म-निरपेक्ष रूप में मौजूद थे—संवैधानिक अधिकार सहिष्णुता और सुरक्षा। न्यू-इंगलैंड में भी इसी प्रकार मुक्तवाद एक धर्म निरपेक्ष रूप लेकर स्वतन्त्रता के एक सिद्धान्त में विकसित हुआ। लेकिन पादरियों ने इस संक्रमण का नेतृत्व नहीं किया क्योंकि मुक्तवादी धर्मशास्त्री धर्म निरपेक्ष प्रवृत्तियों से प्रोत्साहित थे और उनमें से कुछ ने अत्याचारियों का प्रतिरोध करने के पुराने काल्विनवादी सिद्धान्त का पुनर्जीवित किया। इसके सर्वाधिक दिलचस्प और मजेदार उदाहरणों में से एक है प्रिस्बीटियन कॉलेज के अध्यक्ष जॉन विदरस्पून द्वारा १७ मई, १७७६ को कॉलेज के छात्रों के समक्ष दिया गया प्रसिद्ध 'विद्रोह' धर्मोपदेश, जिसमें उन्होंने कहा कि ईश्वर की सर्वोत्तम इच्छा उपनिवेशों के वासियों के अव्यवस्थापूर्ण आवेगों को उनपर अत्याचार करने वालों के विरुद्ध बना रही है। 'मनुष्य का क्रोध अपने अधिकतम तूफानी उभार में उसकी (ईश्वर की) इच्छा पूर्ण करता है, और सम्भवतः उसके कृपापात्रों का भला करता है।'[1] किन्तु विदरस्पून भी ईश्वर द्वारा मनुष्यों के आवेगों के उपयोग के अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के बाद अपने उपदेश के अन्तिम आधे हिस्से

१ जान विदरस्पून 'दी डोमिनियन आफ प्राविडेन्स ओवर दी पैशन्स आफ मैन' (मनुष्यों के आवेगों पर विधाता के विधान का प्रभुत्व) (फिलाडेल्फिया, १७७६) पृष्ठ १९। इसी परिप्रेक्ष्य में विदरस्पून अपने सुपरिचित धर्मशास्त्रीय बुद्धि-चातुर्य से कहते हैं— विधाता के विधान में प्रायः सर्वशक्तिमत्ता और औचित्य का मिश्रण पाया जा सकता है।"

में नौजवानों से सीधी-सादी धर्म में मसम्बद्ध अपील करते हैं कि वे अपने अधिकारों और न्याय स्वतन्त्रता और मानवीय प्रकृति के पक्ष में बीरता से लड़ें। वे इतिहास के आधार पर यह तर्क दे कर दोनों सिद्धान्तों को मिलाने की चेष्टा करते हैं कि नागरिक स्वतन्त्रता के समाप्त होने पर हमेशा धार्मिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाती है, और अगर हम अपनी सांसारिक सम्पत्ति सौंप देते हैं तो उसके साथ ही हम अपनी अन्तरात्मा को भी पराधीन बना देते हैं।[1]

युद्धवादी धर्मशास्त्र को इस प्रकार विद्रोह के अनुकूल बनाने का एक पूर्व-उदाहरण जॉन वाइज में मिलता है। उन्होंने स्थानीय धर्म-समुदायों की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए (१७१७) धर्म-संगठन को तर्कों और युद्धवादी सिद्धान्तों को छोड़कर 'मनुष्य की सुरक्षाओं' के एक सिद्धान्त के लिए 'प्रकृति के नियम और प्रकाश' (विशेषत पुफ़ेनडार्फ़) से प्रेरणा ली जाती थी। उन्होंने 'मनुष्य की प्रकृति में निहित मुख्य सुरक्षाओं' के रूप में, अपनी तर्कबुद्धि के निर्णय पर चलने की स्वतन्त्रता निजी स्वतन्त्रता और समानता और जनता की सर्वोच्च सत्ता और सामाजिक अनुबन्ध के उपयोग में अन्य मनुष्यों के साथ शामिल होने के अवसर को माना था। जॉन वाइज ने बहुत साफ नतीजा निकाला था कि सभी प्रकार की सरकारों में 'विश्व में सर्वोत्तम शायद वह होती जिसमें श्रेष्ठ लोकतन्त्र के आधार पर एक वैधानिक राजा (निरंकुश से भिन्न) होता है।[2] न्यू-इंगलैंड के कुछ पादरियों ने अब जोनाथन मेह्यू का अनुसरण करने का साहस किया जिन्होंने अपने 'सरमन्स टु यंग मेन (युवकों को उपदेश—१७६३) में घोषित किया कि देश और स्वतन्त्रता का प्रेम और सभी अत्याचारों और जुल्म से घृणा अच्छे धर्म का सार है। किन्तु मेह्यू और उनके साथी विद्रोहियों ने अपने सिद्धान्त को युद्धवाद में ग्रहण करने की चेष्टा नहीं की। वस्तुत पादरी के रूप में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा नहीं थी और सैमुएल जॉनसन ने जो स्वयं अंग्रेजी राज के समर्थक थे उनके बारे में कहा कि वे उस प्रकार के 'अव्यवस्थित विचार वाले लोगों में हैं जिन्हें तुर्कों से ज्यादा अच्छे ईसाई कहना कठिन है।

समृद्ध और विद्रोहपूर्ण न्यू-इंगलैंड वासियों के लिए यह ज्यादा आसान था कि ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता और कर्तव्यभावना से 'दयाधीशों' के आज्ञापालन

---

१ वही पृष्ठ १८।

२ पॉल रसेल ऐण्डरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित फ़िलासफ़ी इन अमेरिका (न्यूयार्क १६३६), पृष्ठ १६।

पर विश्वास करने के पुरातनपंथी आडम्बर का परित्याग कर दें और अपने आश्चर्यजनक रूप में धर्म-निरपेक्ष स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र की तैयारी में अगर प्रजातन्त्रवादी नहीं तो पूरी तरह ह्विग (राष्ट्रवादी लोकतन्त्रवादी) बन जाएँ। और इस तरह शीघ्र ही सारे उपनिवेशों में इतिहास और प्रगति सम्बन्धी धर्म-निरपेक्ष धारणा फैल गयी।

टॉम पेन और बेन्जामिन फ्रैंकलिन द्वारा की गयी व्यावहारिकता और 'सरल समझ' की अपीलों की लोकप्रियता के बावजूद अमरीकी नेताओं ने संस्थापित सिद्धान्तों को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए मेहनत की—न केवल आधुनिक सिद्धान्तों को वरन् प्राचीन सिद्धान्तों को भी। रोम के कानून और यूनान के राजनीतिक दर्शन का अमरीका में पदार्पण जिन्हें पुनर्जागरण ने केवल मौखिक आदर दिया था, अपने आप में अमरीकी चिन्तन के इतिहास में एक बड़ी घटना थी और प्रबुद्ध-काल की एक बड़ी देन थी। बिना उनके मूल स्रोतों तक गये हम कम से कम उन मुख्य दार्शनिक विचारों और समस्याओं का जिक्र कर सकते हैं जो विद्रोह का औचित्य सिद्ध करने के प्रयास में और संविधान पर हुई लम्बी बहस और विचार-विमर्श के फलस्वरूप सामने आयीं।

(क) सामाजिक अनुबन्ध और प्रजाधिपत्य—चर्च (धर्म-संगठन) प्रतिष्ठित कि पुरातनपंथी सिद्धान्त को एक धर्म-निरपेक्ष रूप देना आसान था। लॉक और इंगलिस्तान के ह्विग बहुत हद तक ऐसा करने में सफल हुए थे। लॉक के सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त को अमरीकी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिए केवल इतनी ही जरूरत थी कि सामाजिक अनुबन्ध जन-कल्याण और प्रकृति के नियम सम्बन्धी प्राचीन रोमी सिद्धान्तों के अंशों की सहायता से लॉक के सिद्धान्तों को एक गणतान्त्रिक रूप प्रदान किया जाए। कुछ समय तक जॉन आडम्स और टॉमस जेफरसन जैसे उपनिवेशवादी वकीलों का खयाल था कि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समस्याओं का हल अंग्रेजी साम्राज्य के अन्दर रहकर किया जा सकता है, कुछ उसी प्रकार जैसे अलगाव विरोधी धर्मसमुदायवादियों का खयाल था कि वे इंगलिस्तानी चर्च के अन्दर रह सकेंगे। हर एक उपनिवेश को एक 'राज्य-क्षेत्र' माना जाए, जिसका अपना विधानमण्डल हो और एक सामान्य सम्राट्, साम्राज्य के सामान्य कानून और स्वयं अपने विधानमण्डल के स्वीकृत कानूनों के प्रति भक्ति के स्वैच्छिक अनुबन्ध से हर उपनिवेश बँधा हो। और फिर, वे इंगलिस्तान, मैनद्वीप आदि सहभागी स्वतन्त्र राज्यों के साथ मिलकर स्वतन्त्र राज्यों का एक साम्राज्य-संघ बनाएँ। इसकी तुलना इस धर्म-समुदायवादी सिद्धान्त से की जा सकती है कि स्वतन्त्र गिरजा क्षेत्र एकमात्र और सर्वोच्च अधिपति ईसा के अधीन इंगलिस्तानी चर्च में संघबद्ध

में नीजवानों से सीधी-सादी भाषा में मसलन अपील करते हैं कि वे अपने अधिकारों और 'न्याय स्वतन्त्रता और मानवीय प्रकृति' के पक्ष में वीरता से लड़ें। वे इतिहास के आधार पर यह तर्क देकर दोनों सिद्धान्तों को मिलाने की चेष्टा करते हैं कि नागरिक स्वतन्त्रता के समाप्त होने पर हमेशा धार्मिक स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाती है, और अगर हम अपनी सांसारिक सम्पत्ति सौंप देते हैं तो उसके साथ ही हम अपनी अन्तरात्मा को भी पराधीन बना देते हैं।[1]

पुरातावादी धर्मशास्त्र को इस प्रकार विद्रोह के अनुरूप बनाने का एक पूर्व-उदाहरण जॉन वाइज में मिलता है। उन्होंने स्थानीय धर्म-समुदायों की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए (१७१७) धर्म-संगठन की तर्कों और पुरातावादी सिद्धान्तों को छोड़कर 'मनुष्य की सुरक्षाओं के एक सिद्धान्त के लिए 'प्रकृति के नियम और प्रमाण' (विशेषतः पुफेनडार्फ) से प्रेरणा लेनी चाही थी। उन्होंने 'मनुष्य की प्रकृति में निहित मुख्य सुरक्षाओं के रूप में, अपनी तर्कबुद्धि के निर्णय पर चलने की स्वतन्त्रता, निजी स्वतन्त्रता और समानता, और जनता की सर्वोच्च सत्ता और सामाजिक अनुबन्ध के उपयोग में अन्य मनुष्यों के साथ शामिल होने के अवसर को माना था। जॉन वाइज ने बहुत साफ नतीजा निकाला था कि सभी प्रकार की सरकारों में 'विश्व में सर्वोत्तम शायद वह होती जिसमें श्रेष्ठ लोकतन्त्र के आधार पर एक वैधानिक राजा (निरंकुश से भिन्न) होता है।[2] न्यू-इंग्लैंड के कुछ पादरियों ने अब जोनाथन मेह्यू का अनुकरण करने का साहस किया जिन्होंने अपने 'सरमन्स टु यंग मेन' (युवकों को उपदेश—१७६३) में घोषित किया कि देश और स्वतन्त्रता का प्रेम और सभी अत्याचारों और जुल्म से घृणा सच्चे धर्म का सार है। किन्तु मेह्यू और उनके साथी विद्रोहियों ने अपने सिद्धान्त को पुरातावाद से ग्रहण करने की चेष्टा नहीं की। वस्तुतः पादरी के रूप में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा नहीं थी और सैमुअल जॉनसन ने जो स्वयं अंग्रेजी राज के समर्थक थे उनके बारे में कहा कि वे उस प्रकार के 'अव्यवस्थित विचार वाले लोगों में हैं जिन्हें तुर्कों से ज्यादा अच्छे ईसाई कहना कठिन है।

समृद्ध और विद्रोहपूर्ण न्यू-इंग्लैंड वासियों के लिए यह ज्यादा आसान था कि ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता और कर्तव्यभावना से 'कब्रवादियों' के आज्ञापालन

---

१ वही पृष्ठ १८।

२ जॉन रसेल ऐंडरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित फ़िलासफ़ी इन अमेरिका (न्यूयार्क १९३९), पृष्ठ १६।

हों। उपनिवेशों को इस रूप में देखना सम्भव था क्योंकि उनके अधिकार-पत्र स्पष्टतः आनुबन्धिक थे। ऐसे राज्य संघबद्ध होने पर भी स्वतन्त्र होंगे क्योंकि हर एक की अपनी प्रतिनिधि सरकार होगी और सामान्य कानून की सीमाओं के अन्दर हर एक राज्य सामान्य हित के कामों में अपने योग के रूप और परिमाण के प्रश्नों पर अपना मत दे सकेगा। सम्राट् के प्रति भक्ति के सामान्य बन्धन के अलावा एकता कायम रखने के लिए एकमात्र अन्य आवश्यकता साम्राज्य के एक स्वाधीन सर्वोच्च न्यायालय की होगी जिसका एकमात्र कार्य विधानमण्डल के कामों की वैधानिकता को परखना होगा। स्वतन्त्र (अर्थात् आनुबन्धिक) समाजों के संघीय प्रजाधिपत्य का यह विचार १७६ के आस-पास अमरीका और इंगलिस्तान दोनों के ही समझौते के इच्छुक राजनेताओं द्वारा प्रतिपादित किया जा रहा था, जिन्हें आशा थी कि इंगलिस्तान और उसके उपनिवेशों के धार्मिक विवाद वैधानिक सुधार की योजना के अन्तर्गत सुलझाये जा सकते हैं।[1] लेकिन जैसा कि सब जानते हैं साम्राज्य-प्रजाधिपत्य की वह योजना अव्यावहारिक सिद्ध हुई, वह शीघ्र ही उपनिवेशों के आपसी सहयोग और फिर राज्यों की संघीय एकता का क्रियात्मक आधार बन गयी। सभी का अनुमान था कि जिस प्रकार अंग्रेजी संसद उसे औपनिवेशिक नीति के झगड़ों का मुख्य केन्द्र थी उन्हीं कारणों से संघीय विधानमण्डल झगड़े और गुटबाजी का मुख्य केन्द्र होगा। स्वतन्त्रता के हित में यह आवश्यक था। किन्तु यह आशा थी कि एक कार्यकारिणी और एक सर्वोच्च न्यायालय शान्ति कायम रख सकेंगे जिस पर सभी की सुरक्षा निर्भर थी। लगभग १७६ से लगभग १८२ तक अमरीकी राजनीतिक विचारधारा का यह मौलिक रूप केवल युद्ध जीतने और शान्ति स्थापित करने का व्यावहारिक तरीका नहीं था बल्कि एक सामाजिक दर्शन का व्यावहारिक मूर्त रूप था। 'संघ योजना' जिस पर उसके आलोचकों को सचमुच बड़ा गर्व था सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त का दोहरा प्रयोग थी—या जैसा जैफ़रसन ने कहा इसमें छोटे-छोटे गणतन्त्रों को मिलाकर एक विशाल गणतन्त्र का निर्माण हुआ था। न्यू-इंगलैंड का हर नगर, हर इलाका [illegible] बस्ती और हर राज्य राष्ट्रीय संघ की भाँति एक पूर्णतः आनुबन्धिक समाज माना गया। थॉमस जैफ़रसन ने विशेषतः इन 'छोटे गणतन्त्रों' को जीवन्त रखने पर जोर

१ उपनिवेशों में बेन्जामिन फ्रैंकलिन और सेमुएल जॉन्सन स्वतन्त्रता का सवाल उठने के पहले से ही, संघ के प्रारम्भिक समर्थक थे। यह दिलचस्प बात है कि अमरीकी बिशपों (उच्च धर्माधिकारियों) की नियुक्ति के अपने सुझाव को भी जॉन्सन इसी विचार का धर्मसंगठन सम्बन्धी रूप मानते थे।

दिया क्योंकि उनके मतानुसार इन स्थानीय समाजों के गणतान्त्रिक चरित्र और सतर्कता पर ही बड़े संघ का स्वास्थ्य निर्भर था।

मैं कह सकता हूँ कि एक सामान्य सूर्य की परिक्रमा करने वाले ग्रहों की भाँति जो अपनी पारस्परिक युक्ता और दूरियों के अनुसार कार्य करते और कार्य का उपादान बनते हैं ये सब और इनकी केन्द्रीय सरकार भी समय पाकर वह सुन्दर सन्तुलन उत्पन्न करेंगे जिस पर हमारा संविधान आधारित है। मेरा विश्वास है कि वह विश्व में श्रेष्ठता का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करेगा जिसकी तुलना केवल सौर-मण्डल से ही की जा सकेगी। पर प्रबुद्ध राजनेता हर संघ की युक्ता और प्रभाव को क़ायम रखने की चेष्टा करेगा क्योंकि किसी एक संघ का अंग अधिक होने पर सामान्य सन्तुलन नष्ट हो जाएगा।[1]

इन आनुवंशिक सिद्धान्त के अनुसार जनाधिकार पर निर्मित कोई गणतन्त्र या प्रजातिपत्य नागरिकों का एक स्वैच्छिक कानूनी संघ होता है जो एक-दूसरे के प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा करने का वादा करते हैं और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए, नागरिक अधिकारों या न्याय की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से एक 'अभिकर्ता' 'ट्रस्टी' या सरकार नियुक्त करते हैं। यह किसी प्रभु की आधीनता का आपसी समझौता नहीं है (हॉब्स) और न बहुमत की इच्छा को प्रभु मानने की स्वीकृति है (लॉक)। बल्कि इसमें एक राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता या प्रभुता (अगर इस विचार को रखना ही है तो) का उपभोग हर एक के अधिकारों को प्रतिष्ठित सम्मानित और कार्यान्वित करके करता है उन अधिकारों को सरकार को सौंप कर नहीं। कट्टर गणतन्त्रवादी टॉमस पेन ने स्पष्ट शब्दों में 'जनता की प्रभुता की घोषणा की। और जेम्स विल्सन ने बड़े ध्यानपूर्वक प्रभुता के ऐसे सिद्धान्त के कानूनी पक्षों का निरूपण किया। जब यह सिद्धान्त निरूपित किया जा रहा था उस समय तक अमरीकियों को रूसो के सामान्य इच्छा (जनरल विल) की प्रभुता के सिद्धान्त की जानकारी नहीं थी। अगर होती तो भी वे उसे सन्देह की दृष्टि से देखते। उनका अपना सिद्धान्त इस पर आधारित था कि सामान्य इच्छा और विशिष्ट इच्छा दोनों ही प्रकृति और नागरिक अधिकारों के यथाए जनाधिकार के अधीन हों। उनके मतानुसार जनाधिकार और निजी अधिकार में साधन और साध्य का सम्बन्ध है। नागरिक स्वतन्त्रता कानून शक्ति आदि विभिन्न नागरिकों की सम्पत्ति की सुरक्षा और सुख की अभिवृद्धि के साधन हैं।

---

1 जेफ़र्सन फ़्रान्सिस_को पत्र २१ फ़रवरी १७९८ जॉन डूई द्वारा सम्पादित 'दी लिविंग थॉट्स ऑफ़ टॉमस जफ़रसन (न्यूयार्क, १९४०) में उद्धृत पृष्ठ ५१-५२।

प्रतिनिधि थे, जिन्होंने अधिक आलोचनात्मक सिद्धान्त-निरूपण करने वाली अगली पीढ़ी के लिए समस्याएँ निरूपित कीं।

किन्तु दार्शनिक प्रवृत्ति वाले राजनेताओं के लिए अमरीका का महान् वादविवाद दरअसल उस महान् वादविवाद का ही प्रसार था जो (कम से कम अंग्रेज़ों के लिए) क्रामवेल की सेना में प्रेस्बिटीरियन और स्वतन्त्र विचार लोगों में आरम्भ हुआ था। लॉक ने प्राकृतिक अधिकारों की धारणा का प्रयोग बड़े ढीले-ढाले रूप में किया था क्योंकि अधिक स्पष्ट अन्तर न करके वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति ज़्यादा अच्छी तरह कर सकते थे। इसी प्रकार अमरीका में स्वतन्त्रता के युद्ध में विजय प्राप्त होने तक मूल सैद्धान्तिक प्रश्न गौण रहे, लेकिन उसके बाद अधिकाधिक सामने आये। संविधान का निर्माण करने में, और क्रान्तिकारी फ्रांस के साथ अपने सम्बन्धों में, इन प्रश्नों से बचना असम्भव था। मूल दार्शनिक प्रश्न जो इस संघर्ष से उभरा उसे इस प्रकार रखा जा सकता है—क्या अधिकार या क़ानून को एक संस्थात्मक नैतिक ढाँचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे किसी राज्य के स्थायी संगठन या संविधान को न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण, तर्कसंगत या स्वेच्छ कहा जा सके? या कि अधिकार को ऐसे विशिष्ट कार्यों के सन्दर्भ में परिभाषित करना आवश्यक है, जो अपनी निजी प्रकृति में न्यायपूर्ण या स्वेच्छ होते हैं? इंग्लिस्तान के मामले में इस प्रश्न का व्यावहारिक रूप यह था कि संसद्—अर्थात् जनता के प्रतिनिधि—की प्रभुसत्ता अपने आप में उचित थी या कि देश का क़ानून भी स्वेच्छ हो सकता है और इस कारण जनता के लिए आवश्यक है कि वह स्वयं अपने प्रतिनिधियों और क़ानून के विरुद्ध भी कुछ अधिकारों या स्वतन्त्रताओं का 'आरक्षित' रखे। जेम्स हैरिंग्टन का अनुसरण करते हुए जॉन ऐडम्स ने एक संस्थात्मक यन्त्रात्मक स्वतः नियमित व्यवस्था की कल्पना की। उनका विचार था कि संविधान इस प्रकार बनाया जाए जिसमें निजी हित और सार्वजनिक हित अभिन्न हों। इस धारणा ने एक शताब्दी तक सामाजिक दर्शन को मन्त्रमुग्ध रखा। उनका विचार था कि शक्ति और सम्पत्ति को इस प्रकार बाँट कर जिसमें किसी विशेष-हित का प्रभुत्व न होने पाये क़ानून को निर्वैयक्तिक बना दिया जाए। दूसरे शब्दों में निर्दोष गणतन्त्र वह है जिसमें विभिन्न वर्ग और हित एक-दूसरे को संयमित और सन्तुलित करते हैं और इस प्रकार एक स्वाभाविक संतुलन का निर्माण करते हैं जो स्वतः हर किसी के साथ न्याय करता है। सम्पत्ति के स्वामियों की संख्या बढ़ा कर, पदों के आवर्तन और गुप्त मतदान द्वारा और विचारक निकायों तथा 'परमाधिकार युक्त' निकायों को अलग-अलग करके और अन्य ऐसी ही संवैधानिक रीतियों से उनका 'समान' या सन्तुलनात्मक

प्रजाधिपत्य हर नागरिक को इस योग्य बनाता कि स्वयं अपने हित सिद्ध करते हुए वह सम्पूर्ण समाज का भी हित करे। अगर हम उनका 'वैज्ञानिक' शासन तन्त्र स्वीकार कर लेते तो मानवीय प्रकृति की भ्रष्टता को शासन संस्थाएँ इतनी अच्छी तरह संयमित और सन्तुलित कर देतीं कि हमें बहुसंख्यक प्रतिनिधियों के असभ्य और असीमित आवेगों और कामनाओं से कोई डर न रह जाता। अगर वे यहाँ होते तो हमारा दोषपूर्ण संविधान भी संयम और सन्तुलन का जो शानदार दृश्य प्रस्तुत करता है, उससे शायद उन्हें बड़ा सन्तोष मिलता।

दूसरे सिरे पर थॉमस जेफरसन थे जो 'विधानमण्डलों के अत्याचार' से सर्वाधिक डरने के कारण ऐसे अधिकार-पत्र के लिये लड़े जो न्यायपालिका के हाथ में एक क़ानूनी रोक के रूप में रहे। न्यायपालिका अगर स्वतन्त्र कर दी जाये और अपने क्षेत्र में ही सीमित रखी जाए, तो इस योग्य होती है कि उसकी विद्वता और निष्ठा पर बहुत अधिक विश्वास किया जाये।[1]

ये पराकाष्ठाएँ आमने-सामने रहीं और इनमें मेल नहीं हो पाया। यह अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन के तर्क से प्रमाणित है, जिन्होंने संविधान का समर्थन करने की उत्सुकता में दोनों विचारधाराओं का सहारा लिया। उनका कहना था कि अधिकार-पत्र ऐसे संविधानों में अप्रासंगिक है जो व्यक्त रूप में जनता की शक्ति पर आधारित हों और जनता के साक्षात् प्रतिनिधियों और सेवकों द्वारा क्रियान्वित हों। यहाँ वास्तव में जनता कुछ भी परित्याग नहीं करती।[2] अगले पृष्ठ पर वे लिखते हैं 'संविधान स्वयं हर तर्कसंगत अर्थ में और हर उपयोगी उद्देश्य के लिए, एक अधिकार-पत्र है।

हमारे संवैधानिक अधिकार' में जेफ़रसन के आग्रह के कारण जो अधिकार पत्र जोड़ा गया उसमें दिये गये अधिकार स्पष्टतः नागरिक अधिकार हैं प्राकृतिक नहीं और वे स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र में वर्णित प्राकृतिक अधिकारों की अपेक्षा इंग्लिस्तान में १६८९ में निरूपित अधिकारों से अधिक मिलते हैं। फिर भी 'देश का क़ानून' स्वतन्त्रता सम्बन्धी हमारे विचारों के मेल से बना है। संवैधानिक ढाँचे में नये संशोधनों के द्वारा समय-समय पर नये 'अधिकार' जोड़े जाते रहे हैं और क़ानूनी स्वतन्त्रता में नयी स्वतन्त्रताएँ जोड़ी जाती रही

---

१ एलबर्ट एलेरी बर्ग द्वारा संपादित 'दी राइटिंग्स ऑफ थॉमस जेफरसन' (वाशिंगटन १९०४) में जेम्स मैडिसन को पत्र १५ मार्च १७८९ सप्तम पृष्ठ १०९।

२ दी फेडेरलिस्ट संख्या चौरासी।

है ।[1] व्यवहार में प्रश्न मुख्यतः यह था कि अन्ततः जनता की स्वतन्त्रताओं का संरक्षक कौन है । संघवादियों (फ़ेडरलिस्ट) ने जॉन मार्शल के नेतृत्व में सर्वोच्च-न्यायालय को खड़ा किया जिसे जेम्स विल्सन ने एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकरण के समान बताया । इसका उद्देश्य था प्राकृतिक नियमों का विकास जिसमें वे 'जनता की प्रभुसत्ता' का अन्तिम स्वर और क़ानून द्वारा शासन के संरक्षक बन जायें । टॉम पेन ने बहुत पहले 'कॉमन सेन्स' में इसी आदर्श को अनुपम अभिव्यक्ति प्रदान की थी । यह बात जॉन मार्शल के समय उतनी नयी और उत्तेजक नहीं रह गयी थी जितनी १७७६ में रचना के प्रकाशन के समय थी ।

लेकिन कुछ लोग कहते हैं अमरीका का राजा कहाँ है ? मैं बताता हूँ मित्र वह स्वर्ग में राज्य करता है और इंगलिस्तान के शाही पशु की तरह मनुष्य जाति का नाश नहीं करता । किन्तु पार्थिव सम्मानों में भी हम दोषपूर्ण न प्रतीत हों इसलिए एक दिन अधिकार-पत्र की घोषणा के लिए गम्भीरता से नियत कर दिया जाए । उसे दैवी नियम ईश्वर की वाणी पर रख कर लाया जाए । उस पर एक ताज रखा जाए जिससे कि दुनिया को पता चल जाए कि जहाँ तक हम राजतन्त्र के समर्थक हैं वहाँ तक अमरीका में क़ानून राजा है ।[2]

दूसरी ओर जेफ़रसन ने जनता के नागरिक सद्गुणों पर भरोसा किया और इस पर कि उन्हें कुछ अवधियों के बाद (सिद्धान्ततः हर पीढ़ी में एक बार) अपनी सरकार में वे जितना भी गम्भीर परिवर्तन करना चाहें, करने का अवसर मिले ।

'जीवन के हर व्यापार की भाँति शासन में भी कर्तव्यों के विभाजन और पुनर्विभाजन के द्वारा ही छोटे बड़े सभी मामले सर्वोत्तम ढंग से चलाए जा सकते हैं । और सार्वजनिक मामलों के प्रबन्ध में हर नागरिक का निजी रूप में हिस्सा लेने से सारा ढाँचा जुड़ जाता है ।'

"निजी सम्पत्तियाँ सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार के अपव्यय से नष्ट हो जाती हैं । और सभी मानवीय सरकारों में यह प्रवृत्ति होती है । एक मामले

---

१ देखिए, जेम्स ड्रस्लो ऐडम्स 'राइट्स विदाउट रूट्स' 'दी येल रिव्यू' अंक चौंतीस (१६१५), पृष्ठ २१७-२५ । और चार्ल्स अम्स्ट्रोंग बर्नर 'दी मीनिंग आफ कॉन्स्टिट्यूशन' विलफ़्रेड बेरेट द्वारा सम्पादित 'कन्टेम्पोरेरी आइडियलिज़्म इन अमेरिका' में (न्यूयार्क, १६३२) पृष्ठ २३७-२६५ ।

२ यह रचना अपने समय की सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तिकाओं में से थी ।

में सिद्धान्त से हटना दूसरे के लिए मिसाल बन जाता है, और दूसरा तीसरे के लिए। यह क्रम चलता जाता है, और अन्ततः समाज का बहुभाग केवल दुरवस्थाग्रस्त यन्त्रों जैसा रह जाता है और उसमें पाप करने और कष्ट भोगने के अलावा और कोई संवेदना शेष नहीं रहती। तब वस्तुतः सबका सबसे संघर्ष शुरू हो जाता है, जिसे संसार में इतने व्यापक रूप में विद्यमान देखकर कुछ दार्शनिक उसे मनुष्य की विशुद्ध-स्थिति के बजाय उसकी प्राकृतिक स्थिति मान बैठे हैं। इस भयानक सिलसिले में पहला स्थान सार्वजनिक ऋण का है। उसके बाद कर और उनके पीछे-पीछे दुर्गति और अत्याचार।[1]

(ग) वर्ग-समाज—गणतान्त्रिक सिद्धान्त परम्परा से और सिद्धान्ततः भी सामन्तवादी सिद्धान्त का प्रतिपक्षी था। वर्गविशेषाधिकार युक्त सामन्तवाद को अमरीका में उठने की अनुमति नहीं मिलती थी। सभी मनुष्य जन्म से समान हैं, इस सिद्धान्त का प्रथम और सर्वप्रमुख अर्थ यही था। दूसरी ओर इस बात पर सामान्य सहमति थी कि सभी समाज वर्ग-समाज होते हैं। राजनैतिक समानता का आर्थिक असमानता के साथ कैसे मेल बिठाया जाए, यह मुख्य समस्या थी। उपनिवेशों में एक भूस्वामी अभिजात्य वर्ग पैदा हो चुका था और इसलिए उपनिवेशों में इसे निर्विवाद स्वीकार कर लिया गया। एक वाणिज्य और औद्योगिक अभिजात्य-वर्ग उत्पन्न हो रहा था यह भी सामान्यतः दिखाई देता था। शासन और राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त जिन स्वयंसिद्ध सत्यों पर आधारित थे उनमें एक यह भी था 'कि हर मनुष्य को सिद्धान्तहीन मानना चाहिए, और यह कि निजी हित के अलावा उसके सारे कार्यों का कोई और लक्ष्य नहीं होता।'[2] जॉन एडम्स ने इस युग का अधिक औपचारिक रूप में घोषित किया जब उन्होंने लिखा "हैरिंगटन ने सिद्ध किया है कि शक्ति हमेशा सम्पत्ति के पीछे आती है। मैं इसे राजनीति का उतना ही अटल सिद्धान्त मानता हूँ जितना यान्त्रिकी का यह नियम कि क्रिया और प्रतिक्रिया समान होती है।[3] अनिवार्य ही गुट होंगे और समस्या ऐसी व्यवस्था बनाने की है जिसमें ये गुट बिना अन्य नागरिकों के या समाज के स्थायी और सम्पूर्ण हितों को हानि

---

१ पौल फोर्ड द्वारा सम्पादित 'दी लिखित राइटिंग्स आफ टॉमस जेफरसन' में जेम्स मैडिसन को पत्र १२ जुलाई १८१६ पृष्ठ ५९-६०।

२ हेनरी कबट लाज द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स आफ अलेक्जेण्डर हैमिल्टन' (न्यूयार्क, १९०४) खण्ड १ पृष्ठ ५१।

१ वर्नन लुई पैरिंग्टन 'मेन करेन्ट्स इन अमेरिकन थाट', खण्ड १ दी कालोनियल माइण्ड, १६२०-१८०० (न्यूयार्क, १९३०) पृष्ठ ११८।

पहुँचावें, एक-दूसरे को नियन्त्रित करें।[1] इस समय हम आसानी से देख सकते हैं कि यहाँ दलीय सरकार की समस्या का स्पष्ट निरूपण किया गया है। लेकिन हमारे संविधान और उसके निर्माताओं ने सिद्धान्त या व्यवहार में दलों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की। वे संयम और सन्तुलन की अन्य व्यवस्थाओं पर अनन्त बहस चलाते रहे और उन्हें आशा थी कि वे सरकार का कोई ऐसा रूप निकाल लेंगे जो अपनी प्रकृति से ही भ्रष्टता की उन प्रवृत्तियों को रोक सकेगी जिन्हें सभी शास्त्रीय ग्रन्थों में बताया और समझाया गया है। दलीय सरकार के विरुद्ध मुख्य सैद्धान्तिक तर्क यह था कि प्रतिनिधित्व अगर इन पार्टियों में से किसी एक में शामिल होने के विकल्प तक सीमित रह जाए, तो वह राष्ट्रीय स्वशासन का साधन न रह कर अत्याचार का साधन मात्र रह जाता है।[2] उनके सिद्धान्तों के अनुसार दलीय-व्यवस्था पर आधारित कोई स्थायित्वपूर्ण शासन न बन सकने का मुख्य व्यावहारिक कारण यह था कि जिन गुटों और वर्ग-हितों को दल व्यक्त करते हैं वे हमेशा मौजूद रहने पर भी, निरन्तर बदलते रहते हैं। उस समय अमरीका में टिकाऊ दलों के बारे में अटकल लगाना सर्वाधिक लाभहीन कार्य प्रतीत होता था।

यह भविष्यवाणी करना आसान था कि गरीब और अमीर, सम्पन्न और सम्पत्तिहीन वर्ग हमेशा रहेंगे किन्तु यह भी आसानी से देखा जा सकता था कि सम्पत्ति का रूप बड़ी तीव्रता से बदलता था और भूस्वामी अभिजात्य-वर्ग को आधार बनाना व्यर्थ था। भू-स्वामी अभिजात्य-वर्ग के अन्दर भी गुलामी समर्थक और गुलामी-विरोधी गुट पैदा हो रहे थे छोटे पक्ष-हित वर्ग-हितों को काटते थे और भू-सम्पत्ति भी उतनी ही अस्थायी और मूल्य की दृष्टि से अस्थिर थी जितनी और कोई सम्पत्ति। यह सच है कि जेफरसन और टेलर जैसे कृषिवादियों ने खेती के हितों को एक विशिष्ट अर्थ में 'राष्ट्रीय-हित' मान कर उनका समर्थन किया। किन्तु यह पुराना अर्द्ध-सामन्ती तर्क बिलकुल खोखला हो गया और जेफरसन ने अन्ततः इसे छोड़ दिया क्योंकि अमरीका में भू-स्वामियों के ऐसे 'बँधे हुए' हित नहीं थे जो इस सिद्धान्त को स्वीकार्य बनाने के लिये आवश्यक थे। स्वयं टेलर ने जेफरसन को १७९९ में लिखा हमारे लिए सचमुच बड़ा अच्छा होता अगर खेती और किसानी

१ 'फ़ेडेरलिस्ट पेपर्स' संख्या दस मैडिसन)।

२ जान टेलर, 'ऐन इन्क्वायरी इन टु दी प्रिंसिपल्स एण्ड पालिसी ऑफ दी गवर्नमेण्ट ऑफ दी यूनाइटेड स्टेट्स' (फ्रेडरिक्सबर्ग, वर्जिनिया, १८१४) पृष्ठ १९६।

अब भी रोचक बने रहते। फिर भी टेलर ने हठपूर्वक इस सिद्धान्त को क़ायम रखने की चेष्टा की।

"देश की रक्षा करने के हथियारों के बाद सबसे अधिक महत्व देश में खेती करने के औज़ारों का होना चाहिए और इन औज़ारों से हथियारों का भी मूल्य बढ़ता है, इस हद तक कि वे देश को अधिक रक्षणीय बनाते हैं। (खेती के कर्तव्य) नैतिक औचित्य के कर्तव्यों की भाँति एक व्यक्ति या एक परिवार के निर्वाह की व्यवस्था करने के संकुचित घेरे से निकल कर समाज से उत्पन्न जिम्मेदारियों और राष्ट्रीय समृद्धि से सम्बद्ध हितों द्वारा निर्मित व्यापक क्षेत्र में आ जाते हैं। संयुक्त राज्य में खेती की जिम्मेदारी सभी खाने वालों के लिए भोजन की व्यवस्था करके ही समाप्त नहीं हो जाती। इसका क्षेत्र सरकार को सशक्त बनाने व्यापार को प्रोत्साहन देने औद्योगिक व्यवसायों को क़ायम रखने, ललित कलाओं को जन्म देने और अधिक उपयोगी मशीनी रोज़गार को बल प्रदान करने तक फैला हुआ है।...ये ऐसे स्रोत हैं जिनसे सभी वर्ग और विशेष रूप में इनके फलों का उपभोग करने वाले लोगों का बहुसंख्यक परिवार अपनी जीविका और समृद्धि प्राप्त करते हैं। अत इसे समृद्ध बनाने में सभी वर्गों का गहरा हित है, क्योंकि इसकी वृद्धि से हर एक की सफलता बढ़ती है, और इसके ह्रास से घटती है। खेती पर की गयी हर चोट उनके अपनी (राजनीतिज्ञों के) मर्म तक पहुँचती है। ऐसी हालत में खेती और समाज के अन्य उपयोगी वर्गों के हितों में कोई अन्तर कैसे आ सकता है, जब कि उनकी समृद्धि खेती की समृद्धि का फल ही हो सकती है, और खेती एक सुसंगठित समाज का लाभ अन्य वर्गों के लिए उपयुक्त व्यवस्था करके ही उठा सकती है। सामान्य हित से खेती सम्बन्धी एक राष्ट्रीय नीति का विचार उत्पन्न होना चाहिए। जो वस्तु सुख और कष्ट की पराकाष्ठाएँ और दोनों के बीच की सारी स्थितियाँ उत्पन्न करती है, दिमाग़ और धन की शक्तियों के उपयोग के लिए उससे अधिक यशस्वी लक्ष्य और कौन हो सकता है? चूँकि खेती राष्ट्रीय सम्पत्ति है (कोई समूह उसे क्षति नहीं पहुँचाए)। चूँकि हमारा देश एक विशाल खेत है और उसके निवासियों का एक विशाल परिवार है, जिसमें सबसे कम काम करने वाले लाभ का सबसे बड़ा हिस्सा प्राप्त करते हैं अत जो लोग किसान नहीं हैं खेती का लाभ बढ़ाने में उनका हित स्वयं किसान से भी अधिक है, क्योंकि उनकी आजीविका उनके पहले आती है, और उसके अतिरिक्त उत्पादन से ही वे जीवन यापन के साधन प्राप्त कर सकते हैं।[1]

[1] 'अमेरिकन फार्मर' खण्ड १ (१५ सितम्बर, १८२) पृष्ठ १२४
१९१।

ऐसा प्रतीत होता है कि भू-सम्पत्ति में धनी और मार्टों से धनी, दोनों ही यह मानते थे कि नागरिकों में उनका स्थान अल्प-संख्यकों का ही रहेगा और भविष्य में आने वाला वह दिन देखते थे जब मतदाताओं के लिए सम्पत्ति सम्बन्धी शर्तों के तेजी से ढीले पड़ने के साथ वे मतदाताओं में भी अल्प-संख्यक रह जायेंगे। अतः उनकी दृष्टि में वर्ग शासन की समस्या मुख्यतः सम्पत्ति के मालिक वर्ग के अल्प-संख्यक हितों की रक्षा करने की थी। जॉन ऐडम्स ने इस बात को बड़े तीखे स्वरों में रखा।

"यह याद रखना होगा कि गरीबों की तरह अमीर भी 'लोग' हैं कि अपनी सम्पत्ति पर उनका अधिकार उतना ही स्पष्ट और पवित्र है, जितना उनसे कम सम्पत्ति वालों का अपनी सम्पत्ति पर, कि उनपर भी अत्याचार सम्भव है और उतना ही दुष्टतापूर्ण होगा जितना दूसरों पर।"[1]

अगर आप लोकतन्त्रवादियों को प्रभुसत्ता में एक भाग से अधिक दे देते हैं, अर्थात् अगर आप उनको प्रभुसत्ता यानी विधान-मण्डल का संचालन या उसमें प्रबलता प्रदान कर देते हैं तो वे वोट के द्वारा आप अभिजात्य लोगों के हाथ से सारी सम्पत्ति छीन लेंगे और अगर उन्होंने आपको जीवित छोड़ दिया तो वह ऐसी मानवीयता विचारशीलता और उदारता होगी जैसी किसी विजयी लोकतन्त्र ने सृष्टि के प्रारम्भ से अब तक प्रदर्शित नहीं की है। लोकतन्त्रवादियों का अभिजातवर्ग आपका स्थान ले लेगा और अपने साथी मनुष्यों से वैसा ही कठोर और सख्त व्यवहार करेगा जैसा आपने उनके साथ किया है।[2]

टॉमस पेन ने एक ही कार्यकारी पद हो इसका विरोध करते हुए वही शास्त्रीय गणतान्त्रिक सिद्धान्त अपनाया कि आज्ञापालन व्यक्तियों का नहीं कानूनों का होना चाहिए।

"शासन का परिष्कार करके उसे एक व्यक्ति तक सीमित करने की पद्धति का या जिसे 'एक कार्यकारी' कहते हैं उसका मैं हमेशा विरोधी रहा हूँ। ऐसा व्यक्ति हमेशा किसी दल का प्रमुख होगा। अनेकता कहीं ज्यादा अच्छी होती है। यह राष्ट्र के समूह को ज्यादा अच्छी तरह संयोजित करती है। और, इसके अतिरिक्त किसी गणतन्त्र के औचित्य मानस के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी व्यक्ति की आज्ञा का पालन करने के पतनशील विचार से मुक्त हो।"[3]

---

१ चार्ल्स फ्रांसिस ऐडम्स द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स ऑफ जान ऐडम्स' में ए डिफेन्स ऑफ दी कान्स्टिट्यूशन एट्सेटरा (बोस्टन, १८५०-५६) खण्ड ६, पृष्ठ ६५।

२ लेटर टु जान टेलर' वही पृष्ठ ५१६।

३ हैरी हेडेन क्लार्क द्वारा सम्पादित 'टामस पेन रिप्रेजेन्टेटिव सेलैक्शन्स' (न्यूयार्क १९४४) पृष्ठ १८८ एफ।

इस दृष्टिकोण के अनुसार बहुमत की इच्छा भी अथवा यहाँ तक कि समूचे राष्ट्र की इच्छा भी एक गुट और 'अनाधिकार' के लिए खतरा बन सकती थी। अपने गणतान्त्रिक सिद्धान्त को एक लोकतान्त्रिक मोड़ देने में जेफरसन अपने समकालीनों में लगभग अकेले थे, और उन्होंने भी यह अपने जीवन के अन्तिम काल में किया जब कार्यकारी अनुभव ने कुछ स्वयंसिद्ध सत्यों के बारे में उनके मन में सन्देह उत्पन्न कर दिया।

'हमारे गणतन्त्र के जन्म के समय, मैंने 'वर्जिनिया पर टिप्पणियाँ' (नोट्स ऑन वर्जिनिया) के साथ संलग्न एक संविधान के मसौदे में अपनी यह राय दुनिया के सामने रखी थी जिसमें स्थायी रूप से समान प्रतिनिधित्व की व्यवस्था थी। उस समय इस विषय पर विचार का प्रारम्भकाल था और स्वशासन में हम अनुभव हीन थे जिसके फलस्वरूप वास्तविक गणतान्त्रिक सिद्धान्तों से वह मसौदा कई मामलों में बहुत दूर चला गया। वस्तुतः राजतन्त्र के दुर्गुणों का प्रश्न राजनीतिक विचार-विमर्श पर इस हद तक छा गया था कि हम मान बैठे कि जो कुछ भी राजतन्त्र नहीं है वह गणतान्त्रिक है। हम इस मूल सिद्धान्त तक नहीं पहुँचे थे कि 'सरकारें' केवल उसी अनुपात में गणतान्त्रिक होती हैं जिस सीमा तक वे अपने राष्ट्र के संकल्प को मूर्त करती और उसे कार्यान्वित करती हैं। अतः हमारे प्रथम संविधानों में वस्तुतः कोई निर्देशक सिद्धान्त नहीं थे। किन्तु अनुभव और विचार ने उस समय प्रस्तावित समान प्रतिनिधित्व के विशिष्ट महत्त्व की मेरी धारणा को अधिकाधिक दृढ़ बनाया है। हमारा गणतन्त्रवाद फिर मिलेगा कहाँ? निश्चय ही हमारे संविधान में नहीं वरन् केवल हमारे साथी की भावना में। गणतान्त्रिक शासन की असली नींव अपने व्यक्तित्व और सम्पत्ति में और उनके प्रबन्ध में हर नागरिक के समान अधिकार में है। हमारे संविधान की हर व्यवस्था को इस कसौटी पर परखें और देखें कि क्या वह प्रत्यक्ष रूप में जनता के संकल्प पर आधारित है।'[1]

यद्यपि जेफरसन यहाँ स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के केन्द्र में निर्वाचित वर्ग द्वारा शासन के स्थान पर जनता द्वारा शासन को ले आते हैं किन्तु उनका अब भी यह विश्वास है कि जनता पर भरोसा इसी कारण किया जा सकता है कि गुट हितों के समक्ष स्वयं अपने हितों के बारे में जनता युक्तिपूर्ण निर्णय कर सकती है।

---

[1] २७ जान डुई द्वारा सम्पादित थी लिविंग थाट्स ऑफ थॉमस जेफरसन में सैमुअल किर्चवल को पत्र, १२ जुलाई १७१६ (न्यूयार्क, १९४०) पृष्ठ १८५६।

धार्मिक स्वतन्त्रता

सन् १६४४ में रोजर विलियम्स ने कहा कि 'यहूदी या ईसाइयों की भिन्न और विरोधी धर्मसंस्थाओं की उपस्थिति के बावजूद किसी देश या राज्य में *नागरिकता और ईसाइयत दोनों ही पनप सकते हैं*' तो बहुत कम लोगों ने उनके विचार को औचित्यपूर्ण माना था। उनकी समकालीन अधिकांश धर्मसंस्थाओं के लिए, वस्तुतः नागरिकता और धर्म का अलगाव एक अविचारणीय बात थी। इसके पहले कि ऐसा अलगाव धर्मसंस्थाओं को स्वीकार हो सके राजनीति और धर्म दोनों में ही मौलिक परिवर्तन होते हैं। *प्रभुसत्ता के नाम में* ये परिवर्तन हुए। विलियम्स के एक तर्क को इन परिवर्तनों की पूर्वछाया के रूप में देखा जा सकता है।

धर्मसंगठन (चर्च) या पूजकों का समूह (चाहे सच्चे [illegible] या झूठे) *किसी नगर में चिकित्सकों के समूह या संस्था की भाँति* पूर्व एशिया या तुर्की से व्यापार करने वालों के निगम समाज या कम्पनी की भाँति या लन्दन के किसी भी समाज या कम्पनी की भाँति है। ये कम्पनियाँ अपनी अदालतें लगा सकती हैं अपने अभिलेख रख सकती हैं अपनी सभाएँ चला सकती हैं। अपने संगठन से सम्बन्धित मामलों में इनमें असहमतियाँ और विभाजन हो सकते हैं, फूट और दल बन सकते हैं कानून के अनुसार ये एक-दूसरे पर मुकदमे चला सकती हैं पूरी तरह टूट कर अलग-अलग हो सकती या लुप्त हो जा सकती हैं फिर भी इससे नगर की शांति में कोई उथल-पुथल या क्षति नहीं होगी क्योंकि नगर का सार-तत्त्व या अस्तित्व और इस कारण उसकी भलाई और शान्ति इन समाजों से मूलतः भिन्न है।[1]

नगर और धर्मसंगठन की इस मूल भिन्नता का एहसास धीरे-धीरे और अपेक्षया क्रम में ही हुआ है। कोई शुद्धतावादी यह स्वीकार नहीं कर सकता था कि भौतिक और शाश्वत शान्ति को विचार-क्षेत्र में अलग-अलग किया जा सकता है। न ही वह धर्मसंगठन को एक निजी समूह के रूप में देख सकता था, जो राज्य की भलाई के लिए आवश्यक नहीं था। दो तत्त्वों के फलस्वरूप यह अलगाव सम्भव हो सका—(१) *राजनीतिक नैतिकता और अन्तरात्मा के धर्म*

१ पाल रसेल ऐण्डरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' में उद्धृत 'दी ब्लडी टेनेण्ट ऑफ परसीक्यूशन' (न्यूयार्क १६३६),

निरपेक्ष आचारों का विकास और (२) पवित्रतावाद और धर्मसन्देशवादी सम्प्रदायों के माध्यम से धार्मिक व्यक्तिवाद का उदय, जिनकी रुचियों का क्षेत्र अराजनीतिक था। अठारहवीं शताब्दी में नागरिक शान्ति के सिद्धान्त 'उद्धार के धर्मतन्त्र' से स्वतन्त्र हो गये। दूसरी ओर मुक्ति का पवित्रतावादी परम व्यवहार में पृथ्वी पर सुख के चरम से भिन्न था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक आस्थ-राजनीति और लोकधर्म की अन्तर्वस्तु इतनी भिन्न हो गयी कि जेम्स मैडिसन की रचना 'मेमोरियल ऐण्ड रिमान्स्ट्रेन्स ऑन दी रेलिजस राइट्स आफ मैन' (मनुष्य के धार्मिक अधिकारों पर स्मृति-पत्र और प्रतिवाद १७८५) और जेफरसन का प्रसिद्ध ऐक्ट एस्टैब्लिशिंग रेलिजस फ्रीडम इन वर्जिनिया (वर्जिनिया में धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा का कानून, १७८६) उतने विवादास्पद नहीं थे जितने वे रोजर विलियम्स के काल में होते।

हर व्यक्ति का धर्म जो हर व्यक्ति के विश्वास और अन्तरात्मा पर छोड़ देना चाहिए। और यह हर व्यक्ति का अधिकार है कि वह इनके निर्देशों के अनुसार धर्म पर आचरण करे। यह अपरिवर्तनीय अधिकार है, क्योंकि केवल स्वयं अपने दिमागों में विचारित प्रमाणों पर आधारित मनुष्यों के मत दूसरे मनुष्यों के आदेशों के अनुसार नहीं चल सकते। यह इसलिए भी बदला नहीं जा सकता कि यहाँ जो मनुष्यों का अधिकार है, वह सृजनकर्ता के प्रति एक कर्तव्य है। यह हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सृजनकर्ता को ऐसी और केवल ऐसी श्रद्धा अर्पित करे, जो उसके विश्वास के अनुसार सृजनकर्ता को स्वीकार्य हो। कालक्रम में और कर्तव्य की गुरुता में इस कर्तव्य का स्थान नागरिक समाज की माँगों के पहले है। नागरिक समाज का सदस्य माना जाने के पहले हर मनुष्य को सृष्टि के शासनकर्ता की प्रजा मानना होगा। और अगर नागरिक समाज का कोई सदस्य सामान्य सत्ता के प्रति अपनी कर्तव्य को ध्यान में रख ही किसी अधीन संगठन में शामिल हो सकता है तो इससे भी कहीं अधिक किसी नागरिक समाज का सदस्य बनने वाले हर मनुष्य को 'सार्वभौमिक प्रभु के प्रति अपनी भक्ति को सुरक्षित रखकर ही' ऐसा करना चाहिए।[1]

हमारे नागरिक अधिकार हमारे धार्मिक मतों पर निर्भर नहीं हैं जैसे वे भौतिकी या रेखागणित सम्बन्धी हमारे मतों पर निर्भर नहीं। नागरिक शासन के उचित उद्देश्यों के लिए, उसके अधिकारियों द्वारा हस्तक्षेप का ठीक समय तभी होता जब कोई सिद्धान्त शान्ति और सुव्यवस्था के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यों का रूप

---

[1] बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'दी डेमाक्रैटिक स्पिरिट (न्यूयार्क, १९४१) में उद्धृत पृष्ठ १०४।

धार्मिक स्वतन्त्रता

जब १६४४ में रोजर विलियम्स ने कहा कि यहूदी या ईसाइयों की भिन्न और विरोधी अन्तरात्माओं की उपस्थिति के बावजूद किसी देश या राज्य में नागरिकता और ईसाइयत दोनों ही पनप सकते हैं' तो बहुत कम लोगों ने उनके विचार को औचित्यपूर्ण माना था। उनकी समकालीन अधिकांश अन्तरात्माओं के लिए, वस्तुतः नागरिकता और धर्म का अलगाव एक अविचारणीय बात थी। इसके पहले कि ऐसा अलगाव अन्तरात्माओं को स्वीकार हो सके राजनीति और धर्म दोनों में ही मौलिक परिवर्तन होते थे। प्रबुद्धता के काल में ये परिवर्तन हुए। विलियम्स के एक तर्क को इन परिवर्तनों की पूर्वछाया के रूप में देखा जा सकता है।

'धर्मसंगठन (चर्च) या पूजकों का समूह (चाहे सच्चे हों या झूठे) किसी नगर में चिकित्सकों के समूह या संस्था की भाँति, पूर्व एशिया या तुर्की से व्यापार करने वालों के निगम, समाज या कम्पनी की भाँति या लन्दन के किसी भी समाज या कम्पनी की भाँति है। ये कम्पनियाँ अपनी अदालतें लगा सकती हैं, अपने अभिलेख रख सकती हैं, अपने झगड़े चला सकती हैं। अपने संगठन से सम्बन्धित मामलों में इनमें असहमतियाँ और विभाजन हो सकते हैं, युद्ध और दल बन सकते हैं, कानून के अनुसार ये एक-दूसरे पर मुकदमे चला सकती हैं, पूरी तरह टूट कर अलग-अलग हो सकती या लुप्त हो जा सकती हैं, फिर भी इससे नगर की शांति में कोई उथल-पुथल या क्षति नहीं होगी क्योंकि नगर का सार-तत्त्व या अस्तित्व और इस कारण उसकी भलाई और शान्ति इन समाजों से मूलतः भिन्न है।'[1]

'नगर' और 'धर्मसंगठन' की इस 'मूल-भिन्नता' का एहसास धीरे-धीरे और अप्रत्यक्ष रूप में ही हुआ है। कोई भुक्तभोगी यह स्वीकार नहीं कर सकता था कि लौकिक और आत्मिक शान्ति को विचार-क्षेत्र में अलग-अलग किया जा सकता है। न ही वह धर्मसंगठन को एक निजी समूह के रूप में देख सकता था जो राज्य की भलाई के लिए आवश्यक नहीं था। दो तत्त्वों के फलस्वरूप यह अलगाव सम्भव हो सका—(१) राजनीतिक नैतिकता और अन्तरात्मा के धर्म

१ पाल रसेल एन्डरसन और मैक्स हैरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' में उद्धृत 'दी ब्लडी टेनेन्ट ऑफ परसीक्यूशन' (न्यूयार्क १९३९),

निरपेक्ष आधारों का विकास, और (२) पवित्रतावाद और धर्मसंदेशवादी सम्प्रदायों के माध्यम से धार्मिक व्यक्तिवाद का उदय, जिसकी रुचियों का क्षेत्र अराजनीतिक था। अठारहवीं शताब्दी में नागरिक शान्ति के सिद्धान्त 'उद्धार के धर्मतन्त्र' से स्वतन्त्र हो गये। दूसरी ओर मुक्ति का पवित्रतावादी आदर्श व्यवहार में पृथ्वी पर सुख के आदर्श से भिन्न था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक लोक-राजनीति और लोकधर्म की अन्तर्वस्तु इतनी भिन्न हो गयी कि जेम्स मैडिसन की रचना 'मेमोरियल ऐण्ड रिमान्स्ट्रेन्स अगेन्स्ट दी रेलिजस राइट्स आफ मैन (मनुष्य के धार्मिक अधिकारों पर स्मृति-पत्र और प्रतिवाद १७८५) और जेफरसन का प्रसिद्ध ऐक्ट एस्टैब्लिशिंग रेलिजस फ्रीडम इन वर्जिनिया (वर्जिनिया में धार्मिक स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा का कानून, १७८६) उतने विवादास्पद नहीं थे जितने वे रोजर विलियम्स के काल में होते।

'हर व्यक्ति के धर्म को हर व्यक्ति के विश्वास और अन्तरात्मा पर छोड़ देना चाहिए। और यह हर व्यक्ति का अधिकार है कि वह इनके निर्देशों के अनुसार धर्म पर आचरण करे। यह अपरिवर्तनीय अधिकार है, क्योंकि केवल स्वयं अपने दिमागों में विचारित प्रमाणों पर आधारित मनुष्यों के मत दूसरे मनुष्यों के आदेशों के अनुसार नहीं चल सकते। यह इसलिए भी बदला नहीं जा सकता कि यहाँ जो मनुष्यों का अधिकार है, वह सृजनकर्ता के प्रति एक कर्तव्य है। यह हर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सृजनकर्ता को ऐसी और केवल ऐसी श्रद्धा अर्पित करे, जो उसके विश्वास के अनुसार सृजनकर्ता को स्वीकार्य हो। कालक्रम में और कर्तव्य की गुरुता में इस कर्तव्य का स्थान नागरिक समाज की माँगों के पहले है। नागरिक समाज का सदस्य माना जाने के पहले हर मनुष्य को सृष्टि के शासनकर्ता की प्रजा मानना होगा। और अगर नागरिक समाज का कोई सदस्य सामान्य सत्ता के प्रति अपने कर्तव्य को ध्यान में रख ही किसी अधीन संगठन में शामिल हो सकता है, तो इससे भी कहीं अधिक किसी नागरिक समाज का सदस्य बनने वाले हर मनुष्य का, 'सार्वभौमिक प्रभु के प्रति अपनी भक्ति को सुरक्षित रखकर ही ऐसा करना चाहिए।'[1]

"हमारे नागरिक अधिकार हमारे धार्मिक मतों पर निर्भर नहीं हैं, जैसे वे भौतिकी या रेखागणित सम्बन्धी हमारे मतों पर निर्भर नहीं। नागरिक शासन के उचित उद्देश्यों के लिए, उसके अधिकारियों द्वारा हस्तक्षेप का ठीक समय तभी होगा जब कोई सिद्धान्त शान्ति और सुव्यवस्था के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यों का रूप

[1] बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'दी डेमोक्रेटिक स्पिरिट (न्यूयार्क, १९४१) में उद्धृत, पृष्ठ १०४।

है और अन्त में यह कि सत्य महान् है और अपने-आप विजयी हो जायेगा कि वह भ्रम का उचित और पर्याप्त प्रतिरोधी है और इस संघर्ष में उसके लिए भय का कोई कारण नहीं अगर मानवीय हस्तक्षेप उसे अपने प्राकृतिक शस्त्रों स्वतन्त्र विचार और बहस से वंचित नहीं कर देता। अगर भ्रमों का निर्बाध खण्डन करने का अवसर रहे, तो वे खतरनाक नहीं रह जाते।"[1]

मैडिसन और जेफरसन यहाँ तीन सूत्रों में अपनी आस्था व्यक्त करते हैं—कि नागरिक अधिकार धर्म-निरपेक्ष होते हैं कि धर्म की सर्वाधिक अभिवृद्धि स्वतन्त्रता में होती है, कि सत्य की विजय होगी। वे पूर्ण निष्ठा और बुद्धि के साथ धार्मिक और राजनीतिक दोनों प्रकार की संस्थाओं को 'पावन सन्तनामों के प्रताप' और निरंकुश सत्ताओं से मुक्त करने में विश्वास करते थे।

एक एकत्ववादी[2] पादरी को जिन्हें मालूम था कि वे एकत्ववादी सिद्धान्त को मानते हैं जेफरसन ने मुख्यतः यही बात लिखी।

'अपने-अपनी प्रश्नोत्तरी में दी हुई सिद्धान्त सम्बन्धी बातों पर मेरी राय पूछी है। मैंने कभी किसी विशिष्ट पन्थ तक सीमित विचार अपने लिए स्वीकार नहीं किया। ये सूत्र ईसाई धर्म का अभिशाप और उसके विनाश का कारण रहे हैं। स्वयं ईसाई धर्मसंस्थापक की सन्तान इन्होंने कितने ही युगों से ईसाई-जगत को कसाईखाना बना रखा है और आज भी उसे एक-दूसरे के प्रति न मिटने वाली घृणा रखने वाले स्थिर समूहों में बाँट रखा है। एकत्ववादी पन्थ के प्रति अन्य सभी पन्थों का आत्मघाती क्षोभ ही देख लें। प्राचीन धर्मों में कोई विशिष्ट सूत्र या पन्थ नहीं थे। आधुनिक विश्व के धर्मों में भी किसी में ऐसा नहीं है, सिवाय उनके जो अपने को ईसाई धर्मावलम्बी कहते हैं और ईसाइयों में भी क्वेकर लोगों में ऐसा नहीं है। यही कारण है कि अनुकरणीय और भेदभावहीन 'मित्र समाज' (क्वेकर सम्प्रदाय का असली नाम—अनु) में ऐसा मेलजोल शान्ति और भाई चारे का स्नेह है। मैं आशा करता हूँ कि एकत्ववादी उनके सुखद उदाहरण का अनुसरण करेंगे।'[3]

—

१ ऐंडरसन और फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' में उद्धृत पृष्ठ १९७-१९८।

२ पिता (ईश्वर) पुत्र (ईसा) और पवित्र आत्मा की त्रिमूर्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध ईश्वर के एकत्व में विश्वास करने वाला ईसाई सम्प्रदाय। अनु

३ एल्बर्ट एलेरी बर्ग द्वारा सम्पादित 'दी राइटिंग्स आफ थॉमस जेफरसन' (वाशिंगटन १९०४) में रेवरेंड थॉमस व्हिटेमोर को पत्र खण्ड पन्द्रह, पृष्ठ ३०३-३०४।

जिन कारणों से वे स्वयं धार्मिक विषयों पर अपना मत व्यक्त नहीं करते थे उन्हीं कारणों से वे आशा करते थे कि पादरी अपने उपदेशों से राजनीति को अलग रखेंगे।

"किसी भी गिरजा-क्षेत्र का एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है कि धर्मपीठ से रसायन, औषधि कानून शासन के विज्ञान और सिद्धान्त या केवल मात्र धर्म को छोड़कर अन्य किसी विषय पर भाषण देने के निमित्त उद्देश्य से किसी धर्मोपदेशक की नियुक्ति की गयी हो। अतः जब धर्मोपदेशक धर्म के पाठ के बजाय कोपरनिकस के सिद्धान्त राजनयिक अनुबन्ध शासन रचना या शासनकर्त्ताओं के चरित्र या व्यवहार पर भाषण देकर अपने श्रोताओं को टालते हैं तो वे अनुबन्ध के विरुद्ध काम करते हैं। वे अपने श्रोताओं को उस सेवा से वंचित करते हैं जिसके लिए उन्हें वेतन मिलता है और उसके स्थान पर ऐसी चीज देते हैं जिसे श्रोता नहीं चाहते, या अगर चाहते भी हैं तो उस विशिष्ट कला या विज्ञान के बेहतर स्रोतों से प्राप्त करना ज्यादा पसन्द करेंगे। अपना पादरी चुनते समय हम उसकी धार्मिक मान्यता को देखते हैं उसके मौलिक शास्त्र या राजनीति सम्बन्धी विश्वासों की खोज नहीं करते जिनसे कोई सम्बन्ध रखने का हमारा इरादा नहीं होता। मैं जानता हूँ कि ऐसे तर्क लाये जा सकते हैं जो राजनीति के एक सूत्र को बट कर धार्मिक कर्त्तव्यों की डोर में बदल दें। मैं इससे सहमत हूँ कि अन्य सभी अवसरों पर धर्मोपदेशक को भी हर अन्य नागरिक की भाँति यह अधिकार है कि वह लिख कर या बोल कर औषधि, कानून राजनीति आदि विषयों पर अपनी भावनाएँ प्रकट करे, क्योंकि अपने अवकाश के समय पर उसका पूरा अधिकार है और उसके गिरजा-क्षेत्र के निवासियों के लिए जरूरी नहीं कि वे उसकी बातें सुनें या उसकी रचनाएँ पढ़ें।"[1]

जेफरसन के इस धार्मिक विश्वास को कि धार्मिक विश्वास निजी रहने चाहिए, अधिकांशतः उन परिस्थितियों से समझा जा सकता है जिनकी चर्चा मैंने ऊपर की है, लेकिन इसके मूल में दो साहित्यिक प्रभाव भी देखे जा सकते हैं। स्वयं जेफरसन के अनुसार उसके धार्मिक विचारों को जोसेफ प्रीस्टली और कन्यर्स मिडिल्टन ने सर्वाधिक प्रभावित किया। ये दोनों पादरियों की शक्ति के विरोधी एंग्लिकन मतानुयायी थे। वे मानते थे कि पादरियों की शक्ति और धर्मशास्त्रीय विचारों के कारण से ईसाई-धर्म भ्रष्ट होता था। वे ईसा के 'सीधे-सादे उपदेशों में निजी धार्मिक रुचि लेते थे। वे असाधारण रूप में उदार विचारों के

---

१ इस को पुस्तक में पी० एच० वेन्डोवर के नाम पत्र १३ मार्च, १८१५ जिस पर लिखा है भेजा नहीं गया। खण्ड तेरह, पृष्ठ २८१ २८२।

पादरी थे जिन्हें उत्पीड़न सहना पड़ा और जो निजी रूप में 'भरमकी पादरियों' के प्रति बड़े कटु हो गये। फिर भी उनकी धार्मिक निष्ठा सच्ची थी।

धार्मिक स्वतन्त्रता सम्बन्धी जेफ़रसन के लेखन की शक्ति और प्रभावकारिता का मुख्य कारण उनकी स्पष्ट धार्मिक निष्ठा है। प्रबुद्धता-काल के विशिष्ट दार्शनिकों के विपरीत उन्हें व्यंग्य प्रिय नहीं था। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने युवावस्था में संशयपूर्ण व्यंग्य को अपनाया था लेकिन बाद में उसका पूर्ण परित्याग करके अपनी धर्म निरपेक्ष 'सद्गुण की कला' की सम्प्राप्ति में लगे। जेफ़रसन की प्रबुद्धता नैतिक नियमों सम्बन्धी फ्रेंकलिन की गम्भीर चिन्ता से किसी प्रकार कम नहीं थी किन्तु उनकी नैतिकता स्पष्टतः धार्मिक थी। वे स्काटलैंड के अन्तःप्रज्ञावादियों से सहमत थे। सामान्यतौर पर वे अन्तःप्रज्ञावादियों की नैतिक भावना को और सद्बुद्धि व सरल समझ को एक ही मानते थे। लेकिन ईसा के उपदेशों से एकात्मकता प्राप्त करना उन्हें सर्वाधिक प्रिय था। अन्य सभी व्यवस्थाओं की तुलना में ईसा की व्यवस्था की विशिष्ट उच्चता के प्रति उनकी श्रद्धा उनके धर्म-चयन और उनके चरित्र के मूल में थी।

उदार धर्म

इस बीच में प्रबुद्धता अपने साथ एक ऐसे धर्म को ला रही थी जो जेफ़रसन की धार्मिकता या जनप्रिय धर्म-संगठनों के पवित्रतावाद से अधिक सांसारिक था। यह एक दार्शनिक सार्वजनिक धर्म था जिसने प्रजाधिपत्य के रूप में पुरातनवाद का स्थान लिया। यद्यपि धार्मिक उदारवाद की जड़ें न्यू-इंगलैंड के इतिहास में सुदूर अतीत तक जाती थीं और उपनिवेशकाल में उसकी बढ़ती हुई समृद्धि को परिलक्षित करती थी किन्तु पादरियों की ओर से पुरातनवाद के खुले आम परित्याग का आरम्भ क्रान्ति के बाद हुआ। वस्तुतः बोस्टन के जोनाथन मेह्यू का झुकाव ईश्वरवाद और एरियनवाद[1] की ओर था। १७८२ के बाद बोस्टन का किंग्स चैपेल आर्मिनियनवाद[2] का केन्द्र बन गया जब उसने

---

१ एरियन—ईसा की चौथी शताब्दी में हुआ अलेक्ज़ेंड्रियावासी दार्शनिक जिसने पवित्र लोगों में ईसा के सशरीर उपस्थित रहने की मान्यता का खण्डन किया।—अनु०

२ आर्मिनियस—हालैण्डवासी प्रोटेस्टेण्ट धर्मशास्त्री जिन्होंने काल्विन के पूर्वसाम्यनिश्चय के सिद्धान्त का विरोध किया।—अनु०

मुझे धाम अपने को एकत्ववादी कहा और हार्वर्ड के जेम्स फ्रीमैन को अपना पादरी नियुक्त किया। फर्स्ट चर्च, बास्टन के चार्ल्स चान्सी ने इस आशय का एक आशावादी उपदेश प्रस्तुत किया कि असीम कृपालु सृजनकर्त्ता अपने हर प्राणी के सुख के प्रति चिन्तित है और यह कि उसके 'शासन के प्रति असन्तोष सद्बुद्धि से नहीं वरन् 'दुर्बुद्धि की एक अवस्था' से उत्पन्न होता है। धीरे-धीरे और १७८४ तक पुरा रूप में वे यह विश्वास करने लगे कि ईश्वर अन्ततः सभी पापियों का नरक से बचाएगा। उस वर्ष उन्होंने साहस करके अपनी इलचल पैदा करने वाली पुस्तक 'दी साल्वेशन आफ आल मेन दी ग्रान्ड थिंग एइड ऐट इन दी स्कीम' (सभी मनुष्यों की मुक्ति ईश्वरीय व्यवस्था का महान् लक्ष्य) प्रकाशित की। यह न्यू-इंग्लैंड में सर्वमुक्तिवाद (यूनिवर्सलिज़्म) का आरम्भ था। होसिया बैलो जिन्होंने सर्वबादियों और एकत्ववादियों दोनों को प्रेरणा दी अन्ततः इस परिणाम पर पहुँचे कि भविष्य के विषय में किसी प्रकार का कोई दण्ड नहीं होगा।

हार्वर्ड सहिष्णुतावादी विचारों का केन्द्र होने के लिए बदनाम था। किन्तु प्रारम्भिक उदारवादियों में सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्व ईस्ट चर्च सेलम के पादरी रेवरेन्ड विलियम बेन्टले (१७५९-१८१९) का था। उनके सिरजा-क्षेत्र में बहुसंख्यक सामुद्रिक व्यापारी और उन चलने वाले जहाजों के मालिक थे जो पूर्व के देशों से आश्चर्यजनक समाचार लाते थे। पादरी और जेफरसन के समर्थक गणतन्त्रवादी होने के अतिरिक्त बेन्टले एक समाचार-पत्र के सम्पादक भी थे। उनके उपदेशों का सारांश कुछ इस प्रकार होगा—

'जिन अच्छे उद्देश्यों के लिए ईसाइयों ने प्राकृतिक धर्म की निन्दा करके धर्म अपने धर्म की जड़ों को हिलाया है, उनका निश्चय करना कठिन है। प्राकृतिक धर्म अब भी सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'— 'अपने पन्थ से भिन्न मत रखने वाले चर्चों को पादरियों द्वारा धर्मपीठ से की गयी निन्दा की अपेक्षा किसी जंगली आदमी की उदारता कितनी अधिक शुद्ध होती है। ईश्वर ने इजराइलियों (यहूदियों) की सहायता की ताकि एक सर्वव्यापी धर्म के प्रसार में वह उनका इस्तेमाल कर सके और यद्यपि मुसलमान और यहूदी विस्तार की बातों में गलती पर हो सकते हैं किन्तु उनकी भक्ति, उत्साह और आज्ञापालन, इस सब के लिए को निश्चय ही स्वीकार्य हैं। धर्म हमें सिखाता है कि हम "केवल छोटे समाजों के ही नहीं हैं बल्कि आत्माओं के परिवार के हैं जो हर राष्ट्र और हर इलाके में एक ही ईश्वर और परमपिता के साथ रहते हैं जो अपनी बनाई किसी वस्तु से घृणा नहीं करता वरन् उससे प्रेम करता और उसे पोषण देता है।' प्राकृतिक धर्म के द्वारा ईश्वरेच्छा हमें ज्ञात होती है और ईसाई धर्म केवल हमें उसका अधिक ज्ञान और

आचरण प्राप्त करने में सहायक होता है। ईश्वर प्रदत्त मन्तर्ज्ञान केवल एक सहायक के रूप में काम करता है, जब तक 'विभिन्न कारण बुद्धिपूर्वक कार्य रूप में आकर इस सहायता को आवश्यक न बना दें। पुत्र स्वयं (ईसा) भी तब हट जायेगा और मानव प्रकृति को परिष्कृत करके ईश्वर ही सब कुछ हो जायेगा। स्वर्ग और मुक्ति को ईश्वर ने केवल विद्वान् पादरियों और चतुर डाक्टरों के लिए ही नहीं बनाया। ये ईश्वर द्वारा सारी मानव जाति के लिए प्रस्तावित सत्य हैं और इस कारण समान साधनों के द्वारा सभी मनुष्य इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। 'मुक्ति केवल सद्गुणों का पुरस्कार नहीं है, वरन् वह लक्ष्य है जिसके लिए हम सबका सृजन हुआ है। बहुधा सांसारिक परिस्थितियाँ तात्कालिक भलाई के लक्ष्य के अनुरूप नहीं प्रतीत होती किन्तु ज्ञान के द्वारा ईश्वर के अपरिवर्तनीय विधानों के भी कम से कम बुरे परिणामों से बचा जा सकता है। अतः शिक्षा ही सर्वाधिक उपयोगिता और सुख की अभिवृद्धि करती है। अपने मध्यर सामाजिक सिद्धान्तों का विकास करके मनुष्य बुराई पर स्वयं समाज की बुराइयों पर भी काबू पाने के मार्ग खोज लेगा।'[१]

बोस्टन और उसके आस पास के देवत्व एकत्व-धर्मीय उदारवाद की परिणति विलियम एलेरी चैनिंग में हुई जो प्रबुद्धता और परोत्परवाद के बीच के मोड़ पर खड़े थे। क्रान्तिकारी पीढ़ी में तीन विभिन्न विचार-व्यवस्थाएँ, तीन ऐतिहासिक दृष्टि से भिन्न विश्वास पथ रहे थे। अधिक उपयुक्त शब्दों के अभाव में मैं उन्हें तर्कनावाद, पवित्रतावाद और गणतन्त्रवाद कहूँगा। चैनिंग इन तीनों विश्वासों के उत्तराधिकारी बने। सम्बन्धित प्रश्नों को समझा, संघर्ष को निकट से अनुभव किया और तीनों का समन्वय निरूपित करने की चेष्टा की। अतः उनके मानवीयतावाद का अध्ययन अमरीकी प्रबुद्धता, पुरातावाद की विरासत और धार्मिक पुनर्जीवन के भावनात्मक उत्साह के आदर्शों के मिलन-बिन्दु के रूप में करना उपयुक्त होगा। सब मिलाकर वे परात्परवाद के प्रवक्ता स्वेच्छा से नहीं बने और जब उसकी दिशा का उन्हें धुँधला-सा आभास हुआ तो उसके बहुतांश से उन्हें अरुचि हो गयी और जैसे कुछ भय के साथ उनकी दृष्टि पुनः ईसाई-धर्म के मूल रूप की ओर गयी। किन्तु उनके साथ जो हुआ वह उपयुक्त ही था क्योंकि सिद्धान्त और मान्य से चैनिंग आगे देखने वाले थे। उन्होंने पवित्रतावाद, प्राकृतिक धर्म और गणतन्त्रवाद को उनके मूल रूपों में ही समन्वित करने का प्रयास नहीं

---

१ विलियम बेन्टले सरमन प्रीच्ड ऐट स्टोन चैपेल' (बोस्टन १७९०)। यह सारांश जी ए० कोच ने तैयार करके अपनी रचना 'रिपब्लिकन रैलिजन' में प्रकाशित किया (न्यूयार्क, १९३३) पृष्ठ २१४ २१७।

किया। यद्यपि उनके विचारों के गठन में तीनों का ही प्रभाव था किन्तु उन्होंने दावों को ही एक नयी प्रेरक अभिव्यक्ति प्रदान की जिससे तीनों सिद्धान्त केवल अठारहवीं शताब्दी की विरासत न रहकर उन्नीसवीं शताब्दी के निर्देशक सिद्धान्त बन गये। प्रभुसत्ता की विरासत पर उनका इतना काफी अधिकार था कि वे उसे निर्विवाद स्वीकार कर लें और उससे उत्पन्न होने वाली व्यावहारिक समस्याओं को देखें। 'ईश्वर हमें कार्यशीलता लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयास और कौशल के लिए बनाता है। ऐसा कार्य जिसके मूल में ईश्वर हो और उसकी कृपा की चेतना जिसमें उपस्थिति हो आनन्द का सर्वोच्च स्रोत है।' उन्होंने पूर्णतः व्यावहारिक धर्म को एक पर्याप्त सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया।

चैनिंग के प्रारम्भिक जीवन और विचारों पर धर्मपरायणतावादी वातावरण का प्रभुत्व था। एक किंवदन्ती चल पड़ी है, जिसे चैनिंग ने स्वयं ही आरम्भ किया था कि धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम उन्हें अपने जन्म-स्थान न्यू-पोर्ट रोड आइलैण्ड में स्वभावतः ही प्राप्त हो गया—ऐसा कह सकते हैं कि उन्हें यह रोजर विलियम्स से प्रत्यक्ष उत्तराधिकार में मिला। किन्तु उनके बचपन के न्यू-पोर्ट पर धर्मशास्त्रीय दृष्टि से, सशक्त 'अभिनवतावाद' के समर्थक सेमुएल हॉपकिन्स का प्रभुत्व था। उनके अनुयायी उस समय भी हॉपकिन्सवादी कहलाते थे और उनका यह विश्वास कि उनकी विचार-व्यवस्था ही एकमात्र सच्चा धर्म है, इतना सबल था कि उससे संकीर्ण कट्टरता और असहिष्णुता उत्पन्न हुई। चैनिंग लिखते हैं: डॉक्टर हॉपकिन्स के साथ मेरा लगाव मुख्यतः उनके उदासीनता के सिद्धान्त के कारण था। छात्र जीवन में मैंने बड़े आनन्द से हचेसन के दर्शन और स्टोइक[2] नैतिकता का अध्ययन किया था और उन्होंने मुझे डॉक्टर हॉपकिन्स के महान, चरम बलिदानी सिद्धान्तों के लिए तैयार कर दिया था।[3] वे हॉपकिन्स की ओर निरापद

---

१ विलियम हेनरी चैनिंग, 'मेम्वायर आफ विलियम एलेरी चैनिंग' (बोस्टन, १८४८) खंड १, पृष्ठ १८८।

२ स्टोइक-यूनानी दार्शनिक जेनो (चौथी सदी ईसा पूर्व) के अनुयायी, मुख्यतः सदाचारी और हर्ष-शोक के प्रति समान भाव का उपदेश देने वाले।—अनु०

३ विलियम हेनरी चैनिंग की पुस्तक, खंड १ पृष्ठ ११७। सेलम के आनरेबिल डी० ए० व्हाइट की टिप्पणी से तुलना कीजिए जो कॉलेज में चैनिंग से एक कक्षा आगे थे और उन्हें अच्छी तरह जानते थे। उस समय के आसपास, जब उन्होंने धर्मोपदेश देना आरम्भ किया वे डॉक्टर हॉपकिन्स के बारे में, मित्र और धर्मद्रोही दोनों ही क्यों न हों, स्नेहपूर्ण आदर के साथ बात करते थे। उनके चरित्र और धार्मिक विचार दोनों की ही प्रमुख विशिष्टता जो उदारता

के अन्धेरे में नहीं मुड़े, वरन् समझने के कारण कि वृद्ध धर्मशास्त्री के कटु और विवादप्रिय होने पर भी उनकी विचार-व्यवस्था न्यू-इंगलैण्ड का सबसे 'महान्' और प्रबुद्ध दर्शन थी। प्लेटोवादी नैतिक दर्शन और प्राकृतिक धर्म के साथ काल्विनवाद का मेल बिठाने में हॉपकिन्स के साहस की ओर चैनिंग ने संकेत किया। पवित्रता के विशिष्ट गुण का पवित्रतावादी सिद्धान्त और ईश्वरीय तत्व के प्रति भावना या बोध का पवित्रतावादी विकास ये अन्त तक चैनिंग के विचार के मुख्य विषय रहे। इसके कारण त्रिदेवात्मक एकत्ववाद उन्हें अप्रिय हो गया। यद्यपि एकत्ववादी आन्दोलन के अधिकारों और स्वतन्त्रता के लिए खतरा उत्पन्न होने पर उन्होंने उसका बचाव किया किन्तु अपने को एकत्ववादी न कहना या ऐतिहासिक ईसाई सिद्धान्त सम्बन्धी विवादों में न पड़ना उन्होंने अधिक उचित समझा। संकीर्णता अप्रिय होने से अधिक यह उनके 'नव-ज्योति धर्मवैज्ञानिकवाद के कारण था। इस प्रकार चैनिंग ने अपना प्लेटोवादी आदर्शवाद काल्विनवादी पवित्रतावाद के माध्यम से प्राप्त किया और कोलरिज कान्ट और परात्परवाद के सामान्य विकास की जानकारी होने के पहले ही उनकी प्रतिक्रिया लॉक के अनुभववाद और तर्कवाद के विरुद्ध हुई थी।

चैनिंग के विचारों में सामान्य सूत्र उनका उदारवाद या गणतन्त्रवाद था। गणतन्त्रवाद से मेरा तात्पर्य उनकी नागरिक या सामाजिक सद्गुण सम्बन्धी धारणा से है। हार्वर्ड में उन्हें एकनिष्ठता की प्रमुखता का परिचय मिला। चैनिंग पर प्रोफेसर टप्पन का प्रभाव पड़ा जिन पर स्वयं हचेसन का और सामान्यतः नैतिक उदारवाद का निश्चयात्मक प्रभाव था। उनका उपदेश इस प्रकार था—'ईसाई देशभक्ति सामान्य उदारता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह उदारता मानव जाति के उस अंश को विशिष्ट संविग्ना और सक्रिय शक्ति के साथ अपने में समेटती है, जिसके लिए उपयोगी होने की क्षमता हममें मुख्य रूप से है।'[1] प्रोफेसर टप्पन और सामान्यतः हार्वर्ड के माध्यम से चैनिंग ने हचेसन को और अन्य स्कॉटलैण्डवासी उदारवादियों को जाना। जिस प्रकार हचेसन से चैनिंग ने यह जाना कि पवित्रता मनुष्य की एक स्वाभाविक क्षमता हो सकती है, उसी प्रकार

भी उस पर विशेष ज़ोर देकर वे विशद रूप से कहते कि 'जो लोग हॉपकिन्स-वादी कहे जाते हैं वे उनके बारे में या उनके अपने धर्मशास्त्रीय विचारों के बारे में बहुत कम जानते प्रतीत होते हैं।'—(वही खंड १ पृष्ठ १६१)।

१ डेविड टप्पन, 'सरमन प्रान दी ऐनुअल फास्ट इन मसाचुसेट्स' ५ अप्रैल, १७६८, (बोस्टन, १७६८) पृष्ठ १३।

फर्ग्युसन[1] ने उनके सामने यह विचार प्रस्तुत किया कि पुनर्जीवन एक क्रमिक और सामाजिक प्रक्रिया है। फर्ग्युसन की उग्र धर्म निरपेक्षता की अपेक्षा हचेसन और फर्ग्युसन का एक मेल चैनिंग के अधिक अनुकूल था जो उन्हें अंग्रेज उदारवादी और रूढ़िविरोधी रिचार्ड प्राइस के 'डिसर्टेशन्स' (निबंध) में मिला। अमरीकी स्वतन्त्रता का समर्थन करने के कारण इस देश में उनके बहुतेरे मित्र बन गये थे। चैनिंग ने लिखा—

'प्राइस ने मुझे लॉक के दर्शन से बचाया। उनसे मैंने विचारों का प्लेटोवादी सिद्धान्त पाया और उन्हीं की भाँति मैं अधिकार प्रेम विचार जैसे शब्दों को हमेशा बड़े अक्षरों से आरम्भ करता हूँ। उनकी पुस्तक ने संभवतः मेरे दर्शन को वह आकार प्रदान किया जो उसमें हमेशा रहा है, और मेरे दिमाग़ को 'परात्परवादी गम्भीरता' तक पहुँचने के योग्य बनाया। मैडम डी स्टेल की रचनाओं में और इधर हाल की रचनाओं में भी जर्मन दर्शन का जो विवरण मैंने पढ़े हैं वे मेरे अपने दर्शन के समान हैं। मैं नहीं कह सकता कि मैंने कभी उससे कोई नया विचार ग्रहण किया। इसका कारण भी स्पष्ट हो जाता है अगर हम देखें कि प्राइस 'उसके' भी जनक थे और मेरे दर्शन के भी।'[2]

अगर चैनिंग का सामाजिक प्रगति का दर्शन इसके आगे न जाता, तो वे न्यू-इंगलैंड के आदर्शवादियों के एक प्रतिरूप बन कर रह जाते किन्तु स्नातकीय उपाधि लेने के तत्काल बाद परिस्थितियाँ उन्हें रिचमाण्ड वर्जिनिया के जेफ़रसन वादी अभिजात्य-वर्ग के बीच ले गयीं। लगभग दो वर्ष तक (१७९८-१८००) (दो निर्णायक वर्ष) वे एक रैण्डोल्फ परिवार में निजी शिक्षक के रूप में रहे। जो कुछ वे सोच रहे थे उसके बारे में अपनी विशिष्ट उत्साहपूर्ण रीति से उन्होंने घर पर अपने मित्रों को लिखा—

आपसे जब मिला था उसके बाद मेरे राजनीतिक मत कुछ बदल गये हैं। किन्तु वर्जिनिया के जैकोबिन[3] वातावरण में इसका कारण देखना अनुचित होगा। मैं संसार को एक विशाल कार्य-क्षेत्र के रूप में देखता हूँ जो उसके

---

१ आडम फर्ग्युसन 'ऐन एसे आन दी हिस्टरी ऑफ़ सिविल सोसायटी' (एडिनबरा १७६७)।

२ एलिजाबेथ पामर पीबाडी 'रेमिनिसेन्सेज ऑफ़ रेवरेण्ड विलियम एलेरी चैनिंग डी० डी०' (बोस्टन १८८०) पृष्ठ १६८।

३ जैकोबिन—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पेरिस में निर्मित एक उग्र लोकतन्त्रवादी संस्था का सदस्य। आमतौर पर सभी उग्र लोक-तन्त्रवादियों के लिए प्रयुक्त।—अनु

निर्माता ने मानव-चरित्र को पूर्ण बनाने के उद्देश्य से निर्मित किया है। राजनीतिक संस्थाएँ केवल वहीं तक मूल्यवान् हैं जहाँ तक वे मानव-प्रकृति को सुधारती और नैतिक दृष्टि से ऊँचा उठाती हैं। धन और शक्ति गौण तत्त्व हैं और किसी राज्य की वास्तविक महानता उनमें नहीं होती। मुझे मानवजाति के लिए शर्म आती है, जब मैं देखता हूँ कि एक मात्र स्वार्थ का ही बन्धन उन्हें अपनी देह से जोड़ता है, जब मैं देखता हूँ कि सामाजिक गठन के विकास का उद्देश्य धन-संग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और किसी राष्ट्र की सफलता उसके सदस्यों के सफल लोभ से आँकी जाती है। मैं 'लोभ-शक्ति' को ऊँचा उठा कर एक नैतिक 'सिद्धान्त' के रूप में देखना चाहता हूँ लोभ की एक शाखा के रूप में नहीं।[1]

मैंने दोस्त पिछले दिनों मानव जाति के सुधार में हुई प्रगति की संभव स्थिति के बारे में मैंने साहसपूर्वक सोच-विचार किया है। मैं अपनी सारी योजनाओं के मार्ग में लोभ को बड़ी भारी बाधा पाता हूँ। और मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि मानव जाति आज की अपेक्षा अधिक सुखी कभी नहीं हो सकती, जब तक कि सामुदायिक सम्पत्ति की प्रतिष्ठा न हो जाए।[2]

मुझे विश्वास हो गया है कि सद्गुण और उदारता मनुष्य के लिए 'स्वाभाविक' हैं। मुझे विश्वास है कि स्वार्थ और लोभ दो विचारों से उत्पन्न हुए हैं जो सर्वत्र नवयुवकों को सिखाए जाते हैं और बुजुर्ग जिन पर आचरण करते हैं—(१) कि समाज के हित से भिन्न हर व्यक्ति का एक हित होता है जिसे प्राप्त करने का वह प्रयास करे' और (२) कि 'दिमाग की अपेक्षा शरीर पर ध्यान देने की जरूरत ज्यादा है।

मेरा विश्वास है कि ये विचार झूठे हैं। और मेरा यह भी विश्वास है कि आप उन्हें कभी खतम नहीं कर सकते जब तक कि आप मानव जाति को उन पर आचरण करना बन्द करने के लिए राजी नहीं कर लेते। अर्थात् जब तक आप उनको राजी नहीं कर लेते कि (१) सम्पत्ति की विभिन्नताओं को समाप्त कर दें (आप समझते ही होंगे कि अन्यथा ये हितों की कथित विभिन्नताओं को हमेशा कायम रखेंगी) और अपनी मेहनत की पैदावार का स्वयं अपने कोठों में भरने के बजाए एक सामान्य भंडार में डाल दें और (२) दिमाग की शक्तियों और उसकी गरिमा की चेतना उनमें सचमुच आये।[3]

---

१ विलियम हेनरी चनिंग की पुस्तक खंड १, पृष्ठ ८६-८७।

२. वही पृष्ठ १११।

३ वही, पृष्ठ ११३ ११४।

'मेरी सारी भावनाएँ और रुचियाँ इधर बदल गयी हैं। पहले मैं नैतिक उपलब्धियों को ही एक मात्र लक्ष्य मानता था जिसकी प्राप्ति का मुझे प्रयास करना था। अब मैंने अपने को निष्ठापूर्वक ईश्वर को समर्पित कर दिया है। मैं उसके प्रति सर्वोच्च प्रेम को सर्वप्रथम कर्तव्य मानता हूँ और नैतिकता केवल धर्म के व्यापक मूल से निकली एक शाखा प्रतीत होती है। मैं मानव जाति से प्रेम करता हूँ क्योंकि वे ईश्वर की सन्तान हैं।'[1]

ऐसा लगता है कि चैनिंग 'स्काटलैण्ड से आये प्रवासियों की एक बस्ती में जिनका मूल सिद्धान्त सामान्य सम्पत्ति या पादरी के रूप में सम्मिलित'[2] होने जाते ही थे जब उनके सम्बन्धियों ने उन्हें वापस न्यू-इंगलैंड बुला लिया। उनके राजनीतिक उत्साह ने उनका मत परिवर्तित करके उन्हें एक धार्मिक विश्वास प्रदान किया था और शारीरिक कष्ट-सहन सम्बन्धी उनकी कट्टरता ने उनका स्वास्थ्य चौपट करके उनके चेहरे को वह 'आध्यात्मिक' पीलापन प्रदान किया जिसके लिए वे प्रसिद्ध हुए। अब वे न तो देशभक्तिपूर्ण कर्तव्य-भावना से अपने को जनहित में लगाने वाले धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्रवादी थे न धर्म-निरपेक्ष नैतिकता को तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाले पवित्रतावादी। उन्होंने मानवता के धर्म में पवित्रता और कर्तव्य का समन्वय देखा।

उन्होंने एक दार्शनिक प्रबन्ध की योजना बनाई जिसे वे लिख नहीं पाये। उसका शीर्षक महत्वपूर्ण है, 'नैतिक, धार्मिक और राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त'। लक्ष्य था नैतिकता, धर्म और राजनीति की एकता प्रदर्शित करना—अर्थात् पवित्रता, सद्गुण और गणतांत्रिक देशभक्ति का पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त करना। इस प्रस्तावित रचना के लिए लिखी गयी भूमिका में उन्होंने कहा—

"मनुष्य की सच्ची पूर्णता नैतिक विज्ञानों का महान् विचार है। अतः मनुष्य की प्रकृति की परीक्षा करनी है, ताकि उसका केन्द्रीय नियम निर्धारित किया जा सके; और वह लक्ष्य निर्धारित किया जा सके जिसके लिए सभी धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हो। अतः मानव प्रकृति सम्बन्धी उचित दृष्टिकोण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य को समझने में विश्व के दैवी प्रशासन की कुंजी है।"[3]

सारे प्रबुद्धता काल में मानव-प्रकृति सम्बन्धी आग्रह एक सुपरिचित विषय है, किन्तु लक्ष्य का महत्वपूर्ण अन्तर ध्यान देने योग्य है। लॉक का लक्ष्य

---

१ वही, पृष्ठ ११६ १२० ।
२ वही पृष्ठ ११६ ।
३ वही खंड—२, पृष्ठ ४०३ ४०४ ।

मानवीय समझ के मूल को खोजना था, ताकि उसकी प्राकृतिक सीमाओं को स्पष्ट किया जा सके। चैनिंग का लक्ष्य मानव प्रकृति की पूर्णता को खोजना था, ताकि उसकी संभावनाओं को समझा जा सके। इन सम्भावनाओं को उन्होंने साहसपूर्वक अपने प्रसिद्ध उपदेश 'ईश्वर से समरूपता' (लाइकनैस टू गाड) में घोषित किया जो परात्परवाद के सर्वप्रथम अमरीकी निरूपणों में से एक था।

इस लक्ष्य के लिए प्रयास करते हुए, चैनिंग ने उन धारणाओं में महत्त्वपूर्ण संशोधन किये जो उन्हें प्रबुद्ध-युग से प्राप्त हुई थीं। 'उन्मुक्त उदारता' के विचार को बदल कर उन्होंने 'विपरीत पक्षाधीनता' का रूप दिया। एडवर्ड्स के अनुसार सच्ची उदारता की विशेषता उसका विशिष्ट लक्ष्य, अर्थात् सामान्य प्राणी होता है। इसके विपरीत चैनिंग के अनुसार सच्ची उदारता की विशेषता उसका सामाजिक वितरण है। प्रेम की इस सामाजिक और मानवीय धारणा में पवित्रतावाद के पवित्र-प्रेम, नैतिकतावादियों की उदासीनता या तटस्थता और मानवतावादियों के सार्वजनिक सद्गुण की धारणाओं का समन्वय था।[1] इस प्रकार ईश्वर का न्याय उसकी दया का ही एक रूप है। यह धीरे-धीरे पूर्णता प्राप्त करने में मनुष्य की सहायता करता है। मनुष्य के इस पुनर्जीवन या नैतिक प्रगति में सामाजिक पुनर्जीवन भी निहित है। यह भी धीरे-धीरे होगा और इस प्रकार सुधार या प्रगति से एकरूप है। फिर भी यह तथ्य कि चैनिंग पुनर्जीवन की शब्दावली का प्रयोग करते रहे, केवल धार्मिक मामला ही नहीं है यह उनके टिकाऊ पवित्रतावाद का द्योतक है। किन्तु अब यह एक समाजीकृत पवित्रतावाद है।[2] पुनर्जीवन लाने वाले प्रभाव के माध्यम के रूप में विभिन्न

१ उन्होंने लिखा 'मुझे आशंका है कि सभी चरित्र सम्बन्धी चतुर मनुष्यों की बहुतेरी परिकल्पनाओं का प्रभाव ईश्वर को उस भावुक कोमलता से वंचित करने का रहा है जो हृदय को स्पर्श करने के लिए सभी दृष्टिकोणों में सर्वाधिक उपयुक्त रहा है। मुझे भय है कि बिना समझे बूझे हमने उसे इस दृष्टि से देखना सीख लिया है कि उसमें केवल एक सामान्य उदारता है।'—(वही खंड १, पृष्ठ २५३)—"मैंने अनुभव किया जैसे देखा कि ईश्वर अपनी 'पवित्र भावना' अपनी शक्ति और उद्योग हर उस व्यक्ति को प्रदान करने को तत्पर है जो ईमानदारी से बुराई पर काबू पाने का प्रयास करता है, उस पूर्णता की ओर आगे बढ़ने की चेष्टा करता है, जो एकमात्र स्वर्ग है।"—(वही, खंड २ पृष्ठ ३४३)।

२. 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि काल के संकेत समाज में होने वाले एक व्यापक संशोधन की ओर इशारा करते हैं, जो इस सारभूत सत्य पर आधारित होगा और उसे व्यक्त करेगा कि सामाजिक गठन का सुख्य लक्ष्य बुद्धिपूर्ण और

धर्मों (सम्प्रदायों) को विशिष्ट 'समाजों' के रूप में छोड़ कर चैनिंग सामान्य समाज की ओर मुड़े। अपने सदस्यों का 'अनन्त पुनर्जीवन' समाज मात्र का कर्तव्य है। कभी-कभी चैनिंग बहुत कुछ किसी जैफरसन-समर्थक गणतन्त्रवादी की तरह राजनीतिक सुधार की शब्दावली में बोलते थे, किन्तु सब मिलाकर इस दिशा में वे निराश हुए प्रतीत होते हैं। नैतिक उत्थान राजनीति के द्वारा नहीं हो सकता। १८२३ में यूरोप से वापस आने के बाद वे इस प्रश्न पर विशेषतः स्पष्ट रूप से बोले—

"मैं समाज के प्रति ऐसे दृष्टिकोण लेकर लौटा हूँ जिसमें शुद्ध धर्म द्वारा विश्व के नैतिक नवीकरण की अस्पष्ट संभावना मुझे ऐसा आनन्द देती है जैसा मुझे पहले कभी नहीं मिला। क्रान्तियों, राजनीतिक परिवर्तनों हिंसापूर्ण संघर्षों—सार्वजनिक व्यक्तियों या कार्यों—संक्षेप में समाज के किसी भी बाह्य संयोजन से मैं अधिकाधिक कम आशा करता हूँ। अगर शुद्ध सिद्धान्त व्यक्तियों और राष्ट्रों के हृदय में नहीं बना रहता है, तो भ्रष्ट संस्थाओं के स्थान पर अधिक नहीं तो उतनी ही भ्रष्ट अन्य संस्थाएं आ जायेंगी। एक मात्र उपाय नैतिक परिवर्तन में है, जिसके लिए केवल मात्र ईसामसीह और उनकी सहचरी दैवी शक्ति ही पर्याप्त है।"[1]

"हम सब देखते हैं कि नागरिक स्वतन्त्रता के फलस्वरूप तत्काल वह सुधार और मानवीय प्रकृति का उत्थान नहीं हुआ जिसकी विश्वासपूर्वक अपेक्षा की गयी थी। न धार्मिक स्वतन्त्रता से ही वे सारे फल हुए हैं जिनकी हमें आशा थी। फिर भी एक अच्छा काम हो रहा है। गुलामी और क्रूरता तथा सांसारिकता का राज्य हमेशा नहीं रहेगा।"[2]

गुलामी क्रूरता और सांसारिकता, क्रमशः गणतन्त्रवाद तर्कनावाद, और पवित्रतावाद के तीन शत्रु हैं। और इन्हीं शत्रुओं के साथ संघर्ष करने में चैनिंग का मानवीयतावाद पूर्ण निष्ठा के साथ लगा था। इस प्रकार चैनिंग के विचारों और सामान्यतः प्रबुद्धता की परिणति नैतिकता और मानव प्रकृति की गरिमा

नैतिक प्राणियों के रूप में अपने सारे सदस्यों का उत्थान है। इसके अन्तर्गत हर व्यक्ति से अपेक्षा होगी कि वह इस लक्ष्य की प्राप्ति में अपनी योग्यता के अनुसार योग दे। वर्तमान स्वार्थपूर्ण, असामाजिक व्यवस्था के स्थान पर ईसाइयत आयेगी और मेरी सच्ची इच्छा है कि इस सर्वश्रेष्ठ क्रान्ति को लाने में हम पूरा भाग लें।"—(वही, खंड १ पृष्ठ १८)।

१ वही खंड २ पृष्ठ १४६।

२ वही खंड ४ पृष्ठ १०८

मानवीय समझ के मूल को खोजना था ताकि उसकी प्राकृतिक सीमाओं को व्यक्त किया जा सके। चैनिंग का लक्ष्य मानव प्रकृति की पूर्णता को खोजना था, ताकि उसकी संभावनाओं को समझा जा सके। इन सम्भावनाओं को उन्होंने साहसपूर्वक अपने प्रसिद्ध उपदेश 'ईश्वर से समरूपता' (लाइकनेस टू गाड) में घोषित किया जो परात्परवाद के सर्वप्रथम अमरीकी निबन्धों में से एक था।

इस लक्ष्य के लिए प्रयास करते हुए, चैनिंग ने उन धारणाओं में महत्वपूर्ण संशोधन किये जो उन्हें प्रबुद्ध-युग से प्राप्त हुई थीं। 'तटस्थ उदारता' के विचार को बदल कर उन्होंने 'विस्तरित स्वाधीनता' का रूप दिया। एडवर्ड्स के अनुसार सच्ची उदारता की विशेषता उसका विशिष्ट लक्ष्य, अर्थात् सामान्य प्राणी होता है। इसके विपरीत चैनिंग के अनुसार सच्ची उदारता की विशेषता उसका सामाजिक विस्तरण है। प्रेम की इस सामाजिक और मानवीय धारणा में परिष्कारवाद के पवित्र-प्रेम, नैतिकतावादियों की उदासीनता या तटस्थता और गणतन्त्रवादियों के सार्वजनिक सद्गुण की धारणाओं का समन्वय था।[1] इस प्रकार ईश्वर का न्याय उसकी दया का ही एक रूप है। वह धीरे धीरे पूर्णता प्राप्त करने में मनुष्य की सहायता करता है। मनुष्य के इस पुनर्जीवन या नैतिक प्रगति में सामाजिक पुनर्जीवन भी निहित है। वह भी धीरे-धीरे होगा और इस प्रकार सुधार या प्रगति से एकरूप है। फिर भी यह तथ्य कि चैनिंग पुनर्जीवन की शब्दावली का प्रयोग करते रहे, केवल शाब्दिक मामला ही नहीं है, वह उनके टिकाऊ परिष्कारवाद का द्योतक है; किन्तु अब यह एक समाजीकृत परिष्कारवाद है।[2] पुनर्जीवन लाने वाले प्रसार के माध्यम के रूप में विभिन्न

---

१ उन्होंने लिखा 'मुझे आशंका है कि दैवी चरित्र सम्बन्धी चतुर मनुष्यों की बहुतेरी परिकल्पनाओं का प्रभाव ईश्वर को उस पैतृक कोमलता से वंचित करने का रहा है जो हृदय को स्पर्श करने के लिए सभी दृष्टिकोणों में सर्वाधिक उपयुक्त रहा है। मुझे भय है कि बिना समझे बूझे हमने उसे इस दृष्टि से देखना सीख लिया है कि उसमें केवल एक सामान्य उदारता है।"—(वही खंड १, पृष्ठ १५१)— 'मैंने अनुभव किया मैंने देखा कि ईश्वर अपनी 'पवित्र भावना' अपनी शक्ति और ज्योति हर उस व्यक्ति को प्रदान करने को तत्पर है जो ईमानदारी से बुराई पर काबू पाने का प्रयास करता है, उस पूर्णता की ओर आगे बढ़ने की चेष्टा करता है जो एकमात्र स्वर्ग है।"—(वही, खंड २ पृष्ठ १४५)।

२. 'मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि काल के संकेत समाज में होने वाले एक व्यापक संशोधन की ओर इशारा करते हैं, जो इस सारभूत सत्य पर आधारित होगा और उसे व्यक्त करेगा कि सामाजिक गठन का मुख्य लक्ष्य बुद्धिपूर्ण और

मंडित करने में हुई। प्रबुद्धता से परात्परवाद में संक्रमण यहाँ इतना सरल है कि उसे देख पाना कठिन है।

स्वतन्त्र विचार

उग्र तर्कनावाद प्रबुद्धता के आमपक्ष की पराकाष्ठा थी जिसे धर्म संगठन से असम्बद्ध लोगों आमतौर पर वकीलों या डाक्टरों ने पादरियों और धर्म-संगठन की शक्ति के विरुद्ध में प्रतिपादित किया। ब्लाउन्ट और कॉलिन्स, और बाद में वाल्टेयर, वाल्ने और पेन की रचनाएँ, इस उग्र प्रकार के अमरीकी ईश्वरवाद का आदर्श थीं और अमरीकी रचनाओं में कोई बड़ी विशिष्ट या मौलिक बात नहीं है। इनमें सर्वप्रथम और सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्व वरमॉन्ट के एथान ऐलेन का था। युवावस्था में वे एक स्वतन्त्र विचारों वाले चिकित्सक के प्रभाव में आये और अंग्रेजों की कैद में उन्होंने अधर्मियों की राय सुनी और पढ़ी। उनकी रचना 'रीजन दी ओन्ली ओरेकिल आफ मैन' (तर्क-बुद्धि मनुष्य की एकमात्र आप्तवाक्य) १७८४ में प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने पादरियों के पाखण्ड दिव्य ज्ञान चमत्कार अधिकार द्वारा पुष्टि और हर उस चीज की आलोचना की जो विशिष्ट रूप में ईसाई थी। वे न केवल ईश्वर और अमरत्व में विश्वास करते थे, वरन् शुद्ध ईश्वरवादी रीति से उन्होंने अपने विश्वासों का तार्किक औचित्य भी सिद्ध करने का प्रयास किया। उनके ओरेकिल की अपेक्षा दार्शनिक दृष्टि से अधिक रोचक उनका अपेक्षाकृत अज्ञात 'एसे ऑन दी यूनिवर्सल प्लेनिट्यूड आफ बीइंग ऐण्ड ऑन दी नेचर ऐण्ड इम्मार्टेलिटी आफ दी ह्यूमन सोल ऐण्ड इट्स एजेन्सी' (अस्तित्व की सार्वभौमपूर्णता और मानव आत्मा की प्रकृति और अमरत्व और उसके माध्यम पर निबन्ध) है। इसका निम्नलिखित अंश यहाँ प्रस्तुत करने के योग्य है—

'शायद हम सृष्टि में अपने आकार के सर्वाधिक स्वार्थी सबसे पुराने और सबसे चतुर प्राणी समूह हैं। फिर भी अस्तित्व की शृंखला को पूर्ण करने के लिए, ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य नामक प्राणी की कड़ी का होना भी आवश्यक था और चूँकि दैवी शासन के अन्तर्गत हमारा एक निश्चित अस्तित्व है, अतः अन्ततः हम इसमें असफल नहीं हो सकते कि न होने की अपेक्षा ज्यादा अच्छे हैं।'[1]

---

१ पाल रसेल ऐण्डरसन और मैक्स हेरोल्ड फिश द्वारा सम्पादित 'फिलासफी इन अमेरिका' (न्यूयार्क, १९३९) पृष्ठ २५५।

इस निबन्ध में एलेन एक उग्र ईश्वरवाद प्रतिपादित करते हैं। ईश्वर एक असीम बुद्धिपूर्ण पदार्थ है, जो विशिष्ट आध्यात्मिक पदार्थों या आत्माओं में सर्व व्याप्त रहता है। इसी प्रकार ये आत्माएँ भी अपार नहीं होतीं वरन् स्थानगत होती हैं।

एलेन की रचना से छोटी किन्तु अधिक सारगर्भित एलिहू पामर की कृति 'प्रिन्सिपिल्स आफ़ नेचर' (प्रकृति के सिद्धान्त १८०१) है, जो एक संगठित आन्दोलन के रूप में स्वतन्त्र विचार की एक अभिव्यक्ति है। पामर तर्कनावाद के कुछ भ्रमणशील प्रचारकों में से एक थे। कई नगरों में वे 'तर्कबुद्धि के मन्दिर' या 'ईश्वरवादी समाज' (डीस्टिक सोसायटीज) संगठित करने में सहायक हुए (जिनमें न्यूयार्क का हैमनी हाल भी था)। 'थियोफिलान्थ्रपिस्ट और 'दी टैम्पिल आफ़ रीज़न' आन्दोलन की प्रतिनिधि पत्रिकाएँ थीं, और पामर श्रेष्ठतम सम्पादकों में से थे। वे अटलांटिक तट के साथ-साथ भ्रमण करते हुए भाषण करते। 'प्रिन्सिपिल्स आफ़ नेचर उनके भाषणों का एक संग्रह है।

'प्रकृति के सिद्धान्त' से पामर का तात्पर्य यह था कि शक्ति के नियमों का निरूपण करते हुए आधुनिक वैज्ञानिकों ने वस्तु में निहित ऊर्जाओं को और 'मानव प्रकृति की नैतिक ऊर्जाओं' को भी इस सीमा तक मुक्त कर दिया है कि प्राकृतिक 'बुद्धिप्रकाश' शीघ्र ही कृत्रिम और दमनशील विश्वासों को नष्ट कर देगी। मनुष्य स्वभावतः निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपना लेंगे—

१ कि सृष्टि एक सर्वोच्च ईश्वर का अस्तित्व घोषित करती है जो बुद्धिपूर्ण प्राणियों की श्रद्धा के योग्य है।

२. कि मनुष्य ऐसे नैतिक और बौद्धिक गुणों का स्वामी है जो उसकी प्रकृति में सुधार और सुख की उपलब्धि के लिए पर्याप्त हैं।

३ कि प्रकृति का धर्म एकमात्र सार्वत्रिक धर्म है, कि यह बुद्धिपूर्ण प्राणियों के नैतिक सम्बन्धों से विकसित होता है और मानव जाति की सामान्य भलाई और क्रमिक सुधार से सम्बद्ध है।

४ कि मनुष्य के सच्चे हित में यह आवश्यक है कि वह सत्य से प्रेम करे और सद्गुणों पर आचरण करे।

५. कि दुर्गुण सर्वत्र व्यक्ति और समाज के सुख के लिए विनाशकारी और ध्वंसकारक होता है।

६ कि उदार स्वभाव और कल्याणकारी कार्य तर्कशील प्राणियों के मूल कर्तव्य हैं।

७ कि असहिष्णु और द्वेष मिश्रित किसी धर्म का मूल ईश्वरीय नहीं हो सकता।

८ कि शिक्षा और विज्ञान मनुष्य के सुख के लिए आवश्यक है।

९ कि नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रता उसके सच्चे हित में उतनी ही आवश्यक है।

१० कि धार्मिक मतों के सम्बन्ध में मनुष्य उसकी आज्ञा का पालन करे ऐसी कोई मानवी सत्ता नहीं हो सकती।

११ कि विज्ञान और सत्य सद्गुण और सुख वे महान् लक्ष्य हैं जिनकी ओर मानवी मनःशक्तियों के कार्यकलाप और उनकी ऊर्जा को उन्मुख होना चाहिए।

इस संघ में प्रविष्ट हर सदस्य ईश्वरोत्पन्न होने का दावा करने वाले अन्धविश्वास और कट्टरता की सभी योजनाओं के विरुद्ध अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर उचित उपाय से प्रकृति और नैतिक सत्य के पक्ष का प्रसार करना अपना कर्तव्य समझेगा।[1]

प्राकृतिक धर्म में इस विश्वास के आधार पर पामर ने अमरीकी क्रान्ति के द्वारा 'नागरिक विज्ञान' के नवीकरण की भविष्यवाणी की।

'यह नहीं माना जा सकता कि नागरिक विज्ञान के सिद्धान्तों में प्रशिक्षित होने के बाद मनुष्य प्रकृति में अपनी नैतिक स्थिति के सम्बन्ध में बहुत दिनों तक अज्ञ रहेगा। अमरीकी क्रान्ति द्वारा मनुष्य की नैतिक स्थिति का उतना ही मौलिक नवीकरण होगा जितना उनकी नागरिक स्थिति का। और निश्चय ही यह उतना ही आवश्यक और उतना ही महत्वपूर्ण है कि ऐसा हो। सभी विज्ञानों में नैतिकता का विज्ञान मनुष्य के सुख के लिए सर्वाधिक आवश्यक है। विचारशक्ति द्वारा जाग्रत होकर अमरीकी क्रान्ति से प्रेरित होकर मनुष्य अपनी प्रकृति के सारे नैतिक सम्बन्धों की परीक्षा करेगा, स्वयं अपनी नैतिक शक्तियों के प्रभावों की ठीक-ठीक नाप-जोख करेगा अपनी रुचि और अपने हित के अनुकूल पायेगा।[2]

यह ध्यान देने योग्य है कि लोक-तान्त्रिक आन्दोलन के बुद्धिजीवी यहाँ तक कि टाम पेन जैसे वामपंथी नेता भी न अनीश्वरवादी थे न मजदूर नेता। वे अत्यधिक मध्यम-वर्गीय (बुर्जुआ) थे और उनके लिए स्वतन्त्रता का अर्थ था व्यक्तिवादी धर्म और व्यक्तिवादी व्यापार-स्वतन्त्रता का मेल। ऐसे पादरियत-विरोधी राजनीतिक अनुदारवादियों की संख्या काफी थी जो लोकतन्त्रवादी संगठनों

---

१ एलिहू पामर, 'पॉस्थ्यूमस पीसेज' (न्यूयार्क १८२४) पृष्ठ १०-११।

२ एलिहू पामर, 'ऐन एनक्वायरी रिलेटिव टु दी मॉरल ऐण्ड पोलिटिकल इम्प्रूवमेन्ट आफ दी ह्यूमन स्पीशीज' (न्यूयार्क, १७९७) पृष्ठ २५-२७।

के सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं लेते थे, किन्तु वाल्नी, गॉडविन और यूरोपीय पादरियत-विरोधियों की रचनाओं के साथ-साथ इन संगठनों के सदस्यों की रचनाएँ भी पढ़ते थे। इनके प्रतिनिधि रूप में न्यूयार्क के न्यायाधीश जेम्स केन्ट, न्यूयार्क के नाटककार विलियम डनलप, एक रैडिकल धर्म-विरोधी जार्ज वाशिंगटन, रोड आइलैण्ड के गवर्नर स्टीफेन हॉपकिन्स और दूसरों को लिया जा सकता है। ईसाइयत की आलोचना करते समय वे स्पष्ट करते कि उनका उद्देश्य मुख्यतः धार्मिक संस्थाओं और पादरियों के अन्य विशेषाधिकारों की आलोचना करना था। तदनुसार जोएल बार्लो ने अमरीकी प्रबुद्धता के महाकाव्य अपनी 'कोलम्बियड' में ईश्वरवाद की प्रशस्तियाँ गायीं लेकिन उन्हें आशा थी कि इस प्रकार धर्म का उपदेश स्वतन्त्र गिरजाघरों में किया जाएगा। जेफ़रसन के अनुयायी गणतन्त्रवादियों की भी राजनीति और अर्थनीति जन-लोकतान्त्रिक होने की अपेक्षा सामन्त-विरोधी और राजतन्त्र-विरोधी ही अधिक थी। जैक्सन-युग में जब मजदूर नेताओं ने स्वतन्त्र-विचार की पत्रिकाओं और संगठनों पर कब्जा करने की कोशिश की तो वे केवल नेताओं के एक छोटे से समूह को आकर्षित कर सके क्योंकि इन संगठनों के सदस्य मजदूर श्रेणियों में से नहीं आते थे। समाजवाद की कौन कहे, गुलामी-विरोधी आन्दोलन जैसे उग्र सुधारों में भी उनमें से बहुत कम ने सक्रिय भाग लिया।

प्राकृतिक दर्शन

तर्कबुद्धि का पथ अपनाने वाले ये स्वतन्त्र-विचारक वास्तव में प्राकृतिक दर्शन की अभिवृद्धि के अभिव्यक्ता थे। उनके धार्मिक उत्साह के समान ही प्रबुद्धता काल की धर्म-निरपेक्ष रचनात्मक शक्ति थी जिसे अपना औचित्य और अपनी परिणति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रगति में मिली। प्राकृतिक दर्शन से प्राकृतिक विज्ञानों का संक्रमण लगभग अलक्ष्य सा है, और उसे विज्ञानों का विकास या प्रवर्तन कहा जा सकता है।

एक व्यापक सहकारी प्रयास के रूप में प्राकृतिक दर्शन के सर्वव्यापी आदर्श का अमरीका में प्रमुख व्यक्त रूप हमें 'अमरीकी दार्शनिक समाज' (अमेरिकन फिलासॉफिकल सोसायटी) में मिलता है जिसका जन्म १७४३ में फिलाडेल्फिया में बेंजामिन फ्रैंकलिन, डेविड रिटेनहाउस और अन्य कई वैज्ञानिकों के सहयोग से हुआ। १७६९ में फ्रैंकलिन ने 'दार्शनिक समाज के सदस्यों को,

आधारित न भी हो तो यही एक कारण पर्याप्त होगा कि हम इस पर विश्वास करें। यह अनिश्चित है कि इस शक्तिशालिनी प्रेरणा के स्थान पर मनुष्य जाति कब तक अन्य सत्यों और युक्तियों की प्राप्ति का प्रयास करती रहेगी। किन्तु हमें विश्वास है कि वह दिन कभी आयेगा जब समाज अपने वर्तमान निकृष्ट नियमों से ऊपर उठेगी और विकृत मनोवेग अपनी मूल स्थिति पर आ जाएँगे। मेरा विश्वास है कि मनुष्य के दिमाग़ में यह परिवर्तन ईसाई धर्म के प्रभाव द्वारा ही आयेगा जब सम्भवतः दर्शन स्वतन्त्रता और शासन द्वारा ये परिवर्तन लाने के *मानव-बुद्धि के सारे प्रयास निष्फल समाप्त हो जायेंगे।*[1]

इसी प्रकार उन्होंने सरल ढंग से यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि अमरीकी वातावरण लाभकारी प्रभावों' से भरा है।

"मनुष्य जाति के किसी भी हिस्से में प्राणि-जीवन इतनी श्रेष्ठ अवस्था में नहीं है, जितनी इंगलिस्तान और संयुक्त राज्य अमरीका में। उन सभी प्राकृतिक उद्दीपनों के साथ जिनकी चर्चा की जा चुकी है, वे निरन्तर स्वतन्त्रता के शक्तिशाली प्रभाव के अन्तर्गत रहते हैं। नैतिक राजनीतिक और शारीरिक सुख में एक अविच्छिन्न सम्बन्ध है। और अगर यह सच हो कि निर्वाचित और प्रतिनिधि शासन व्यक्ति और राष्ट्रीय समृद्धि के लिए सर्वाधिक हितकर होते हैं तो स्वभावतः यह भी सच होगा कि वे प्राणि-जीवन के लिए भी सर्वाधिक हितकर होते हैं। किन्तु यह मत केवल उस सम्बन्ध से निकाला गया परिणाम नहीं है, जो सभी विषयों सम्बन्धी सत्यों का एक-दूसरे से होता है। बहुतरे तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि कानेक्टिकट के प्रबुद्ध और सुखी राज्य में जहाँ गणतान्त्रिक स्वतन्त्रता डेढ़ सौ साल से अधिक समय से चली आ रही है, पृथ्वी पर किसी भी अन्य देश की अपेक्षा प्राणिजीवन अधिक मात्रा में है और अधिक काल तक बना रहता है।"[2]

रश का दार्शनिक महत्त्व मुख्यतः इस तथ्य में है कि मनुष्य की उत्तेजनीयता और फलस्वरूप मनुष्य के ज्ञान की अन्तर्निहित एकता को प्रदर्शित करने का उन्होंने प्रभावशाली वैज्ञानिक प्रयास किया। उन्होंने सिद्धान्त रूप में यह बात नहीं कही लेकिन इस ओर संकेत किया कि शरीर और आत्मा औषधि और नैतिकता प्राकृतिक और सामाजिक दर्शन के बीच कोई मौलिक अलगाव सम्भव नहीं।

---

१ बेन्जामिन रश, 'थ्री लेक्चर्स अपान ऐनिमल लाइफ' (फिलाडेल्फिया, १७९९) पृष्ठ ६७-६८।

२ वही, पृष्ठ ६९।

वैज्ञानिकों में सर्वाधिक आकर्षक और सबसे कम वैज्ञानिक व्यक्तित्व थामस कूपर (१७५९-१८३९) का था। वे इंगलिस्तान में प्रीस्टली के अधीन रसायन शास्त्र के छात्र थे और अपने गुरु की भाँति धार्मिक और राजनीतिक उत्पीड़न से बचने के लिए भागे। अपने किसी भी मित्र की अपेक्षा (जिनमें उनके निकटतम मित्र जेफरसन भी थे) जिन पर बहुधा भौतिकवादी होने का आरोप लगाया जाता था वे पूर्ण भौतिकवादी होने के अधिकतम निकट पहुँचे। वैज्ञानिकों में कूपर सर्वाधिक स्पष्ट पादरियत-विरोधी थे और नैतिकता व धर्म की अधिक सामान्य समस्याओं पर अपने भौतिकवादी मनोविज्ञान को लागू करने में भी वे सर्वाधिक तत्पर रहते थे। वे १७९४ में अमरीका आये और पूरी शक्ति से जेफरसन-समर्थक आन्दोलन में जुट गये। वे पेन्सिलवेनिया में जज नियुक्त हुए, किन्तु १८११ में भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण पद छोड़ने को बाध्य हुए। १८२१ तक पेन्सिलवेनिया के कई स्कूलों में रसायन और खनिज-विज्ञान पढ़ाते रहे। जेफरसन उन्हें वर्जिनिया विश्वविद्यालय का पहला अध्यक्ष बनाना चाहते थे किन्तु इसके बजाय वे रसायन-शास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त हुए और बाद में दक्षिण कैरोलिना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बने जहाँ उनका कार्यकाल बड़ा प्रभावशाली रहा। वे पृथकता और राज्यों के अधिकारों का प्रचार करने वाले एक नेता बन गये और उन्होंने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक लिखी।

इस प्रकार विभिन्न रीतियों से विभिन्न वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक दर्शन को बोध का एक रोचक क्षेत्र बनाया और उस दिशा का एक प्रतीक बनाया जिसमें नैतिक दर्शन को इसी प्रकार प्रगति करने के लिए, चलना चाहिए। एक पीढ़ी के संक्षिप्त समय तक जन-कल्पना को उत्तेजित करने में वे पादरियों से अधिक सफल रहे और उनका प्रभाव सर्वाधिक तभी पड़ा जब धर्मशास्त्र की उन्होंने सर्वाधिक उपेक्षा की। कारण कि धर्म-निरपेक्ष तर्कबुद्धि की क्षमता और उपयोगिता प्रदर्शित करने में उनकी उपलब्धियाँ ही 'मताग्रह के मिथ्याभिमान का सर्वाधिक ज्वलन्त प्रमाण थीं। अमरीकी नैतिकता और शिक्षा में प्रकृति के सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करने में प्रगति करने की प्राकृतिक दर्शन की योग्यता का हाथ स्वतन्त्र विचारकों द्वारा प्राकृतिक दर्शन के सारे प्रचार से अधिक था। प्राकृतिक विज्ञानों में मुखरता अब भी जीवित है, लेकिन तथाकथित मानसिक और नैतिक विज्ञानों को दार्शनिक विचारों की एक और शताब्दी का बोझ उठाना था।

तीसरा अध्याय



राष्ट्रवाद और लोकतन्त्र

ह्विग राष्ट्रवाद

अमरीकी प्रमुख काल में संघवादी दर्शन की दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं और अन्ततः गृह-युद्ध में उनका कटुतापूर्ण टकराव हुआ। किन्तु अपने प्रारम्भिक काल में वे सहयोगी थीं। 'संविधानवादी' विचारधारा न्यू-इंग्लैंड में पनपी जान ऐडम्स के लेखन में उसकी पूर्णतम व्याख्या हुई और वह काल्विनवादियों पूंजीवादी व्यापारी और उच्च भूस्वामी दोनों में ही विशेषत लोकप्रिय हुई। भूमि और व्यापार के अभिजात्य वर्ग को उसने एक संयुक्त मोर्चा प्रदान किया पहले अंग्रेज व्यावसायिकता के विरुद्ध फिर दक्षिणी जेफ़र्सनवादियों के खिलाफ़ और अन्त में शहरी सम्पत्तिहीन वर्गों के खिलाफ़ जिनके हितों को धनी लोग तिरस्करणीय समझते थे क्योंकि वे बंधे हुए नहीं थे। इन संघवादियों के दिमाग में 'जनहित' आमतौर पर भूमि और जहाजों में पूंजी की सुरक्षा का पर्यायवाची था। संविधान की भूमिका में प्रतिष्ठित शब्द 'सामान्य प्रतिरक्षा और सामान्य कल्याण' की व्याख्या वे ऐसी 'यथावत्' रीति से करते थे कि 'सामान्य कल्याण' का अर्थ 'सामान्य प्रतिरक्षा' से अधिक कुछ विशेष नहीं रह जाता था। वास्तव में ये विचारक 'प्रजाधिपत्य (कामनवेल्थ) शब्द का प्रयोग प्राचीन रूप में केवल 'न्याय और समानता' कानून और व्यवस्था के संघ के अर्थ में करते थे। ऐडम्स की अपनी शब्दावली के अनुसार, इस धारा को हम 'नोवांग्लियन' (नव-आंग्ल) संघवाद कह सकते हैं।

दूसरी 'अधिकार-पत्र' की विचार धारा के प्रमुख व्याख्याता थॉमस जेफ़र्सन और वर्जिनिया के लोकतन्त्रवादी थे। नोवांग्लियन उनको आमतौर पर 'डेमोक्रेटिक' कहते थे और जेफ़र्सन के काल में इन धाराओं की भिन्नता तेजी से बढ़ी क्योंकि सामान्य सिद्धान्त और विदेश-नीति दोनों में ही एक धारा इंगलिस्तान

समर्थक थी और दूसरी ओर समर्थक। दक्षिण के गणतन्त्रवादी उत्तर के संघवादियों से कम अभिजात नहीं थे, किन्तु उनके पीछे एक भिन्न धर्म था। वे यह मानकर चलते थे (कुछ विशिष्ट अपवादों को छोड़कर जिनमें स्वयं जैफ़रसन भी थे) कि ऐसे भी प्राणी हैं जो 'स्वभावतः' गुलाम हैं। प्रकृति ने उन्हें इस उद्देश्य से बनाया है कि वे 'बड़ों' के शासन की उदार निरंकुशता का वहन करें। किन्तु ये दक्षिणी अभिजात यद्यपि उत्तरी उपनिवेशों के 'सामान्य' लोगों से मित्रवत् व्यवहार करते थे, अपने 'जैकोबिन क्लबों' या 'लोकतान्त्रिक सभाओं' में उनका स्वागत सह-नागरिकों और समान हैसियत वालों की तरह करते थे। यह किंवदन्ती चल पड़ी और अब भी है कि दक्षिण में 'सामान्यजन नहीं हैं'। जो भी हो, वर्जिनिया के गणतन्त्रवादी एक स्थायी संघ के पक्ष में उतने ही अधिक थे जितने न्यू-इंग्लैण्डवासी, किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह देख कर बड़ी परेशानी हुई कि वे बंदरगाहों और व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक दल या गुट बन गये थे। अतः उन्हें मजबूर होकर संघ-शासन की अपेक्षा राज्यों की प्रभुसत्ता पर अधिकाधिक जोर देने का मार्ग अपनाना पड़ा।

इस काल में अलेक्जेण्डर हैमिल्टन अपनी दर्शन में आस्थापूर्ण संघ-विरोधी थे। वे प्रबुद्ध-काल की सन्तान नहीं, वरन् एक नये राष्ट्रवाद के जन्मदाता थे। जैफ़रसन ने उन्हें उचित ही 'समरोत्सुक वर्ग' कहा था। भाग्य ने उनके साथ यह व्यंग्य किया कि उन्हें भी 'फ़ेडरलिस्ट पेपर्स' (संघवादी निबन्ध) लिखने पड़े और न्यू-इंगलैण्ड की संघवादी राजनीति में भाग लेना पड़ा। किन्तु उनकी विचारधारा के आधार और लक्ष्य बिल्कुल भिन्न थे। वे अपने को 'कान्टिनेन्टलिस्ट' (महाद्वीपवादी) कहते थे और बाद के न्यूयार्कवासियों की भाँति, अपने प्रकार की प्रान्तीयता को एक सच्चे अमरीकी कार्यक्रम के रूप में देखते थे। इतिहासकार और राजनीतिज्ञ अब भी इस पर बहस करते हैं कि संयुक्त-राज्य की स्थापना में हैमिल्टन के आर्थिक राष्ट्रवाद का प्रभाव व्यवहार में संघवादी-गणतान्त्रिक राजनीति से अधिक था या नहीं किन्तु उसने अमरीकी पूँजीवाद को निश्चय ही प्रतिष्ठित कर दिया।

हैमिल्टन अपने काल में न केवल अपने उत्कट राष्ट्रवाद में असाधारण थे, वरन् इस कारण भी कि उन्होंने अपने सिद्धान्त को 'शासन-विज्ञान' के बजाय राजनीतिक-अर्थशास्त्र पर आधारित किया। बौद्धिक दृष्टि से संघवादियों और गणतन्त्रवादियों में जितना अन्तर था, उससे अधिक अन्तर हैमिल्टन और उनके संघवादी मित्रों के बीच था। हैमिल्टन की नीतियों के प्रति जॉन ऐडम्स का बढ़ता हुआ अविश्वास इसका एक उदाहरण था। युवावस्था में उन्होंने प्रबुद्ध काल के दर्शन सीखे थे और स्वतन्त्रता-युद्ध के तत्काल पूर्व प्रकाशित राजनीतिक

विचार के उनके प्रथम प्रयास में हमें वही 'प्राकृतिक अधिकार', 'स्वतन्त्रता' आदि की सुपरिचित बातें मिलती हैं। किंग्स-कालेज में उनके प्रति अनुदारवादी प्रतिक्रिया ने उन्हें एक प्रमुख विद्रोही बनाया। स्नातकीय उपाधि लेने के पहले उन्होंने जन-सेना का एक दस्ता संगठित किया। उन्होंने अधिकांश जीवन 'जनरल' वाशिंगटन के निकट सम्पर्क में बिताया और प्रतीत होता है कि वे अपने को मुख्यतः एक सैनिक समझते थे। जब उनके अनुयायियों को 'सैन्य दल' (मिलिटरी पार्टी) कहा गया तो उन्हें प्रसन्नता हुई। इस सैनिक वातावरण में ही उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन के मुख्य विषय ग्रहण किये। उन्होंने शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन किया था और वे कभी-कभी ह्यूम[1] और माण्टेस्क्यू को उद्धृत करते किन्तु उनके अधिकांश विचार सैनिक अनुभवों से निकले थे। माण्टेस्क्यू से उन्होंने यह अर्थपूर्ण विश्वास ग्रहण किया था कि 'शासन उसी प्रकार राष्ट्र के अनुरूप होना चाहिए, जैसे कोट व्यक्ति की नाप का।"[2] वे अमरीका के अनुरूप शासन तैयार करने में रत हो गये। 'संघवादी निबन्धों' में जहाँ उन्होंने केवल 'न्यूयार्क' राज्य के वासियों की पक्षधर दृष्टि को तुष्ट करने का ही प्रयास नहीं किया है, ऐसे अंशों में सर्वाधिक ईमानदारी के तर्क वे हैं जिनमें उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि संघवाद अमरीकी परिस्थितियों के उपयुक्त है। और मैडिसन द्वारा शास्त्रीय ग्रन्थों को लागू करने की विद्वत्तापूर्ण चेष्टाओं से इन तर्कों की विषमता स्पष्ट है। मैडिसन ने इस बात को बिल्कुल नहीं समझा कि हैमिल्टन और उनके 'कार्यकारी दल' (जैसा गणतन्त्रवादी उसे व्यंग्य से कहते थे) द्वारा 'प्रशासन' पर जोर देना राजतन्त्रवाद की भूमिका नहीं था वरन् शासन को निरन्तर राष्ट्र की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के 'अनुरूप' बनाने का एक अन्तर्भावनापरीक्ष कार्यक्रम था और बाद में मैडिसन ने हैमिल्टन की आलोचना की कि वे 'शासन को उस प्रकार संचालित करने' की चेष्टा कर रहे थे 'जैसा वे सोचते थे कि उसे होना चाहिए।'[3] संविधान-सम्मेलन के समय ही हैमिल्टन को विश्वास हो गया था कि केवल 'गणतान्त्रिक शासन' ही अमरीकी 'प्रतिमा' के

---

१ ह्यूम की रचनाओं में 'हिस्टरी ऑफ इंगलैण्ड' और 'एसे ऑन दी जेलसी ऑफ कॉमर्स' से वे सर्वाधिक परिचित थे।

२ हेनरी कैबट लॉज द्वारा सम्पादित 'दी वर्क्स ऑफ अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन' में लाफ़ायेत के नाम ६ जनवरी १७९९ (न्यूयार्क १९०७) खंड ८ पृष्ठ ११७।

अनुकूल था यद्यपि उस पर उनकी स्वयं आस्था नहीं थी।[1] उन्होंने बाद में अमरीका के दलीय शासन को 'शक्ति का एक कम्पन' कहा।

संघवाद सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण था हैमिल्टन द्वारा शक्ति के सम्बन्ध में राजनीति का और धन के सम्बन्ध में शक्ति का विश्लेषण। युद्ध की कठिन अवधियों में जब वाशिंगटन के साथ वे भी सेना के मनोबलहीन अवक्षेप के प्रति चिन्तित थे, उन्हें यह विश्वास हो गया कि सैनिक शक्ति को केवल वित्तीय शक्ति के आधार पर ही पुनर्निर्मित किया जा सकता था। १७८० में ही वे एक 'कान्टिनेन्टल बैंक' (देशीय बैंक) की स्थापना का प्रस्ताव लेकर राबर्ट मॉरिस के पास गये। हैमिल्टन के अनुसार राजनीतिक शक्ति अन्ततः धन पर आधारित होती है। उन्होंने पूरी गम्भीरता से आग्रह किया कि सरकारी ऋण एक सार्वजनिक परिसम्पत्ति है और खर्चीली सरकार का इस आधार पर समर्थन किया कि उसे अधिक करों की आवश्यकता होगी के कारण शक्ति भी अधिक प्राप्त होगी। वे शासन को विधि-निर्माण की अपेक्षा करदान की दृष्टि से अधिक देखते थे। मैडिसन को शिकायत थी कि संविधान की 'सामान्य कल्याण' वाली धारा का जहाँ तक धन के उपयोग का प्रश्न है शिक्षा, खेती विनिर्माण और व्यापार के सामान्य हितों से सम्बन्धित किसी भी चीज पर लागू करने में हैमिल्टन को कोई भी आपत्ति नहीं थी।[2] शासन को न्याय और समानता तक सीमित रखने के बजाय इस प्रकार 'सामान्य हितों की सक्रिय अभिवृद्धि के रूप में देखना अमरीकी राजनीतिक सिद्धान्त में निश्चय ही क्रान्तिकारी चीज थी। किन्तु हैमिल्टन के कार्यक्रम का यह सारतत्व था और उन्होंने तत्काल 'शासन को ऐसी स्फूर्ति और शक्ति' प्रदान की जो संस्थापकों की कल्पना से बहुत आगे थी।[3]

जनशक्ति की दृष्टि से हैमिल्टन कृषि और अभिनिवेश क्षेत्र में बसे हुए राष्ट्र का मुख्यतः उधार और व्यापार का संघ समझते थे। सरकारी ऋण की विधि

१ 'किसी रूप में मुझे यह पूर्णमान्य प्रतीत होता था कि स्वतन्त्र जाँच की दृष्टि से प्रयोगात्मक स्थापनाएँ की जा सकती हैं, जिन्हें केवल विचारार्थ सुझावों के रूप में ग्रहण किया जाए। तदनुसार, यह सच है कि मेरी अन्तिम राय अपने आचरण के दौर में 'एक कार्यकारी' के विरुद्ध थी। देश की वास्तविक स्थिति में, यह अपने आप में सही और उचित था कि गणतान्त्रिक सिद्धान्त का एक निष्पक्ष और पूर्ण परीक्षण किया जाए।"—(वही, टिमोथी पिकरिंग को, १८ सितम्बर १८०३ पृष्ठ ४४७-४४८)

२. विलियम सी॰ राइव्स 'हिस्ट्री ऑफ दी लाइफ ऐण्ड टाइम्स ऑफ जेम्स मैडिसन' (बोस्टन १८६८) खण्ड तीन पृष्ठ २११।

३ वही पृष्ठ १७१।

निर्मित करना, संघ-सरकार की अपार साख को 'अधीभूत' करना और फैलाना उन्हें एक प्राथमिक व्यापारिक आवश्यकता प्रतीत होती थी और यह आपत्ति उन्हें असार प्रतीत होती थी कि इससे सटोरियों का बल बढ़ेगा। औद्योगिक विस्तार के लिए पूंजी की उपलब्धि उनकी दृष्टि में प्रमुख थी और अगर यह शक्ति बैंकरों और अन्य पूंजी लगाने वालों के हाथ में केन्द्रित हो तो और भी अच्छा। अन्तत: महत्व धन के वितरण का नहीं, सट्टे की दिशा का था। हैमिल्टन का महान् विचार विनिर्माण को प्रोत्साहित करने का था। विनिर्माण हितों को जो मध्य-राज्यों में और न्यू-इंगलैण्ड के अन्तर्देश में विशेषत: सबल थे वे एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रीय हित मानते थे क्योंकि ये हित न्यू-इंगलैण्ड के सामुद्रिक व्यापारियों और दक्षिण के बागान मालिकों के 'क्षुद्र' हितों के बीच (आर्थिक और भौगोलिक दृष्टि से) मध्यस्थता करते थे।[1] उनका तर्क था कि विनिर्माण के

१ हेनरी क्ले ने अपने प्रसिद्ध भाषण, 'स्पीच इन डिफ़ेन्स ऑफ़ दी अमेरिकन सिस्टम' (१८३२) में भी यही बात कही है, 'संयुक्त राज्य के लोगों के दिलों में इस व्यवस्था के लिए क्या स्थान है, इस सम्बन्ध में लोगों को बड़ा भ्रम है। वे कहते हैं कि यह न्यू-इंगलैण्ड की नीति है और उसी को इससे सर्वाधिक लाभ होता है। मगर संघ का कोई भाग सर्वाधिक सर्वसम्मति और दृढ़ता से लगातार इसका समर्थन करता रहा है तो वह पेन्सिलवेनिया है। इस शक्तिशाली राज्य की आलोचना क्यों नहीं की जाती ? उसे यूं ही छोड़कर न्यू इंगलैण्ड पर चोट क्यों की जाती है ? न्यू-इंगलैण्ड इस नीति में अनिच्छा-पूर्वक सम्मिलित हुआ। १८२४ में उसके प्रतिनिधि मण्डल का बहुमत इसके विरुद्ध था। न्यू-इंगलैण्ड के सबसे बड़े राज्य का केवल एक वोट विधेयक के पक्ष में था। उद्यमशील लोग आसानी से अपने उद्योग को किसी भी नीति के अनुकूल बना सकते हैं, बशर्ते कि वह निश्चित हो। उन्होंने समझा कि यह नीति निश्चित हो गयी है और सरकारी आदेशों को उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था के लाभों के विकास के साथ-साथ इस सम्बन्ध में जनमत भी आगे बढ़ता रहा है। अब सारा न्यू-इंगलैण्ड कम से कम इस सदन में (एक छोटी आमोद आवाज़ को छोड़कर) इस व्यवस्था के पक्ष में है। १८२४ में सारा मेरीलैण्ड इसके विरुद्ध था। अब उसका बहुमत पक्ष में है। तब लुइसियाना एक अपवाद के अतिरिक्त, इसके विरुद्ध था। अब वह निरपवाद इसके पक्ष में है। जन भावना दक्षिण की ओर बढ़ रही है। और अन्त में इसके सिद्धान्त सारे संघ में व्याप्त हो जायेंगे और आश्चर्य इस पर होगा कि उनका कभी विरोध क्यों किया गया।"—('दी लाइफ़ ऐण्ड स्पीचेज़ ऑफ़ हेनरी क्ले' (न्यूयार्क १८४४) खण्ड २ पृष्ठ ६०-६१)

साथ राष्ट्रव्यापी होंगे। अपनी प्रसिद्ध विनिर्माणों पर रपट (रिपोर्ट ऑन मैनुफैक्चर्स १७९१) में उन्होंने श्रम-विभाजन सम्बन्धी आदम-स्मिथ के तर्कों को राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने का सचेत प्रयास किया। अमरीकी श्रम-शक्ति में मनेच्छता लायी जाये श्रम के उन रूपों को सरकारी प्रोत्साहन मिले जिन्हें इसकी आवश्यकता हो देश के अन्दर मुक्त व्यापार हो[१] और इस प्रकार अमरीका एक स्वतन्त्र विश्व शक्ति बने।

हैमिल्टन सरकारी और निजी उधार और कर्जों को तथा उद्योगों का प्रसार करने वाली सार्वजनिक और निजी संस्थाओं को 'राष्ट्रीय धन' के स्रोतों के रूप में एक साथ ही रखते थे। अपने सिद्धान्तों पर वे स्वयं किस प्रकार अमल करते थे, इसका एक उदाहरण यह है कि जिन दिनों वे अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट तैयार कर रहे थे उन्हीं दिनों (दो अन्य प्रवर्तकों के साथ) 'उपयोगी विनिर्माणों के न्यू-जरसी समाज' (न्यू-जरसी सोसायटी फ़ार यूज़फ़ुल मैनुफैक्चर्स) का संगठन भी कर रहे थे।

"इस संस्था का अधिकार-पत्र न्यू-जरसी विधान-मण्डल से विरोधियों की आपत्तियों के बावजूद प्राप्त किया गया जिन्होंने कहा कि यह मुनाफ़ाखोरों और विशिष्टों के हितों के लिए खतरनाक है। सार्वजनिक ऋण की हैमिल्टन को अब एक नयी उपयोगिता प्राप्त हो गयी। उक्त समाज के हिस्से खरीदने का यही एक माध्यम रखा गया था और यह प्रमाणित सार्वजनिक ऋण फिर राष्ट्रीय बैंक के हिस्सों में लगाया जा सकता था। हैमिल्टन ने कहा कि सार्वजनिक ऋण-पत्रों के इस बहुविध उपयोग से उनका बाजार मूल्य बढ़ेगा और इस प्रकार सम्बन्धित समाज और जनता दोनों को ही इससे लाभ होगा, जिसे विवरण पत्रिका में देशी उद्योग के प्रोत्साहन के लिए एक देशभक्तिपूर्ण उद्यम कहा गया था।"[२]

---

१ अमरीकी 'सीमाकर संघ' के विचार की प्रत्यक्ष प्रेरणा हैमिल्टन को फ्रीडरिच लिस्ट की पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ़ अमेरिकन पोलिटिकल एकोनोमी' (१८२७) से मिली थी। लिस्ट जर्मन जोलवेरिन (सीमाकर-संघ) के मुख्य अर्थशास्त्री थे और यूरोप के राष्ट्रवादी अर्थशास्त्र के निर्माताओं में से थे। देखिए, विलियम एस० कल्बर्टसन, 'अलेक्ज़ेंडर हैमिल्टन' (न्यू-हैवेन १९११) पृष्ठ १४० १४१ और जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, 'स्टडीज़ इन हिस्टॉरिकल ऐण्ड पोलिटिकल साइन्स', खण्ड—१५ (१८९७) पृष्ठ ४९-९१, ५८१-५८९।

२ रैक्सफ़ोर्ड गाइ टगवेल और जोसेफ़ डॉर्फ़मैन कृत 'अलेक्ज़ेंडर हैमिल्टन नेशन मेकर' कोलम्बिया यूनिवर्सिटी क्वार्टरली, खंड ३०, (मार्च, १९३८), पृष्ठ ६९-७०।

हैमिल्टन शक्ति-राजनीति के सन्दर्भ में सोच रहे थे और अपनी 'एक महान् अमरीकी व्यवस्था' के लिए उन्होंने एक ठोस राजनीतिक-अर्थशास्त्र निरूपित किया। यह न केवल उनके निजी चिट्ठे से उनकी 'विनिर्माणों पर रपट' और सार्वजनिक उधार सम्बन्धी रपटों (रिपोर्ट्स ऑन पब्लिक क्रेडिट) से, बल्कि उनके 'संघवादी निबन्धों' से भी स्पष्ट है। वे इतने स्पष्टवक्ता होने का साहस न करते अगर वे न्यूयार्क राज्य के लोगों (अर्थात् प्रभावशाली लोगों) को सम्बोधित न कर रहे होते। बस इस मत में भी उनके द्वारा 'राष्ट्रीय धन के साहसपूर्ण प्रयोग, 'राष्ट्रीय शक्ति की धारणाओं' और 'अमरीकी साम्राज्य का सम्पुष्टन' की चर्चा के सम्बन्ध में उनके सहयोगी लेखक मैडिसन को चतुर व्याख्याएँ देनी पड़ी। इन बिखरे हुए अंशों में से कुछ को एक साथ रखकर हम हैमिल्टन के दर्शन की साहसिकता और आधुनिकता दोनों को प्रदर्शित कर सकते हैं।

"क्या गणतन्त्र व्यवहार में राजतन्त्रों से कम युद्धरत रहे हैं? क्या गणतन्त्र और राजतन्त्र दोनों का ही प्रशासन मनुष्यों द्वारा नहीं होता? क्या व्यापार ने अब तक युद्ध के लक्ष्यों को बदलने के सिवा और कुछ भी किया है? क्या धन का मोह शक्ति या यश के मोह समान ही जबर्दस्त और दमनशील नहीं है? जब से व्यापार की व्यवस्था राष्ट्रों में प्रचलित हुई है क्या व्यापारिक कारणों पर आधारित युद्ध उतने ही नहीं हुए हैं जितने पहले भूमि या स्वामित्व के लोभ में होते थे? क्या व्यापार की भावना ने बहुतेरे मामलों में भूमि और स्वामित्व दोनों की भूख को नया आहार नहीं दिया है? इन प्रश्नों के उत्तर हम अनुभव में खोजें मनुष्य के मत का निर्देशन करने में जिसके द्वारा गलती होने की सम्भावना सबसे कम होती है।

"क्या अब समय नहीं है कि हम स्वर्ण-युग के भ्रमपूर्ण स्वप्न से जागें और अपने राजनीतिक व्यवहार का निर्देशन करने के लिए इस व्यावहारिक उक्ति को अपनायें कि पृथ्वी के अन्य वासियों की भाँति हम लोग सम्पूर्ण सद्गुण के सुखपूर्ण साम्राज्य से अभी बहुत दूर हैं?

"हमारी स्थिति अत्यधिक आशापूर्ण है। संघ में दृढ़तापूर्वक जुड़े रहकर हम आशा कर सकते हैं कि शीघ्र ही हम अमरीका में यूरोप के भाग्य-निर्णायक बन जाएँगे और धरती के इस भाग में यूरोपीय प्रतियोगिताओं का सन्तुलन अपने हितों के अनुसार बदल सकेंगे।

"सशक्त राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत सामान्य हित में लगी हुई देश की प्राकृतिक शक्ति और प्रसाधन यूरोपीय ईर्ष्या के सारे संयोजनों को असफल बना देंगे। सफलता अव्यावहारिक हो जाने के कारण इस स्थिति में ऐसे संयोजनों का उद्देश्य भी समाप्त हो जायेगा। तब नैतिक और भौतिक आवश्यकता वाणिज्य

व्यापार, व्यापक जहाजरानी और समृद्ध जहाजी बेड़े को जन्म देगी। प्रकृति की अपरिहार्य और अपरिवर्तनीय गति को बदलने या नियन्त्रित करने की छोटे छोटे राजनीतिज्ञों की छोटी-छोटी चालों की हम अवज्ञा कर सकते हैं।

'स्वयं राज्यों के बीच निर्बन्ध संसर्ग म। केवल एक-दूसरे की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, वरन् विदेशी मण्डियों में निर्यात के लिए भी उनके उत्पादनों के आपसी विनिमय के द्वारा हर एक के व्यापार को बढ़ाएगा। हर भाग में व्यापार की नाड़ियाँ समृद्ध होंगी और हर भाग की वस्तुओं के मुक्त संचार के द्वारा अतिरिक्त गति और शक्ति प्राप्त करेंगी। विभिन्न राज्यों के उत्पादनों की अनेकता से व्यापारिक उद्यम का क्षेत्र कहीं अधिक व्यापक होगा।

'वह्येवार व्यापारी इन टिप्पणियों के बल को तत्काल देख लेगा और स्वीकार करेगा कि अ-संबद्ध या आंशिक रूप में संबद्ध तेरह राज्यों की अपेक्षा संयुक्त-राज्य का कुल व्यापारिक शेष कहीं अधिक अनुकूल होगा।

'व्यापारिक हितों के साथ-साथ राजनीतिक हितों की एकता केवल संघ की एकता का फल ही हो सकती है।

'यूरोपीय महानता के साधन बनना अमरीकियों को अस्वीकार करना चाहिए। दृढ़ और अविच्छिन्न संघ में बंधे हुए तेरह राज्य एक महान् अमरीकी व्यवस्था का निर्माण करने में सहमत हों, जो अटलांटिक पार की किसी भी शक्ति या प्रभाव के नियन्त्रण में न आने में समर्थ हो और पुरानी तथा नयी दुनिया के सम्बन्ध की शर्तें अपनी मर्जी के अनुसार मनवा सके।

'इसी सिद्धान्त के अनुसार कि मनुष्य का लगाव अपने पड़ोस की अपेक्षा अपने परिवार से अधिक होता है और सम्पूर्ण समाज की अपेक्षा अपने पड़ोस से अधिक होता है, हर राज्य के लोगों का स्वाभाविक झुकाव संघ-शासन की अपेक्षा अपनी स्थानीय सरकार की ओर अधिक होगा। यह स्थिति तभी बदल सकती है जब संघ का प्रशासन इतना अच्छा हो कि इस सिद्धान्त की शक्ति नष्ट हो जाये।

'राज्य सरकारों के कार्यक्षेत्र में एक सर्वोपरि लाभ ऐसा है, जो इस प्रसंग को स्पष्ट और सन्तोषजनक रूप में प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है—मेरा तात्पर्य दीवानी और फौजदारी न्याय के सामान्य प्रशासन से है। जनसाधारण की आज्ञाकारिता और उनकी आसक्ति प्राप्त करने के साधनों में यह सर्वाधिक सशक्त सार्वभौमिक और आकर्षक है। यह जीवन और सम्पत्ति का प्रत्यक्ष और दृश्यमान् संरक्षक है, इसके लाभ और इसका भय निरन्तर लोगों की नजरों के सामने सक्रिय रहते हैं, यह उन सभी हितों और समस्याओं का नियमन करता है, जिनके प्रति व्यक्तियों की संवेदना अधिक तात्कालिक रूप में जागरूक रहती है और इस कारण लोगों

के मन में शासन के प्रति स्नेह, आदर और श्रद्धा उत्पन्न करने में इसका योग अन्य किसी भी परिस्थिति से अधिक होता है। समाज को जोड़ने वाला यह महान् तत्व लगभग पूरी तरह विशिष्ट सरकारों के माध्यम से ही फैलता है और प्रभाव के अन्य सभी कारणों से स्वतन्त्र यह उन्हें अपने नागरिकों पर ऐसा निश्चयात्मक प्रभुत्व प्रदान करेगा कि वे हमेशा पूर्णतः संघ की शक्ति के समकक्ष रहेंगी और बहुधा उसकी खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी भी बन जायेंगी।

"दूसरी ओर राष्ट्रीय सरकार के कार्यकलाप नागरिक-समूह की नजरों के सामने कम प्रत्यक्ष रूप में आयेंगे और उससे होने वाले लाभों को मुख्यतः सटोरिये लोग ही समझेंगे और उनकी ओर ध्यान देंगे। अधिक सामान्य हितों से सम्बन्धित होने के कारण जनता की भावनाओं में स्थान पाने की सम्भावना उनके लिए कम रहेगी। और उसी अनुपात में दायित्व का अभ्यस्त भाव और आसक्ति की सक्रिय भावना जगाने की सम्भावना भी कम होगी।

'वर्तमान महासंघ की रचना का बड़ा और मौलिक दोष विधि-निर्माण के इस सिद्धान्त में है कि जिन व्यक्तियों से मिलकर राज्य बने हैं, उनसे भिन्न और विपरीत राज्य या सरकारें उसमें अपने सामूहिक या सम्मिलित रूप में भाग लेती हैं।

'वर्तमान संघ की कमजोरियों में इस बात का काफी हाथ है कि इसे कभी सीधे जनता की स्वीकृति नहीं मिली। इसका आधार केवल विभिन्न विधान-मण्डलों की सहमति है, जिससे अपनी शक्ति की वैधता के सम्बन्ध में इसे बहुधा पेचीदा सवालों का सामना करना पड़ता है और कुछ मामलों में इसने विधेयक निरस्त करने के जबरदस्त सिद्धान्त को जन्म दिया है। अमरीकी साम्राज्य का गठन जन-सहमति के ठोस आधार पर होना चाहिये। राष्ट्रीय शक्ति की सभी धाराएँ सारी वैध सत्ता के इसी शुद्ध और आदि स्रोत से प्रवाहित होनी चाहिए।

'हर प्रकार के शोध-प्रबन्धों में कुछ प्राथमिक सत्य या मूल सिद्धान्त होते हैं जिन पर बाद के सारे तर्क आधारित होते हैं। इनमें एक आन्तरिक प्रमाण होता है, जो सारे विचार और संयोजन के पहले आता है और दिमाग की स्वीकृति उसे प्राप्त होती है। जहाँ उसका ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता वहाँ उसके पीछे या तो ग्रहण-इन्द्रियों का कोई दोष या अव्यवस्था होती है या कोई सबल हित या मनोवेग या पूर्वग्रह होता है। रेखागणित की ये उक्तियाँ इस कोटि की हैं कि 'सम्पूर्ण अपने अंशों से बड़ा होता है। दो सरल रेखाएँ कोई स्थान नहीं घेर सकतीं और सारे समकोण एक-दूसरे के बराबर होते हैं।' नीतिशास्त्र और राजनीति की ये अन्य उक्तियाँ भी इसी कोटि की हैं कि कारण के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। कि साधन को साध्य के अनुपात में होना चाहिये। कि हर

शक्ति अपने उद्देश्य के अनुकूल होनी चाहिये। कि जिस शक्ति का उद्देश्य ऐसे लक्ष्य की पूर्ति करना हो जिसे सीमित न किया जा सकता हो, उसे सीमित नहीं करना चाहिये।

'जो विषय उसे सौंपे जाते हैं उनकी पूर्ण उपलब्धि के लिए और जिन कामों के लिए वह जिम्मेदार है उन्हें पूरी तरह कार्यान्वित करने के लिए, हर आवश्यक शक्ति शासन में होनी चाहिये और जनहित तथा जनभावना का ध्यान रखने के अतिरिक्त इस पर और कोई नियन्त्रण नहीं होना चाहिये।

"राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान रखने और विदेशी या आन्तरिक हिंसा के विरुद्ध सार्वजनिक शान्ति को सुरक्षित रखने के कर्तव्यों में ऐसी धन-राशि और ऐसे खतरों की सम्भावना निहित है, जिनकी कोई सीमा बाँधना सम्भव नहीं है। अत सम्बन्धित व्यवस्था की शक्तियों में भी राष्ट्र की आवश्यकताओं और समाज के प्रसाधनों के अतिरिक्त और कोई सीमा नहीं होनी चाहिए।

"राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने का अनिवार्य माध्यम राजस्व है। अत उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने से सम्बन्धित व्यवस्था में राजस्व प्राप्त करने की पूरी शक्ति भी सम्मिलित होनी चाहिए।

"धन को उचित ही राजनीतिक ढाँचे का मर्म-सिद्धान्त माना जाता है। यही उसके जीवन और गति को कायम रखता है और उसे अपने सर्वाधिक आवश्यक कार्यों को पूरा करने के योग्य बनाता है। अत' जहाँ तक समाज के प्रसाधन इसकी अनुमति दें वहाँ तक धन की पर्याप्त और नियमित प्राप्ति की पूर्ण शक्ति को हर संविधान का एक अपरिहार्य अंग समझना चाहिए।

'आमतौर पर राष्ट्र अधिक व्यवहारिक प्रकार के शासनों के अन्तर्गत भी अपनी वित्तीय व्यवस्था का प्रशासन किसी एक व्यक्ति को या कुछ व्यक्तियों से मिलकर बने मण्डल को सौंप देते हैं, जो सर्वप्रथम कराधान की योजनाओं पर विचार करके उन्हें तैयार करते हैं और बाद में उन्हें राजा या विधान मण्डल की सत्ता द्वारा कानून का रूप दे दिया जाता है।

'हर जगह जिज्ञासु और प्रबुद्ध राजनेता राजस्व के उचित क्षेत्रों का विवेक-पूर्ण चयन करने के सर्वाधिक योग्य माने जाते हैं। करारोपण के उद्देश्य के लिये स्थानीय परिस्थितियों के किस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है, इसका स्पष्ट संकेत उपर्युक्त बात से मिलता है।

"एक विचार है, जिसके समर्थकों का अभाव भी नहीं है कि सशक्त कार्यकारिणी गणतान्त्रिक शासन के चरित्र के प्रतिकूल है। गणतान्त्रिक शासन के प्रबुद्ध समर्थक कम से कम यह आशा करेंगे कि यह विचार निराधार है, क्योंकि स्वयं अपने सिद्धान्तों को निकम्मा ठहराये बिना वे इसके सत्य को स्वीकार नहीं

कर सकते । अच्छे शासन की परिभाषा में कार्यकारिणी की शक्ति एक प्रमुख अंग है ।

"कुछ लोग ऐसे हैं जो समाज या विधान-मण्डल के तात्कालिक प्रवाह के प्रति दासतापूर्ण आज्ञाकारिता को ही कार्यकारिणी का सर्वश्रेष्ठ गुण मानते हैं । किन्तु, शासन की स्थापना जिन उद्देश्यों के लिए होती है और वे साधन सचमुच क्या हैं, जिनके द्वारा सार्वजनिक सुख की अभिवृद्धि हो सकती है, इस सम्बन्ध में ऐसे व्यक्तियों के विचार बिल्कुल कच्चे हैं । गणतान्त्रिक सिद्धान्त की यह माँग होती है कि समाज की सुविचारित भावना उनके व्यवहार का अनुशासन करे, जिन्हें वह अपने कार्यों का प्रबन्ध सौंपता है । लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वे आवेग के हर आकस्मिक झोंके को, या जन-साधारण के हितों से द्रोह करने के लिए उनके पूर्वाग्रहों को भड़काने वाले व्यक्तियों की चालों से उत्पन्न हर अस्थायी भावना को बिना शर्त चुपचाप स्वीकार कर लें । यह कथन उचित है कि लोगों का 'अभिप्राय' सामान्यतः 'जनहित' होता है । यह बात बहुधा उनकी गलतियों पर भी लागू होती है । किन्तु उनकी सद्बुद्धि अपने उस प्रशंसक का तिरस्कार करेगी जो यह पाखण्ड करे कि जनहित की अभिवृद्धि के 'साधनों' के सम्बन्ध में हमेशा उनका 'विवेक सही' होता है । वे अनुभव से जानते हैं कि वे कभी-कभी गलती करते हैं । आश्चर्य इस बात का है कि परजीवियों और चाटुकारों की चालों से, महत्त्वाकांक्षी लोभी और समाज-विरोधी लोगों के फन्दों से और ऐसे लोगों के छल से जिन्हें जनता का उतना विश्वास प्राप्त है जिसके वे योग्य नहीं हैं, अथवा जो उसके योग्य बने बिना उस विश्वास को प्राप्त करना चाहते हैं, निरन्तर घिरे रहने पर भी वे इतनी कम गलतियाँ करते हैं । जब ऐसे अवसर आवें कि जनहित और जन-प्रवृत्ति में भिन्नता हो, तो उन हितों के संरक्षण के लिए जनता ने जिन व्यक्तियों को नियुक्त किया है उनका यह कर्तव्य है कि अस्थायी भ्रम का वे सामना करें ताकि लोगों को अधिक ठण्डे दिमाग से और शान्ति से विचार करने का समय और अवसर मिले । ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें इस प्रकार के व्यवहार ने लोगों को स्वयं अपनी गलतियों के अत्यधिक घातक परिणामों से बचाया और उनकी कृतज्ञता के स्थायी स्मारक ऐसे व्यक्तियों को प्रदान किये जिनमें लोगों की अप्रसन्नता का खतरा उठाकर भी उनकी सेवा करने का साहस और बड़प्पन था ।"[1]

१ अलेक्जेण्डर हैमिल्टन, जॉन जे और जेम्स मैडिसन : दी फेडरलिस्ट, एडवर्ड मीड अर्ल द्वारा सम्पादित (एक सौ पचास वर्षीय संस्करण, वाशिंगटन डी० सी० १९३७) पृष्ठ १० ११ १२ १३, १८, १६, १०२-१०३ १ १ १०४, ८६, १४०-१४१, १८८, १६०,१८२ १८३ २१८, ४५४, ४६४,४६५

राष्ट्रीय प्रशासन के इस सिद्धान्त का व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि न्याय की समस्याएँ स्थानीय शासनों को सौंपी जा सकती हैं, जबकि राष्ट्रीय सरकार का प्रमुख उद्देश्य लोगों के 'सामान्य हितों' की अभिवृद्धि होना चाहिए, ऐसे हित जिन्हें सामान्य जन स्वयं समझ नहीं पाते और इस कारण जिन्हें अनुभवी व्यक्तियों के हाथों में सौंपना जरूरी है। सर्वोत्तम शासन उन्हीं का होगा जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को तत्परता से लागू करके राष्ट्रीय धन में वृद्धि करेंगे। अमरीकी अर्थतन्त्र में विभिन्नता और सन्तुलित आत्म-निर्भरता लाने का हैमिल्टन का कार्यक्रम परम्परागत वाणिज्यवाद के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं था और न ही वह मुख्यतः संरक्षणवाद पर निर्भर था। हैमिल्टन ने खासतौर पर कहा कि शासन अन्तर्राज्य व्यापार की बाधाएँ हटाकर और शुल्क लगाने के बजाय अनुदान देकर उद्योग को सर्वोत्तम रीति से 'मुक्त' कर सकता है। किन्तु उन्हें 'सुरक्षित' सन्तुलित उत्पादन के सिद्धान्त पर भरोसा था। उचित 'प्रशासन' के द्वारा ऐसा किया जा सकता है कि विभिन्न वर्ग-हित और वर्ग एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। और सिद्धान्त से अधिक अनुभव के आधार पर हैमिल्टन ने कहा कि राष्ट्र की आवश्यकताएँ हमेशा राष्ट्र के प्रसाधनों के बराबर मानी जा सकती हैं।

लोकमत और लोगों को फुसलाने के तरीकों के प्रति हैमिल्टन के खुले तिरस्कार के स्वाभाविक परिणाम हुए। जब उसकी नीतियाँ अत्यधिक अलोकप्रिय हो गयीं तो वाशिंगटन के राजनीतिज्ञों ने उन्हें निकाल बाहर किया और अपनी अल्प जीवन का शेष काल (१७९५-१८०४) उन्होंने पद से अवकाश लेकर एक 'निराश राजनीतिज्ञ' और एक अविश्वासी आस्थाहीन दार्शनिक के रूप में गुजारा।

फ्रांस की क्रान्ति के समय हैमिल्टन जैसे अनुदारपन्थियों का सामान्यतः यूरोप में विश्वास नष्ट हो गया था और कठिनाई भरे अनुभव से उन्होंने सीखा कि 'यूरोपीय अस्थिरता' के साथ सम्बन्ध रखना कठिन है। वाटवाशी ने इसे व्यवहार में अनिवार्य बना दिया था कि अमरीका के अपनी प्रसाधनों की ओर आन्तरिक दिशा में और पश्चिम की ओर बढ़ जाए। १८१५ के बाद यूरोप से निराशा सभी वर्गों में थी और सारे अमरीका में एक रोमानी राष्ट्रवाद फैला। अमरीका सम्बन्धी जो रोमानी धारणाएँ यूरोप में बहुत दिनों से प्रचलित थीं उन पर अमरीकी लोग भी विश्वास करने लगे। एक वाग्मी पादरी विलियम इलेरी ने अपनी अमरीका में शिक्षा और कलाओं को प्रतिष्ठित करने की सम्भावना पर टिप्पणियाँ' (बर्केल प्लान ऑफ प्रास्पेक्ट्स ऑफ प्लांटिंग आर्ट्स ऐण्ड लर्निंग इन अमेरिका) में लिखा था—

कर सकते। अच्छे शासन की परिभाषा में कार्यकारिणी की शक्ति एक प्रमुख अंग है।

"कुछ लोग ऐसे हैं जो समाज या विधान-मण्डल के तात्कालिक बहाव के प्रति दासतापूर्ण मानम्यता को ही कार्यकारिणी का सर्वश्रेष्ठ गुण मानते हैं। किन्तु, शासन की स्थापना जिन उद्देश्यों के लिए होती है और वे साधन सचमुच क्या हैं जिनके द्वारा सार्वजनिक सुख की अभिवृद्धि हो सकती है, इस सम्बन्ध में ऐसे व्यक्तियों के विचार बिल्कुल कच्चे हैं। गणतान्त्रिक सिद्धान्त की यह माँग होती है कि समाज की सुविचारित भावना उनके व्यवहार का संचालन करे, जिन्हें वह अपने कार्यों का प्रबन्ध सौंपता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वे आवेग के हर आकस्मिक झोंके को या जन-साधारण के हितों से द्रोह करने के लिए उनके पूर्वाग्रहों को भड़काने वाले व्यक्तियों की चालों से उत्पन्न हुई अस्थायी भावना को बिना शर्त चुपचाप स्वीकार कर लें। यह कथन उचित है कि लोगों का 'अभिप्राय' सामान्यतः जनहित होता है। यह बात बहुधा उनकी गलतियों पर भी लागू होती है। किन्तु उनकी सद्बुद्धि अपने उस प्रशंसक का तिरस्कार करेगी जो यह पाखण्ड करे कि जनहित की अभिवृद्धि के 'साधनों' के सम्बन्ध में हमेशा उनका 'विवेक सही' होता है। वे अनुभव से जानते हैं कि वे कभी-कभी गलती करते हैं। आश्चर्य इस बात का है कि परजीवियों और चाटुकारों की चालों से महत्वाकांक्षी लोभी और समाज-विरोधी लोगों के फन्दों से और ऐसे लोगों के छल से जिन्हें जनता का उतना विश्वास प्राप्त है जिसके वे योग्य नहीं हैं अथवा जो उसके योग्य बने बिना उस विश्वास को प्राप्त करना चाहते हैं, निरन्तर घिरे रहने पर भी वे इतनी कम गलतियाँ करते हैं। जब ऐसे अवसर आयें कि जनहित और जन-प्रवृत्ति में भिन्नता हो तो उन हितों के संरक्षण के लिए जनता ने जिन व्यक्तियों को नियुक्त किया है उनका यह कर्तव्य है कि अस्थायी भ्रम का वे सामना करें ताकि लोगों को अधिक ठण्डे दिमाग से और शान्ति से विचार करने का समय और अवसर मिले। ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें इस प्रकार के व्यवहार ने लोगों को स्वयं अपनी गलतियों के अत्यधिक घातक परिणामों से बचाया और उनकी कृतज्ञता के स्थायी स्मारक ऐसे व्यक्तियों को प्रदान किये जिनमें लोगों की अप्रसन्नता का खतरा उठाकर भी उनकी सेवा करने का साहस और बड़प्पन था।"[1]

१ अलेक्ज़ेंडर हैमिल्टन, जॉन जे और जेम्स मैडिसन, 'दी फेडरलिस्ट', अरमन एड मिडेल द्वारा सम्पादित (एक सौ पचास वर्षीय संस्करण, वाशिंग्टन डी० सी० १९३७) पृष्ठ १० ११ ६१ ६६, ६८, ९९, १०२-१०३ १ १ १०४, ८६, १४०-१४१ १८८, १९० १८९-१९३, २१८, ४५४, ४६४,४६२

राष्ट्रीय प्रशासन के इस सिद्धान्त का व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि ग्राम की समस्याएँ स्थानीय शासकों को सौंपी जा सकती हैं जबकि राष्ट्रीय सरकार का प्रमुख उद्देश्य लोगों के 'सामान्य हितों' की अभिवृद्धि होना चाहिए, ऐसे हित जिन्हें सामान्य जन स्वयं समझ नहीं पाते और इस कारण जिन्हें अनुभवी व्यक्तियों के हाथों में सौंपना जरूरी है। सर्वोत्तम शासन उन्हीं का होगा जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को तत्परता से लागू करके राष्ट्रीय धन में वृद्धि करेंगे। अमरीकी अर्थतन्त्र में विभिन्नता और अन्ततः आत्म-निर्भरता लाने का हैमिल्टन का कार्यक्रम परम्परागत वाणिज्यवाद के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं था और न ही वह मुख्यतः संरक्षणवाद पर निर्भर था। हैमिल्टन ने खासतौर पर कहा कि शासन अन्तर्राज्य व्यापार की बाधाएँ हटाकर और शुल्क लगाने के बजाय अनुदान देकर उद्योग को सर्वोत्तम रीति से 'मुक्त' कर सकता है। किन्तु उन्हें मुख्यतः समुचित प्रशासन के सिद्धान्त पर भरोसा था। उचित 'प्रशासन' के द्वारा ऐसा किया जा सकता है कि विभिन्न राज्य-हित और वर्ग एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। और सिद्धान्त से अधिक अनुभव के आधार पर हैमिल्टन ने कहा कि राष्ट्र की आवश्यकताएँ हमेशा राष्ट्र के प्रसाधनों के बराबर मानी जा सकती हैं।

लोकमत, और लोगों को फुसलाने के तरीकों के प्रति हैमिल्टन के खुले तिरस्कार के स्वाभाविक परिणाम हुए। जब उनकी नीतियाँ अत्यधिक अलोकप्रिय हो गयीं तो वाशिंगटन के राजनीतिज्ञों ने उन्हें निकाल बाहर किया और अपने अल्प जीवन का शेष काल (१७९५-१८०४) उन्होंने पद से अवकाश लेकर एक 'निराश राजनीतिज्ञ' और एक अधिकाधिक आत्मघातीय दार्शनिक के रूप में गुजारा।

फ्रांस की क्रान्ति के समय हैमिल्टन जैसे अनुदारवादियों का सामान्यतः यूरोप में विश्वास नष्ट हो गया था और जेफर्सन ने अनुभव से यह सीखा कि 'यूरोपीय अस्थिरता' के साथ सम्बन्ध रखना कठिन है। जेफर्सन ने इसे व्यवहार में अभिव्यक्त कर दिया था कि अमरीका के अपने प्रसाधनों की ओर आन्तरिक दिशा में और पश्चिम की ओर बढ़ा जाए। १८१५ के बाद यूरोप से निराशा सभी दलों में थी और सारे अमरीका में एक रोमानी राष्ट्रवाद फैला। अमरीका सम्बन्धी जो रोमानी धारणाएँ यूरोप में बहुत दिनों से प्रचलित थीं उन पर अमरीकी लोग भी विश्वास करने लगे। एक फ्रांसीसी पादरी विकार अबे ने अपनी 'अमरीका में शिक्षा और कलाओं को प्रतिष्ठित करने की सम्भावना पर टिप्पणियाँ' (अंग्रेजी नाम दी पासिबिलिटी आफ़ फाउण्डिंग आर्ट्स ऐण्ड साइन्सेस इन अमेरिका) में लिखा था—

"निर्दोषिता के धाम, सुखी क्षेत्रों में
जहाँ प्रकृति निर्देशित करती और
सद्गुण शासन करते हैं'

— — —

'एक अन्य युग पाया जायेगा

— — —

'ऐसे नहीं जैसे यूरोप अपनी सड़न में उत्पन्न करता है

— — —

"साम्राज्य का मार्ग पश्चिम की ओर बढ़ता है
प्रथम चार अंक हो चुके हैं
पाँचवाँ अंक दिन के साथ नाटक को समाप्त करेगा
समय की अन्तिम सन्तान सर्वश्रेष्ठ है।

जोएल बार्लो ने मुख्यतः यही चित्र अपने 'चार जुलाई के भाषण' (ओरेशन ऑफ जुलाई फोर्थ १७८७) में प्रस्तुत किया और उसे अपनी हलचल मचा देने वाली 'यूरोप के विशेषाधिकार युक्त वर्गों को सलाह' (ऐडवाइस टु दी प्रिविलेज्ड ऑर्डर्स इन यूरोप १७९२) में और 'संयुक्त राज्य के अपने सह-नागरिकों को सम्बोधन' (पेरिस १७९९) में दोहराया और अपने देश को 'मानवी नीति का सुन्दरतम गठन जो संसार ने अभी तक देखा है' कहा। उन्होंने दावा किया कि अमरीका में नैतिक शक्ति भौतिक शक्ति का स्थान ले रही है और अमरीकी प्रवास यूरोप को स्थायी शान्ति की स्थापना का मार्ग दिखा सकते हैं जिसकी महान् आवश्यकता का अनुभव अच्छे लोग करते हैं और 'निर्विवाद रूप में यह प्रमाणित कर सकते हैं कि निरपेक्ष तटस्थता सापेक्ष तटस्थता से ज्यादा अच्छी है'। इस भावना का सर्वाधिक प्रचारित रूप नाह वेब्स्टर की 'स्पेलर'[1] की भूमिका है, जिसे हिज्जेवार के पाठ-वाक्य के रूप में पीढ़ियों तक पढ़ा गया और उसकी नकल की गयी।

'यूरोप मूर्खता भ्रष्टाचार और अत्याचार में बूढ़ा हो गया है। उस देश में कानून विकृत हैं आचार उच्छृंखल हैं, साहित्य का ह्रास हो रहा है और मानव स्वभाव पतित हो गया है। अमरीकी महिमा प्रभात काल में अनुकूल समय पर और प्रशंसनीय परिस्थितियों में आरम्भ हो रही है। सारे संसार का अनुभव हमारी आँखों के सामने है। किन्तु बिना विवेक के यूरोप से शासन आचार और साहित्यिक रुचि के सिद्धान्तों को ग्रहण करके उनकी भूमि पर अमरीका में हमारी अपनी व्यवस्था को निर्मित करने का प्रयास शीघ्र ही हमें विश्वास दिला देगा कि

१ वेब्स्टर की रचना ए ग्रेमेटिकल इन्स्टीट्यूशन ऑफ दी इंगलीश लैंग्वेज का पहला भाग जो हिज्जे के सम्बन्ध में है।—अनु०

प्राचीनता के पिछड़े हुए खम्भों पर कभी कोई टिकाऊ और शानदार इमारत नहीं खड़ी की जा सकती।"

कांग्रेस (अमरीकी संसद्) और जिस को प्रेसीडेण्ट मुनरो का प्रसिद्ध सन्देश (१८२३) इस स्थापना पर आधारित था कि 'हमारी व्यवस्था' यूरोप की प्रतिपक्षी है, और इस कारण 'पुरानी दुनिया की शक्तियों द्वारा उनकी व्यवस्था' को इस गोलार्द्ध में फैलाने का कोई भी प्रयास 'हमारी शान्ति और सुरक्षा' के लिए खतरनाक होगा। इस प्रकार अमरीकी व्यवस्था नयी दुनिया का प्रतीक बन गयी। राजनीतिक जनता-वर्ग अमरीकी विस्तार के क्षेत्र में दक्षिणी अमरीका को भी सम्मिलित करने के पक्ष में था। सर हेनरी क्ले ने 'महाद्वीपीय' दृष्टिकोण को और विस्तार देकर हिम अक्षांशों से ऊपर गोलार्द्ध सम्बन्धी एक विशाल योजना बनाया। यूरोप से अलगाव की नीति और 'नैतिक राज्य' की विधेयात्मक धारणा, दोनों को ही एडवर्ड एवरेट ने विकसित किया। 'एक सुनिर्मित सफल प्रजाधिपत्य' के प्रति उनके उत्साह ने जो वे जर्मनी से अपने साथ लाये थे उनकी वक्तृता-शक्ति को और बढ़ा दिया।

"अमरीकी नीति का यही सिद्धान्त जिसकी ओर हमारे देश की भौगोलिक विशेषताओं के अतिरिक्त, हमारी व्यवस्था की सम्पूर्ण भावना हमें ले जाती है, 'यूरोप से अलगाव' का है। 'देश में संघ' के बाद जिसे हमारे अस्तित्व की अनिवार्य शर्त के बजाय हमारा अस्तित्व ही कहना चाहिये अन्य सभी देशों से अलगाव वह महान् सिद्धान्त है, जिसके द्वारा हमें समृद्ध होना है। यह हमारे इतिहास की आवाज़ है, जो बताती है कि हमारे चरित्र में जो कुछ श्रेष्ठ है और हमारे भाग्य में जो कुछ समृद्धि है, उसके पीछे असहमति अनुरूपता का अभाव अन्तर, प्रतिरोध और स्वतन्त्रता रही है।

'मानवी मामलों में नैतिक शक्ति का सबसे बड़ा ज्ञात वाहक, संगठित और समृद्ध राज्य है। व्यक्तिगत रूप में मनुष्य जो कुछ भी कर सकता है.. वह मानवी कार्यकलाप और मानवी सुख पर एक सुनिर्मित सफल प्रजाधिपत्य के प्रभाव की तुलना में कुछ भी नहीं है। मनुष्य अपनी प्रकृति में न जंगली है, न सन्यासी, न गुलाम बल्कि एक सुव्यवस्थित परिवार का सदस्य है, एक अच्छा पड़ोसी है, एक स्वतन्त्र नागरिक है, एक जानकार सच्चा आदमी है, जो अपने समान अन्य लोगों के साथ काम करता है। यही पाठ है जो हमारी स्वतन्त्रता के अधिकार-पत्र में सिखाया गया है। यही पाठ है जो हमारे उदाहरण से विश्व को सीखना चाहिए।'[1]

१ एडवर्ड एवरेट, 'ओरेशन्स ऐण्ड स्पीचेज ऑन वेरियस अकेजन्स' (बोस्टन, १८५३-६८) पृष्ठ ४१, १२६ १४०। पहला पैरा १८२४ का है और दूसरा १८२६ का।

यह पाठ स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र में नहीं सिखाया गया था। लेकिन इसका महत्व अधिक नहीं था कि इस पाठ को एवरेट ने जर्मनी में सीखा मुनरो ने वाशिंगटन में जान क्विन्सी आडम्स ने बोस्टन में या चार्ल्स जैरेड इंगरसोल ने फिलाडेल्फिया में क्योंकि यही पाठ था जो वे सब मिलकर संसार को सिखा रहे थे।

प्रसारवादी कार्यक्रम जो सहूलियत के रूप में प्रारम्भ हुआ था १८१५ में एक कठोर आवश्यकता बन गया। प्रेसिडेन्ट मैडिसन को अन्ततः अमरीकी अर्थतन्त्र पर अपनी विदेश नीति और इंगलिस्तान द्वारा नेपोलियन की आर्टलान्टियों के विनाशकारी परिणाम को स्वीकार करना पड़ा और १८१५ के अपने सन्देश में एक राष्ट्रीय मुद्रा के सृजन विनिर्माताओं के संरक्षण और सड़कों तथा नहरों के निर्माण की अपील करके उन्होंने विरुद्ध लोगों को भारी चकित कर दिया। कट्टर गणतन्त्रवादी होने पर भी मैडिसन सैद्धान्तिक रूप में इस धारणा और नीति-परिवर्तन के लिए बहुत-कुछ तैयार थे। बहुत पहले से ही उनका यह सिद्धान्त था कि यद्यपि जनमत ही वास्तविक प्रभु है, किन्तु शासन के कर्तव्य का यह भी एक अंश है कि इस 'प्रभुसत्ता के संशोधन' का प्रयास करे। अर्थात्, जनमत को मोड़ने या 'प्रबुद्ध' बनाने की चेष्टा करे। अब मैडिसन और मुनरो अपने गणतान्त्रिक 'प्रभु' के साथ जुटे और जन-दृष्टियों को परिष्कृत और विस्तृत करते रहे जब तक कि समाज की इच्छा कांग्रेस में भी इतनी काफी प्रबुद्ध नहीं हो गयी कि संरक्षण शुल्क और सार्वजनिक निर्माण के कार्यक्रम की आवश्यकता को समझने लगे। कैलहन और दक्षिण के लड़ाकू नेताओं ने अब राष्ट्रवाद के एक कार्यक्रम का नेतृत्व किया। इससे ह्विग दल या राष्ट्रीय गणतन्त्रवादियों को वास्तव राष्ट्रीय चरित्र प्राप्त हुआ और रूफ़ास किंग एम्स और कर्नल टिमाथी पिकरिंग जैसे पुराने न्यू-इंग्लैण्ड के संघवाद के बिखरे हुए अवशेष समाप्त हो गये।

नये ह्विग राष्ट्रीयवाद के सर्वोत्तम सैद्धान्तिक व्याख्याकार जान क्विन्सी आडम्स थे। उन्होंने जानबूझ कर अपने पिता के मार्ग का परित्याग किया जिन्होंने शासन को न केवल शासन की विभिन्न शक्तियों के बीच वरन् विभिन्न गुट हितों के बीच की आपसी रोकथाम और सन्तुलन की चीज माना था। इसके विपरीत उन्होंने जनहित को जनता की एकता पर आधारित व्यापक उद्देश्य माना और शासन को जनहित की सेवा में 'मित्रों के सहयोग' के रूप में देखा।

"राष्ट्रीय विचारक सभाओं का निर्माण और उद्देश्य ही सभी के हितों—सारे राष्ट्र के हितों—में समझौता और मेल बिठाने के लिए था। इस व्यापक संघ के अधिकारों और हितों से सम्बन्धित प्रश्नों की 'पूरी सचाई' निजी संवेदना, स्थानीय पूर्वाग्रह पेशेवर कार्य या भौगोलिक स्थिति के माध्यम से नहीं समझी जा

सकती। (प्रतिनिधियों को) किसी एक राज्य के नागरिक के रूप में अपने हितों और अपनी भावनाओं को राष्ट्रीय हित के सामान्य भण्डार में डाल देना चाहिए।[1]

आडम्स ने 'राष्ट्रीय हित' को जो निश्चयात्मक और ठोस अन्तर्वस्तु प्रदान की उसके कारण उनका सिद्धान्त राष्ट्रीय हित की केवल मौखिक कल्पना ही नहीं रहा। कांग्रेस को उनके पहले सन्देश (१८२५) का अन्त बन 'सुधार' के उनके सिद्धान्त की निम्नलिखित रूपरेखा से हुआ—

'नागरिक शासन की स्थापना का महान् उद्देश्य उन लोगों की दशा को सुधारना है जो सामाजिक अनुबन्ध में भागीदार हैं और कोई शासन चाहे उसकी रचना किसी भी रूप में हो अपनी स्थापना के वैध लक्ष्यों को उसी अनुपात में पूरा कर सकता है, जिस अनुपात में वह उनकी दशा सुधारता है जिन पर वह स्थापित है। सड़कें और नहरें, जो दूरस्थ क्षेत्रों और जनसमूहों के बीच संचार और आवागमन को बढ़ाती और सुविधाजनक बनाती हैं सुधार के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधनों में से हैं। लेकिन हमारी सृष्टि के जनक ने नैतिक राजनीतिक और बौद्धिक सुधार के कर्तव्य व्यक्ति मनुष्य को ही नहीं सामाजिक मनुष्य को भी सौंपे हैं। इन कर्तव्यों की पूर्ति के लिए सरकारों को शक्ति प्रदान की जाती है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए—शासितों की दशा में अधिकाधिक सुधार—प्राप्त शक्तियों का प्रयोग उतना ही अनिवार्य और पवित्र कर्तव्य है जितना अनधिकृत शक्तियों को हथियाना घृणित और अपराधपूर्ण है।

अगर ये और संविधान में उल्लिखित अन्य शक्तियाँ खेती, व्यापार और विनिर्माणों में सुधारों का प्रवर्तन करने शिल्प और ललित कलाओं को प्रोत्साहन देने साहित्य की अभिवृद्धि और विज्ञान की प्रगति लाने वाले कानूनों के द्वारा प्रभावकारी रूप में सक्रिय हो सकती हैं तो जनता के हित में उनका प्रयोग न करना हमें सौंपी गयी प्रतिमा को भूमि में दबा देने के समान होगा—सर्वाधिक पवित्र कर्तव्य के प्रति द्रोह होगा।

'सुधार की भावना धरती पर व्याप्त है।

"युवा आडम्स ने लिखा कि उनके पितामह का विश्वास था कि 'विधाता की देन के द्वारा', 'धन का एक असीमित भण्डार' अमरीकी लोगों को 'ऐसी किसी प्रतियोगिता के दबाव से जिसके द्वारा युद्ध उत्पन्न होने की सम्भावना हो ऊपर उठाएगा।

---

१ जॉन क्विन्सी आडम्स 'ए लैटर टु दी ओनरेबिल हैरिसन ग्रे ओटिस ऑन दी प्रेजन्ट स्टेट ऑफ़ अवर नेशनल अफ़ेयर्स' (बोस्टन १८०८) पृष्ठ ५।

'मत' उनके सामने गम्भीर समस्या केवल यह थी कि इस देश का विकास प्रतियोगिता और स्वार्थ के आधार पर न करके सामूहिक आधार पर कैसे करें। ईमानदार कार्यकारी अधिकारी द्वारा यह कार्य हो सकता था अगर उसे एक बुद्धिपूर्ण और शिक्षित प्रशासनिक सेवा का समर्थन मिले जिसमें एक उलझे हुए संगठन को वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर चलाने की क्षमता हो।'[1]

व्हिग लोगों ने निःसन्देह अमरीकी व्यवस्था और 'जनहित' की स्थापनाओं का इस्तेमाल भूमि के छुट्टे और उद्योग में अपने पूंजी निवेश और संरक्षण शुल्क *राष्ट्रीय बैंक व्यवस्था और पश्चिमी तथा दक्षिणी अमरीका में व्यापारिक विस्तार* से होने वाले अपने निजी मुनाफ़ों पर परदा डालने के लिए किया। हेनरी क्ले के हाथों में दल और उसके सिद्धान्त निश्चित सीमित हो गये। कैलाउन को भी १८२८ के बाद अपने राष्ट्रवाद पर पछतावा हुआ और व्हिग लोगों को चुनौती देते हुए उन्होंने कहा कि 'सामूहिक रूप में अमरीकी जनता जैसी किसी राजनीतिक इकाई का अस्तित्व न अब है, न पहले कभी था। कैलाउन का बाद में निरूपित और विस्तृत 'समवर्ती बहुमत' का सिद्धान्त स्पष्टतः जेफ़रसन के सिद्धान्तों की ओर वापस आने पर आधारित था और राजनीतिक दर्शन में एक मौलिक देन के रूप में उसे जो मान्यता मिली है, उसके योग्य नहीं है। निश्चय ही इसमें बिना प्राकृतिक अधिकारों और सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त का परम्परागत समर्थन किये अल्पसंख्यकों के अधिकारों का चतुराई से समर्थन किया गया था और इसने संवैधानिक शासन में शक्तियों के विभाजन के अलावा रोकथाम और सन्तुलन के सिद्धान्त को डेमोक्रेटिक दल की राजनीति पर भी लागू करके उस सिद्धान्त का आधुनिकीकरण किया किन्तु इन क्रियात्मक नवीनताओं के अतिरिक्त उनके तथ्य और विचार जेफ़रसनवादी ही थे।[2] अपनी युवावस्था के राष्ट्रवाद

---

१ चार्ल्स ए० बीयर्ड कृत 'दी अमेरिकन स्पिरिट' (न्यूयार्क १६४२) में उद्धृत, पृष्ठ १६८-१६६।

२. "वे अपने को लोकतन्त्रवादी मानते थे लेकिन उन्होंने सचमुच कभी लोकतन्त्र के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं किया और सामान्य व्यक्ति जिस विश्वास और अपूर्वानुमेय शक्ति का प्रतिनिधि है, उसे सफलतापूर्वक संभालना वे कभी नहीं सीख पाये।"

"शासन-तन्त्र पर एक ही स्वार्थमय हित का नियन्त्रण हो गया था और वह अत्यन्त दीर्घ है, किन्तु बुरी तरह राष्ट्र के एक तिहाई भाग को लूट रहा था। उनकी आँखों के सामने लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का एक चक्र पूरा हो गया

को अस्वीकार करने, और स्थानीय हितों के अधिकारों पर पुनः आग्रह करने में वे सर्वाधिक स्पष्ट रूप में जैफरसनवादी हैं। केलहाउन का उदाहरण ह्विग राजनीतिज्ञों में परस्पर आवश्यकताओं के हित में राष्ट्रवादी सिद्धान्तों के बलिदान की सामान्य प्रवृत्ति का सर्वाधिक नाटकीय उदाहरण है। शायद यहाँ डेनियल वेब्स्टर की भी चर्चा कर देनी चाहिए, यद्यपि वे दार्शनिक नहीं थे। उनका राष्ट्रवादी दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही न्यू-इंगलैण्ड के व्यापार की सेवा में था। जब वे यह घोषणा करते थे कि स्वतन्त्रता और संघ अविच्छिन्न हैं तो वे स्पष्टतः असली दार्शनिक प्रश्न से बच रहे थे, जिसे केलहाउन ने ललकार दी थी यानी—स्वतन्त्रता और संघ एक साथ सम्भव कैसे हैं? इस प्रश्न का राजनीतिक हल भी उतना ही कठिन प्रतीत होता था जितना दार्शनिक हल। स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय एकता दोनों में ही आस्था बढ़ी, लेकिन दोनों में संघर्ष भी बढ़ा।

जबकि 'अमरीकी व्यवस्था' राजनीतिज्ञों के हाथ पतित होकर गुटवाद का रूप ले रही थी, राजनीतिज्ञ-अर्थशास्त्रियों ने इसे अधिक सन्तोषजनक बौद्धिक विकास प्रदान किया। यह स्वाभाविक और हैमिल्टन की भावनाओं के अनुकूल था कि ह्विगवाद का सर्वोत्तम रूप राजनीति के बजाय अर्थशास्त्र में पूर्ण हो। यह भी स्वाभाविक था कि इस प्रकार के राष्ट्रवाद का मुख्य केन्द्र पेन्सिलवेनिया में और उसके आस-पास हो। अमरीकी आर्थिक राष्ट्रवाद की सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावकारी अभिव्यक्तियों में से एक फिलाडेल्फिया के वकील और संसद् सदस्य—चार्ल्स जैरेड इंगरसोल द्वारा हुई। उन्होंने '१८०८ में, जब अमरीकी व्यापार सबसे गिरी हुई हालत में था 'सॉल, सॉल व्हाई परसीक्यूटेस्ट दाउ मी?' (सॉल, सॉल तू मुझे क्यों सताता है?) शीर्षक से अंग्रेजी हस्तक्षेप की एक तीव्र आलोचना प्रकाशित की। उन्होंने पहले संकेत किया कि अन्तरराष्ट्रीय क़ानून पर निर्भर रहना बेकार है।

'हम अमरीकी स्वतन्त्र राष्ट्रों की पंक्ति में पहली बार खड़े हुए हैं, ऐसे समय जब रक्त हो रहा है। हमारा यह विनम्र निश्चय है कि हमारे विवेक के

था, और अन्ततः उन्होंने समस्या को उसी रूप में देखा जिस रूप में रैंडल्फ और जॉन टेलर ने बहुत पहले ही देख लिया था। उन्होंने अब समझ लिया कि मनुष्य स्वभावतः लाभ की भावना से परिचालित होते हैं और धरती पर मनुष्यों के किसी भी समूह के बहुमत से निजी उदारशीलता की माँग करना एक ऐसी माँग है जिसे मानवी प्रकृति पूरा नहीं कर सकती।" (चार्ल्स एम॰ विल्टसे, 'जॉन सी॰ केलहाउन, नैशनलिस्ट, १७८२-१८२८' इंडियानापोलिस १९४४, पृष्ठ २०१-१९९।)

अनुसार जो सही होगा, वही करेंगे। संघर्षरत उभय पक्ष बारी-बारी से हमारी भर्त्सना करते हैं क्योंकि हम स्वयं राष्ट्रों के उस समाज में शोर और विरसता के अतिरिक्त और कुछ नहीं खोज पाते जिसके बारे में हर पक्ष अपनी दृष्टि के अनुसार घोषित करता है कि वह बड़ा समरस और रोचक है।

'अतः' बिना विरोधाभास के कहा जा सकता है कि अनधिकृत और परस्पर असहमत सम्पादकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रथाओं और सम्बन्धों के जिस अनिश्चित संग्रह को 'राष्ट्रों का क़ानून' कहा जाता है, वह वास्तव में किसी भी राष्ट्र के लिए क़ानून नहीं है।

इस दृष्टि के निराधार तथ्यवाद को ही संयुक्त राज्य अमरीका ने अपने विधि-शास्त्र की एक आधारशिला बनाया है। मातृ-देश (इंगलिस्तान) से प्राप्त एक अमूल्य विरासत के रूप में राष्ट्रों के क़ानून को आम क़ानून का एक अंग माना जाता है और संयुक्त राज्य तथा अधिकांश अलग-अलग राज्यों की अदालतों में इसे एक सर्वोच्च अधिकारयुक्त नियम का स्थान प्राप्त है।[1]

इंगरसोल ने फिर कहा कि क़ानूनी या सामरिक कार्यवाही चूँकि व्यावहारिक उपाय नहीं है इस कारण अमरीका को 'सचमुच स्वतन्त्र' बनाने के लिए एक शुल्क-युद्ध आवश्यक है।[2] इस बीच मैथ्यू कैरी नामक एक उत्साहपूर्ण आयरी शरणार्थी फ़िलाडेल्फ़िया में 'दी अमेरिकन मर्करी' का सम्पादन कर रहे थे। इस पत्रिका में मुख्यतः आर्थिक समस्याओं की चर्चा होती थी और इंगलिस्तान का प्रत्याख्यान होता था। अपनी पत्रिका के लेखों और अपने प्रकाशन-गृह से निकलने वाली पुस्तकों के प्रूफ़ पढ़ते-पढ़ते वे और उनके पुत्र हेनरी कैरे अर्थशास्त्री बन गये। १८१४ में मैथ्यू कैरी ने 'दी ओलिव ब्राञ्च' प्रकाशित की जिसमें उन्होंने १८१२ के युद्ध से उत्पन्न सभी दलों के बीच सहयोग का एक व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। वे इंगलिस्तान-विरोधी संरक्षणवाद के सर्वप्रमुख प्रवर्तक बन गये किन्तु सार्वजनिक निर्माण और आर्थिक

---

१ चार्ल्स जरेड इंगरसोल, 'ए व्यू ऑफ़ दी राइट्स एण्ड रौंग्स, पावर ऐण्ड पॉलिसी ऑफ़ दी यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका' (फ़िलाडेल्फ़िया १८०८), पृष्ठ १४-१६।

२ इंगरसोल ने बाद में अपने दृष्टिकोण को अधिक व्यापक रूप देकर उसमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को भी सम्मिलित कर लिया। देखिए, उनका भाषण 'दी इन्फ़्लुएन्स ऑफ़ अमेरिका ऑन दी माइण्ड' (१८२३) जोसेफ़ ब्लो द्वारा सम्पादित अमेरिकन फ़िलॉसॉफ़िक ऐड्रेसेज़ १७००-१९०० (न्यूयार्क १९४६) में पुनः मुद्रित पृष्ठ २-१६।

प्रचार के ह्विग कार्यक्रम के विचार-दर्शन के रूप में उन्होंने 'हितों की समरसता' के एक रचनात्मक आर्थिक सिद्धान्त का भी प्रचार किया।[1] वे ही जर्मनी से निर्वासित फ्रीडरिच लिस्ट के आतिथेय बने, जिन्होंने १८२७ में अमरीकी राष्ट्रवादियों की प्रेरणा से और थॉमस कूपर की रचना 'लेक्चर्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भाषण, १८२६) का खण्डन करते हुए अपनी पुस्तक 'आउटलाइन्स ऑफ़ अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी' (अमरीकी राजनीतिक अर्थशास्त्र की रूपरेखा) प्रकाशित की। कूपर जैफ़रसन के निजी मित्र रहे थे और अपने पूर्वकालिक पेन्सिलवेनिया वास के दिनों में उन्होंने देशी विनिर्माताओं को प्रोत्साहन देने के पक्ष में भाषण दिये थे। उन्होंने संस्थापित अर्थशास्त्र की व्याख्या विदेशी व्यापार के विरुद्ध एक तर्क के रूप में की थी। किन्तु दक्षिण कैरोलिना को हटाये जाने के बाद उनके विचार अधिक खेतिहरवादी हो गये और उन्होंने मुख्यतः जाँ बैप्टिस्ते से के प्रकृतिवादी सिद्धान्तों का सहारा लिया। लिस्ट की आलोचना से यह प्रश्न उठ गया कि जैफ़रसन और हैमिल्टन के समर्थकों के बीच मौलिक विवाद अब भी कायम थे।

दार्शनिक दृष्टि से ह्विग राष्ट्रवाद के सर्वाधिक रोचक व्याख्याता बाल्टिमोर के एक वकील डैनियल रेमॉण्ड थे। उन्होंने १८२० में 'थॉट्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (राजनीतिक अर्थशास्त्र पर विचार) प्रकाशित की जो किसी अमरीकी द्वारा इस विषय पर लिखा गया पहला व्यवस्थित निबन्ध था। इस रचना के चार संस्करण निकले। चौथा संस्करण एक संक्षिप्त, पाठ्यक्रमीय पाठ था, जिसमें से सर्वाधिक रोचक दार्शनिक टिप्पणियों का अधिकांश निकाल दिया गया था। रेमॉण्ड ने आडम स्मिथ की रचना 'वेल्थ आफ़ नेशन्स' की आधारभूत मान्यताओं की तीव्र आलोचना करने के अतिरिक्त एक ऐसा उपयोगितावादी अर्थशास्त्र निरूपित किया कि अगर जॉन स्टुअर्ट मिल अपने नीतिशास्त्र को आगे बढ़ा कर अपने

---

१ "उन्होंने संयुक्त राज्य में खेतिहर समुदायों की सीमाओं को समझ लिया। वे चाहते थे कि अमरीका सादगी से पेचीदगी की ओर बढ़े। वे अमरीका के युवकों के लिए व्यवसाय धन्धों की संख्या कई गुना बढ़ाना चाहते थे। केवल ऐसे प्रौढ़ और पेचीदा समाज में ही स्वतन्त्र व्यक्ति का लोकतान्त्रिक आदर्श मूर्त हो सकता था। राष्ट्र को राजनीतिक के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी स्वतन्त्र होना चाहिए। जब तक ऐसी स्वतन्त्रता यथार्थ नहीं हो जाती तब तक अमरीकी अपने को स्वतन्त्र मनुष्य नहीं कह सकते।' (राल्फ़ हेनरी गैब्रिएल, दी कोर्स आफ़ अमेरिकन डेमोक्रैटिक थॉट (न्यूयार्क १९४०, पृष्ठ ८१।)

अर्थशास्त्र तक भी जाते तो शायद वैसा ही परिणाम होता।[1] जिसे पिछले दिनों 'कल्याणकारी अर्थशास्त्र' कहा जाने लगा है, रेमॉण्ड की रचना उसे एक उत्तम दार्शनिक अधिविन्यास प्रदान करती है। रेमॉण्ड की दृष्टि में राजनीतिक अर्थशास्त्र पूर्णतम अर्थ में एक नैतिक विज्ञान है और राष्ट्रीय धन सम्बन्धी खोज उसका उचित विषय है। राष्ट्रीय धन, वैयक्तिक धन से पूर्णतः भिन्न है, क्योंकि राष्ट्र 'एक अलग और अविभाज्य' इकाई है और उसका धन उसके नागरिकों के धन का जोड़ मात्र नहीं है। व्यक्ति का धन या निजी अर्थ-व्यवस्था 'माल का ऐसा उपयोग है जिससे निजी आनन्द का अधिकतम भाग उपलब्ध हो। यह सम्पत्ति का रूप लेता है और चूंकि सम्पत्तियों का विनिमय हो सकता है इस कारण एक-दूसरे के सन्दर्भ में उनका 'मूल्य' (विनिमय मूल्य) माना जाता है। राष्ट्र का सामूहिक धन सम्पत्ति नहीं है और उसका कोई मापन योग्य मूल्य नहीं है। 'मितव्ययिता' के द्वारा उसे संचित नहीं किया जा सकता। वह ऐसा धन है जो परिसञ्चरित हो या जिसका उपभोग हो। वह जीवन की 'आवश्यकताएँ और आराम प्राप्त करने की' लोगों की सामूहिक 'क्षमता' है। इन आवश्यकताओं और आरामों का स्रोत धरती है। उनका 'कारण' या उन्हें प्राप्त करने की क्षमता उद्योग या श्रम है। अतः उत्पादन केवल वहीं तक धन है जहाँ तक उसका उपभोग हो। एक प्रकार का श्रम ऐसा है जो केवल अप्रत्यक्ष रूप में उत्पादक है, क्योंकि उसके फल तत्काल उपभोग्य नहीं होते। ऐसा रेमॉण्ड के शब्दों में 'स्थायी या प्रभावकारी श्रम, सार्वजनिक कार्यों में विशेषतः महत्त्वपूर्ण होता है। लोभ और ऐश्वर्य' जीवन की आवश्यकताओं और आरामों के समान वितरण में बाधक हैं।

"संक्षेप में निजी अर्थ-व्यवस्था एक ओर लोभ तथा कंजूसी और दूसरी ओर ऐश्वर्य तथा फिजूलखर्ची के बीच की भूमि पर स्थित है। अगर कोई मनुष्य इन दोनों पराकाष्ठाओं से बचकर चले तो वह अर्थशास्त्र के कठोरतम नियमों का उल्लंघन किये बिना अपनी आय के अन्दर उपलब्ध सारा आनन्द प्राप्त कर सकता है।

'धनियों को हमेशा याद रखना चाहिए कि सारी सम्पत्ति का स्वामी होने के कारण ग़रीबों के श्रम के सारे अतिरिक्त उत्पादन का उपभोग करना उनका

---

१ जरमी बेन्थाम के अमरीकी शिष्य जॉन नील ने रेमॉण्ड की रचना का उत्साहपूर्वक स्वागत किया और अंग्रेज़ लेखकों का ध्यान उसकी ओर खींचना चाहा किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।

अनिवार्य कर्तव्य है। अपनी सम्पत्ति पर उनके अधिकार की यह शर्त है, या होनी चाहिए और यह शर्त उनके पक्ष में ही है।

'धनियों को या तो इस रीति से गरीबों को सहारा देना होगा या फिर कंगालों के रूप में। जब सारी सम्पत्ति समाज के एक अंग की है, तो स्वभावत धरती का सारा उत्पादन भी सर्वप्रथम उन्हीं का होगा और समाज का जो अंग सम्पत्तिविहीन है, अगर वह अपने श्रम से जीवन की आवश्यकताएं नहीं प्राप्त कर सकता तो फिर वह या तो भूखों मरेगा या दान के सहारे जियेगा। सभी लोगों को खेती में रोजगार नहीं मिल सकता और विनिर्माणों के उत्पादन का अगर उपभोग नहीं होता तो उनका उत्पादन बेकार है, क्योंकि अपने-आप में जीवन-रक्षा की क्षमता उनमें नहीं है। जिनके पास जीवन की सारी आवश्यकताएं हैं अगर वे उनमें से कुछ का विनिमय गरीबों के श्रम के उत्पादन के साथ नहीं करते तो उन्हें इन गरीबों को बिना श्रम के ही पालना होगा जिसपर सभी लोगों के आचरण का फल पाये समाज के लिए भुखमरी ही मिताचार नहीं कहा जा सकता। अगर यह मिताचार है, तो मिताचार सद्गुण होने के बजाय एक घृणित दोष है।

'प्रकृति ने मनुष्य के हृदय में सुख की इच्छा उत्पन्न की और धन को उसकी शक्ति प्रदान की या यूं कहें कि उसे सुख प्राप्ति का एक साधन बनाया तो इसी इरादे से कि इस उद्देश्य के लिए उसका उपयोग हो। अतः धन की सार्थकता सुख या आनन्द उपलब्ध करने में है। लेकिन हर अन्य वस्तु की भांति इसके दुरुपयोग की सम्भावना है। और जब भी इसका उपयोग निर्दोष आनन्द उत्पन्न करने के लिए नहीं होता तो इसका दुरुपयोग ही होता है। और जब भी इसका उपयोग अधम नीचतापूर्ण और स्वार्थपूर्ण मनोवेगों की तुष्टि के लिए किया जाता है, तो हमेशा इसका दुरुपयोग ही होता है।

अतः सम्पत्ति का अधिकार एक परम्परागत अधिकार है और राष्ट्र सम्पत्ति पर कोई ऐसा अधिकार प्रदान नहीं करता जो जनहित के विरुद्ध हो। सम्पत्ति पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार अन्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के अधिकार से जिनकी संख्या सम्पूर्ण से कम हो अधिक ऊंचा हो सकता है, किन्तु सम्पूर्ण के अधिकार से ऊंचा नहीं हो सकता क्योंकि सम्पूर्ण के अधिकार में स्वयं व्यक्ति का और अन्य सभी लोगों का अधिकार शामिल है। फलस्वरूप राष्ट्र को अधिकार है कि सार्वजनिक सड़कें या डिस्पेन्सरियाँ बनाने के लिए, या जनहित में आवश्यक किसी अन्य उद्देश्य के लिए किसी सम्पत्ति को ले ले। सरकार को अधिकार है कि जनहित में आवश्यक किसी भी रीति से कर लगाये और वसूल करे। सरकार को यह भी अधिकार है कि किसी व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति

विदेशियों के साथ बेचने से या उनसे अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ खरीदने से रोक दे। सरकार को स्पष्ट और पूरा अधिकार है कि जनहित में आवश्यक नियम सम्पत्ति या व्यापार के सम्बन्ध में बनाये।

"अत: शुल्क-पद्धति या संरक्षण-शुल्क सम्बन्धी हर प्रश्न 'अधिकार' का प्रश्न न होकर आवश्यकता का प्रश्न होगा।"[1]

रेमोण्ड का उप अपमोलितावाद स्पष्टत: आर्थिक लोकतन्त्र की ओर उन्मुख था। उन्हें इसकी विशेष चिन्ता थी कि हर पीढ़ी के साथ न्याय हो और उन्होंने उत्तराधिकार के नियमन की आवश्यकता पर जोर दिया, ताकि राष्ट्रीय धन के रूप में जिसका उपभोग होना चाहिए, उसका निजी पूँजी के रूप में 'संग्रह' रोका जा सके।

'सरकार अच्छे गड़रिये की तरह होनी चाहिए, जो अपने रेवड़ के दुर्बल और निःशक्त पशुओं को सहारा और पोषण देता है जब तक उनमें बलवानों का सामना करने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं आ जाती। और ऐसा नहीं होने देता कि बलवान उन्हें कुचल डाले और दबा दे। किन्तु समाज में सबल वे नहीं होते जिन्हें प्रकृति सबल बनाती है, बल्कि वे होते हैं जो विशाल धन एकत्रित करके या उत्तराधिकार में पाकर बनावटी रीति से सबल बनते हैं। और आमतौर पर सरकार का सारा ध्यान और सारी देख-भाल इन्हीं लोगों को प्राप्त होती है। ये अपने को ही राष्ट्र कहते हैं। और सरकारें आमतौर पर ऐसे तरीके निकालने में लगी रहती हैं जिनसे मनुष्यों में विद्यमान अधिकारों की प्राकृतिक समानता कायम नहीं रहती वरन् धनियों के धन में और वृद्धि होने से इन अधिकारों की असमानता और बढ़ती है। वे यह मान लेती हैं, या मानने का दिखावा करती हैं कि धनियों का धन बढ़ा कर वे राष्ट्र का धन बढ़ा रही हैं, जैसे धनी लोग ही समूचा राष्ट्र हों। ऐसी अर्थव्यवस्था से (जैसा मुझे विश्वास है कि मैं आगे सिद्ध कर दूँगा) अनिवार्य ही गरीबी कंगाली और राष्ट्रीय विपत्ति उत्पन्न होती है।

'जैसा मैंने पहले कहा है, शासन का महान् लक्ष्य यह होना चाहिए कि मनुष्यों के बीच शक्ति की प्राकृतिक असमानता की संगति में अधिकारों और सम्पत्ति की समानता जहाँ तक सम्भव हो कायम रखे। ज्येष्ठ सन्तान का उत्तराधिकार, अनुक्रम-बन्धन और परिसीमा के कानून और अन्य सभी ऐसे कानून जो धन को संचित करते और विशिष्ट परिवारों में उसे बनाये रखते हैं उस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उल्लंघन करते हैं।'[2]

---

१ डेनियल रेमोण्ड 'थॉट्स ऑन पोलिटिकल एकॉनमी' (बाल्टिमोर, १८२०) पृष्ठ ११६—२११ १५०।

२ वही पृष्ठ २११-२१२।

यद्यपि स्पष्टतः यह आर्थिक लोकतन्त्र का एक दर्शन है, किन्तु राजनीतिक लोकतन्त्र इसका आवश्यक अंग नहीं। 'हमारे जैसे लोकप्रिय शासन' के सम्बन्ध में ह्विग लोगों की आशंकाएँ रैमॉण्ड के मन में भी थीं।

"मैं जानता हूँ कि हमारे जैसा शासन ऐसे उदार और प्रबुद्ध सिद्धान्तों के सदृ आधार पर नहीं चलाया जा सकता और इसकी कोई आशा नहीं कि अन्य किसी प्रकार का शासन राष्ट्रीय समृद्धि और धन की अभिवृद्धि के लिए अधिक उपयुक्त होगा। लोग हमेशा अपने तात्कालिक हितों को देखते हैं और कुछ वर्गों का शासन पर हमेशा अनुचित प्रभाव होगा।

"अपने जैसे लोकप्रिय शासन के सम्बन्ध में हम भय जैसी आशंका के साथ यह पूछ सकते हैं कि राजनीतिक प्रतिभा और विधि-निर्माण सम्बन्धी ज्ञान सम्पन्नी की शक्ति और चरित्र के अधिकार की उस विशाल मात्रा को हम कहाँ पायेंगे जो इसे स्फूर्तिमय और लाभदायक ढंग से चलाने के लिए आवश्यक होंगी?"[1]

फिर भी, उन्होंने देशभक्ति पूर्ण स्वर में, जिसकी भावना उनमें और उनके साथी राष्ट्रवादियों में बड़ी गहरी थी यह भी कहा—

"शासन-विज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, हमारा देश इस धरती पर सर्वोत्तम मञ्च प्रस्तुत करता है। यहाँ बैठकर प्रयोग किये जा सकते हैं। यहाँ हम प्रकृति के सिद्धान्तों को अपने शुद्धतम रूप में कार्यरत देख सकते हैं। और यहीं स्वतन्त्रता और समानता की उस भावना को जीवित रखना है, जिसका सारे संसार में फैलना और पृथ्वी पर सभी राष्ट्रों को ऊष्मा और जीवन प्रदान करना अभी शेष है।"[2]

यह ध्यान देने योग्य है कि रैमॉण्ड पूँजी और उधार की सार्वजनिक उपयोगिता के अधिक कायल नहीं थे। बैंक-व्यापार को वे मुख्यतः औद्योगिक समृद्धिकर मानते थे और हैमिल्टन द्वारा सार्वजनिक ऋण के निधिकरण के बारे में उन्होंने कहा—

"यह मुद्रा के परिचलन को बढ़ावा देता और उद्योग तथा उद्यम में सहायक होता है। १७९० में हमारे सार्वजनिक ऋण का निधिकरण राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि में ऐसे कार्यों की उपयोगिता का एक स्मरणीय उदाहरण है।

"इस कार्य की न्यायपूर्णता के प्रश्न में गये बिना, जिसने उस समय जनता को उत्तेजित किया था, आज यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राष्ट्र के धन पर इसका अत्यधिक लाभदायक प्रभाव पड़ा। इससे राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति में

---

1 वही पृष्ठ १८०-१८२।

2 वही, पृष्ठ ४६९।

विरोधियों के साथ बेचने से या उनसे अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ खरीदने से रोक दे। सरकार को स्पष्ट और पूरा अधिकार है कि जनहित में आवश्यक नियम सम्पत्ति या व्यापार के सम्बन्ध में बनाये।

"अतः मुक्त-पद्धति या संरक्षण-शुल्क सम्बन्धी हर प्रश्न 'अधिकार' का प्रश्न न होकर 'आवश्यकता' का प्रश्न होगा।"[1]

रेमॉण्ड का उग्र उपयोगितावाद स्पष्टतः प्रायिक लोकतन्त्र की ओर उन्मुख था। उन्हें इसकी विशेष चिन्ता थी कि हर पीढ़ी के साथ न्याय हो और उन्होंने उत्तराधिकार के नियमन की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि राष्ट्रीय धन के रूप में जिसका उपभोग होना चाहिए, उसका निजी पूँजी के रूप में 'संग्रह' रोका जा सके।

'सरकार अच्छे गड़रिये की तरह होनी चाहिए, जो अपने रेवड़ के दुर्बल और निःसहाय पशुओं को सहारा और पोषण देता है जब तक उनमें बलवानों का सामना करने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं आ जाती। और ऐसा नहीं होने देता कि बलवान उन्हें कुचल डाले और दबा दे। किन्तु समाज में सबल वे नहीं होते जिन्हें प्रकृति सबल बनाती है, बल्कि वे होते हैं जो विशाल धन एकत्रित करके या उत्तराधिकार में पाकर, बनावटी रीति से सबल बनते हैं। और आमतौर पर सरकार का सारा ध्यान और सारी देख-भाल इन्हीं लोगों को प्राप्त होती है। वे अपने को ही राष्ट्र कहते हैं। और सरकारें आमतौर पर ऐसे तरीके निकालने में लगी रहती हैं जिनसे मनुष्यों में विद्यमान अधिकारों की प्राकृतिक समानता कायम नहीं रहती वरन् धनियों के धन में और वृद्धि होने से इन अधिकारों की असमानता और बढ़ती है। वे यह मान लेती हैं या मानने का दिखावा करती हैं कि धनियों का धन बढ़ा कर वे राष्ट्र का धन बढ़ा रही हैं, जैसे धनी लोग ही समूचा राष्ट्र हों। ऐसी कार्यवाइयों से (जैसा मुझे विश्वास है कि मैं आगे सिद्ध कर दूँगा) अनिवार्य ही गरीबी कंगाली और राष्ट्रीय विपत्ति उत्पन्न होती है।

"जैसा मैंने पहले कहा है, शासन का महान् लक्ष्य यह होना चाहिए कि मनुष्यों के बीच शक्ति की प्राकृतिक असमानता की संगति में अधिकारों और सम्पत्ति की समानता जहाँ तक सम्भव हो कायम रखे। ज्येष्ठ सन्तान का उत्तराधिकार, अनुक्रम-बन्धन और परिसीमा के कानून और अन्य सभी ऐसे कानून जो धन को संचित करते और विशिष्ट परिवारों में उसे बनाये रखते हैं इस सिद्धान्त का प्रत्यक्ष उल्लंघन करते हैं।"[2]

---

१ डेनियल रेमॉण्ड 'थॉट्स ऑन पोलिटिकल एकोनमी' (बाल्टिमोर, १८२०), पृष्ठ २१६—२२१, १६०।

२ वही पृष्ठ २११ २१२।

यद्यपि सम्पत्ति यह धार्मिक लोकतन्त्र का एक वर्णन है, किन्तु राजनीतिक लोकतन्त्र इसका आवश्यक अंग नहीं। 'हमारे जैसे लोकप्रिय शासन' के सम्बन्ध में ब्रिस लोगों की आशंकाएँ रैमोल्ड के मन में भी थीं।

'मैं जानता हूँ कि हमारे जैसा शासन ऐसे उदार और प्रबुद्ध सिद्धान्तों के यह आधार पर नहीं चलाया जा सकता और इसकी कोई आशा नहीं कि अन्य किसी प्रकार का शासन राष्ट्रीय समृद्धि और धन की अभिवृद्धि के लिए अधिक उपयुक्त होगा। लोग हमेशा अपनी तात्कालिक हितों को देखते हैं और कुछ वर्गों का शासन पर हमेशा अनुचित प्रभाव होगा।

अपने जैसे लोकप्रिय शासन के सम्बन्ध में हम भय जैसी आशंका के साथ यह पूछ सकते हैं कि राजनीतिक प्रतिभा और विधि-निर्माण सम्बन्धी ज्ञान समझाने की शक्ति और चरित्र के अधिकार की उस विशाल मात्रा को हम कहाँ पायेंगे जो इसे स्फूर्तिमय और सामंजस्य ढंग से चलाने के लिए आवश्यक होगी? [1]

फिर भी उन्होंने देशभक्ति पूर्ण स्वर में जिसकी भावना उनमें और उनके साथी राष्ट्रवादियों में बड़ी गहरी थी यह भी कहा—

'शासन-विज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, हमारा देश इस बारे पर सर्वोत्तम मंच प्रस्तुत करता है। यहाँ बैठकर लोग लिये जा सकते हैं। यहाँ हम प्रकृति के सिद्धान्तों को अपने शुद्धतम रूप में साकार देख सकते हैं। और यहीं स्वतन्त्रता और समानता की उस भावना को जीवित रखना है, जिसका सारे संसार में फैलना और पृथ्वी पर सभी राष्ट्रों को उन्नत और जीवन प्रदान करना अभी शेष है। [2]

यह ध्यान देने योग्य है कि रैमोल्ड पूँजी और उधार की सार्वजनिक उपयोगिता के अधिक कायल नहीं थे। बैंक-व्यापार को वे मूलतः औद्योगिक अनुदारपन मानते थे और हैमिल्टन द्वारा सार्वजनिक ऋण के स्थिरीकरण के बारे में उन्होंने कहा—

'यह मुद्रा के परिसंचरण को बढ़ावा देता और उद्योग तथा उद्यम में सहायक होता है। १७६ में हमारे सार्वजनिक ऋण का स्थिरीकरण राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि में ऐसे कार्यों की उपयोगिता का एक स्मरणीय उदाहरण है।

'इस कार्य की न्यायपूर्णता के प्रश्न में गये बिना जिसने उस समय जनता को उत्तेजित किया था आज यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राष्ट्र के धन पर इसका अत्यधिक लाभदायक प्रभाव पड़ा। इससे राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति में

१ वही पृष्ठ १८ १८१।
२. वही पृष्ठ ४६६।

तो गया कुछ नहीं हुआ किन्तु उद्योग और वाणिज्य को इससे उद्दीपन मिला। बहस के लिए, यह माना जा सकता है, जैसा इसके विरोधियों ने उस समय कहा था कि यह कार्य अन्यायपूर्ण था और इसने समाज के एक अंग से धन ले कर दूसरे अंग को दे दिया। किन्तु इतना मान लेने से राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि में इस कार्यवाही की उपयोगिता पर कोई असर नहीं पड़ता। यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है अथवा नहीं इसका फैसला करने की चेष्टा मैं नहीं करूँगा लेकिन यह सच है कि राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि में किसी कार्यविशेष की उपयोगिता हमेशा उसकी न्यायपूर्णता पर आधारित नहीं होती।[1]

यह स्वीकार करते हुए कि पूँजीवाद में कभी-कभी 'सार्वजनिक उपयोगिता' (न्याय नहीं) का गुण होता है रेमॉण्ड ने बैंकों को सब मिलाकर निश्चित रूप में निजी निगम' माना जिनके हिस्सेदारों के हित आमतौर पर सार्वजनिक हित के अनुकूल नहीं होते।

'अत' हर वित्त-निगम अत्यन्त राष्ट्रीय धन के लिए हानिकारक होता है और जिनके पास धन नहीं है, उन्हें उनको ईर्ष्या और सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए। वे शक्ति के बनावटी अस्त्र है और उन्हें यही मानना चाहिए, जिनका प्रयोग धनी लोग अपनी पहले से ही बहुत अधिक सम्पत्ति को और बढ़ाने के लिए करते हैं। इनका लक्ष्य मनुष्य की उस प्राकृतिक समानता को नष्ट करना है जो ईश्वर-प्रदत्त है और जिसे नष्ट करने में अपनी शक्ति लगाने का भी शासन को अधिकार नहीं है। ऐसी संस्थाओं की प्रवृत्ति होती है कि अन्यथा जैसी स्थिति हो सम्पत्ति का उससे अधिक असमान विभाजन करें और मनुष्यों में अधिक असमानता उत्पन्न करें। जैसा पहले दिखाया जा चुका है, इसका आवश्यक परिणाम समाज के शेष अंग के लिए गरीबी कंगाली और कष्ट होते हैं। इन संस्थाओं के हिस्सों की रकम का राष्ट्रीय समृद्धि पर उनके प्रभाव के साथ वही अनुपात होता है जो किसी राष्ट्रीय कर्ज का।[2]

अपनी पुस्तक के दूसरे संस्करण (१८२१) में उन्होंने बैंक व्यापार की उपयोगिता के सम्बन्ध में कई पैराग्राफ जोड़े किन्तु एक पैराग्राफ ऐसा भी जोड़ा जिससे संकेत मिलता है कि उन्होंने पूँजीवाद के खतरों को आमतौर पर और हैमिल्टन के सार्वजनिक वित्त के खतरों को विशेष रूप में अधिकाधिक समझा।

'राष्ट्रीय बैंक सम्बन्धी अपनी रपट में हैमिल्टन ने आडम स्मिथ के सिद्धान्त को अपनाया और निस्सन्देह भटक गये। उन्होंने यह मान लिया कि निजी और

---

१ वही, पृष्ठ १०४ १०५।

२ वही पृष्ठ ४११।

सार्वजनिक धन एक ही है और यह कि निजी लाभ सार्वजनिक लाभ है। फलस्वरूप वे इस नतीजे पर पहुँचे कि जिन लोगों के पास धन है, वे अगर उसे हमेशा ब्याज पर दिये रह सकें और जितना धन उनके पास हो उसका दो या तीन गुना उधार दे सकें तो इससे राष्ट्र को लाभ होगा। किन्तु ऐसा मानना वैसा एक मौलिक भूल है कि धातु-मुद्रा के स्थान पर कागज की मुद्रा के आने से किसी देश की सक्रिय या उत्पादक पूँजी बढ़ाई जा सकती है। और यह मानना भी बड़ी भारी गलती है कि वैयक्तिक लाभ हमेशा सार्वजनिक लाभ होता है।"[1]

यद्यपि आमतौर पर वे संरक्षणवादी थे किन्तु वे हमेशा ऊँची शुल्क-दरों के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने १८२८ के शुल्क की एक विस्तृत आलोचना न्यू-इंगलैण्ड के व्यापारियों के हित में लिखी जो उसके विरुद्ध थे। आमतौर पर रेमोण्ड एक स्वतन्त्र नैतिकतावादी थे और उनका राजनीतिक अर्थशास्त्र उनके राजनीतिक मतों की अपेक्षा उनके नैतिक दर्शन की अभिव्यक्ति था। उन्हें न केवल जनता के सामूहिक हित की, वरन् उसके वैयक्तिक कल्याण की भी वास्तविक चिन्ता थी। उन्होंने आर्थिक और नैतिक दोनों ही दृष्टियों से गुलामी की आवेशपूर्ण भर्त्सना की। सम्पन्न वर्गों द्वारा पूँजी के रूप में 'अतिरिक्त' धन को परिसञ्चरण या उपभोग से बाहर निकाल लेने को वे राष्ट्रीय दुःख और गरीबी फैलाना मानते थे, क्योंकि वे धन को बचत या मितव्ययिता के सन्दर्भ में नहीं (वे इसे 'लोभ' कहते थे) सुख या आनन्ददायक उपभोग के रूप में देखते थे। 'वित्त-निगमों और ठेकेदारों द्वारा 'विश्व के व्यापार पर एकाधिकार'' की बुराइयों की काट के रूप में वे सार्वजनिक एकाधिकार की वृद्धि और नियमन के पक्ष में थे।

यद्यपि ह्विग राष्ट्रवाद को अपनी सर्वाधिक पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति रेमोण्ड के राजनीतिक अर्थशास्त्र (पोलिटिकल इकॉनमी) में मिली किन्तु अर्थशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष को मैथ्यू केरी के पुत्र हेनरी सी० केरी की देन अधिक ठोस थी। उनकी बहुसंख्यक रचनाएँ, डेनियल वेब्स्टर से लेकर होरेस ग्रीली तक संरक्षणवादी राजनीतिज्ञों के लिए धर्म-शास्त्र के समान बन गयीं। हेनरी केरी की विचार व्यवस्था के दार्शनिक आधार ह्विग आन्दोलन के साथ उतने जुड़े हुए नहीं थे, जितने रेमोण्ड की विचार-व्यवस्था के, और वे आडम स्मिथ और संस्थापित अर्थशास्त्रियों से उतने ज्यादा दूर भी नहीं जाते थे। केरी वस्तु-निष्ठवाद[2]

---

१ डेनियल रेमोण्ड 'एलीमेण्ट्स ऑफ़ पोलिटिकल इकॉनमी' दूसरा संस्करण (बाल्टिमोर, १८२३), खंड दो, पृष्ठ २११।

२ ऑगस्ट कोम्टे द्वारा प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त जो केवल निश्चित तथ्यों और पर्यवेक्षण योग्य क्रियाओं को ही स्वीकार करता है।—अनु०

(पाज़िटिविज़्म) से अत्यधिक प्रभावित थे। वे संस्थापित अर्थशास्त्र को 'सामाजिक विज्ञान' का तत्त्व-मीमांसा-सोपान मानते थे और सामाजिक विज्ञान की एकता सम्बन्धी अपनी स्थापना को उन्होंने प्राकृतिक नियम की एकता सम्बन्धी वस्तु-निष्ठावाद के सामान्य विश्वास पर आधारित करने की चेष्टा की। प्राकृतिक नियम की एकता का अर्थ था मनुष्य की एकता और कैरी ने 'आर्थिक मनुष्य' और नैतिक मनुष्य के तत्त्वमीमांसात्मक अमूर्तकरण की प्रभावशाली आलोचना की। मनुष्य एक जीवित व्यक्ति है, जिसका श्रम पूँजी नैतिकता नियम सब 'प्रकृति पर उसके स्वामित्व के सहयोगी औज़ार' हैं। सामाजिक नियम प्रगति के नियम हैं और प्रगति का अर्थ कैरी के लिए बहुत कुछ वही था जो हर्बर्ट स्पेन्सर के लिए विशिष्टीकरण या वैयक्तीकरण की प्रक्रिया। किन्तु स्पेन्सर के विपरीत कैरी 'सम्बद्धता' को ऐसी प्रगति का मुख्य साधन मानते थे। राष्ट्र मूलतः राजनीतिक गठन नहीं होता वरन् श्रम-विभाजन का एक संगठन होता है। राष्ट्रीय संगठन प्रगति का एक रूप है, क्योंकि वह 'व्यापार' को 'वाणिज्य' में व्यवस्था हीन या मुक्त विनिमय को उत्तरदायित्व की एक विकेन्द्रित व्यवस्था में परिवर्तित करता है जिसमें एक सम्पूर्ण आत्म निर्भर इकाई में हर सदस्य का योग होता है। कैरी अंग्रेज़ी साम्राज्य को विशालतम पैमाने पर 'व्यापार' मानते थे अत्यधिक केन्द्रित पराधीनता मानते थे और आर्थिक साम्राज्यवाद को वे पूर्णतः प्रगति का प्रतिपक्षी मानते थे क्योंकि वह व्यवस्थित शोषण होता है जबकि एक सचमुच राष्ट्रीय अर्थतन्त्र का रूप विशेषज्ञता के द्वारा पारस्परिक सहायता का होता है। इसी प्रकार राजनीतिक लोकतन्त्र को वे स्वशासन या 'सामाजिक विज्ञान' की दिशा में सामान्य प्रगति का केवल एक पक्ष मानते थे। उन नियमों की खोज और प्रयोग जो अपने लिए उच्चतम वैयक्तिकता और सम्बन्ध की अधिकतम शक्ति प्राप्त करने के प्रयास में मनुष्य का परिचालन करते हैं।[1]

किन्तु कैरी केवल दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण करने वाले ही नहीं थे। वे राष्ट्रवाद के एक सफल प्रचारक थे। 'अमरीकी व्यवस्था' की उनकी व्याख्या के पीछे जो भावात्मक अपील और नैतिक ईमानदारी थी उसे व्यक्त करने के लिए किसी भी वर्णन से ज़्यादा अच्छा होगा कि हम उनके सन्देश का एक नमूना देखें।

संसार के समक्ष दो व्यवस्थाएँ हैं। एक व्यापार और यातायात में लगे हुए लोगों और पूँजी के अनुपात को बढ़ाना चाहती है और इसलिए व्यापार क

---

१ हेनरी सी० कैरी 'प्रिंसिपिल्स ऑफ़ सोशल साइन्स' अर्नेस्ट टीसडाक की पुस्तक 'फाउण्डर्स ऑफ़ अमेरिकन इकोनॉमिक थॉट इन दी नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (न्यूयार्क, १९३६) में उद्धृत पृष्ठ ९८।

वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए अनुपात कम करना चाहती है, जिससे सभी के श्रम का लाभ 'अवश्यमेव' कम होगा। दूसरी व्यवस्था उत्पादन कार्य के अनुपात को बढ़ाना और व्यापार व यातायात के अनुपात को घटाना चाहती है, जिससे सभी को लाभ होगा, मजदूरों को अच्छा वेतन मिलेगा और मालिक को अपनी पूँजी पर अच्छा लाभ। एक व्यवस्था व्यापार की 'अवैध' स्वतन्त्रता को कायम रखना चाहती है, जो संरक्षण के सिद्धान्त से इनकार करती है, लेकिन राजस्व शुल्कों के द्वारा संरक्षण देती है। दूसरी 'वैध' स्वतन्त्र व्यापार के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सर्वथा दोष-रहित संरक्षण स्थापित करना चाहती है, जिसमें बाद में व्यक्ति और समुदाय शामिल होते जाएँगे और अन्ततः चुंगीघर समाप्त हो जाएँगे। एक व्यवस्था ऐसे रेगिस्तानी इलाकों पर कब्जा करने के लिए मनुष्यों को भेजना चाहती है, जिन पर कूटनीति या युद्ध के द्वारा अधिकार किया गया हो। दूसरी खाली ज़मीन पर बसने के लिए लाखों व्यक्तियों को लाकर उस ज़मीन के मूल्य को बहुत अधिक बढ़ाना चाहती है। एक व्यवस्था वाणिज्य की आवश्यकता को बढ़ाना चाहती है, दूसरी उसे कायम रखने की शक्ति को। एक चाहती है कि हिन्दू[1] को कुछ काम न मिले और शेष संसार भी गिर कर उसी के स्तर पर आ जाए। दूसरी सारे संसार के लोगों का स्तर उठा कर हमारे स्तर तक लाना चाहती है। एक की दृष्टि कंगाली, अशिक्षा आबादी के विनाश और जंगलीपन की है। दूसरी की दृष्टि धन आराम, बुद्धि, तथा श्रम और सभ्यता के मेल को बढ़ाने की है। एक सार्वभौमिक युद्ध की ओर देखती है, दूसरी सार्वभौमिक शान्ति की ओर। एक इंग्लिस्तानी व्यवस्था है, दूसरी को हम गर्व के साथ अमरीकी व्यवस्था कह सकते हैं क्योंकि अब तक निरूपित व्यवस्थाओं में एकमात्र यही ऐसी है, जिसमें सारे संसार के लोगों की दशा को उन्नत करने और समानता के स्तर पर लाने की प्रवृत्ति है।

संयुक्त राज्य अमरीका के लोगों का यही सच्चा मिशन है।

'ऐसे साम्राज्य की स्थापना—यह साबित करना कि संसार के लाखों के बीच, चाहे वे खेतिहर हों, विनिर्माता हों या व्यापारी हितों की पूर्ण समरसता है और यह कि व्यक्तियों का सुख और राष्ट्रों की शान इस महानतम आदेश का पालन करने से ही बढ़ेगी कि 'दूसरों के साथ वही करो जो तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें'—इस मिशन का लक्ष्य है और यही इसका परिणाम होगा।"[2]

---

१ हिन्दुस्तानी—अनु०।

२ हेनरी सी कैरी 'दी हारमनी ऑफ इन्टेरेस्ट्स, ऐग्रिकल्चरल, मैनुफेक्चरिंग ऐण्ड कमर्शियल' दूसरा संस्करण (न्यूयार्क, १८५६) पृष्ठ २२८-२२६।

कैरी के सामाजिक विज्ञान के दर्शन से जिन लोगों को प्रेरणा दी उनमें हार्वर्ड के प्रोफ़ेसर फ्रांसिस बावेन भी थे। उन्होंने असाधारण विद्वत्ता के साथ तत्त्व-मीमांसा और तर्कशास्त्र के अतिरिक्त राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भी एक प्रबन्ध लिखा। यद्यपि वे एक दार्शनिक थे किन्तु परम्परागत ह्विग सिद्धान्तों के पुनर्निरूपण के अतिरिक्त उनका राजनीतिक अर्थशास्त्र दर्शन से पूर्णतया मुक्त है। उनकी रचना अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी (अमरीकी राजनीतिक अर्थशास्त्र) का अन्तिम पृष्ठ कैरी के इस सिद्धान्त का सारांश-सा लगता है कि 'प्रगति विशिष्टीकरण के द्वारा औद्योगीकरण की ओर ले जाती है।

'विधि-निर्माण की सर्वोत्तम नीति वह है जो किसी देश के प्राकृतिक साधनों का सर्वाधिक प्रभावकारी रूप में विकास करे चाहे वे मानसिक हों या भौतिक। यान्त्रिक कौशल या आविष्कार बुद्धि को बेकार पड़ी रहने देना कम से कम उतना ही बड़ा अपव्यय है, जितना जलशक्ति को बिना चक्कियाँ चलाये बह जाने देना या खनिज धन को धरती में ही दबे रहने देना या जहाँ कपास और अनाज बहुतायत से हो सकता है, वहाँ जंगल बने रहने देना। अगर लोगों का रोजगार मुख्य रूप में कृषि-कर्म का स्थूल श्रम ही रहेगा तो कलाओं के कुशल-श्रम का अधिक वेतन समाप्त करना पड़ेगा। और यह आर्थिक दृष्टि से उतना ही बुरा होगा जितना हमारी सर्वोत्तम भूमि को भेड़ों की चरागाह बना देना या पशुओं को सबसे बढ़िया गेहूँ खिलाना। खेती के काम में अलग-अलग लगे रहने के लिए, जिसमें अधिकांश लोगों का काम ऐसा होगा कि किसी फ़िलॉसॉफ़वादी की बुद्धि का भी पूरा उपयोग न हो सके, आबादी को विशाल भू-भाग में फैला देना न केवल धन-वृद्धि की दृष्टि से बल्कि मानवता के अधिक उच्च हितों के लिए भी घातक होगा। मध्य-प्रान्त के जीवन की कठिनाइयाँ और मुसीबतें उस देन के साथ जुड़ी हुई एक जबरदस्त विनाश है, जो बीजों को निर्मूल ऐसी भूमि प्रदान करती है, जिसमें बीज चौगुने होकर उगते हैं। यदि प्रतिभा और स्वभाव की सारी विभिन्नताओं को पूरा मौका देना आविष्कार बुद्धि का पोषण करना सभी कलाओं को पर्याप्त प्रोत्साहन देना चाहे वे यान्त्रिक कलाएँ हों या ऐसी जिन्हें आमतौर पर ललित कलाएँ कहा जाता है, लोगों को केन्द्रित करना, या उनके अधिकतम सम्भव भाग को नागरीयता के प्रभावों और मानसिक संस्कार व सामाजिक सुधार के अधिक बहुल साधनों के अन्तर्गत लाना जो केवल नगरों और बड़े कस्बों में ही उपलब्ध हो सकते हैं—ये ऐसे लक्ष्य हैं जो कम से कम उतना ही ध्यान देने योग्य हैं जितना यह प्रश्न कि सूती कपड़ा हम सबसे सस्ता कहाँ खरीद सकते हैं या कि हम स्वयं अपनी रेलों के लिए लोहा तैयार कर सकें इसके लिए हमें कितना आर्थिक बलिदान करना होगा। मैं नहीं समझ पाता कि हमारे जैसे

देश में, जो खेती, निष्क्रमण और लोगों के परस्पर अलगाव के लिए बहुत अधिक सुविधाओं से अभिव्यक्त कहा जा सकता है, हम बिना अपने विनिर्माण उद्योग को कम से कम और आधी शताब्दी तक संरक्षण शुल्क की चौड़ी ढाल प्रदान किये, ऐसा किस प्रकार कर सकते हैं।[1]

सामान्य जन

जैफरसनवादियों और राष्ट्रीय गणतन्त्रवादियों ने मिल कर जैक्सन के लोकतन्त्र का सैद्धान्तिक औचित्य निश्चित कर दिया था। अधिकांश राज्यों में सम्पत्तिविहीन नागरिकों को मताधिकार प्राप्त करने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा, जो अन्ततः उन्हें शताब्दी के तीसरे दशक में प्राप्त हो गया। किन्तु यह बात बहुत पहले से स्पष्ट थी कि लॉक के सिद्धान्त के अनुसार हर नागरिक के पास सम्पत्ति होनी चाहिए,[2] और ह्विग लोगों ने इंगलिस्तान और अमरीका दोनों में ही जो समझौता किया जिसके अनुसार सम्पत्तिविहीन लोगों की बढ़ती हुई संख्या प्रतिनिधि सरकार के मौलिक नागरिक अधिकार से वंचित थी, उसका स्पष्टतः गणतन्त्रवादी सिद्धान्त के अनुसार समर्थन नहीं किया जा सकता था, यद्यपि व्यवहार में उसे जब तक सम्भव था कायम रखा गया। हम, राष्ट्र के लोग' पर जोर देने के साथ-साथ ह्विग लोगों द्वारा एक सक्रिय कार्यकारिणी की माँग, ऐण्ड्रयू जैक्सन के शासन की स्वीकृति के लिए पर्याप्त थी। ह्विग राष्ट्रवाद ने रूसो के 'सामान्य संकल्प' का अमरीकी प्रतिरूप भी प्रस्तुत किया था यद्यपि अमरीका में रूसो की इस स्थापना का तार्किक समर्थन खोजना कठिन है कि जनता का संकल्प हमेशा सही होता है।[3] किन्तु जैक्सन के समय में अमरीकी राजनीतिक सिद्धान्त का यह एक स्वीकृत सूत्र बन गया।

१ फ्रान्सिस बोवेन 'अमेरिकन पोलिटिकल एकॉनमी' (न्यूयार्क १८७०), पृष्ठ ४६४-४६५।

२ हैरिंगटन ने प्रजाधिपत्य की परिभाषा ऐसे राज्य के रूप में दी थी जिसमें 'सभी लोग भूस्वामी हों'।

३ 'जनता की आवाज, ईश्वर की आवाज है', इस सिद्धान्त के निकटतम (देखिए एडवर्ड एवरेट के 'ओरेशन ऑन दी [illegible] रिवोल्यूशनरी वार', कॉनकार्ड, १६ अप्रैल, १८२५। देखिए, उनके 'ओरेशन्स ऐण्ड स्पीचेज़', चौथा संस्करण (बोस्टन, १८६६) पृष्ठ ६७।

कि जनता की इच्छा ही प्रभु है। केवल प्रभु को विस्तृत करना या मैडिसन के धर्मों में जनमत को प्रमुख करना ही शेष था।

राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना में आस्था से अधिक श्रम का हाथ था। जेम्स फेनिमोर कूपर ने व्याप्त भावना को प्रकट किया।

"अमरीकियों की आदतें मत कानून और मैं कह सकता हूँ कि सिद्धान्त भी, नित्य अधिकाधिक लोकतान्त्रिक होते जा रहे हैं। हम अच्छी तरह समझते हैं कि कुछ हजार बिखरे हुए व्यक्तियों के वोट देश की समृद्धि या नीति पर कोई बड़ा या दीर्घजीवी प्रभाव नहीं डाल सकते, किन्तु वंचित रहने पर उनका असन्तोष बड़ी झंझट पैदा कर सकता है।"[1]

अस्थापित गणतन्त्रवाद से हट कर जेफ़र्सन के लोकतन्त्र में बिना यह समझे चला आया कि सैद्धान्तिक पुनर्निरूपण की भी आवश्यकता थी। कूपर एक अपवाद थे क्योंकि 'दी अमेरिकन डेमोक्रेट' (१८३८) में उन्होंने जैक्सन कालीन सम्भ्रान्तियों की सावधानी से समीक्षा की और चेष्टा की कि अपने जैफ़र्सनवादी सिद्धान्तों अपनी अभिजात रुचियों और लोकतन्त्र में अपनी सच्ची निष्ठा से द्रोह किये बिना सस्ती लोकप्रियता के तरीकों के प्रति अपनी घृणा को क़ायम रखें। लोकतन्त्र के दर्शन की दृष्टि से कूपर की रचनाएं टाकुविले से अधिक ध्यान देने योग्य हैं और उनकी ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। अपने प्रारम्भिक लेखन में भी उन्होंने इस सामान्य राय की समीक्षा करने का कष्ट उठाया कि सम्पत्ति के हितों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और उन्होंने अधिक लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण को आरम्भ में प्रस्तुत किया।

हम इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि बिना पर्याप्त कारण के प्राकृतिक न्याय के इतने विरुद्ध जाना उचित नहीं है कि किसी व्यक्ति को केवल इस कारण मताधिकार से वंचित कर दिया जाए कि वह गरीब है। यद्यपि समाज की विभिन्न दशाओं में सम्पत्ति की कोई चौख़ शर्त कभी-कभी उपयोगी हो सकती है, लेकिन उसके प्रतिनिधित्व से बड़ी कोई ग़लती नहीं हो सकती। कोई व्यक्ति किसी निश्चित पूंजी वाली कम्पनी से स्वेच्छया सम्बद्ध हो सकता है और अपने आर्थिक हित के अनुपात में कम्पनी के प्रबन्ध में भाग लेने का उसे न्यायोचित अधिकार हो सकता है। लेकिन जीवन कोई अधिकार-जनित संस्था नहीं है। मनुष्यों की सारी आवश्यकताएं और मनोवेग आनन्द के साधन और कष्ट के कारण सब जन्म से ही उनके साथ होते हैं और बहुधा बड़ी असुविधा का कारण होते हैं।

---

१ जेम्स फेनिमोर कूपर, 'नोशन्स ऑफ़ दी अमेरिकन्स पिक्ड अप बाइ ए ट्रैवेलिंग बैचेलर' (फिलाडेल्फिया १८२८) खण्ड १ पृष्ठ २६५ २६६।

यद्यपि शासन निस्सन्देह एक प्रकार का अनुबन्ध है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जो लोग उसकी शर्तें निर्धारित करते हैं उनका यह स्वाभाविक कर्तव्य है कि सब के अधिकारों का ध्यान रखें।

'सम्पत्ति के प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कहता है कि जिसके पास कम है, वह उस व्यक्ति के धन को खर्च नहीं करेगा, जिसके पास अधिक है। किन्तु अनुभव और सामान्य बुद्धि क्या कहते हैं? जिसके पास अधिक होता है वही सार्वजनिक धन का अपव्यय करता है। जो रकम उसके लिए मौज थी, वह अपेक्षतया गरीब आदमी के लिए सब कुछ हो सकती है। निस्सन्देह संसार में वही शासन सार्वजनिक धन के प्रति सबसे अधिक लापरवाह होता है, जिसमें शक्ति केवल धनिक लोगों की सम्पत्ति होती है।

"हम देखते हैं कि हमारा शासन लोकप्रिय होने के कारण अधिक सस्ता और अधिक प्रबल भी है। इसमें शक नहीं कि जिनके पास कम है, उनकी ईर्ष्या कभी कभी नकली मितव्ययिता का कारण बनती है और प्रतिभा का अधिक मूल्य लगा कर बहुत धन की बचत भी की जा सकती है। हम योग्यहीनता का दावा नहीं करते लेकिन इतना जरूर कहते हैं कि सामान्य व्यवहृत किसी तरीके की अपेक्षा इस तरीके में बराबर अच्छाई है।"[1]

यहाँ लोक और सत्ता का विवाद सम्भवतः सामने आ जाता है और लोकतन्त्र तथा हित-वाद का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

१८३२ तक यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि सामान्यजन सत्तारूढ़ होंगे। केवल इसके भयंकर परिणामों की पूर्व-कल्पना करना शेष था। लोकतन्त्र के प्रति श्रद्धा और तिरस्कार की मिश्रित भावना, जिसकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति टाक्सुविले की रचना 'डेमाक्रेसी इन अमरीका' में हुई है, बहुतेरे अमरीकी यात्रियों में थी। कारण यह था कि यद्यपि सामन्ती वर्ग अमरीका में जड़ें नहीं जमा सके और यूरोपीय लोग अमरीकी समाज को स्वभावतः लोकतान्त्रिक समझते थे किन्तु सभी पूर्वी राज्यों में अमीर और गरीब के बीच एक वर्ग-चेतना व्याप्त हो रही थी जो दल-नीति की प्रतिद्वन्द्विता को बढ़ाती और सम्मिलित करती थी। दोनों ही पक्षों में इस वर्ग-चेतना ने परस्पर मित्रता का रूप लिया। जैक्सनकालीन लोकतन्त्र के साहित्य में कुछ विचारों का बाहुल्य है, किन्तु दर्शन का अभाव है। इस वर्ग संघर्ष के दार्शनिक निरूपण के निकट हमें केवल कभी-कभी प्रस्तुत 'सम्पत्ति के अधिकार' का दावा मिलता है। सर्वप्रथम मजदूर नेताओं में से एक, थामस

---

१ वही खंड १ पृष्ठ २५४-२५५। सम्पत्ति के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था पर कूपर के उपन्यास 'दी मोनिकिन्स' में व्यंग्य किया गया है।

स्किडमोर ने १८२६ में 'दी राइट्स ऑफ़ मैन टु प्रापर्टी' शीर्षक के अन्तर्गत एक प्रभावशाली प्रचार-पुस्तिका लिखी।

"धरती के दर्प भरे और धनी मालिको इस पर नज़र डालो और देखो कि क्या स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करने के अधिक 'सम्मानीय' तरीक़े को सहमति देना तुम्हारी शक्ति में नहीं है? अगर तुम्हें ऐसा नहीं करना तो कह दो। मैं तुमसे इसलिए नहीं पूछ रहा हूँ कि ऐसी सहमति देकर कोई कृपा करना तुम्हारे अधिकार में है। यह समाज और अन्य हर समाज जब भी वे अपने अधिकारों को समझेंगे उनमें स्वयं अपनी शक्ति इतनी काफ़ी होगी कि बिना तुमसे कुछ सलाह लिये जो कुछ उचित समझें करें। इसलिए पूछ रहा हूँ कि अनिच्छा के अप्रिय किन्तु निष्पक्ष दृष्टिकोण की अपेक्षा मुक्त रूप से ऐसी सहमति प्रदान करना स्वयं तुम्हारे हित के अधिक अनुकूल होगा। इस राज्य में तीन लाख स्वतन्त्र नागरिकों के हाथ में वोट है, जिन्हें तुम्हारे अधीन कोई शक्ति छीन नहीं सकती। और इन स्वतन्त्र नागरिकों में ढाई लाख से अधिक ऐसे हैं जिन्हें एक पिछली पीढ़ी ने तुम्हारे साथ और अपने अधिकारों के प्रति उनके अज्ञान के साथ मिल कर, ऐसी दशा में रखने की साज़िश की है कि जिस राज्य के वे नागरिक हैं उसमें उनकी कोई सम्पत्ति नहीं है, यद्यपि इस सम्पत्ति पर उनका उतना ही अधिकार है जितना अन्य किसी जीवित व्यक्ति का।"[1]

यह बात सिद्धान्त और व्यवहार में असली प्रश्न के मर्म तक जाती थी। लेकिन सब मिलाकर जैक्सनकालीन लोकतन्त्रवादियों ने अपनी से बड़ों का ही अनुसरण किया और लोकतान्त्रिक राजनीतिक अर्थशास्त्र के बजाय लोकतान्त्रिक राजनीतिक अभियानों में अपनी योगदान के रूप में गाली-गलौज भरी निन्दा में ही लगे रहे। जैसा डी टाकविल ने बताया राजनीतिक अमरवाद की कलाएँ, वादविवाद की अधिक प्रमुख कलाओं को बेदख़ल कर रही थीं।

न्यू-इंगलैण्ड के संघवादियों ने इस प्रकार के विचार का एक बुरा उदाहरण प्रस्तुत किया था। 'स्क्वायर' फ़िशर एम्स[2] ने जो एक सौम्य व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध थे कहा— 'यह (लोकतन्त्र) एक प्रकाशमान नरक है जिसमें पश्चात्ताप भय और यातना के बीच भी उल्लास के स्वर गूँजते हैं, क्योंकि अनुभव बताता है

---

१ थॉमस स्किडमोर 'दी राइट्स ऑफ़ मैन टु प्रॉपर्टी। बीइंग ए प्रोपोज़ीशन टु मेक इट ईक्वल एमंग दी एडल्ट्स ऑफ़ दी प्रेज़ेन्ट जेनरेशन' (१८२६ जम्स कोर्ट, एम० कुर्टी और सी० बेकर की पुस्तक 'अमेरिकन इश्यूज़' में, शिकागो १९४१, खंड १ पृष्ठ २११ २१४।

२ स्क्वायर, छोटे भूस्वामियों के लिए प्रयुक्त उपाधि—अनु०

कि जनसमाज के इस सर्वाधिक विषाक्त रूप में एक आनन्द मग्न रहता है—दूसरों की दुर्दशा करने की शक्ति।[१] और नोह वेब्सटर ने शिकायत की कि मैसाचुसेट्स में लोकतान्त्रिक मताधिकार का एक विधेयक व्यक्तियों के धन को 'एक निर्दयी दुष्ट के लोभ' की मर्ज़ी पर छोड़ देगा, 'जिसके पास खोने के लिए कुछ नहीं है।[२] संघवादी पत्रों में लोकतन्त्रवादियों को आमतौर पर धन और नैतिकता दोनों में ही निकृष्ट व्यक्ति 'मानव जाति की तलछट' 'दुर्गुण और ग़रीबी के दास' और ऐसे व्यक्ति जिनका कभी सुधार नहीं हो सकता क्योंकि 'उनका स्वभाव प्रकृति के साथ और अनन्त हैं' आदि आदि कहा जाता था। इस प्रकार के व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर भी लोकतन्त्रवादियों ने उसी भाषा में दिया। इस विवाद का अर्थ स्पष्ट था—लोकतन्त्र की चर्चा होने पर हर किसी के दिमाग़ में प्रश्न वस्तुतः लोकतन्त्र का नहीं वरन् धनी और निर्धन के संघर्ष का उठता था। लोकतन्त्र, लोकप्रिय शासन का सिद्धान्त नहीं था वरन् वर्ग-संघर्ष का एक प्रतीक था। अतः अगर हम जैक्सन-कालीन लोकतन्त्र की आत्मा को समझना चाहते हैं तो हमें इस संघर्ष के साहित्य पर नज़र डालनी होगी।

उदारवादियों की निश्चिन्तता पर पहली गम्भीर चोट उस समय पड़ी जब कुछ प्रतिष्ठित (अर्थात् सम्पन्न) लोकतन्त्रवादी 'जनता' के बारे में जेफ़रसनवादियों के ढीले-ढाले लोकोपकारी स्वर में नहीं वरन् एक धर्म-रोमानी धर्म-मसीहाई स्वर में बोलने लगे और कहने लगे कि ग़रीबों पर भी भरोसा करना चाहिए। मिसाल के लिए, लोकतन्त्रवादी इतिहासकार जार्ज बैन्क्रॉफ्ट के उस भाषण को में जो उन्होंने १८३५ में विलियम्स कालेज में दिया जिसके बारे में सन्देह किया जाता था कि उसकी सहानुभूति लोकतन्त्रवादियों के साथ है। उस समय बैन्क्रॉफ्ट की राजनीतिक अपनी विचार पर थी।

मनुष्य में एक आत्मा है। केवल कुछ विशेषाधिकारयुक्त लोगों में ही नहीं केवल हममें से कुछ उन लोगों में ही नहीं जो ईश्वर की कृपा से अभिजात स्कूलों में पले हैं। 'यह मनुष्य मात्र में है मनुष्य जाति का एक गुण है। आत्मा जो सत्य की मार्गदर्शिका है मानव परिवार के हर सदस्य को मिली हुई एक कृपापूर्ण भेंट है।

"अगर तर्कबुद्धि एक सात्विक गुण है, तो सात्विक-निर्णय सत्य की निकटतम

---

१ 'दी वर्क्स ऑफ़ फ़िशर एम्स' में 'दी डेंजर्स ऑफ़ अमेरिकन लिबर्टी' (बोस्टन १८०९) पृष्ठ ४१२।

२ डब्ल्यू० ए० रॉबिन्सन 'जेफ़रसोनियन डेमोक्रेसी इन न्यू-इंगलैंड' (न्यू-हेवेन १९१६) में उद्धृत पृष्ठ १११।

७

कसौटी है। सामान्य दिमाग मतों की भूसी और अन्न को अलग करता है, वह ऐसी चलनी है जो त्रुटियों और तथ्यों को अलग-अलग करती है।

"अगर हमारे यहाँ कलाओं का शानदार विकास होना है, तो इसकी प्रेरणा जनता की स्फूर्ति से ही आयेगी। संरक्षकों की चापलूसी करने के लिए, या बैठकें सजाने के लिए प्रतिभा सृजन नहीं करेगी। उसे अधिक व्यापक प्रभावों की कामना है, वह अधिक व्यापक सहानुभूतियों से पोषण पाती है।

"जनता का सुख विधि-निर्माण का सच्चा लक्ष्य है और यह तभी प्राप्त हो सकता है जब मानव-समुदाय को स्वयं अपने हितों का ज्ञान हो और वे स्वयं उनका ध्यान रखें। हमारी स्वतन्त्र संस्थाओं ने मनुष्यों के बीच झूठे और अस्वाभाविक भेदों को समाप्त कर दिया है और कुल-गर्व को सन्तुष्ट करने से इनकार करके यह स्वीकार किया है कि सामान्य दिमाग ही किसी प्रजाधिपत्य की सच्ची सामग्री होता है।

"सभ्यता की प्रगति की सही कसौटी यही है कि सामान्य दिमाग की बुद्धि किस सीमा तक धन और पाशविक शक्ति पर प्रभावी होती है। दूसरे शब्दों में जनता की प्रगति ही सभ्यता की प्रगति की कसौटी है।"[1]

इसे शास्त्रीय उदारवाद और जर्मन[2] स्वच्छन्दतावाद कह कर टाला जा

---

१ जार्ज बैंक्रोफ्ट 'दी आफिस ऑफ दी पीपुल इन आर्ट गवर्नमेण्ट ऐण्ड रैलिजन' 'लिटरेरी ऐण्ड हिस्टॉरिकल मिसेलेनीज' (न्यूयार्क १८५५) में पृष्ठ ४०८, ४१५, ४१८ ४१९, ४२२ और जोसेफ ब्लाउ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसॉफिक ऐड्रेसेज १७००-१९००' (न्यूयार्क १९४६) में पृष्ठ ९८-११४।

२ बैंक्रोफ्ट हार्वर्ड के उन स्नातकों में से थे जिन पर विदेश में स्नातकोत्तर शिक्षा के समय जर्मन स्वच्छन्दतावाद का गहरा प्रभाव पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक्रोफ्ट के विशिष्ट लोकतान्त्रिक विचारों का उदय उनके दिमाग में कान्ट के नीतिशास्त्र और श्लीयरमाखर के धर्मशास्त्र के एक व्यावहारिक रूप में हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम इन विचारों का विकास राजनीति के सिद्धान्त या इतिहास की व्याख्या के रूप में नहीं वरन् शिक्षा के दर्शन के रूप में किया। उन्होंने नीचे लिखे चतुर सिद्धान्तों को एक स्कूल के लिए कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत किया, जिसकी स्थापना बाद में उन्होंने और उनके सहयोगियों ने नॉर्थेम्प्टन में की (१) यूनानी भाषा, सभी भाषाओं में प्रथम (२) मानसिक अनुशासन के लिए प्राकृतिक इतिहास (३) कक्षा में प्रतियोगिता की समाप्ति; (४) शारीरिक दण्ड को अपमानजनक मानकर उसकी समाप्ति, (५) कक्षाओं को

सकता था अगर यह तथ्य भी साथ में न होता कि प्रेसीडेण्ट जैक्सन ने उसी समय राष्ट्रीय बैंक विधेयक के विरुद्ध निषेधाधिकार का प्रयोग किया था और अपनी सन्देश में इन्हीं सिद्धान्तों को बड़े तीखे और अत्यधिक व्यावहारिक रूप में व्यक्त किया था। और बक्स (बैंक्रॉफ्ट) ने स्वयं भी जैक्सन द्वारा बैंक की आलोचना का समर्थन किया था। नवनिर्मित वर्किंगमेन्स पार्टी (मजदूर दल) ने उन्हें एक राज्य का सेनेटर (उच्च सदन का सदस्य) भी मनोनीत किया था। उन्होंने अपना मनोनयन स्वीकार नहीं किया किन्तु उन्हें एक बार लोग दूर करना हुआ था कि अपने मित्र टिक्नॉर की चेतावनी कि वे 'जैक्सनवादियों और मजदूर दल वालों से दूर रहें' की अवज्ञा करने के लिए उसे स्वीकार कर लें। उन्होंने अपने अन्य मित्र और वर्मन बन्धों के अध्ययन में अपनी सहयोगी एडवर्ड एवरेट को लिखा कि 'लोकपक्ष के अतिरिक्त लिखने-पढ़ने वाले व्यक्ति को राजनीति में बड़ी सफलता नहीं मिल सकती।' उन्होंने बुद्धिमानी से यह समझ लिया कि अगर वे व्हिग-विरोधी समूहों में से किसी एक के साथ अपना भाग्य जोड़ने के बजाय उन समूहों में एकता लाने का प्रयास करें—वर्किंगमेन्स पार्टी डेमोक्रेटिक पार्टी और ऐन्टी मैसोनिक पार्टी—तो वे अधिक 'लोकप्रिय' होंगे।

बैंक्रॉफ्ट में जैक्सनकालीन लोकतन्त्र की यह प्रतिरूपी योग्यता थी कि विश्वास के साथ सामान्य-जन और सामान्य विचारों की तर्कसंगति को श्रद्धा से प्रस्तुत करने के साथ-साथ वे उसके प्रचार के अभिव्यक्त हुए रूपों का भी इस्तेमाल करते थे। एक राजनीतिक अभियान सम्बन्धी उनके भाषण की कुछ टिप्पणियाँ नीचे दी जा रही हैं, 'सामाजिक दर्शन' का एक पैनी दृष्टि वाला नमूना जो आधी आस्था है, आधी चापलूसी।

'जन के अधिकारों को श्रद्धा से प्रस्तुत करना इस युग का नियम है। हर समूह जिसने अपने अधिकार प्राप्त कर लिए हैं, लोकतन्त्र को अपना सर्वोत्तम मित्र पाता है।...

"किसान गणतन्त्र की सच्ची सामग्री होते हैं, जिनमें अच्छा प्रभाव आकर्षक अंकन ग्रहण करने की क्षमता होती है; असली संगमरमर जिसे ईश्वर की मूर्ति के रूप में गढ़ा जा सकता है। सच्चरित्र किसान सामग्री है, स्वतन्त्र आत्मा है।

वैयक्तिक विशिष्टता पर आधारित करना, (६) अनाथों को ग्रामीण अध्यापकों के रूप में शिक्षित करना (७) स्कूल के लिए एक शरणालय की स्थापना। लोकतान्त्रिक शिक्षा से लोकतान्त्रिक राजनीति की ओर बैंक्रॉफ्ट के संक्रमण का वर्णन उनके जीवनी लेखक ने बड़े रोचक ढंग से किया है। देखिए, रसेल बी० नाइ 'जार्ज बैंक्रॉफ्ट ब्राह्मिन रैबेल (न्यूयार्क १९४४) पृष्ठ ७४।

'श्रम के पुरस्कार—श्रम का फल मिलना चाहिए। जो अधिक श्रम करे उसे अधिक मिले और इसका प्रतिलोम भी। व्यापारी कुछ उत्पन्न नहीं करता केवल विनिमय करता है। अतः नगर विनिर्माता और किसान के श्रम पर जीवित रहता है।''

'किसानों ने मिस्त्रियों की सहायता से क्रान्ति में सफलता पाई। हमारी स्वतन्त्रता का आगे विस्तार मिस्त्रियों पर निर्भर है।

'जनता प्रभु है। अध्ययनशील व्यक्ति उसका सलाहकार है। अर्थात् इस देश में शिक्षित लोग प्रभु की राज-परिषद् हैं।'[1]

यह बताना आसान नहीं है कि कब बैंक्रोफ्ट स्वयं अपनी दृष्टि में सच बोल रहे हैं और कब राजनीति का खेल कर रहे हैं। इसी प्रकार उनकी रचना 'संयुक्त-राज्य का इतिहास' (हिस्टरी आफ दी यूनाइटेड स्टेट्स) या 'अमरीकी लोगों का इतिहास' (हिस्टरी आफ अमेरिकन पीपुल) जैसा कि उसे अधिक औचित्य के साथ कहा जाता है अमरीका में स्वतन्त्रता के विकास का एक वस्तुनिष्ठ विवरण भी है, और जैसा उनके मित्रों ने कहा, 'जैक्सन के लिए एक वोट' भी। बैंक्रोफ्ट का विश्वास था कि इतिहास स्वतन्त्रता का इतिहास है और निर्णय का समय है। जब उन्होंने 'सामान्य दिमाग' की बात कही तो उनका तात्पर्य जनता के सामूहिक दिमाग से था। उनका परात्परवाद एमर्सन की अपेक्षा हीगेल के अधिक निकट था। तदनुसार जब उन्होंने अपनी सहयोगी ओरेस्टेस ब्राउनसन को लिखा कि जनसमूह का दिन आ गया है, तो वे इतिहास का एक तथ्य प्रस्तुत करने के साथ-साथ एक फैसला भी दे रहे थे।

जिस प्रकार बोस्टन के लिए बैंक्रोफ्ट परेशानी का एक कारण थे उसी प्रकार बैंक्रोफ्ट के लिए ब्राउनसन थे। डैमोक्रेटिक दल जिस हद तक जा सकता था ब्राउनसन लोकतन्त्र के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों को उससे कुछ आगे ले गये। संस्थात्मक सुधार के लिए काम करने की प्रेरणा उन्हें कुमारी फ्रांसेस राइट से मिली थी। फ्रांसेस राइट की अपील का एक विशिष्ट नमूना यह है—

"मैं उस जनता को सम्बोधित करती हूँ, जिसकी उदारता बहुत दिनों से बढ़ती हुई दरिद्रता से पीड़ित रही है और जिसकी सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक सुख को बढ़ती हुई बुराइयों से खतरा पैदा हो गया है। मैं ईमानदार लोगों से कहती हूँ जिन्हें अपनी ईमानदारी के लिए भय है। मैं मानवी पीड़ा से घिरे हुए मनुष्यों से कहती हूँ, सहानुभूति के लिए [illegible] सह-नागरिकों से कहती हूँ, समान अधिकारों और फलस्वरूप समान

---

१ वही, पृष्ठ १९।

दया और समान आनन्द के लिए वचनबद्ध गणतन्त्रवादियों से कहती हूँ मैं उनसे कहती हूँ कि एक हो जायें ।

'उस पीड़ा की ओर देखो जो धरती पर छा रही है संघर्ष और झगड़े और ईर्ष्याएँ और हितों व मतों के टकराव को देखो । आओ उस सारी दुर्दशा को देखो जिससे आँख और कान और हृदय परिचित है और तब इस अपमान जनक घोषणा को विजयोन्माद में गुँजाओ और आनन्द से उत्सव मनाओ कि 'सभी मनुष्य स्वतन्त्र और समान हैं ।'[1]

वर्तमान बुराइयों का इलाज वर्तमान व्यवस्था को बदलने में ही खोजना होगा । कुमारी राइट ने साहसपूर्वक स्पष्टोक्तिप्रियता का खतरा उठाया जब एक अतिथि यात्री के रूप में उन्होंने अपने श्रोताओं के सम्मुख यह बात रखी कि यद्यपि बहु-चर्चित 'अमरीकी व्यवस्था' के कुछ विशिष्ट अमरीकी अंग भी थे (विशेषत राजनीतिक) किन्तु उसकी प्रमुख संस्थाएँ (विशेषत आर्थिक) वही थीं जो यूरोपीय व्यवस्था की । उन्होंने अमरीकियों को बाध्य किया कि वे अपने राजनीतिक अर्थतन्त्र व परिणामों को दुःख और पीड़ा के सन्दर्भ में देखें और नैतिकता व शिक्षा की मूल समस्याओं को उसी सन्दर्भ में समझें ।

ओरेस्टेस ब्राउनसन १८३६ में 'सोसायटी फॉर क्रिश्चियन यूनियन ऐण्ड प्रोग्रेस' (ईसाई एकता और प्रगति समाज) का संगठन करने के लिए बोस्टन आये । उनमें सर्ववाद का अंश इतना काफी शेष था कि पुराने रूप में मुक्त विचार के बजाए, वे चैनिंग की बिना धर्म संगठन के व्यापक ईसाइयत की ओर झुकें और 'स्वतन्त्र लोगों' का इतना काफी अंश था कि वे सामाजिक प्रगति के लिए मुक्त विचारों वाले मजदूरों की ओर देखें । न्यूयार्क में जहाँ उन्होंने पहले उदार सर्ववादियों के साथ और फिर रॉबर्ट ओवेन और फ्रांसेस राइट के साथ (उनकी पत्रिका 'फ्री एन्क्वायरर'—स्वतन्त्र खोजी—के लेखक-सम्पादक के रूप में) काम किया था, ब्राउनसन का रूप एक साहित्यिक प्रतिभा और धार्मिक उग्रवादी का था । बोस्टन में वे केवल एक सामान्य दुनियादार और आन्दोलनकर्ता थे । १८४० में उनके आडम्बरपूर्ण त्रैमासिक (बोस्टन क्वार्टरली) में उनका सनसनी-खेज उपदेश-लेख श्रम करने वाले वर्ग प्रकाशित हुआ जिसने 'मध्यम-वर्गों को झिंझोड़ कर (ब्राउनसन के अपने शब्दों में) उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न कर दी ।

'अब यह मध्यम वर्ग जो इतना काफी सबल था कि फ्रांस की क्रान्ति के

---

१ फ्रांसेस राइट 'ए कोर्स ऑफ पापुलर लेक्चर्स' (न्यूयार्क १८२९) में 'लेक्चर ऑन एग्ज़िस्टिंग ईविल्स एण्ड देयर रेमेडी' फिलाडेल्फिया २ जून १८२९ से उद्धृत पृष्ठ १५२ १५३ १५७ ।

लगभग सारे ही व्यावहारिक लाभों को नष्ट कर दे, चार्टिस्टों[1] का स्वाभाविक शत्रु है।...बेचारे चार्टिस्टों के प्रति हमारी निराशा मध्यम-वर्ग की शक्ति और संख्या से उत्पन्न होती है। उनका एकमात्र वास्तविक शत्रु केवल मालिक है। सभी देशों में यही बात है। सब का शिक्षा मिले इसके महत्व को घटाने का हमारा कोई विचार नहीं है, किन्तु हम स्वीकार करते हैं कि हम उसमें मानव की सामाजिक स्थिति की बुराइयों का अमोघ उपाय नहीं देख पाते जैसा कि हमारे कुछ मित्र देखते हैं, या ऐसा कहते हैं। ईश्वर के लिए सावधान रहिये कि मजदूर वर्गों में आप बौद्धिक चिनगारी कैसे भड़काते हैं। अगर आप उन्हें पशुओं की सी बाह्य दशा में रखने जाते हैं तो उनकी सामान्य दयालुता दिखाइये कि उनके दिल और दिमाग़ को भी पशुओं जैसा ही रखिये। और अब मजदूर और मालिक के बीच धन और श्रम के बीच संघर्ष आरम्भ होता है। हर रोज यह संघर्ष अधिक फैलता है, सशक्त और तीव्रतर होता है। कब और क्या इसका अन्त होगा, इसे केवल ईश्वर जानता है। हम गुलामी के समर्थक नहीं हैं लेकिन हम साफ़ कहते हैं कि अगर स्वामियों और मालिकों से अलग मेहनत करने वाली एक जनसंख्या हमेशा रहती है, तो हम गुलामी-प्रथा को वेतन व्यवस्था से निश्चित रूप में ज्यादा अच्छा समझते हैं। हम श्रम करने वाले वर्गों की उन्नति का कोई साधन नहीं देखते जो... स्थूल बल की मजबूत बाँह के बिना प्रभावकारी हो सके। अगर यह कभी होगा तो एक ऐसे युद्ध के अन्त में होगा जैसा युद्ध संसार ने अभी तक नहीं देखा।[2]

बैंक्रॉफ्ट ने क्षोभता से शिकायत की 'ब्राउनसन ने अपने कल्पनापूर्ण सिद्धान्तों से हमें चौपट कर दिया है।' ब्राउनसन ने बाद में स्वयं स्वीकार किया ('दी कनवर्ट' में) कि यद्यपि १८४ के अपने 'भयंकर सिद्धान्तों' को दोबारा पढ़ने पर उन्हें स्वयं बड़ा अचम्भा लगा, किन्तु पूँजी और श्रम के सम्बन्ध और वेतन व्यवस्था सम्बन्धी अपने उन विचारों में वे 'कोई गलती नहीं निकाल' पाये। ऐसे विचारों के प्रकाशन का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि हॉथॉर्न के साथ ब्रुक फार्म में परात्परवादियों के बीच शरण लेना उनके लिए आवश्यक हो गया।

बैंक्रॉफ्ट के दर्शन के लिए ब्राउनसन से भी ज्यादा सीधे सूत्र थे डीयरफील्ड, मैसाचुसेट्स के रिचर्ड हिल्ड्रेथ। राजनीति में ह्विग, पेशे से वकील और एक

---

१ चार्टिस्ट—उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंगलिस्तान में चले एक लोकतान्त्रिक सुधार आन्दोलन के समर्थक।—अनु०

२ जोसेफ ब्लौ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलॉसफिकल ऐड्रेसेज' पृष्ठ १८८, १८९, २०१-२०४।

स्वतन्त्र-विचारक, हिस्कैप, जरमी बेन्थाम के दर्शन के अनुयायी बन गये और लोकतान्त्रिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने उसका प्रभावकारी उपयोग किया। सुधार के लिए काम करने का उनका ढंग हर तरह से बेंडोस्ट के ढंग का उलटा था। हिस्कैप एक उग्र उपयोगितावादी थे और अमाम-विज्ञान की विधियों का उपयोग करते हुए, राजनीतिक से अधिक आर्थिक उपायों का सहारा लेते हुए, उन्होंने सामाजिक शान्ति के लिए एक व्यवस्थित सामाजिक विज्ञान का निर्माण किया, जबकि बेंडोस्ट राजनीति का खेल खेलते हुए बड़ी धाम से नये युग के प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी करते रहे। स्वभाव से हिस्कैप भी उतने ही तीखे और आवेशपूर्ण थे जितने बाउनसम लेकिन उनका दर्शन पूर्णत गंभीर था। बाउनसम ने हिंसा की वकालत की हिस्कैप ने 'बढ़ी हुई उत्पादन-शक्ति और बुद्धि' की। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ही दार्शनिक अभी तक प्रभावशाली नहीं रहे, यद्यपि जो लोग अनजाने ही उनके बौद्धिक उत्तराधिकारी हैं, वे बहुत कुछ उन्हीं समस्याओं को फिर से उठा रहे हैं जिनकी उन्हें चिन्ता थी और वैसे ही उपायों का समर्थन कर रहे हैं। हिस्कैप की विचार-व्यवस्था अमरीकी परम्परा में अद्वितीय है और उसे पुनर्जीवित करना चाहिए—उसकी ऐतिहासिक अद्वितीयता के कारण भी (अमरीका के एकमात्र बेन्थाम) और दर्शन की एक व्यवस्था के रूप में उसके अपने मूल्य के कारण भी।

बेन्थाम के सुधार-दर्शन का कुछ प्रभाव एडवर्ड लिविंग्स्टन के प्रयास और शताब्दी के तीसरे दशक में फ्रान्सेस राइट के भाषणों और उनकी योजना में था।[1] नैतिकता और सामाजिक स्थितियों के सम्बन्ध पर और संस्थागत सुधार के बिना नैतिक सुधार की अव्यावहारिकता पर उनका जोर देना वह विशिष्ट स्वर था जिसमें बेन्थाम का प्रभाव दिखाई पड़ता है। पाँचवें दशक में रिचार्ड हिल्ड्रेथ ने उसी बात का प्रकाश अधिक व्यवस्थित रूप में किया। उन्होंने सिद्धान्तों के एक विस्तृत समूह की अवधारणा की, जिसे समाप्त करने के लिए वे जीवित नहीं रहे। यह आयोजित ग्रंथों में से केवल दो प्रकाशित हो सके और तीसरा शायद अब भी पाण्डुलिपि के रूप में कहीं पड़ा हो। सम्पूर्ण रचना 'मानव विज्ञान के प्रारम्भिक तत्व' होनी थी। इसका निर्माण 'बेकन की पद्धति के अनुसार, निरीक्षित घटनाओं से आगमन के द्वारा होना था और उसमें नैतिकता राजनीति, धन रुचि, ज्ञान और शिक्षा के सिद्धान्त शामिल थे। 'थियरी आफ

1 कुमारी राइट की एक पुस्तक 'जरमी बेन्थाम को उनकी उदार भावनाओं, उपयोगी कार्यों और सक्रिय लोकोपकारिता के प्रति उनकी श्रद्धा और उनकी मित्रता के प्रति उनकी कृतज्ञता के एक प्रमाण स्वरूप' समर्पित है।

मारल्स' (नैतिकता का सिद्धान्त १८४४) में सामान्य दार्शनिक अभिस्थापन है, जिसका सारांश उन्होंने अत्यन्त बड़े सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है।

'सच्ची नैतिकता की प्रगति और अभिवृद्धि—यह नैतिकता जो मनुष्य को अधिक सुखी बनाने में है—सर्वप्रथम ज्ञान की प्रगति पर निर्भर है, जो हमें इस योग्य बनाता है कि मानव सुख पर किन्हीं कार्यों या कार्यकलापों के वास्तविक प्रभाव का ज्यादा सही अनुमान लगा सकें। दूसरे और मुख्य रूप में यह उदारता की भावना की सापेक्ष शक्ति के बढ़ने पर निर्भर है, जिसके द्वारा हम अच्छे काम करने की ओर प्रेरित होते हैं। मैं इस नतीजे पर भी पहुँचा हूँ और सारी पुस्तक में यह सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष है कि उदारता की भावना की सापेक्षिक शक्ति को बढ़ाने का अवसर एकमात्र नहीं तो सबसे प्रभावशाली उपाय उन बहुसंख्यक पीड़ाओं की शक्ति को घटाना है, जो उदारता की भावना के आवेगों को निरन्तर पङ्गु बनाती रहती या उनका प्रतिकार करती रहती हैं। जो लोग निरंतर स्वयं अपनी पीड़ाओं से सताये रहते हैं उनसे यह आशा करना कि वे दूसरे लोगों की पीड़ाओं से अधिक प्रभावित होंगे, मनुष्य की प्रकृति के विपरीत है। मनुष्य को ज्यादा अच्छा बनाने के लिए, हमें आरम्भ उसे अधिक सुखी बनाने से करना होगा। संसार के सारे पादरियों और प्रोफेसरों के सारे उपदेश मनुष्य-जाति का सुधार करने में कुछ भी उपयोगी नहीं होंगे जब तक वे पादरी और प्रोफेसर उन जबरदस्त बुराइयों और पीड़ाओं को जिनसे बहुसंख्यक मनुष्य पीड़ित हैं, कम करने के लिए कुछ भी करना स्वीकार नहीं करेंगे बल्कि इसके विपरीत उन बुराइयों को ईश्वरीय विधान और प्रकृति की देन कह कर उन्हें क़ायम रखने का यथासंभव प्रयास करेंगे।

'हम अभी भी दर्शन में भी वही पाठ सिखाएँगे जो हमने राजनीति में पहले ही सिखाया—यह पाठ कि मनुष्य अपने लिए विचार और अपना शासन स्वयं कर सकते हैं। और पोप व पादरी ही उतने ही व्यर्थ हैं, उतने ही घातक हैं जितने राजा और अभिजात वर्ग।'[1]

अपने लिए विचार करने और अपना शासन करने की मनुष्यों की यह योग्यता अनुभव और बुद्धि के साथ बढ़ती है। अतः हिल्ड्रेथ के अनुसार 'नैतिकता एक प्रगतिशील विज्ञान है'। इसीसे वे यह भी नतीजा निकालते हैं कि मानव प्रकृति ऐतिहासिक प्रकृति है। उनकी 'थियरी आफ पालिटिक्स' (राजनीति का सिद्धान्त)

---

१ 'ए ज्वाइंट लेटर टु ओरेस्टेस ए ब्राउनसन ऐण्ड दी एडिटर आफ़ दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू इन व्हिच दी एडिटर आफ दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू इज़ प्रूव्ड टु बी नो क्रिश्चियन, ऐण्ड लिटिल बेटर दैन ऐन एथीइस्ट' (बोस्टन, १८४४)।

का अभिप्राय एक ऐतिहासिक निरूपण है और उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'हिस्ट्री ऑफ दी युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका' (संयुक्त राज्य अमरीका का इतिहास) लोकतन्त्र की ओर अमरीकी प्रगति का एक बिल्कुल तथ्यपूर्ण और आगमनात्मक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास है। प्रगति और इतिहास सम्बन्धी उनका सिद्धान्त आरम्भ में एक पाद-टिप्पणी में मिलता है।

'अपने आधुनिक यूरोप की सभ्यता का इतिहास (हिस्ट्री आफ़ दी सिविलिजेशन ऑफ़ मार्डन यूरोप) में गिजो ने सर्वप्रथम मध्य युग में शक्ति के चतुर्मुखी विभाजन की ओर विशेष रूप से ध्यान खींचा था। राजाओं सामन्तों पादरियों और नगरपालिकाओं के बीच इस शक्ति-विभाजन को आधुनिक सभ्यता के उत्थान और प्रगति के साथ-साथ होते देख कर, उन्होंने कुछ जल्दबाजी में यह नतीजा निकाल लिया कि इन सभी वर्गों का निरन्तर अस्तित्व और सन्तुलन उस प्रगति के लिए आवश्यक था और है। अगर वे विद्वान कुछ कम होते और दार्शनिक कुछ अधिक या अगर उन्हें हमारे अमरीकी दृष्टिकोण का लाभ भी प्राप्त होता तो मध्य-युग के साथ-साथ वर्तमान इतिहास के अधिक गंभीर और अधिक व्यापक अध्ययन से शायद उन्हें विश्वास हो जाता कि आधुनिक यूरोपीय सभ्यता की प्रगति में राजाओं सामन्तों और पादरियों के तत्त्व वहीं तक उपयोगी रहे हैं जहां तक वे एक-दूसरे को काटते और नष्ट करते रहे। वास्तविक प्रगति सारी की सारी केवल नगरपालिकाओं के माध्यम से हुई।'[1]

इस 'नगरपालिका तत्त्व' या नागरिक सद्गुण का विश्लेषण उनका मुख्य विषय बन जाता है। इसका प्राकृतिक या दैवी अधिकारों से कोई सम्बन्ध नहीं। वैयक्तिक या सार्वजनिक भावना केवल समाज के लाभ हित सभी हुई स्वाभाविक उदारता है और लोकतन्त्र में यह भावना 'राष्ट्र के समूचे शरीर में व्याप्त हो जाती है। लोकतन्त्र में लोगों को सुखी बनाने की सम्भावना सबसे अधिक है इसका सीधा-सा कारण यह है कि इसमें अधिकतम संभव संख्या को 'शक्ति रखने के सुख में हिस्सा दिया जा सकता है। लेकिन अगर असमानता और गरीबी की पीड़ाएँ, शक्ति के सुख से अधिक हो जाती हैं तो फिर यह (लोकतन्त्र) बिल्कुल चल ही नहीं सकता। अतः व्यावहारिक लोकतान्त्रिक नीतिशास्त्र ('कानूनी' नीतिशास्त्र से भिन्न) को 'सामान्य सामाजिक क्रान्ति' पर निर्भर रहना होगा जिसे रूसी और फरांसीसी क्रान्ति ने आरम्भ किया था। अभी जो स्थिति है वह उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग के लिए भी लगभग उतनी ही कष्टकर है, जितनी निम्नवर्ग के लिए। और आवश्यक परिणामस्वरूप, दोनों पक्षों में घृणा है। इतनी

---

१ हिस्ट्री ऑफ़ पॉलिटिक्स (न्यूयार्क १८९१) पृष्ठ १२१ एन।

कष्टों के बीच मानवता पर बड़ा भारी बोझ है। और सद्गुण के लिए अपने को बचाना कठिन है।[2]

इस समस्या ने कि 'इतने कष्टों के बीच' 'सद्गुण के लिए अपने को बचाना कठिन है' हिल्ड्रेथ को अपने 'धन का सिद्धान्त (थियरी आफ वेल्थ) का मुख्य विषय सुझाया। उसकी स्थापना थी कि केवल पुनर्वितरण से कष्ट का निराकरण नहीं हो सकता।

'किसी समाज विशेष के सम्मिलित प्रयत्नों से जिन अच्छी वस्तुओं का उत्पादन अभी तक हो सकता है, वे इतनी काफ़ी नहीं हैं कि हर कोई उनका आस्वादन कर सके। और यह आवश्यक रहा है कि बहुसंख्यक जनता से केवल रोटी और पानी पर, कड़ी मेहनत कराई जाये जबकि विलास की और आराम की वस्तुएँ भी केवल कुछ लोगों तक सीमित रही हैं। श्रम—जो विशाल जनसमूह का एकमात्र साधन है—का मूल्य कम रहा है, क्योंकि श्रम का उत्पादन कम रहा है और उत्पादक श्रम का फल इतना कम होने के कारण उसके स्थान पर अर्जन के साधन के रूप में छल और हिंसा के प्रयोग की प्रेरणा अधिक रही है।

'अतः मनुष्य जाति की पहली बड़ी आवश्यकता मानव श्रम की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने की है। विज्ञान ने पिछली शताब्दी में इस दिशा में बहुत कुछ किया है और भविष्य में और भी अधिक करेगा यह निश्चित है। हमारे अमरीकी महाद्वीप में विशाल नये क्षेत्र ऐसे खुल रहे हैं, जिनमें श्रम का लाभदायक उपयोग हो सकता है। श्रम धन का अपने आप में पर्याप्त एकमात्र स्रोत होने के बजाय जैसा कि कुछ राजनीतिक अर्थशास्त्री सिखाते हैं इससे अधिक निश्चित और कोई बात नहीं कि यूरोप में बहुत दिनों से श्रम के बाहुल्य का रोग रहा है और अब भी है—उस पर बहुतेरे ऐसे लोगों को खिलाने पहनाने का बोझ रहा जिनके लिए फलदायक काम उसके पास नहीं रहा। संयुक्त राज्य अमरीका ने अब ऐसी स्थिति प्राप्त कर ली है कि हर वर्ष यूरोप से आने वाले पाँच से दस लाख तक आप्रवासियों को आत्मसात कर सकता है।

'उत्पादक उद्योगों का विकास इस समय मनुष्य जाति की सबसे बड़ी और तात्कालिक आवश्यकताओं में से एक प्रतीत होता है। किन्तु इस विकास के लिए शान्ति और सामाजिक व्यवस्था से अधिक आवश्यक और क्या है?

'धन के बँटवारे का समाजवादी प्रश्न एक बार उठ जाने पर उसकी ओर से आँख नहीं मूँदी जा सकती। समाजवादियों ने जो बातें प्रस्तुत किए हैं वे काफ़ी

---

२ थियरी आफ मारल्स (बोस्टन, १८४४) पृष्ठ २७१-२७२।

समय से चले आ रहे दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं, जिनमें से कुछ के उत्साही समर्थक तो उन लोगों में भी हैं जो समाजवादियों की सबसे अधिक निन्दा करते हैं। इन दावों की खूबियों और प्रत्याख्यानों और परस्पर दोषारोपण के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता और न संशोधनों और दोषों के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। यह समस्या दार्शनिकों के लिए है, और जब तक कोई ऐसा हल नहीं मिल जाता, जिसे दोनों पक्ष निर्णायक मान लें, तब तक प्रगति के दल की आवश्यकता खत्म भी नहीं है—जिसके लिए [illegible] आन्तरिक मतभेदों के कारण अयोग्य है—अधिक विचार-विमर्श और बहस भी है। इंजीनियरों को पहले मतवाद की इस खाई को पाटना होगा अन्यथा चाहे जितना भी ढोल और मजीरियाँ बजाई जाएँ और शोर मचाया जाए, विजातीय पंक्तियों को फिर से एक करके प्रभावकारी रूप में गतिशील नहीं बनाया जा सकता।[1]

इंजीनियरों पर ही सामाजिक क्रान्ति की आशा केन्द्रित है। इसी स्वर पर सिल्ड्रेप का 'राजनीति का सिद्धान्त' समाप्त होता है। उनके दर्शन में ह्विग राष्ट्रवाद और जैफर्सनकालीन विरोध के विशिष्ट सिद्धान्त संशोधित होकर सामाजिक और वैज्ञानिक नियोजन के एक प्रभावशाली और समयानुकूल सिद्धान्त का रूप ग्रहण करते हैं।

न्यूयार्क नगर में जैफर्सनकालीन लोकतन्त्र को एक विशिष्ट रूप में उसकी अभिव्यक्ति मिली। चौथे दशक में 'न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट' के सम्पादक विलियम कलेन ब्रायन्ट और विलियम लैगेट ने और पाँचवें दशक में 'ब्रुकलिन डेली ईगल' के सम्पादक वाल्ट ह्विटमैन ने पत्रकारिता का ऊँचा स्तर क़ायम किया और लोकतान्त्रिक दल (डेमोक्रेटिक पार्टी) को ऐसे समय में साहित्यिक प्रतिभा और राजनीतिक सिद्धान्त प्रदान किये जब प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उसे दोनों की आवश्यकता थी। ब्रायन्ट और ह्विटमैन दोनों ने ही स्वतन्त्र व्यापार और स्वतन्त्र उद्योग के सिद्धान्तों की शिक्षा पाई थी, किन्तु लैगेट और पार्क गॉडविन के वामपन्थी नेतृत्व की प्रेरणा से उन्होंने अपने संस्थापित सिद्धान्तों का नवीन रूप में प्रयोग किया।

१८३५ में टैमैनी हाल[2] दो फूटों में बँट गया। एक एकाधिकार विरोधी गुट

---

१ मिसरी ओफ पॉलिटिक्स, पृष्ठ २०१ २०२ २०३-२०४।

२ न्यूयार्क में अमरीकी स्वतन्त्रता के आरम्भ-काल में ही अभिजात-वर्ग के विरुद्ध जैफर्सनवादियों का एक सुसंगत मध्यमवर्गीय समूह, जो अब भी प्रभावशाली है। अंग्रेज शासकों के विरुद्ध, क्योंकि अपना नाम एक उदार और बुद्धिमान आदिवासी सरदार 'टैमैनी' के नाम पर रखा।—अनु०

या मजदूर दल (वर्किंगमेन्स पार्टी) ने सचमुच अपने को अंधेरे में पाया जब मनुसारवादियों ने अपना उम्मीदवार मनोनीत करके रोशनी गुल कर दी, किन्तु वे हाल में ही जमे रहे और लोकोफोको[1] व मोमबत्तियों की रोशनी में उन्होंने एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में अपने को संगठित किया। यह गुट शक्तिशाली हो गया और राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों के हितों और बैंकों के विरोध का नेता माना जाने लगा। लोकतन्त्र का उनका प्रतिरूप जो आमतौर से 'लोकोफोकोइज्म' के नाम से प्रसिद्ध था उत्तरी जनतन्त्रवाद का प्रमुख स्वर बन गया। विलियम लेगेट इसके सिद्धान्तों के सर्वाधिक मुखर प्रवक्ता थे यद्यपि ब्रायन्ट ने एक न्यू-इंगलैण्डवासी के रूप में इसे अपना हार्दिक समर्थन देकर इसकी बड़ी सेवा की। 'पोस्ट' में उनके सम्पादकीय लेखों के निम्नलिखित उद्धरणों से पाठक को इस आन्दोलन की प्रकृति का बहुत कुछ ज्ञान हो जायेगा।

'क्या किसी चीज की कल्पना की जा सकती है, जो उस कानून की अपेक्षा उदारता या न्याय की हर भावना के अधिक प्रतिकूल हो जो कानूनी मूल्य निर्धारण के द्वारा अमीरों को गरीबों का वेतन निर्धारित करने का कानूनी अधिकार देता है? अगर यह गुलामी नहीं है, तो हम गुलामी की परिभाषा भूल गये हैं। स्वतन्त्र नागरिक के अधिकारों में से श्रम के विक्रय के लिए संगठन का अधिकार निकाल दें तो उसकी हालत वैसी ही हो जाएगी जैसी किसी मालिक के हाथ या जमीन के किसी टुकड़े के साथ बाँध देने पर। अगर चमड़ी के रंग का अन्तर और श्रम के अनुबन्ध में स्वयं अपनी शर्तें रखने का छोटा-सा अधिकार न हो तो दक्षिण के गुलाम की अपेक्षा उत्तर के मजदूर की स्थिति किस रूप में अच्छी है? अगर काम न करने के नियम को मानवी कानूनों के द्वारा दण्डनीय बना दें नकारापन में स्वयं को सजा मिलती है, उसके अलावा और कोई सजा दें तो फिर इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता कि काम लेने वाला एक है या कई हैं, व्यक्ति है या व्यवस्था गुलामी की घृणित प्रथा धरती पर अपने पाँव जमा लेगी।

'धनी अपने सामान्य हितों को समझते स्वीकार करते और तदनुसार कार्य करते हैं। फिर गरीब ऐसा क्यों न करें। लेकिन जैसे ही गरीबों से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एक होने की अपील की जाती है, तत्काल समाज खतरे में पड़ जाता है। सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रह जाती और जीवन खतरे में पड़ जाता है। यह भावना उस समय की विरासत है जब गरीब और मजदूर

---

१ लोकोफोको—अर्थात् घुण्डी और सख्त जगह पर रगड़ने से जल उठने वाली दियासलाई।—अनु॰

वर्गों का समाज में कोई हिस्सा न था और कोई अधिकार न था, सिवाय ऐसे अधिकारों के जो वे बलपूर्वक प्राप्त कर सकें। किन्तु अब समय बदल गया है, यद्यपि पाखण्ड वहीं जमा हुआ है।

इस धरती पर जितने भी देश हैं या कभी भी थे उनमें यह एक ऐसा देश है, जहाँ धन और अभिजात्य के दावे सर्वाधिक निराधार फिजूल और हास्यास्पद हैं। ये किसी पैतृक विशिष्टता का दावा नहीं कर सकते। उनके कोई खास, विशिष्ट अधिकार नहीं हैं, सिवाय हजारों से प्राप्त होने वाले अधिकारों के। और अपनी सम्पत्ति को हमेशा के लिए अपने वंशजों के लिए सुरक्षित करने की कोई शक्ति नहीं है। ऐसी सूरत में अभिजात वर्ग का दम भरना और उसके जैसे दावे करना सर्वथा हास्यास्पद है। यह बिल्कुल सम्भव है कि कल वे स्वयं भिखारी हो जायें या किसी भी सूरत में उनके बच्चे तो भिखारी हो ही सकते हैं।'

— — —

लेकिन हम पूछते हैं कि अगर मजदूर वर्ग अपने राजनीतिक सिद्धान्तों के समर्थन में, या अपने खतरे में पड़े अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त हो जाते हैं, तो इसमें खतरा क्या है? जब उनके विरोधी मिल कर काम करते हैं तो क्या उन्हें मिलकर काम करने का अधिकार नहीं है? यही नहीं क्या यह उनका अनिवार्य कर्तव्य नहीं है कि वे इस स्वतन्त्र देश में उस एकमात्र प्रभु के विरुद्ध एक हों जिससे उन्हें भय है—एकाधिकार और एक विशाल कागजी व्यवस्था जो उन्हें पीस कर मिट्टी में मिला देती है? सचमुच यह एक विचित्र गणतन्त्रवादी सिद्धान्त है और एक विचित्र गणतान्त्रिक देश है कि एक सामान्य प्रयास में एक सामान्य लक्ष्य के लिए, लाखों के एक होते ही व्यक्ति और सम्पत्ति के अधिकारों के लिए खतरे की भावना उठ खड़ी होती है। क्या यह जनता के अधिकारों पर आधारित जनता की सरकार नहीं है और क्या शक्ति के अनुचित हस्तक्षेप और अनधिकार-ग्रहण से उनकी रक्षा करना इसकी स्थापना का विशिष्ट उद्देश्य नहीं है? और अगर लाखों का सामान्य हित रखने की अनुमति नहीं है, सामान्य भावना से कार्य करने की अनुमति नहीं है, अगर वे वैधानिक उपायों से इन हस्तक्षेपों का प्रतिरोध करने के लिए संयुक्त नहीं हो सकते, तो विधि-निर्माता और प्रशासकों के चुनाव में अपने मताधिकार का प्रयोग करने में उन्हें स्वतन्त्र घोषित करने का क्या मतलब है?

कुछ पत्रकार हैं जो संघभावना को बड़ा अप्रिय समझने का दिखावा करते हैं और उन्हें स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्तों के बिल्कुल प्रतिकूल समझते हैं। और अक्सर यह सिफारिश की जाती है कि उन्हें कानून द्वारा दण्डनीय बना दिया जाये। स्वतन्त्र व्यापार सम्बन्धी हमारी धारणाओं से सीख लिया है और हम इस पक्ष

में है कि उचित साध्य की प्राप्ति के लिए मिलजुल कर या अकेले कार्य करने के लिए मनुष्यों को पूर्णतः स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए। हमारी दृष्टि में संयोजनों का चरित्र पूर्णतः उस साध्य के आन्तरिक चरित्र पर निर्भर है जिसका सन्धान किया जाता है। ...

"एक ही बात है जिसके पीछे मिस्त्री और मजदूर सुरक्षित रूप में सामान्य शत्रु का विरोध करने के लिए एकत्र हो सकते हैं जिसके विरुद्ध अगर वे अकेले अकेले चलें तो नष्ट हो जायेंगे। वह बात है, 'संयोजन का सिद्धान्त'। हम उन्हें सलाह देंगे कि उसके पीछे वे अत्यधिक गम्भीर मामलों में ही शरण लें क्योंकि अपने मालिकों के साथ उनके टकराव में जैसे दो राष्ट्रों के टकराव में घरेलू की बहुसंख्यक बुराइयों का अनुभव न्यूनाधिक दोनों ही पक्षों को होता है और इस कारण अत्यधिक संकट के समय ही इसमें पड़ना चाहिए।"[1]

न्यू-इंग्लैंड के बुद्धिजीवियों में 'लोकोफोको' लोकतन्त्र की भावना मुख्यतः बैंक्रॉफ्ट और हॉथोर्न में मूर्त हुई, किन्तु एमर्सन भी उससे प्रभावित हुए। बोस्टन में १८३९-४० में उनकी भाषण-माला का शीर्षक था 'वर्तमान युग' और उसमें एमर्सन ने बताया कि किस प्रकार मानव समाज में तर्कबुद्धि की व्यापक प्रगति ने परम्परा के 'भय' को नष्ट कर दिया, फिर किस प्रकार उसने उपयोगिताओं को उस भ्रम से अलग कर दिया जिसका उन्हें प्रतिनिधित्व करना चाहिये किस प्रकार धनी होने का लक्ष्य सारे संसार को ग्रस गया है। किन्तु एमर्सन ने आगे चलकर धार्मिक लोकतन्त्र के बारे में कहा कि 'सब मिला कर 'भक्ति दल' (मूवमेंट पार्टी) धीरे-धीरे आगे बढ़ता है, जैसे स्वयं संसार की भक्ति है। जिस महान् विचार ने मनुष्यों के हृदयों में आशा उत्पन्न की वह उषा की किरणों की भाँति धीरे-धीरे सारे संसार में फैलता जाता है।'[2] थियोडोर पार्कर ने जो पहले भाषण में उपस्थित थे, लिखा

"वह सारा का सारा 'लोकतान्त्रिक लोकोफोकी' था और 'क्वार्टरली' (ब्राउनसन की पत्रिका) के पिछले अंक में लोकतन्त्र और सुधार पर ब्राउनसन के लेख की भावना के पूर्णतः अनुकूल था। बैंक्रॉफ्ट अत्यधिक आनन्दित थे। भाषण के 'लोकोफ़ोकिज़्म' पर वे कल्पनातीत रूप में मुग्ध थे, और दूसरे दिन शाम को उन्होंने मुझसे कहा 'किन्हीं भी श्रोताओं के समक्ष चाहे उनकी संख्या

---

१ बर्नार्ड स्मिथ द्वारा सम्पादित 'दी डेमोक्रेटिक स्पिरिट (न्यूयार्क १९४१) पृष्ठ २१०, २१४, २१४ २१५, २१५ २१६, २१८-२१९।

२, जेम्स इलियट कैबॅट, 'ए मेम्वायर आफ़ राल्फ वाल्डो एमर्सन (न्यूयार्क, १८८७) खंड दो, पृष्ठ ११ ।

कितनी भी कम हो, ऐसी बातें कहना बड़ी चीज है, किन्तु वे हमारे समक्ष 'बे राज्य' (मैसाचुसेट्स) के समक्ष आयें तो हम उनके लिए तीन हजार मील से भागेंगे। एक गम्भीर, स्निग्ध अपने आप से सज्जन ने एक शाम एमर्सन को सुना और कहा कि उनके ऐसा भाषण देने की बात से यह मान कर ही समझ सकते हैं कि वे आगे वेस्टपोस्ट के नवीन चुंगीघर में कोई स्थान प्राप्त करना चाहते हैं।"[1]

वाल्ट ह्विटमैन की शैली और उनके विचार 'न्यूयार्क पोस्ट' या एमर्सन की अपेक्षा अधिक भावुकतापूर्ण थे। उनके सम्पादकीय लेख लोकोफोको आन्दोलन को एक और स्वरूप तक बताते रहे। उदाहरण स्वरूप—

लोकतान्त्रिक विश्वास की प्रमुख धारणाएँ हमेशा अपने युग से आगे रहती हैं और इस कारण उन्हें पुराने पूर्वग्रहों से लड़ना पड़ता है। वे जिस संघर्ष में पड़ते हैं उसमें पशु-साहस की नहीं, वरन् नैतिक साहस की आवश्यकता पड़ती है।..

स्वयं जेफरसन के प्रमाण के आधार पर हम कह सकते हैं कि पहले आडम्स के शासनकाल के अन्धकार-युग में जो कष्टदायक उत्पीड़न और अपमान उन लोगों को सहने पड़े उनका कोई अनुमान नहीं लगा सकता। किन्तु स्वयं अपने कुछ साहसी हृदयों का सहारा लेकर और एक औचित्यपूर्ण लक्ष्य के कवच द्वारा सुरक्षित रह कर वे झिझके नहीं। सारे भय का परित्याग करके वे निरन्तर अपने सिद्धान्त को सिखाते और समझाते और खुले आम अपने विरोधियों के मत के झूठ और अन्याय की घोषणा करते हुए जनता के समक्ष आये। हम आज उन्हीं के सिद्धान्तों के वारिस बन कर और उन्हीं के शत्रु के विरुद्ध खड़े हैं—समान अधिकारों का शत्रु। लोकतन्त्र की फिर विजय होगी, जैसे तब हुई थी और उस समय से भी अधिक निश्चित रूप में होगा। हमारे ऐसा सोचने के दो सीधे से कारण हैं। एक यह है कि मजदूरों का विज्ञान उस समय की अपेक्षा अधिक सशक्त और प्रबुद्ध है। दूसरा कारण है कि इस राष्ट्र के एक कोने से दूसरे कोने तक लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता के अपने प्रयोग को उसकी अन्तिम सीमा तक ले जाने की एक सबल और बेचैन आकांक्षा है।

"हम यह भविष्यवाणी करने का साहस करते हैं कि आज से बीस वर्ष के

---

[1] वही, खण्ड दो, पृष्ठ १८-१९। ऐसा प्रतीत होता है कि ये भाषण जिस रूप में दिये गये, उस रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुए। उनके स्वर और लक्ष्य के बारे में और अधिक जानकारी एमर्सन के 'जर्नल्स' (बोस्टन, १९०९—१४) खण्ड पाँच, पृष्ठ २८८-२९०, से और उनके 'लेटर्स' (न्यूयार्क, १९३९), खण्ड दो, पृष्ठ २४१ २४७, २५२-२५६, से मिल सकती है।

शासन वही है, जो सबसे कम शासन करे। हमें आश्चर्य है कि इस उक्ति की भावना हमारे देशी नेताओं के हृदयों तक अधिक अवसरों पर और अधिक निकट तक नहीं पहुँचती।

"क़ानून के द्वारा सामान्य सद्गुण श्रेष्ठता और आत्मत्याग आदि की अपेक्षा करना मूर्खता है। ये बिल्कुल भिन्न स्रोतों से आते हैं—घर के प्रभाव और उदाहरण से सुनिर्मित सिद्धान्तों से और नैतिकता की आदत से। अतः नैतिकता में हस्तक्षेप करने वाले क़ानूनों में हमारी आस्था बहुत कम है और मनुष्यों को स्वच्छ बनाने के क़ानूनी प्रयासों में हमारी आस्था बिल्कुल ही नहीं है।"[1]

युवा अमरीका

धीरे-धीरे स्फूर्तिमय शासन के ठिठुरे कार्यक्रम के स्थान पर अमरीका की 'प्रकट नियति' पर एक आस्था आ गयी और लोकतन्त्रवादियों ने 'अमरीकी व्यवस्था' की धारणा को बदल कर उसे अमरीकी लोगों की प्रकृतिजन्य प्रगति का रूप दे दिया। १८३७ की निराशा का अन्त होने के बाद पश्चिम की ओर तेजी से प्रसार औद्योगिक क्रान्ति और अमरीका की बढ़ती हुई राजनीतिक प्रतिष्ठा ने मिल कर एक उत्साहपूर्ण आशावाद और देशभक्ति का सृजन किया। जब इसमें सोने की खोज और यूरोप में १८४८ में हुई क्रान्तियों की उत्तेजना जुड़ गयी और गुलामी के प्रश्न पर मिसोरी समझौता[2] हो गया तो आत्म विश्वास की ज्योति ने प्रगति और अमरीका के नेतृत्व में विश्वास की एक तेज राष्ट्रीय भावना का रूप ले लिया। छठे दशक का यह तेज आशावाद सातवें दशक में होने वाली दुखद घटना के लिए अधिकतम अनुपयुक्त मानसिक भूमिका थी।

एमर्सन का एक भाषण ठिठुरे राष्ट्रवाद से लोकतन्त्रवादी राष्ट्रवाद की ओर

---

१ वाल्ट ह्विटमैन, 'दी गैदरिंग ऑफ़ फ़ोर्सेज़' खण्ड एक, पृष्ठ ५२, ५३-५४, ५६-५७, ५८।

२ मिसोरी-समझौता—मिसोरी राज्य के सं० रा० अमरीका में प्रवेश की अनुमति सम्बन्धी १८२० में हुआ समझौता जिसके अनुसार स्वयं मिसोरी राज्य में गुलामी-प्रथा चालू रही, किन्तु उसके पश्चिम और उत्तर के सभी क्षेत्रों में गुलामी-प्रथा समाप्त कर दी गयी।—अनु०

इस संक्रमण को सार-रूप में व्यक्त करता है। यह भाषण उन्होंने १८४४ में बोस्टन के व्यापारिक पुस्तकालय संघ (मेर्कन्टाइल लायब्रेरी एसोसिएशन) के समक्ष दिया और इसका शीर्षक 'युवा अमरीकी' रखा। पहले हिस्से में उन्होंने रेलों और अन्य 'सुधारों' के सांस्कृतिक महत्व पश्चिमी क्षेत्र का द्वार खुलने और व्यापार की अभिवृद्धि पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की और अमरीका को 'भविष्य का देश .आरम्भों संयोजनाओं अभिकल्पों आशाओं का देश' कहा। फिर मानवी निर्माण और सुधार के इस छिन्न भिन्न से मुड़ कर उन्होंने कहा—'सज्जनों एक उदात्त और मैत्रीपूर्ण नियति है जिससे मनुष्य जाति निर्देशित होती है।' इस 'नियति' को उन्होंने शासन के नहीं वरन् प्रकृति के एक कार्य के रूप में समझाया।

"यह लाभकारी प्रवृत्ति हिंसारहित किन्तु सर्वशक्तिमान् है और कार्य करती है। इतिहास की हर पंक्ति यह विश्वास पैदा करती है कि हम बहुत ज्यादा नहीं भटकेंगे कि चीजें सुधर जाती हैं। जो कुछ हम सीखते हैं उसका यही सबक है कि इससे आशा उत्पन्न होती है, जो सुधारों की जननी है। हमारा काम खासतौर पर यही है कि हम रास्ते में न आयें सुधार में रुकावट न डालें अड़ हो जाने तक बैठे न रहें, बल्कि हर आने वाली सुबह को देखें और नये दिनों के नये कामों के साथ चलें। शासन पराभूत रहा है उसे विकासमान् पौधा होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि क़ानून का काम मनुष्य-जाति के दिमाग़ को व्यक्त करना होना चाहिए, उसमें रुकावट डालना नहीं—नये विचार, नई वस्तुएं। व्यापार एक साधन था किन्तु व्यापार भी केवल कुछ समय के लिए है, और उसे कुछ अधिक व्यापक और बेहतर वस्तु के लिए स्थान छोड़ना होगा जिसके चिह्न अभी भी आकाश में उदय हो रहे हैं।

"व्यापार द्वारा समाज की स्थिति में हुई क्रान्ति के फलस्वरूप हमारे काल में शासन अकुशल और भारी-भरकम प्रतीत होने लगा है। अधिक संक्षिप्त विधियों का मार्ग हमने अभी भी देख लिया है। समय शुभ संकेतों से भरा है। इनमें से कुछ फलीभूत होंगे। यह सारा लाभकारी समाजवाद एक मैत्रीपूर्ण संकेत है जनता की शिक्षा के लिए बढ़ती हुई आवाजें इस ओर संकेत करती हैं कि महाजन और बाजार के अलावा शासन के और भी कुछ काम हैं।

'आस-पास की किसी पहाड़ी से धरती को देखिए, तो भूमि शासन की माँग करती प्रतीत होती है। मनुष्यों के वास्तविक अन्तरों को स्वीकार करना होगा और प्रेम व बुद्धि से उनका सामना करना चाहिए। ये धरती के उठे हुए कोने जहाँ से नीचे के फैले हुए मैदानों को देखा जा सकता है, स्वामियों की माँग करते प्रतीत होते हैं वास्तविक स्वामियों, भू-स्वामियों की जो भूमि और उसके उपभोग

को समझते हैं और मनुष्यों की कार्य-क्षमताओं को भी और जिनका शासन वही होगा जो उसे होना चाहिए, अर्थात् आवश्यकता और पूर्ति के बीच सामंजस्यता। हर नागरिक बड़ी प्रसन्नता से अच्छे निर्देशन को क़ायम रखने और उसका बनाने के लिए शुल्क दे देगा। ऐसी वस्तुस्थिति की ओर सचमुच प्रगति होती प्रतीत होती है, जिसमें यह कार्य इन नैसर्गिक कर्मियों द्वारा किये जाएँगे। और यह निश्चय ही चुनावों में नागरिकों द्वारा अधिक विवेक के प्रदर्शन से नहीं होगा वरन् अधिकृत शासन के प्रति धीरे-धीरे बढ़ रही इस प्रवृत्ति के द्वारा होगा कि शासन के जो कार्य उससे छूट जाते हैं उन्हें स्वयं अपना लें।

"हमें राजाओं की भी आवश्यकता है और सामन्तों की भी। प्रकृति हर समाज को राजा और सामन्त प्रदान करती है—लेकिन हम केवल नाम के राजा-सामन्त न रखकर असली रखें। जो सर्वश्रेष्ठ हैं उन्हीं से हम अपना नेतृत्व और अपनी प्रेरणा लें। हर समाज में कुछ व्यक्ति शासन करने के लिए पैदा होते हैं और कुछ सलाह देने के लिए। व्यक्तियों सुनिर्दिष्ट हों प्रेम द्वारा निर्दिष्ट हों, तो हर जगह उनका स्वागत सामन्य और सम्मान के साथ होगा।

"मैं आप युवकों से कहता हूँ कि अपने दिल की बात मानें और इस देश का अभिजात-वर्ग बनें। संसार के हर युग में एक अगुआ राष्ट्र रहा है जिसकी भावनाएँ अधिक उदार हों जिसके प्रमुख नागरिक तात्कालिक दृष्टि रखने वालों द्वारा अविश्वासनिक और शेखचिल्ली कहलाने का ख़तरा उठाकर भी सामान्य न्याय और मानवता के हितों का समर्थन करने को तैयार रहते हैं। ऐसा राष्ट्र कौन होगा सिवाय इन राज्यों (अमरीका) के? कौन इस आन्दोलन का नेतृत्व करे, सिवाय न्यू-इंगलैंड के? नेताओं का नेतृत्व कौन करे, सिवाय युवा अमरीकी के?

'सज्जनों हमारे अमरीकी आन्तरिक साधनों का विकास, व्यापार-व्यवस्था के अधिकतम विकास और राज्य को संचालित करने वाले नैतिक कारणों के प्रकट होने से भविष्य को महानता का ऐसा रूप मिल रहा है जिसे अनावृत करते कल्पना काँपती है। एक बात हर सामान्य बुद्धि और सामान्य अन्तरात्मा वाले व्यक्ति के सामने साफ़ है, कि यहाँ अमरीका में, मनुष्य का घर है।'[1]

अमरीकी नियति की इस धारणा ने एक नये प्रकार के लोकतान्त्रिक सिद्धान्त को जन्म दिया। प्रकृति का मार्गदर्शक हाथ प्राकृतिक नियम का नहीं था, वरन् भौतिक और मानवी प्राकृतिक साधनों का था एक अराजनीतिक प्रकार की

---

१ दी वर्क्स ऑफ़ राल्फ़ वाल्डो एमर्सन (बोस्टन स्टैण्डर्ड लायब्रेरी संस्करण, १८८५), खण्ड वी, पृष्ठ १०० १०९ में स्थान-स्थान पर।

सामान्य मनुष्यों को समूचे अमरीकी राष्ट्र को हर दिशा में असीमित प्रगति की सुरक्षा प्रदान करती थी। जब एमर्सन जैसा सौम्य और सावधान दिमाग़ भी इन अतिशयोक्तिपूर्ण आशाओं का शिकार हो गया तो उन युवा अभिजातों के जिनसे एमर्सन ने अपील की थी असीमित अदूर आशावाद और संकीर्ण राष्ट्रवाद की कल्पना की जा सकती है। उनमें से एक नवा-युवक वाल्ट ह्विटमैन ने अपने पत्र, 'डेली ईगल' में शिशु-स्वर में कहा—

'जबकि विरोधी पक्ष—कम से कम उनका एक बड़ा हिस्सा—इस गणतन्त्र और इसके चुने हुए नेताओं की हँसी उड़ा रहे हैं 'यांकीडूडिल'[1] का देश पैंसठ लाख अश्वशक्ति के भाप के इंजन की अजस्र शक्ति के साथ आगे बढ़ रहा है। इसलिए पूर्व और पश्चिम की ओर कोई चीज़ इसके सामने नहीं टिक रही है, और सम्भव है कि एक दिन यह कनाडा और रूसी अमरीका (अलास्का) को भी अपनी जेब में रख ले। उन कामों को यह परम्परागत 'भद्र' रीति से करता है या नहीं यह गौण बात है—किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह चाहे जो भी क़दम उठाये मानवी जीवन, सम्पत्ति और अधिकारों के प्रति इसका दृष्टिकोण कोमल रहेगा। किसी भी स्थिति में यांकीडूडिल का देश चीनी युद्ध या 'हिन्दुस्तान में अंग्रेजी कार्यवाहियों' या पोलैंड के विनाश' जैसी चीजों के प्रतिरूप प्रस्तुत करने का दोषी कभी नहीं होगा। पुरानी दुनिया औपचारिकता और अनुदारता के अपने बोझ के नीचे लड़खड़ाती रहे। हमारी जाति और भूमि अधिक नयी और ताज़गी भरी है। और हमें सिर्फ़ पचास वर्ष आगे की ओर इंगित करके इतना कहना है कि जो बीतें वे देखें।[2]

नथैनियल हॉथार्न का 'युवा अमरीकावाद' एक विशिष्ट प्रकार का लोकतन्त्र था और उसके गम्भीरतम पक्षों में से एक को व्यक्त करता था। उसमें यह मूलतः न राजनीतिक लोकतन्त्र था न धार्मिक, वरन् सामाजिक लोकतन्त्र था—सामाजिक समानता के प्रति लगाव और वर्गहीन समाज की चाह। वे एक 'युवा' लोकतन्त्रवादी जनता के आदमी थे।

सेलम में और मेन राज्य के बोडाइन कालेज में एक युवक के रूप में भी वे जानबूझ कर सबसे हटे रहे, यद्यपि विशिष्टता न प्राप्त करने को उन्होंने एक आदत और एक आदर्श बना लिया था जबकि उनके आसपास के सारे लोग

---

१ यांकीडूडिल—अमरीकी स्वतन्त्रता युद्ध के समय लोकप्रिय गीत जो अंग्रेजों के मज़ाक़ का शिकार होते-होते अमरीकियों का राष्ट्रीय गीत बन गया।—अनु०

२ वाल्ट ह्विटमैन, 'दी गैदरिंग ऑफ़ दी फ़ोर्सेज़' (न्यूयार्क, १९२०) खण्ड एक, ११।११।

विशिष्ट वैयक्तिकता प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे थे। उन्होंने किसी मंच पर भाषा स्वीकार नहीं किया और अन्य रीतियों से भी अपने साथियों को समझाया कि लेखन के अपने चुने हुए कार्य-क्षेत्र में भी उनका स्थान छोटा ही रहेगा। 'मैं कभी संसार में विशिष्ट आकृति नहीं बनूँगा और मेरी सारी आशा और इच्छा यही है कि जनसमूह के साथ घुला चलता रहूँ।'[1] वे महत्त्वाकांक्षी नहीं थे और जीविका के लिए श्रम करना भी उन्हें अप्रिय था। 'श्रम संसार का अभिशाप है और जो कोई उसमें हाथ लगाता है, वह उस सीमा तक पशु बन जाता है,' उन्होंने ब्रूक फार्म[2] के प्रयोग से निराश होने के बाद अपनी प्रेमिका को लिखा। उन्हें आशा थी कि वहाँ उन्हें कम से कम काम के साथ अधिक से अधिक आराम करने को मिलेगा। किन्तु अपनी आदर्श स्थिति के निकटतम वे उन वर्षों में ही पहुँच पाये जब सेलम के चुंगीघर और लिवरपूल के उप-दूतावास में उन्हें लोकतान्त्रिक दल का राजनीतिक संरक्षण प्राप्त रहा।

लोकतन्त्र को वे परात्परवादी सुधारकों के रोमानी अनुत्तरदायी 'अहंकार' के विरुद्ध सामान्य व्यक्तियों का गम्भीर, यथार्थवादी उद्यम मानते थे। गुलामी-प्रथा की समाप्ति चाहने वालों की कट्टर पैग़म्बर लोकोपकारिता के समक्ष नैतिक-यथार्थवादी बनने की अपनी चेष्टा के फलस्वरूप ही उन्होंने गुलामी की समस्या की गम्भीरता को पूरी तरह नहीं समझा। 'हॉथार्न और युवा अमरीकियों' ने राष्ट्र की नैतिक स्थिति के एक ऐसे विश्लेषण के आधार पर जो यथार्थ से बहुत दूर प्रमाणित हुआ विश्वासपूर्वक यह आशा व्यक्त की कि समस्त विरोधों पर राष्ट्रीयता की विजय होगी—

'इसी प्रकार कहा जा सकता है कि दोनों पक्ष एक सामान्य उद्देश्य में एक हैं—हमारे पवित्र संघ को उस अटल आधार के रूप में क़ायम रखना जिससे न केवल अमरीका बल्कि शायद सारी मनुष्यजाति अपनी नियति की ओर अग्रसर होगी और उसे प्राप्त करेगी। और इस प्रकार मनुष्य यथासम्भव शान्ति और समरसता में उसी प्रगति की उस नयी हलचल की प्रतीक्षा में है, जिसकी ओर वे सारे चिह्न संकेत करते हैं।'[3]

---

१ प्रिय के नाम पत्र, ११ अक्टूबर, १८४२ ई०, 'दी कम्प्लीट वर्क्स' (रिवरसाइड संस्करण, कैम्ब्रिज १८८३) में, खण्ड बारह, पृष्ठ ४११।

२ ब्रूक फ़ार्म—परात्परवादियों द्वारा बसाई गयी एक आदर्श बस्ती जो असफल रही।—अनु०

३ 'दी कम्प्लीट वर्क्स' (कैम्ब्रिज १८८३) खण्ड बारह, पृष्ठ ४११।

उनके लिए यह आस्था कभी सरल नहीं रही। यह मूलतः एक नैतिक संघर्ष था, जिसका दुखान्त होना स्वाभाविक था।

हौवेल्स की निजी पीड़ा और भी ज्यादा गहरी इस कारण हो गयी कि इंगलिस्तान में अपने आवास के समय, जिसे वे स्नेहपूर्वक 'हमारा पुराना घर' कहते थे, उन्होंने इंगलिस्तानी अभिजात्य-वर्ग के परिपक्व 'उच्च' प्रतिमानों और नैतिक मूल्यों से आनन्दित होना सीख लिया था और अमरीका वापस आने पर हमारी संस्कृति के भद्देपन से उन्हें बड़ा धक्का लगा। पुरानी अभिजात्यवर्ग की सुन्दरताओं के प्रति प्रेम और युवा लोकतन्त्र के आदर्शों के प्रति निष्ठा के बीच जो संघर्ष उनके अन्दर चल रहा था उनके जीवन के अन्तिम वर्ष उसी में गुजरे। इस आन्तरिक संघर्ष और उसके साधारणीकृत द्वन्द्व की उन्होंने 'डाक्टर ब्रिमघोज् सीक्रेट' में गम्भीर विवेचना की।

'मैं यह कहकर कहता हूँ कि मुझे अपने देश से प्यार है, मुझे उसकी संस्थाओं पर गर्व है, मेरे अन्दर एक भावना है, जो शायद गणतन्त्रवादियों के अतिरिक्त अन्य लोगों के लिए अज्ञात ही रहती है, किन्तु जो मेरे लिए सर्वाधिक गर्व की वस्तु है, कि कोई मनुष्य मुझसे ऊँचा नहीं है—क्योंकि एक अन्य व्यक्ति के रूप में, जिसे मैं उसका पद प्रदान करता हूँ, मैं स्वयं अपना शासक हूँ—और न कोई मुझसे नीचा है। अगर आप मेरी बात समझें तो मैं आपको बताऊँ कि मुझे कितनी लज्जा का अनुभव हुआ, जब इस देश में पाँव रखने के बाद पहली बार मैंने एक व्यक्ति को कहते सुना कि जन्म से उसे कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं, मजदूरी करने वाले लोगों के प्रति उसे नीची दृष्टि से देखते पाया, जैसे वे किसी निम्न-जाति के हों। और इस बात को मैं कभी नहीं समझ सकता कि अपने से ऊँचे व्यक्तियों और वर्गों पर आपको निश्चित रूप में गर्व होता प्रतीत होता है; जिसे जन्म से ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त हैं जिनमें हिस्सा पाने की आप कभी आशा नहीं कर सकते। यह एक ऐसी चीज हो सकती है जिसे सहना पड़े, लेकिन निश्चय ही ऐसी नहीं जिस पर सम्पूर्ण रूप में गर्व हो। फिर भी अंग्रेजों को ऐसा गर्व होता है।'[1]

'उस सन्तोष को समझना हम सबसे कठिन पाते हैं जो अंग्रेजों को अपने से ऊँची एक जाति के बारे में सोच कर होता है, जिसके विशेषाधिकारों में वे हिस्सा नहीं बँटा सकते जिसे उनका तिरस्कार करने का अधिकार है, और जो उनकी कीमत पर अपना सुन्दर और आकर्षक आचरण प्राप्त करती है—इस जाति के लोग दयालु, सादे और सहनशील होते हैं क्योंकि वे बुरा, अभद्र की अपेक्षा अधिक

१ वही, खण्ड ग्यारह, पृष्ठ २००।

उपयोगी होते हैं, और श्रेष्ठतम पुरुषत्व के नमूने होते हैं। और ये सारे लाभ उन्हें अपनी स्थिति से प्राप्त होते हैं। अगर सामन्त होना केवल नाम की बात हो तो वह ईर्ष्या की वस्तु नहीं। किन्तु यह केवल नाम ही नहीं और भी बहुत कुछ है। यह सचमुच मनुष्यों को बहुत उच्च बनाता है। गरीब निम्न वर्ग भले ही इसे सह सकते हैं लेकिन जो वर्ग सामन्तों के तत्काल बाद आते हैं—उच्च मध्यम वर्ग—वे किस प्रकार इतने प्रेम से इसे सहन करते हैं यह निश्चय ही अमरीकियों को उलझन में डालता है।

"मैं यह अनुभव करता हूँ कि इंग्लिस्तान के विचार और संस्कार चाहे जो भी हों मेरे अपने देशवासी उनसे बहुत-बहुत आगे बढ़ गये हैं—बौद्धिक दृष्टि से नहीं वरन् ऐसी रीति से जो उन्हें अपनी यात्रा आगे से आरम्भ करने का अवसर देता है। अगर मैं अपने आप को अंग्रेज बनाने के इरादे से वापस आऊँ विशेषतः परली बारी और पैतृक सम्पत्ति वाला अंग्रेज बनने के इरादे से तो मेरे लिए अमरीका की खोज व्यर्थ हुई, जो महान् भावना हमारे अन्दर जगाई गई है वह व्यर्थ हुई, और मैं उस सब के प्रति द्रोही हूँ।

लेकिन फिर उसके ऊपर एक बाढ़ की तरह उमड़ती हुई वह सारी प्राचीन शान्ति खामोशी और पुख्ता जो उस पुराने घर पर छाई हुई-सी उसकी सुन्दर और गरिमामय लगती थी। पड़ोसियों की वह सुन्दर व्यवस्था वह मधुर सभ्यता लेकिन फिर भी उस सामान्य भाई-चारे के प्रकार नहीं जो अंग्रेज महापुरुष और उसके नीचे के लोगों में था। वह सारा आनन्दमय समागम जिसमें खुशी निश्चित होती है और जो नवीन नीचता और अप्रिय संघर्ष से पूर्णतः सुरक्षित होता है, जहाँ सार्वजनिक मामलों में सभी लोग मूलतः एक ही विचार के होते हैं या हमारे कटुतापूर्ण दलों के बीच संघर्ष के अभ्यस्त अमरीकी राजनीतिज्ञ को ऐसे प्रतीत होते हैं। जहाँ जीवन को इतना आकर्षक इतना परिष्कृत बना दिया गया था फिर भी उसमें एक प्रकार का मरेलूपन था, जो यह दिखाता प्रतीत होता था कि वह अपनी सारी शक्ति पीछे छोड़ आया था। ऐसा प्रतीत होता कि जीवन में जो कुछ भी वांछनीय था उसका सारा सौन्दर्य और आकर्षण ग्रहण कर लिया गया फिर भी अति-परिष्कार की सख्त परत जीवन पर कभी नहीं चढ़ी। सभ्यता के प्रति जंगली रूखे और दुर्निर्दिष्ट अमरीकी दृष्टिकोण में ऐसा क्या था जिससे इसकी तुलना की जा सके? इस रसमयता और समृद्धि से किसकी तुलना करें?"[१]

वर्ग-समाज और वर्ग-विहीन समाज के इस संघर्ष से भी अधिक व्यापक एक

---

११. वही, पृष्ठ १८९ १८३ १११ ११२।

और इसी से सम्बन्धित संघर्ष था, जो आजीवन हॉथॉर्न और उनके रोमांसों (रोमानी रचनाओं) पर छाया रहा, आन्तरिक निष्ठा और व्यावहारिक उपलब्धि का संघर्ष, पुरातनवादी और आत्मा का संघर्ष। हॉथॉर्न के अनुसार इस संघर्ष में लोकतन्त्र और पुरातनवादी अन्तरात्मा, राजनीतिक परम्पराओं के विरुद्ध सहयोगी हैं। युवा अमरीकियों के विद्रोह में उनकी अन्तरात्मा और उनके यथार्थ बाद दोनों को ही आकर्षित किया। वे एक उत्साही पलायक बन गये बिना यह समझे हुए कि उनका बल उनके अपने यथार्थवादी रोमांसों से भी कहीं अधिक रोमानी था और यह कि उनका अपना आन्तरिक संघर्ष राष्ट्र की दुर्वह नियति का एक चिह्न था।

सीमान्त के समुदाय और विश्वास

अमरीका के सर्वाधिक अल्पायु अंग निरन्तर पीछे हटते हुए सीमान्त ने एक ऐसे सामाजिक दर्शन को जन्म दिया जो राष्ट्रवाद और व्यक्तिवाद दोनों से बिल्कुल भिन्न था। उसे समुदायवाद कहा जा सकता है। जब से ही मनुष्यों के बिखरे आलाबदोश कबीले किसी अनन्त सुखमय शिकारगाह, या किसी अदन के बाग, या किसी द्वीप पर हो बसने का स्वप्न देखने लगे तभी से इन 'स्वर्गोपम क्षेत्रों' को उन्होंने किसी ऐसे बड़े परिवार या कबीले के 'उत्तराधिकार' के रूप में देखा है, जो किसी न किसी कारणवश पीढ़ियों से बाहरी जीवन बिताने को बाध्य रहा था। अतः यह कोई आकस्मिक बात न थी कि जब महान् पश्चिम के द्वार खुले, तो धर्मपरायण व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूहों ने अनुभव किया कि ईश्वर का आदेश है उन्हें 'पुकारा' है, कि वे पुराने सड़ते हुए संसार और उसकी संस्थाओं को छोड़कर, एक नये जीवन का नयी दुनिया में नये समाज का आरम्भ करें। धार्मिक समुदायों, धर्म-समुदायों और परिवारों की कहानी जिन्होंने एक सुखमय देश की कल्पना से प्रेरित हो कर यूरोप छोड़कर अमरीका के लिए प्रस्थान किया, अमरीकी इतिहास का एक सुपरिचित विषय है। किन्तु पश्चिम की ओर यात्रा भी उसी प्रकार कहानी का उत्तरांश है, जब पुरों मंदिरों और मसीहाओं का अनुभव तथाकथित 'नयी' दुनिया के पूर्वी समुद्रतट पर किया जाने लगा। अति शीघ्र ही, यूरोपीय धोखा यहाँ भी प्रकट हुआ और यात्रियों के कारवाँ फिर यात्रा पर चल पड़े। विशेषतः १८०८ के बाद, १८१२ के बाद और १८१७ के बाद, हजारों अमरीकी ऐसे थे जिन्होंने पश्चिम की ओर पुकारे जाते

आशायें बुनीं और जो उस भूमि को खोजने के लिए कटिबद्ध हुए जिसे एडवर्ड एवरेट ने 'समान नियमों और सुखी मनुष्यों की भूमि' कहा।

'यह एक पतनशील साम्राज्य पर ईश्वर का कोप व्यक्त करने के लिए भेजा गया असभ्य जंगलियों का प्रवाह नहीं है। यह मानव परिवार है, जिसे विधाता अपना पैतृक उत्तराधिकार प्राप्त करने के लिए यहाँ लाया है।

''पर्वतों और समुद्रों के पार एक प्रिय भूमि की कल्पना का मूर्तरूप जिसे सुदूरतम अतीत से ही पुराने लोग अपने अन्दर सँजोए रहे, समान नियमों और सुखी मनुष्यों की भूमि। अटलांटिस[1] समुद्र से निकल आया है। भूमि के अन्तिम छोर पर हम पहुँच गये हैं। समुद्र के पार अब और कोई शरणस्थल नहीं है और कोई खोजें नहीं हैं, और कोई यात्राएँ नहीं हैं।''[2]

ईश्वर के जिन राज्यों की भविष्यवाणी प्राचीन पैगम्बरों ने की थी और योगियों व पुनर्जन्मों की असंख्य पीढ़ियों ने जिनकी कल्पना की थी वे अगर कहीं बन सकते थे तो यहीं महान् पश्चिम में। यह उत्तरकाल था धरती पर मनुष्य की यात्राओं का अन्त था।

सर्वथा निर्दोष छोटे-छोटे समाजों के निर्माण की आशा ने धार्मिक और लोकपरक दोनों प्रकार के रूप लिए। लोकपरक रूपों की कल्पना आमतौर पर प्लेटोनी गणतन्त्रों के सन्दर्भ में की गयी। 'सम्यक्' मनुष्यों के 'समाजवादी समुदाय (फ़ैलैन्स्टरीज़) 'समाजवाद' को व्यवहार में लाने वाले थे। धार्मिक रूपों में बड़ी विविधता थी—यानी धर्मसम्प्रदाय धर्म प्रचारक 'नवयुग उदय' समूह 'उत्तरकालीन सन्त' आदि जो सभी न्यूनाधिक धर्मतन्त्रवादी और दिव्य-ज्ञानवादी थे।

अमरीका में प्रतिष्ठित होने वाला सीमान्त दर्शन का पहला रूप यानी धर्म-सम्प्रदायों का था। प्लाइमथ के यात्रियों[3] की कहानी अपने आप को धार्मिक

---

१ अटलांटिस—अटलांटिक महासागर में स्थित एक पौराणिक द्वीप जिसका वर्णन प्लेटो ने एक आदर्श राज्य के रूप में किया। किंवदन्ती के अनुसार यह द्वीप बाद में समुद्र में डूब गया।—अनु०

२ अमरीका में साहित्य की प्रगति के अनुकूल परिस्थितियाँ' पर एडवर्ड एवरेट के भाषण से, बोस्टन, १८२४, जोसेफ़ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फ़िलॉसफ़िक एड्रेसेज़' (न्यूयार्क, १९४६) में पृष्ठ ८९, ९१-९३।

३ इतिहास में 'पिलग्रिम फ़ादर्स' के नाम से प्रसिद्ध इंगलिस्तान के पृथकतावादियों का एक दल जो जॉन रॉबिन्सन के नेतृत्व में अमरीका आया और मैसाचुसेट्स में प्लाइमथ नगर की स्थापना की।—अनु०

अर्थ में नया इजराएल (पवित्र देश) समझने का उनका प्रयास जो एक वंचसी देश से ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा सुखमय भूमि पर आये थे और उनके द्वारा इस सिद्धान्त के आधार पर धर्म-समुदायवादी नगरों का निर्माण इसका वर्णन बहुधा किया गया है। किन्तु अन्य अधिक विस्तृत और अधिक मौलिक सिद्धान्तों से निर्देशित होने वाले अन्य यात्री धर्मसमुदाय भी थे। न्यू-इंगलैंड के असमवायवादियों (धर्म-संगठन की स्वतन्त्रता के समर्थकों) के साथ इनमें सर्वप्रमुख 'मोरेवियन' समूह थे जिनकी बस्तियाँ न्यू-इंगलैंड की बस्तियों की भांति धीरे धीरे ईश्वर के छोटे छोटे राज्यों से बदल कर अमरीकी नगर बन गयीं। जब ये लोग (चेकोस्लोवाकियावासी) और जर्मन लोग अमरीका आने लगे—क्रमशः बोहेमिया, मोरेविया और सैक्सनी (जर्मन प्रान्त) छोड़ने के लिए मजबूर होने पर—उस समय वे स्वतन्त्र धर्म-समुदायों में संगठित थे। उनका सिद्धान्त था कि उनके लिए ईश्वरीय इच्छा यह थी कि वे सन्त-समागम के जीवन के साथ निरन्तर धर्म-प्रचार के कार्य को मिलायें। अतः पेन्सिलवेनिया में बेथलहेम उत्तरी कैरोलिना में सेलम वाखोविया और अन्य बस्तियाँ सैद्धान्तिक रूप से आदिवासियों के बीच धर्म-प्रचार का मुख्य केन्द्र थीं। हर समुदाय को एक ही परिवार के रूप में संगठित करने का प्रयास और एक सामान्य 'धर्मतन्त्र' या साम्यवाद के विकास का प्रयत्न ये प्राथमिक उद्देश्य के अधीन थे। प्रथम उद्देश्य था प्रशिक्षित धर्म-प्रचारकों का आदिवासियों की ओर निरन्तर प्रवाह कायम रखना। ये धर्म प्रचारक उस सामुदायिक विश्व व्यापी यात्रा के अग्रदूत थे, जिसके प्रति ये धर्म-समुदाय समर्पित थे। अपने कार्य की सामुदायिक प्रकृति में वे लोग इस तरह पूर्णरूप में डूबे हुए थे कि दो पीढ़ियों तक इन्होंने अपने सदस्यों की इस स्वाभाविक आकांक्षा का सफल विरोध किया कि वे अपने निजी परिवारों को ईश्वरीय परिवारों से अलग करके स्वतन्त्र देश के प्रतियोगितापूर्ण आर्थिक जीवन में अपना स्थान खोजें। धर्म-प्रचारक सामुदायिक आदर्श को आदिवासियों तक भी ले गये और कई 'ईसाई गाँवों' का संगठन करने में सफल हुए, जिनमें कुछ गोरे थे कुछ आदिवासी और जिनके आर्थिक जीवन को भ्रातृत्वपूर्ण संघ के सामान्य धार्मिक ढाँचे का ही एक अभिन्न अं बनाया गया।

धर्म प्रचार की प्रकृति सम्बन्धी ऐसी धारणा मोरेवियन लोगों के पहले जेसुइट और फ्रांसिसकन समुदायों में थी जिन्होंने सुदूर दक्षिण-पश्चिम आदिवासियों के साथ मिलकर आत्म निर्भर धर्म प्रचारक समुदायों का निर्माण किया था। अपने उत्कर्ष-काल में कैलिफोर्निया के महान् धर्मप्रचार केन्द्रों संगठन लोकतान्त्रिक की अपेक्षा कठोर अधिक था, किन्तु उनकी सामुदायि धार्मिक-व्यवस्था मोरेवियन लोगों से बहुत भिन्न नहीं थी। न्यू पेन्सिलवेनिया

कुछ जर्मन प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायों का संगठन निश्चित रूप से मठीय था विशेषतः 'एफराटा' सम्प्रदाय का।

इन छोटे-छोटे साम्य-समाश्रमों में अधिकांश के मूल यूरोपीय थे। पेन्सिलवेनिया और मिसौरी राज्य ऐसे जर्मन सम्प्रदायों से भरे पड़े थे, जिनकी शुरुआत पुरानी दुनिया में हुई थी। उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि सब यहाँ गिनाये नहीं जा सकते। इनमें से अधिक पराकाष्ठावादी और साहसिक समूहों में से एक वुर्टेम्बर्ग से आये हुए रैप[1] के अनुयायियों का था जिन्होंने १८१४ में इण्डियाना राज्य में हारमनी नामक नगर की स्थापना की। यह पादरियत-विरोधी पवित्रतावादी, संयमी दयालु, कौमार्यव्रत का पालन करने वाले और मेहनती लोगों का समुदाय था। इसी समूह की एक शाखा ने १८१७ में ओहियो राज्य में ज़ोर नामक नगर की स्थापना की। १८४२ में इससे मिलता-जुलता एक पवित्रतावादी दल 'सत्य-प्रेरणा सम्प्रदाय' या 'एबनेज़र[2] समाज' जर्मनी से आया। उन्होंने अन्ततः १८५४ में अपना स्थायी निवास आयोवा राज्य में अमाना नगर को बनाया। यह किसानों का एक साम्यवादी समाज था जिसमें न पेशेवर पादरी था न पेशेवर मनोरंजन था। ये बड़े सीधे-सादे धार्मिक संस्कारों और विधियों में हिस्सा लेते और हर सदस्य सीधे ईश्वर से प्रेरणा लेने का अधिकारी था। अमाना सम्प्रदाय का अस्तित्व अब भी है, यद्यपि संशोधित रूप में। स्वीडेन के पवित्रतावादियों का एक उत्पीड़ित धर्म-समुदाय था जो अपने पैग़म्बर एरिक जैन्सन के नेतृत्व में आया और अन्ततः उत्तरी इलिनायस में एक प्रयोगशील बस्ती के रूप में बस गया (१८४६ ई०)। सातवें दशक में दक्षिणी रूस से बहुसंख्यक मेननाइट[3] साम्यवादी या हुटेराइट लोग आये और उन्होंने दक्षिण डकोटा में बस्तियाँ बसायीं जो हुटरहोफ़ समुदायों के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

'मित्र समाज' या क्वेकरों की कहानी भी वस्तुतः सीमातिरेक विश्वासों की इस संक्षिप्त कथा का अंग है, किन्तु न्यू-इंगलैंड के शुद्धतावादियों की भाँति पेन्सिलवेनिया के क्वेकरों का भी उग्रवादी रूप-रंग शीघ्र ही बदल गया और वे हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्य के संस्थापकों में शामिल हो गये। किन्तु इस समाज की

---

१ रैप—जर्मनीवासी, जिन्हें धर्म के एक समाजवादी रूप का प्रचार करने के कारण १८०३ में अमरीका भागना पड़ा।—अनु०

२ एबनेज़र—बाइबिल में वर्णित एक स्मारक पत्थर, ईश्वर की कृपा का प्रतीक।—अनु०

३ मेननाइट—क्वेकरों या बपतिस्मावादियों से मिलता-जुलता एक प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय।—अनु०

एक शाखा, 'हिलने वाले क्वेकर' या शेकर्स[1] सीमान्तक्षेत्रीय सम्प्रदायों का एक उत्तम उदाहरण है। माता ऐनली नामक पैगम्बर के इन अनुयायियों का वास्तविक नाम 'नवयुग चर्च' (मिलीनियल चर्च) या 'विश्वासियों का संयुक्त समाज' (यूनाइटेड सोसायटी ऑफ़ बिलीवर्स) था। उनकी मृत्यु के शीघ्र बाद ही हडसन और कनेक्टिकट नदियों की घाटियों में बिखरे हुए उनके अनुयायी कई बड़े परिवारों में 'ईश्वरीय सन्देश की व्यवस्था' में एकत्रित हो गये (१७८७)। इस सम्प्रदाय के सदस्य नीचे लिखी शपथें लेते थे—

'यह हमारे अनुभव से पुष्ट हमारा विश्वास है कि बिना संयुक्त-हित और संघ के, पुत्र ईसा के नियमों के अनुसार संगठित कोई चर्च नहीं हो सकता जिसमें सभी सदस्यों को आध्यात्मिक और आधिभौतिक वस्तुओं में, अपने कार्य और आवश्यकताओं के अनुसार समान अधिकार और विशेषाधिकार हों।

'सभी सदस्यों का, जो चर्च द्वारा स्वीकार किए जायें धार्मिक अधिकार के रूप में एक ही संयुक्त हित होना था। अर्थात् चर्च में सभी वस्तुओं के उपभोग में सभी का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार न्यायपूर्ण और समान अधिकार और विशेषाधिकार होना था—बिना इस आधार पर कोई अन्तर किये कि इनमें से कौन क्या लाया जब तक हम चर्च के शासन और व्यवस्था के प्रति आज्ञाकारी रहें और सदस्यों के रूप में सम्बद्ध रहें। इसी प्रकार सभी सदस्य समान रूप से बँधे थे कि अपनी योग्यता के अनुसार, चर्च के शासन और व्यवस्था के अनुरूप, संघ-बद्ध रूप में एक संयुक्त-हित को कायम रखें और उसे बल प्रदान करें।

'यह न चर्च का कर्त्तव्य था, न चर्च-व्यवस्था में सम्बद्ध होने का उद्देश्य था कि सांसारिक वस्तुओं के एक हित को एकत्रित और निर्मित करें। वरन् ईमानदारी से उद्योग करने पर हमारी अपनी जीविका के लिए पर्याप्त से अधिक जो कुछ भी हमें प्राप्त हो उसे परोपकार के कामों में गरीबों को राहत देने और ईश्वरीय नियमों द्वारा निर्दिष्ट अन्य कामों में लगाना था। अतः यह हमारा विश्वास था और अब भी है कि चर्च के संयुक्त-हित में जो भी हित या सेवाएँ हम प्रदान करें, उसके लिए चर्च या एक-दूसरे के विरुद्ध ऋण या दोष की कोई बात न उठायें बल्कि मुक्त रूप से भाइयों और बहनों की तरह अपना समय अपनी योग्यताएँ चर्च की व्यवस्था के अनुसार एक-दूसरे की पारस्परिक भलाई में और अन्य परोपकार के कामों में लगाएँ।'[2]

१ शेकर-सम्प्रदाय का नाम उनके धार्मिक नृत्यों के आधार पर पड़ा।—अनुवादक

२. मार्गुराइट फेलोज मेल्चर, 'दी शेकर ऐडवेंचर' (प्रिन्सटन, १९४१), पृष्ठ ८८, ९०-९१।

उनका लक्ष्य संसार के आध्यात्मिक पुनर्जीवन को या अन्तिम निर्णय की प्रक्रिया अच्छाई और बुराई के अलगाव को आगे ले जाना था। यह प्रक्रिया माता ऐन में ईसा के दोबारा प्रादुर्भाव या नारी-जन्म' से आरम्भ हुई थी और सारे 'नव-युग-काल' में जारी रहने वाली थी।

"ईश्वर ने पृथ्वी के राष्ट्रों का फैसला करना आरम्भ कर दिया है, जो बहुत दिनों से अपने निर्णय में गलतियाँ करते रहे हैं और न्याय व सत्य के मार्ग से भटकते रहे हैं और यह न्यायपूर्ण फैसला कभी बन्द नहीं होगा जब तक ईश्वर का कार्य पूर्णत: सम्पन्न नहीं हो जाता।"[1]

'ईसा के राज्य' के सदस्यों का नियमन करने वाले विशिष्ट 'नैतिक सिद्धान्त' थे—'संसार से अलगाव व्यावहारिक शान्ति भाषा की सादगी सम्पत्ति का उचित उपयोग और कौमार्य जीवन'। संसार से अलगाव और व्यावहारिक शान्ति द्वारा सदस्यों के लिए न केवल युद्ध में भाग लेना निषिद्ध था वरन् 'संसार के विवादों में भी जिसमें एक राजनीतिक दल की अपेक्षा दूसरे के निकट अनुभव करें। राजनीति में वे कठोर अहस्तक्षेपवादी थे और अपने को शाब्दिक अर्थ में एक अन्य विश्व का नागरिक समझते थे।

इन उत्तरकालीन पन्थों में सबसे अधिक वैचित्र्यमय मॉरमन सम्प्रदाय था। १८२१ में न्यूयार्क के एक किसान को दिव्य-दृष्टि मिली कि ईश्वर के चुने हुए लोगों में जो लोग बचे थे उन्हें इकट्ठा करके एक नये धर्म-संगठन (चर्च) का निर्माण करें। युवावस्था में मिले दिव्य-दर्शनों में से एक के उसके अपने विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन विश्वासों के प्रति असन्तोष उनकी खोज का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व था।

'ईश्वर के समक्ष प्रश्न लेकर जाने में मेरा उद्देश्य यह जानना था कि सारे पन्थों में कौन सही है, ताकि मुझे मालूम हो जाए कि मैं किसमें सम्मिलित होऊँ। अत: जैसे ही मैं अपने पर इतना क़ाबू पा सका कि बोल सकूँ जो व्यक्ति मुझसे ऊपर प्रकाश में खड़े थे उनसे मैंने पूछा कि सारे पन्थों में कौन सही है—और मैं किसमें सम्मिलित होऊँ।

'मुझे उत्तर मिला कि मुझे उनमें से किसी में भी नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वे सारे ग़लत थे और मुझे सम्बोधित करने वाले व्यक्ति ने कहा कि उनके सारे मत उनकी दृष्टि में तिरस्करणीय थे कि वे मतानुयायी सारे भ्रष्ट थे कि

१ 'ए समरी व्यू ऑफ़ दी मिलेनियल चर्च और युनाइटेड सोसायटी ऑफ़ बिलीवर्स, कॉमनली काल्ड शेकर्स' संशोधित और सुधारा हुआ दूसरा संस्करण (अलबानी, १८४८ पृष्ठ ११८।

"वे अपने शब्दों से मेरे निकट आते हैं किन्तु उनके हृदय मुझसे दूर हैं, वे ऐसे मनुष्यों के आदेशों को सिद्धान्त के रूप में सिखाते हैं जिनमें देवत्व का एक रूप है, किन्तु वे उसकी शक्ति से इनकार करते हैं।

उन्होंने फिर उनमें से किसी में शामिल होने से मुझे मना किया। और अन्य बहुतेरी बातें उन्होंने मुझसे कहीं जो मैं इस समय लिख नहीं सकता। जब मैं फिर होश में आया तो मैंने अपने को आकाश की ओर देखते हुए सीधे लेटे पाया। जब प्रकाश लुप्त हुआ तो मैं बिल्कुल निःशक्त था। लेकिन जल्दी ही मेरी हालत कुछ सुधरी और मैं घर चला गया। और जब मैं चौकास की अंगीठी से टिक कर खड़ा हुआ तो माँ ने पूछा कि क्या बात थी। मैंने उत्तर दिया 'चिन्ता न करो सब ठीक है—मैं काफी अच्छी हालत में हूँ।' फिर मैंने माँ से कहा 'मैंने स्वयं यह जान लिया है कि प्रेस्बिटेरियन मत सत्य नहीं है।'[1]

कई मरहलों से होकर मोरमन धर्म-सम्प्रदाय को उटा याना (१८११-४८) पश्चिम की ओर सामान्य निष्क्रमण का ही एक संक्षिप्त रूप था और 'बुक आफ मारमन' इस बात का एक उत्तम उदाहरण है कि साहसपूर्ण लोगों की पीढ़ाएँ और श्रम किस प्रकार अनर्गल बकवास को पवित्र और अजेय बना सकते हैं।

इन सीमान्त-क्षेत्रीय विश्वासों का अध्ययन करते समय यह आवश्यक है कि उनके मतों और धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से उनकी अत्यधिक धार्मिक व्याख्या न की जाये बल्कि उनके सामाजिक पक्ष को देखा जाये। मरुभूमि' को बसाने वालों और जिसका विनाश वे अवश्यम्भावी समझते थे ऐसे संसार से सामाजिक और बौद्धिक पलायन की उनकी इच्छा के उद्देश्यों और आदर्शों का सही मापदण्ड थे सर्वथा अलग प्रकार के धर्मतन्त्र और सहकारी प्रजाधिपत्य की स्थापना के प्रयास हैं जो कभी पूरी तरह सफल नहीं हुए। शायद सीमान्त-क्षेत्र के सामाजिक आदर्शों का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष अपेक्षतया छोटे समाजों द्वारा पूर्ण स्वतन्त्रता की तीव्र आकांक्षा थी। किन्तु इस स्वतन्त्रता की खोज शायद ही कभी स्वयं एक अधिकार के रूप में स्वाधीनता के नाम पर की गयी। हर समूह स्वतन्त्रता की चाह इसलिए करता था कि वह अपने को धार्मिक दृष्टि से विशेषाधिकारयुक्त समझता था। दूसरे शब्दों में इस काल के तीव्र सामाजिक और धार्मिक उद्वेलन ने पूर्व में प्रतिद्वन्द्वी धर्म-संगठनों के विभाग और संभ्रम उत्पन्न किये और पश्चिम में इसने स्वेच्छा पर आधारित समाजों का बाहुल्य उत्पन्न किया जिनमें से हर एक अपने छोटे से कोने को अपनी पवित्र ज्योति से प्रकाशित करता था।

---

[1] जोसेफ स्मिथ, 'दी पर्ल ऑफ ग्रेट प्राइस' (साल्ट लेक सिटी १६२६), पृ० ४८।

एक सामुदायिक जीवन के धर्मनिरपेक्ष समर्थक और अमरीकी सामुदायिक प्रयोगों के इतिहास के अध्येता को बड़ी अरुचि हुई जब उन्हें मालूम हुआ कि उनमें से अधिकांश इस कारण असफल हुए कि सदस्यों ने यह पाया कि वे प्रतियोगितापूर्ण व्यवसाय में अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। ऐसी 'स्वार्थपरता' की आलोचना के अन्त में उन्होंने कहा कि साम्यवाद इस भावना पर निर्भर है कि 'संसार का मधुरतम आनन्द धन से और धन द्वारा प्राप्य वस्तुओं से नहीं मिलता बल्कि जिन्दगी के बोझों में दूसरों के साथ हिस्सा बँटाने से मिलता है।'[1] बोझों में हिस्सा बँटाने में इस प्रकार का आनन्द धार्मिक अनुभव और कल्पना का आधारभूत अंग है। अतः यह स्वाभाविक है कि उत्तरमैना जिन्दगी की कठिनाइयों ने धार्मिक भाई-चारे के सम्बन्धों को और मजबूत बनाया। किन्तु धर्म-निरपेक्ष समुदाय जिनके उद्देश्य और विचार उपयोगितावादी सिद्धान्तों पर आधारित थे सम्पन्नता के द्वारा अधिकतम लोगों के अधिकतम सुख की उपलब्धि की आशा करते थे। जब इन धर्म-निरपेक्ष समाजवादियों का समृद्धि के अर्थ में सुख का अनुभव कम होने लगा और बोझों में हिस्सा बँटाने के अर्थ में 'आनन्द' का अधिक तो उन्हें कुछ निराशा का अनुभव हुआ। धर्म-निरपेक्ष समुदायों की तुलना में धार्मिक समुदायों को एक और भी लाभ था। धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष दोनों ही प्रकार के अधिकांश समुदायों में निरंकुश या पितृसत्तात्मक शासन चलता था। धार्मिक समुदायों में इसे एक प्रकार का धर्मतन्त्र कह कर उचित ठहराया जा सकता था, लेकिन धर्म-निरपेक्ष समुदायों को लोकतान्त्रिक प्रबन्ध के प्रयासों से बड़ी दिक्कत होती थी। जब तक राबर्ट ओवेन जैसा कोई उदार पूँजीपति या पूँजी लगाने वालों का कोई छोटा-सा समूह समुदाय के 'ट्रस्टी' के रूप में सम्पत्ति का मालिक रहता तब तक प्रबन्ध आमतौर 'व्यावसायिक स्तर' पर रहता लेकिन जब साम्यवादी सिद्धान्त के हित में परिसम्पत्ति और जिम्मेदारियों का बँटवारा अधिक समान रूप में किया जाता तो दिक्कतें पैदा हो जातीं। वास्तव में 'लोकतन्त्र' शीर्षक के अन्तर्गत इन समुदायों पर विचार करने में काफी व्यंग्य है। जहाँ तक ये समुदाय अन्याय के विरुद्ध विद्रोह के चिह्न थे जहाँ तक इन्हें सदस्यों के लिए स्वतन्त्रता की तलाश थी और जहाँ तक इन्होंने सहकारी उद्यम को प्रोत्साहन दिया वहाँ तक ये निःसन्देह सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र के रूप में ध्यान देने योग्य हैं। लेकिन उनके आन्तरिक गठन और उनकी राजनीति में बहुधा छोटे पैमाने की निरंकुशता ही मिलती थी, और उनमें अन्यथा चाहे जो कुछ भी हो समानता का प्रेम नहीं था।

[1] विलियम ए. हिन्ड्स 'अमेरिकन कम्युनिटीज ऐण्ड कोआपरेटिव कोलोनीज,' दूसरा संशोधित संस्करण (शिकागो, १९०८), पृष्ठ २७५।

व्यावहारिक लोकतन्त्र के अध्ययन के लिये धर्म-निरपेक्ष समुदायों का अनुभव शिक्षाप्रद है, किन्तु यहाँ हमें सामाजिक सिद्धान्त को उनकी देन से ही मतलब है। यहाँ हमें कुछ सर्वाधिक ठोस और प्रसिद्ध समुदायों को जैसे ब्रूक-फ़ार्म फ्रूटलैंड्स, नार्थ अमेरिकन फैलेंक्स नार्थम्पटन एसोसिएशन, पाजिटिविस्ट विलेज आफ मॉडर्न टाइम्स एल० आई० को अपने विचार-क्षेत्र से अलग रखना होगा, क्योंकि ये वस्तुतः सीमान्त-क्षेत्रीय समुदाय नहीं थे। ये एक स्थिर सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम और सहकारी उद्योग की समस्याओं को हल करने के प्रयोग थे और उस व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के प्रयास थे। सीमान्त-क्षेत्रीय समुदायों की महत्वाकांक्षाएँ इतनी ऊँची नहीं थीं। वे पलायन के माध्यम से सहकारिता के आधार पर नयी जगह बसने के प्रयोग थे। राबर्ट ओवेन के न्यू हारमेनी (१८२५-२८) और यतो सिमेव (१८२४ २९) समुदायों की स्थापना सीमान्त-क्षेत्रीय बस्तियों के रूप में नहीं की गयी थी। वरन् ये उस आधार पर औद्योगिक पुनर्निर्माण के उदाहरण के रूप में निर्मित किये गये जो इंग्लैण्ड में सफलतापूर्वक चल चुका था। जिन 'सुधारकों' को ओवेन ने बाहर से बुलाया वे शीघ्र ही सीमान्त-क्षेत्रीय स्थितियों में असफल सिद्ध हुए और स्वयं ओवेन ने भी समझ लिया कि कुछ भूमि से घिरे हुए होने के कारण उनका स्थान सर्वथा अनुपयुक्त था। दूसरी ओर रैप के अनुयायियों की बस्ती 'हारमेनी' अधिक सफल रही न केवल अपनी धार्मिक प्रेरणा के कारण बल्कि इस कारण भी कि उसका नियोजन सीमान्त-क्षेत्र की स्थिति के अनुसार किया गया था। फौरियर के अनुयायियों की बस्तियाँ इस दृष्टि से बँटी हुई थीं। सर्व प्रसिद्ध समुदाय रेड बैंक न्यू जरसी राज्य में 'नार्थ अमेरिकन फैलेंक्स' नई जगह में बसने का प्रयास नहीं था बल्कि एक औद्योगिक वातावरण में एक पहले से बसी हुई मण्डी के लिए वस्तु विनिमय पर आधारित सहकारी खेती का एक काफ़ी सफल प्रयास था। पश्चिम में नई बस्तियाँ बसाने के लगभग बीस प्रयास फौरियर के अनुयायियों ने किये जिनमें से केवल एक को कुछ सफलता मिली। विस्कॉन्सिन राज्य में १८४४ में एक फैलेंक्स (समाजवादी बस्ती) का आरम्भ किया गया (जहाँ आजकल 'रिपन' नगर है, उसके निकट) जो लगभग ६ वर्ष तक चला। केनोशा विस्कॉन्सिन राज्य में एक विचारण-सभा भाषण के बाद इस विषय पर बड़ी लम्बी बहस चली कि 'क्या फौरियर की विचार-व्यवस्था समाज के ऐसे पुनः-संघटन के लिए व्यावहारिक योजना प्रस्तुत करती है, जिसमें हमारी 'सामाजिक बुराइयों' से छुटकारा प्राप्त हो?' 'सामाजिक बुराइयों' के संसार के अन्दर रहकर इस योजना का प्रयोग करने के बजाय इन नागरिकों ने तय किया कि वे जंगल में जाकर नये सिरे से शुरुआत करें। उन्होंने सरकारी भूमि का एक बिना सुधारा हुआ खण्ड

से लिया और विशिष्ट सीमान्त-क्षेत्रीय स्थिति में एक मॉडल का निर्माण फौरियरवादी आदर्श[1] के अनुसार किया—मुक्त वादविवाद, धार्मिक सहिष्णुता, मशीनी पेशों पर प्रतिबन्ध, श्रम के आधार पर उधार, संयुक्त पूंजी आदि। पहले स्थिर गति से प्रगति होती रही और अन्य सीमान्त-क्षेत्रीय बस्तियों की तुलना में यह प्रयोग निश्चित रूप से सफल हुआ। किन्तु सीमान्त-क्षेत्रीय स्थिति के शीघ्र ही समाप्त हो जाने से इसकी बरबादी हुई।

'यह एक सामाजिक असफलता थी, बहुत कुछ इस कारण कि हम घर को आकर्षक और आनन्ददायक नहीं बना सके। बहुतों ने सोचा कि वे अपने साधनों से बाहर जाकर ज्यादा लाभ उठा सकते थे। हम अन्य साधन-सम्पन्न लोगों को राजी नहीं कर सके कि वे हममें शामिल हो जायें और असन्तुष्ट लोगों के हिस्से खरीद लें क्योंकि उनकी बाहर जाने की इच्छा अन्य लोगों को अन्दर आने से निरुत्साहित करती थी और अन्ततः असन्तुष्ट लोगों का बहुमत हो गया और उन्होंने मत द्वारा विघटन का निर्णय कर लिया। रिपन का छोटा-सा नगर, जो हमारे निकट ही अपनी शराब की दूकानों सहित उठ खड़ा हुआ था, बड़ी परेशानी का कारण बन गया और अपने द्वेष, झूठ और दुराचार सहित फेलैंक्स के विघटन में बड़ा सहायक हुआ।'[1]

फौरियर की व्यवस्था से निकट से सम्बन्धित तर्कनावादी लोकतान्त्रिक साम्यवाद का एक अन्य प्रसिद्ध प्रयोग फ्रांसीसी सुधारक एतीन कैबे का 'आइकेरियन'[2] प्रयास था। टैक्सास में नई बस्ती बसाने का वास्तविक प्रयास इन फ्रांसीसी आप्रवासियों के लिए अत्यधिक कठिन सिद्ध हुआ। किन्तु जब सौभाग्य से इन्हें इलिनॉयस राज्य में नौवू के बने बनाये नगर में बसने का अवसर मिल गया, जिसे मॉरमन लोग छोड़ गये थे तो वे सम्पन्न हुए और फ्रांसीसी ग्रामीणों का जीवन बिताने लगे। वे तत्काल फ्रांसीसी राजनीति में जुट गये, संविधान के बारे में उनमें बड़ा कटु-विवाद उत्पन्न हो गया और वे गुटों में बुरी तरह बँट गये। संक्षेप में यह सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र से अधिक फ्रांस की स्थानीय राजनीति के आयात का एक उदाहरण था। स्कानीटेलीस न्यूयार्क राज्य में गुलामी-प्रथा के एक उत्साही विरोधी जान ए. कालिन्स ने दो वर्ष तक जो खेतिहर बस्ती चलाई वह एक छोटा, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रयास था। 'मनुष्य को अपने अस्तित्व के भौतिक, नैतिक और बौद्धिक नियमों के साथ समरस बना कर, जाति

---

१ वही, पृष्ठ २८५।

२. आइकेरियन—कैबे के एक उपन्यास में वर्णित आदर्श समाज का नाम 'आइकेरिया' था।—अनु०

का एक सम्पूर्ण पुनरुत्थान' इसका उद्देश्य था। इन सिद्धान्तों में सामुदायिक सम्पत्ति बच्चों की सामुदायिक देखभाल, शाकाहार मद्यनिषेधाचार और धर्मविरोध शामिल थे।

"हम सारे मतों पन्थों और दलों का खण्डन करते हैं चाहे वे किसी भी रूप और आकार में अपने को प्रस्तुत करें। हमारे सिद्धान्त उतने ही व्यापक हैं जितनी कि सृष्टि और उतने ही उदार हैं जितनी हमारे चारों ओर के तत्व। हम मनुष्य को उसके विशिष्ट विश्वासों से नहीं, उसके कार्यों से परखते हैं और सबसे कहते हैं 'तुम जो चाहो विश्वास करो लेकिन जहाँ तक तुमसे हो सके कार्य अच्छा करो।'[1]

आर्थिक दृष्टि से यह समुदाय सफल रहा किन्तु धर्मविरोध में भी कोलिन्स के विश्वास का लाभ उठाकर साहरानपुर के एक लोलुप-बुद्धि, चालाक वकील ने समाज की निधि का बड़ा हिस्सा अपने अधिकार में कर लिया। दूसरे शब्दों में पूर्ण स्वतन्त्रता के इस प्रयोग का नाश नयी जगह बसने की परिस्थितियों ने नहीं साहरानपुर नगर की शिष्टता ने किया।

'संसार' से निरुत्साहित निवासियों के दिमाग में सौभाग्य-क्षेत्र का अर्थ यह था कि मनुष्य समूहों के लिए शान्ति और स्वतन्त्रता का अमल स्थान प्रदान करे। किन्तु इस प्रकार का सौभाग्य-क्षेत्र अति शीघ्र ही लुप्त हो गया। संघर्ष के संसार में भाई-चारे के लोकों के जो सपने मनुष्यों ने देखे उन्हें बाहरी हस्तक्षेप और आन्तरिक असन्तोष ने नष्ट कर दिया। एक मॉरमन समाजशास्त्री ने एक बार मुझे बताया कि सौभाग्य-क्षेत्र का इतिहास किस प्रकार यह प्रमाणित करता है कि अमरीका में कोई भी लोग लम्बे अरसे तक 'चुने हुए लोग' बने रहने की आशा नहीं कर सकते। ऐसी लोग निराशा के समक्ष, यह जानकर कि अब कोई सौभाग्य की ओर भागता है, जो क्रूरता से कठिनाई की ओर भागता है, स्वतन्त्रता शान्ति और सुख के ढंग की खोज करता हुआ सौभाग्य-क्षेत्रीय दार्शनिक आमतौर पर अपनी ज़िन्दगी को समझ नहीं पाता था न यथार्थ-दृष्टि से न रोमानी दृष्टि से। उसने न 'चौड़ी कुल्हाड़ी का गीत' (सांग ऑफ दी ब्राड ऐक्स) लिखा न 'अकरमैना। ओ अकरमैना' (पायनियर्स। ओ पायनियर्स।)। ऐसी कविताएँ सौभाग्य-क्षेत्र को परिप्रेक्ष्य में और दूर से चित्रित करती हैं। थके हुए सौभाग्यकामी की अधिक विशिष्ट प्रतिक्रिया भविष्य में पलायन की होती थी इस आशा में कि ईश्वर जब चाहेगा बुद्धि के परे की रीतियों से उसकी आशाएँ पूरी होंगी।

---

१ [विलियम ए० हिण्ड्स की पुस्तक पृष्ठ २६२।

'मेरी आत्मा को गीत सुनाओ उसके बुझते हुए विश्वास और आशा को पुनर्जीवित करो

'मेरे मन्द विश्वास को जगाओ, मुझे भविष्य की कोई दृष्टि दो

एक बार मुझे उस भविष्य का ज्ञान और आनन्द दे दो ।

'ओ आनन्दमय हर्षमय परितृप्तिमय गीत !

'धरती से परे की शक्ति तेरे स्वरों में है,

'विजय के प्रयाण—मनुष्य बन्धन मुक्त—विजयी आखिरकार

"सार्वभौमिक मनुष्य की सार्वभौमिक ईश्वर को वन्दना—

  पूर्ण आनन्द !

मानवजाति पुनर्जन्म लेती है—एक दोष रहित

  विश्व पूर्ण आनन्द !

नारी और पुरुष ज्ञानी भोले और स्वस्थ—

  पूर्ण आनन्द !

'खुली हँसी से भरी क्रीड़ाएँ, परिपूर्ण आनन्द !

'युद्ध, विषाद कष्ट गये—दुर्गन्धमय धरती

  परिशुद्ध हुई—बचा केवल आनन्द !

'सागर आनन्द से परिपूर्ण—वातावरण में केवल आनन्द

आनन्द ! आनन्द ! स्वतन्त्रता पूजा प्रेम में, आनन्द,

  जीवन के उन्माद में ।

'केवल होना ही पर्याप्त ! सांस लेना ही पर्याप्त !

'आनन्द ! आनन्द ! सब ओर आनन्द ![1]

ऐसी दृष्टियों का आनन्द कवियों और रहस्यवादियों के साथ-साथ दार्शनिकों का भी हमेशा उपलब्ध रहा है, क्योंकि ऐसे तीव्र आवेग और आशा को व्यक्त करने में और ऐसे आदर्श समाज का चित्रण करने में यद्यपि वह वर्तमान सम्भावनाओं से और सम्भवतः भविष्य की किसी वास्तविक स्थिति से भी पूर्णतः असम्बद्ध होता है, दार्शनिक कल्पना नैतिक साहस को दीर्घायु बनाती है और आज भी धन्य प्राप्त को नया रूप दे देती है ।

---

१ वाल्ट ह्विटमैन, 'लीव्स आफ ग्रास' में 'दी मिस्टिक ट्रम्पेटर' । यहाँ जिन अन्य कविताओं के शीर्षक दिये गये हैं, वे भी वाल्ट ह्विटमैन की रचनाएँ हैं ।

स्वतन्त्रता और संघ

छठे दशक में लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद के बीच हुए समझौतों की आयु बीत गयी, और अन्तत: सिद्धान्त और व्यवहार दोनों के ही वे गम्भीर अन्तर्विरोध सामने आ गये जिनके द्वारा अमरीकी लोग शान्ति कायम रखने का प्रयास कर रहे थे। समझौते के स्थान पर टालने की प्रवृत्ति आई और टालने के बाद अलगाव की। जिस मंच को आधार बना कर 'राष्ट्रीय गणतन्त्रवादी' एक अज्ञात अन-समझे मध्य-पश्चिमी व्यक्ति को १८६० में राष्ट्रपति चुनवाने में सफल हो गये थे वह प्रश्नों को टालने का एक सुन्दर फेर था। लिंकन के समर्थक भी यह मानते थे कि अपने अलग अनियायों में उन्हें जो अलग-अलग वादे करने पड़े थे, उन्हें एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में इकट्ठा करने पर उनमें कोई तालमेल नहीं होता। किन्तु राजनीति का यह भयंकर रूप केवल अमरीकी लोकतन्त्र के पतन की परिणति था क्योंकि दलीय-राजनीति ने खुलेआम सस्ती लोकप्रियता को और जीत में लूट के बँटवारे की व्यवस्था को अपना आधार बनाया था। देश के राजनीतिक नेताओं को एक-दूसरे से गहरी चिढ़ थी और दल को उनसे और उनके राजनीतिक क्षेत्र से उतनी ही गहरी चिढ़ हो गयी थी। 'स्वतन्त्रता और संघ एक और अभिन्न' के बारे में वायदा देना और आग्रह करना कि जनता का शासन जनता के लिए और जनता के द्वारा ही होना चाहिए, यहाँ तक तो ठीक था। लेकिन 'राष्ट्रीय लोकतन्त्र' जैसी धारणाएँ अगर भ्रामक नहीं तो काल्पनिक प्रतीत होती थीं। लोकतान्त्रिक राजनीति को देखते हुए लोकतान्त्रिक आदर्शों की उपलब्धि कैसे हो सकती थी?

न्यू-इंग्लैण्ड में गुलामी-प्रथा की समाप्ति के समर्थक और दक्षिण में संघ की समाप्ति के समर्थक स्वतन्त्रता के लिए संघ की समाप्ति के प्रश्न पर सहमत थे, किन्तु इन पराकाष्ठावादियों के बीच में नागरिकों का विशाल बहुमत और मध्य व पश्चिमी राज्यों के राजनीतिक नेता स्वतन्त्रता को संघ के अधीन रखने के लिए तैयार थे। सर्वप्रथम वेबस्टर ने घोषित किया था कि संघ को कायम रखना होगा और रखा जाएगा और जैक्सन-समर्थक लोकतन्त्रवादियों ने अब इस बात की व्यग्र चेष्टा की कि चतुराई से देश की एकता को बनाए रखें जबकि उनके अपने सिद्धान्त उसे तोड़ रहे थे।

दक्षिणी सिद्धान्तों का निरूपण करने वाले आमतौर पर प्राकृतिक अधिकार, सामाजिक अनुबन्ध और राज्यों के बीच संघीय सम्बन्ध के जेफ़रसनवादी सिद्धान्तों के आधार पर अपनी बात का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास करते—

थे। प्रधान न्यायाधीश टैनी के प्रसिद्ध निर्णय में जिस सिद्धान्त को क़ानून का अंग बना दिया था कि गुलाम व्यक्ति नहीं सम्पत्ति है—उसके आधार पर वे गुलामों की नागरिक स्वतन्त्रता और समानता के प्रश्न को टाल जाते थे। किन्तु जब विवाद सिमट कर गुलामी प्रथा के प्रश्न तक ही सीमित रह गया तो अधिकांश विवादियों ने नैतिक सिद्धान्त को बिल्कुल ही छोड़ दिया और गुलामी प्रथा का समर्थन उपयोगितावादी आर्थिक आधारों पर किया। कभी-कभी अर्थशास्त्र में कुछ नैतिकता का पुट भी पा जाता, जैसे उदाहरण के लिए, चार्ल्सटन (दक्षिणी कैरोलिना) के वयस्किसानवादी संघ के मामले में जिसने १८५६ में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया कि गुलामी-प्रथा वास्तव में राजनीतिक अर्थशास्त्र का प्रश्न है। यह एक सीधा सा सवाल है कि हम मजदूर का सारा समय खरीदें जिसमें हम पर यह जिम्मेवारी होगी कि बीमारी और बुढ़ापे में हम उसकी देखभाल करें और उसे सहारा दें या कि हम उसके समय का केवल एक हिस्सा खरीदें और ऐसी कोई जिम्मेवारी हमारे ऊपर न हो।

आमतौर पर उत्तर और दक्षिण दोनों को ही भय होने के साथ-साथ कुछ राहत भी मिली जब राजनीतिक विवादों का स्थान युद्ध-युद्ध ने ले लिया। 'स्वतन्त्रता के एक नये जन्म' और संघ के एक नये सिद्धान्त के लिए वातावरण साफ हो गया। जिन्होंने जिन पर गुलामों की मुक्ति और संघ की रक्षा का क्रियात्मक बोझ पड़ा, दार्शनिक पुनर्निर्माण की दिशा में काफी अच्छा और ठोस आरम्भ किया यद्यपि उनके सिद्धान्त भी उनके साथ ही शहीद हो गये। सीमान्त-क्षेत्रीय लोकतन्त्र जिन सिद्धान्त और नरम गणतन्त्रवादियों के समझौतावादी ढंग ये उन्हें मिली विरासत के रूप में मिले थे। युद्ध घोषित हो जाने के बाद वे स्वतन्त्र थे कि अपने दलीय तरीकों को छोड़ दें और जहाँ तक हो सके, स्वतन्त्रता और संघ का एक-एक सम्र लेकिन मेल पैदा करने वाला कार्यक्रम निरूपित करें। उन्होंने तत्कालीन दलीय नारों का जो गुलामी वाले राज्यों के संवैधानिक अधिकारों पर और इस धारणा पर आधारित थे कि 'मुक्ति-भूमि' के साथ-साथ गुलामी वाले राज्य भी रह सकते हैं, परित्याग कर दिया और (१८५८ में ही व्यक्त) अपने इस विश्वास को कि राष्ट्र 'आधा गुलाम और आधा स्वतन्त्र नहीं रह सकता' स्वतन्त्रता के घोषणा-पत्र की एक पुनर्व्याख्या पर आधारित किया। उन्होंने कहा कि उस घोषणा-पत्र के सिद्धान्तों में एक वर्गविहीन समाज निहित है, जिसमें स्वतन्त्रता अलग-अलग सभी मनुष्यों का अधिकार है और उसका संघ भंग नहीं किया जा सकता। उन्होंने स्वतन्त्रता के अपने सिद्धान्त का उपयोग न केवल गुलामों की मुक्ति के सम्बन्ध में किया वरन् स्वतन्त्र मजदूरों में आर्थिक स्वतन्त्रता की अभिवृद्धि के सिलसिले में भी।

स्वतन्त्र किसान उनका आदर्श था। अन्य लोगों के काम का और अन्य लोगों के लिए काम करने को वे व्यावहारिक अभिशाप या अस्थायी दासत्व मानते थे, जिसका स्वाभाविक अन्त इसमें हो कि मजदूर सम्पत्ति के स्वतन्त्र स्वामी के रूप में स्वयं अपना व्यापार या दूकान शुरू करे। लिंकन आशा करते थे कि इस प्रकार वर्गविहीन समाज का आदर्श राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही रूपों में उपलब्ध हो सकेगा। यद्यपि पश्चिम की स्थिति के सन्दर्भ में इन विचारों में कुछ औचित्य था, किन्तु दक्षिणी बागानों के आर्थिक ढाँचे में और उत्तर के बढ़ते हुए औद्योगिक पूँजीवाद के सन्दर्भ में वे पूर्णतः अव्यावहारिक सिद्ध हुए। फलस्वरूप लिंकन द्वारा स्वतन्त्र मनुष्यों के राष्ट्रीय लोकतन्त्र का प्रभावशाली निरूपण, एक लोकप्रिय आदर्श मात्र रहा है। एक भावना और निरपेक्ष प्रतिमान के रूप में उसकी शक्ति हर पीढ़ी के साथ बढ़ती जाती है, जो उसकी उपलब्धि से अपने को अधिकाधिक दूर पाती है।

स्वतन्त्रता और प्रेम का एक अन्य भावुकतापूर्ण मेल हमें वाल्ट ह्विटमैन के जीवन में मिलता है (यह कहना कठिन है कि उसे उन्होंने प्रतिपादित किया)। यह असाधारण कवि उसी प्रकार दार्शनिकों की श्रेणी में रखे जाने के योग्य नहीं है जैसे अभिव्यक्तक लिंकन। उन्होंने बिना मनुष्यों के विचारों में मत मिलाने का प्रयास किये, निजी स्तर पर सभी मनुष्यों में मेल मिलाने का प्रयास किया। और जब किसी ने उनसे शिकायत की कि वे लोगों को कोई समन्वितपूर्ण दर्शन नहीं प्रदान करते तो उन्होंने उत्तर दिया, "मेरा ख्याल है मैं ऐसा नहीं करता मैं ऐसा करना भी नहीं चाहूँगा।"¹ उनमें बिना किसी चीज का विश्लेषण करने का कष्ट उठाये, हर चीज से सहानुभूति रखने की असाधारण योग्यता थी। उन्होंने सब कुछ अपना लिया, एक प्रतिनिधि अमरीकी होने का दावा किया और यह समझ बैठे कि 'अपना गीत' (सौंग ऑफ माइसेल्फ) गाते हुए वे न केवल परात्परवादियों के व्यक्तिवाद को व्यक्त कर रहे हैं बल्कि लोकतन्त्रवादी के 'ईश्वरीय औसत' को भी। उनके 'निजत्व' के साथ-साथ उनकी स्वतन्त्रता भी लगभग असीमित थी और नागरिक से अधिक प्राकृतिक थी। किन्तु ह्विटमैन का भावुक लोकतन्त्र मात्र भावुकता ही नहीं था, वरन् लिंकन की भाँति उनकी लोकतान्त्रिक राजनीति के दृढ़ आधार का एक पक्ष था। लोकतान्त्रिक दल पर से उनका विश्वास उठ गया, जब छठे दशक में उसने 'खलिहान जलाने वाले' 'लोकोफोको' प्रकार के लोकतन्त्रवाद को छोड़ दिया, जिसका ह्विटमैन ने पाँचवें दशक में आयोजन किया था। उन्होंने 'मुक्त-भूमिवादी' होने का प्रयास किया,

---

किन्तु यह प्रयास अव्यावहारिक सिद्ध हुआ और अन्त में वे अपनी 'राष्ट्रीय लोकतन्त्र' को छोड़कर लिंकन के एक उत्साही समर्थक बन गये। किन्तु वे युद्ध को दलीय पद्धति की भ्रष्टता की परिणति मानते थे। 'अमरीका दलों के लिए बहुत अधिक बढ़ गया है, अब यह बहुत बड़ा है और दल बहुत छोटे। मैं न किसी पुराने दल पर कोई भरोसा करता हूँ, न किसी नये दल पर।'[1] दलीय राजनीति के बजाय, उन्हें एक ओर 'वैयक्तिक नेताओं' पर विश्वास था, दूसरी ओर साथी-भावना या 'कैलेमस-राजनीति' पर (कैलेमस—बेंत के प्रकार का, पानी में उगने वाला एक पौधा)। उन्हें आशा थी कि दलों, युद्धों, वर्गों और पूर्वाग्रहों के धीरे-धीरे टूटने पर एक स्वाभाविक मानवीय सहानुभूति फैलेगी और परिपक्व होकर नागरिक मित्रता और पौरुषेय प्रेम का रूप लेगी। आर्थिक पक्ष में वे लिंकन की भाँति आशा करते थे कि 'छोटे स्वामियों के एक विशाल स्वतन्त्र और लोकतान्त्रिक वर्ग का जन्म' होगा[2] और आजीवन उनमें विषमताओं और धर्म-धन्धाओं के प्रति एक तीव्र घृणा बनी रही। लेकिन १८६० के बाद सुधार योजनाओं में उन्होंने बहुत कम रुचि ली। प्राकृतिक नियम और मानवी प्रकृति में उनका विश्वास आर्थिक-सिद्धान्त या सिद्धान्तों पर आधारित विश्वास नहीं था वरन् एक सिन्धु-सुलभ विश्वास था जिसमें वे धार्मिक दृष्टि से पगे थे—हिक्स के लोकरवाद और ईश्वरवाद का एक मेल। उनकी प्राकृतिक व्यवस्था सामाजिक से अधिक धर्मतान्त्रिक थी[3]—दैवी स्वतन्त्रता का नियम।

'समग्र सृष्टि सम्पूर्ण नियम है। स्वतन्त्रता केवल सारे कार्यकलाप और अनुमति को नियम के अन्तर्गत मुक्त करती है। क्या हम ऐसा मताधिकार प्राप्त कर सकते हैं—सच्चा लोकतन्त्र और उसकी चरम स्थिति? हम जन्म से मृत्यु तक हर गति और क्षण को बाँधने वाले अटल नियमों के अधीन रहते हैं फिर भी एक विरोधाभास के द्वारा, हम सच्ची स्वतन्त्र इच्छा की स्थिति में आ जाते हैं। यह विचित्र प्रतीत हो सकता है, किन्तु हम नियम के ज्ञान और पूर्णत उसका पालन करने के द्वारा ही स्वतन्त्रता को प्राप्त करते हैं। महान्—अत्यधिक

---

१ वही, पृष्ठ ४८।

२ वही पृष्ठ १ १।

३ देखिए, उनकी कविता 'चौखिटप वी स्क्वायर डाइविन' जिसमें त्रिमूर्ति (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) के साथ एक चौथे व्यक्ति शैतान को भी जोड़ दिया गया है, जो 'विद्रोह की साजिश' करता है और 'पवित्र आत्मा' को बदल कर 'सन्त आत्मा' (सेण्ट सिनरिटा) कर दिया गया है, जीवन की ज्योति, 'कर्मों का सार, यथार्थ अस्तित्वों का पावन।

महान्—है इच्छा और मनुष्य की मुक्त आत्मा ! अपनी महानतम स्थिति में नियमों को समझते और उसका पालन करते हुए वह वास्तविक स्वतन्त्रता को कायम रख सकता है और केवल तभी कायम रख सकता है। क्योंकि, उच्चतम (लोगों) के लिए, किसी भी अन्य नियम के समान सम्पूर्ण—किसी भी अन्य नियम से अधिक सम्पूर्ण—स्वतन्त्रता का नियम है। जिसने लोग जैसा बताया जा चुका है स्वतन्त्रता का सारे नियमों से, सारे संयम से मुक्ति मानते हैं। इसके विपरीत ज्ञानी इसमें सर्वोत्तम 'नियमों का नियम' देखते हैं अर्थात् चेतन इच्छा या प्राकृतिक वैयक्तिक नियम का वन सार्विक, अनन्त, अचेतन नियमों से मेल जो सारे काल में बसते हैं, इतिहास में व्याप्त हैं अनश्वरता को प्रमाणित करते हैं सम्पूर्ण बाह्य विश्व को नैतिक उद्देश्य प्रदान करते हैं और मानव जीवन को अन्तिम पुरस्कार।"[1]

इस दृष्टि से राज्यों और राष्ट्रों की 'अंतर्राष्ट्र-सम्मिलनी' और स्वयं मनुष्य जाति की लोकतान्त्रिक एकता जिसे ह्विटमैन ने जीवन के अन्तिम काल में अपनाया एक तत्व-दार्शनिक व्यवस्था का ही प्रतिबिम्ब है जो सृष्टि का परिचालन करती है। वे भाग्यवादी होने की अपेक्षा एक जागरूक उत्तरदायी व्यक्ति थे और जो कुछ भी अनुभव, इतिहास या विज्ञान के द्वारा यथार्थ प्रमाणित हो, उसका हार्दिक स्वागत करना अपना कर्तव्य समझते थे। समय के निर्णय को वे हिचक स्वीकार करने में उन्होंने अपने मत इतनी स्वतन्त्रता से बदले, जैसे उन्होंने कभी 'अपना विचार बनाया' ही न हो। वे उस व्यक्ति की तरह स्वतन्त्र थे जो 'खेल के अन्दर भी है और बाहर भी' और उसे देख-देखकर अचरज करता है।

ह्विटमैन का 'देखने और अचरज करने' वाला पक्ष उस समय और प्रमुख हो गया जब संघ' की विजय के बाद के वर्षों में उन्होंने अधिकाधिक इस बात को समझा कि अमरीकी जीवन की प्रमुख प्रवृत्तियों और प्रतिमानों का समस्त उनकी लोकतान्त्रिक भविष्य-दृष्टि कल्पना मात्र थी। उनका जीवन दर्शन मृत्यु और पुनर्जन्म का दर्शन भी बन गया—एक दुःखान्त लोकतन्त्र। उनके दुःख-पूर्ण दृष्टिकोण की गहराई, उनके द्वारा लोकतान्त्रिक राजनीति का पूर्ण परित्याग उस समय सर्वाधिक स्पष्ट रूप में सामने आये जब पापुलिस्ट लोकतन्त्र[2] के उदय से

---

१ वाल्ट ह्विटमैन, 'प्रोज़ वर्क्स' (न्यूयार्क १८५४), पृष्ठ ३१६ ३१७।

२ पापुलिस्ट दल की स्थापना, १८९२ में हुई। दैलों का सार्वजनिक नियन्त्रण और आय के अनुसार आरोही आयकर आदि इसके कार्यक्रम के

उन्हें जरा भी प्रभावित नहीं किया। आरम्भ से अन्त तक उन्होंने 'बलिदान-बसाने वाली परम्परा के प्रति अपनी धार्मिक निष्ठा को क़ायम रखा जिसके सफल होने की उन्हें भी कोई आशा नहीं थी।

साहब, यूरोपीय सिपाही, विद्रोहियो।
क्योंकि जब तक सब कुछ नहीं रहता, तुम्हें भी नहीं रहना।
"मैं नहीं जानता कि तुम किसलिए हो (मैं नहीं जानता कि मैं किस लिए
हूँ, या कोई किस लिए है)
"किन्तु असफल होते समय भी मैं सावधानी से उसे खोजूँगा,
'हार, गरीबी भ्रम और क़ैद में—क्योंकि ये भी महान् हैं।[1]

ह्विटमैन और लिंकन अपवाद थे। आमतौर पर संघ-दार्शनिकों ने उग्र साम्राज्य का मार्ग छोड़कर स्वतन्त्रता के कम लोक-प्रिय रूपों को अपनाया। यह प्रचलित करने में दार्शनिकों के साथ वकील भी शामिल हो गये कि संयुक्त-राज्य प्रभु राज्यों का संघ नहीं है, बल्कि एक सर्वप्रभुता सम्पन्न 'संघ-राज्य' है। येल विधि-स्कूल के एक स्नातक जान सी॰ हर्ड ने इस सिद्धान्त पर आधारित एक प्रभावशाली निबन्ध लिखा कि क़ानून में व्यक्त होने के पहले जनता में स्थित होने के कारण संघ संविधान से ज़्यादा पुराना है। इस बीच फ्रांसिस लाइबर जर्मनी से एक आदर्शवादी उदारवाद लाये और उन्होंने कहा कि जनता की संस्थाओं को जिन पर नागरिक स्वतन्त्रता आधारित है राज्य के साथ आंगिक रूप में सम्बद्ध होना चाहिए। फिर ब्लण्टसली के अधिक राष्ट्रवादी विचार लोकप्रिय हुए। राजनीति-शास्त्रियों के एक विशिष्ट समूह ने उन्हें अमरीकी राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई भावना के अनुरूप ढाला। इनमें येल के थियोडोर ड्वाइट वूल्से कोलम्बिया के जॉन डब्ल्यू॰ बर्जेस, जॉन हॉपकिन्स (बस्ता) के डब्ल्यू॰ डब्ल्यू॰ विलोबी और प्रिन्सटन के वुडरो विल्सन प्रमुख थे। आमतौर पर इस समूह ने स्वतन्त्रता से अधिक आंगिक एकता की बात उठाई। जब वुडरो विल्सन लोकतन्त्रवादी बने और 'नयी स्वतन्त्रता' का प्रचार करने लगे तभी जाकर स्वतन्त्रता और संघ की एकता दार्शनिक रूप में पुनः स्थापित हुई।

आदर्शवादी लोकतन्त्र

अमरीका में लोकतान्त्रिक सिद्धान्त पर हीगेल का प्रभाव आमतौर पर जितना माना जाता है, उससे अधिक था। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि

[1] [illegible]

मुख्यतः हीगेल के प्रभाव से ही राष्ट्रीय समूहवाद को, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय में की गयी है, एक निर्णयात्मक मनोवैज्ञानिक मोड़ लेने से रोका और १८८० के बाद हुए राष्ट्रीय समाजवाद और आर्थिक लोकतन्त्र के विकास को समझने के लिये अमरीका का एक उपयुक्त विचार-दर्शन प्रदान किया।

यह संयोगमात्र नहीं था कि अमरीकी हीगेलवाद का पहला केन्द्र गृह-युद्ध के पूर्व के समझौते का स्थल मिसौरी था—वह स्थान जहाँ उत्तर दक्षिण पश्चिम और जर्मन लोग संघर्ष और सम्मिश्रण में मिले थे। सेंट लुई में एक युवा जर्मन हेनरी ब्रॉकमेयर ने, १८४८ की क्रान्ति के समय अपने देश से भाग कर आने के बाद, अचानक अपने को उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के संघर्ष के केन्द्र में फँसा हुआ पाया। क्या यह एक और क्रान्ति थी? यद्यपि वे शास्त्रीय दार्शनिक नहीं बल्कि एक व्यापारी थे किन्तु उन्होंने इस राष्ट्रीय संघर्ष में एक सामान्य अर्थसत्ता खोजने की चेष्टा की। उन्होंने ब्राउन विश्वविद्यालय में, विशेषत एफ० एच० हेज से, जो उस समय प्राविडेन्स नगर में एकत्ववादी पादरी थे हीगेल का कुछ अध्ययन किया था।

जिस प्रकार हीगेल एक संयुक्त जर्मनी के लिए लड़े थे, उसी प्रकार ब्रॉकमेयर ने उनके दर्शन में एक पुनः संयुक्त अमरीका का दार्शनिक आधार देखा। हीगेल के द्वन्द्ववाद को राज्य पर लागू करें तो उसमें 'अमूर्त अधिकार' के विरुद्ध उतनी ही 'अमूर्त नैतिकता' होती है और 'नैतिक राज्य' की परिणति में… का मेल होता है। ब्रॉकमेयर और उनके अनुयायियों की दृष्टि में दक्षि… असमानतावादी 'अमूर्त अधिकार' के प्रतिनिधि थे और उत्तरी गुलामी-समाप्ति समर्थक 'अमूर्त नैतिकता' के और दुःखद संघर्ष से जो नया संघ निकलने वाला था वह नैतिक राज्य था।'[1]

इस अन्तर्दृष्टि और उत्साह में दो शिक्षक विलियम टॉरे हैरिस और डेन्टन जे स्नाइडर, उनके साझीदार थे जो हीगेल का अध्ययन और अनुवाद करने में लगे। जब शैक्षिक और साहित्यिक क्षेत्रों में उन्हें अपने दर्शन को प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर न मिला, तो उन्होंने अपना जर्नल आफ स्पेकुलेटिव फिलॉसफी (परिकल्पित दर्शन की पत्रिका—१८६७) प्रकाशित किया। इस पत्रिका के पहले अंक में सम्पादकों ने 'पाठक को' इस प्रकार सम्बोधित किया—

'पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रीय चेतना आगे बढ़कर एक नये मंच पर आ गयी

---

१ पाल रसेल ऐण्डरसन और मक्स हैरोल्ड फिश द्वारा संपादित 'फिलॉसफी इन अमेरिका' (न्यूयार्क, १९३९), पृष्ठ ४७३।

है। हमारे प्रकार के शासन में अन्तर्निहित विचार के मूल पक्षों में से अब तक केवल एक ही विकसित हुआ है—भंगुर व्यक्तिवाद—जिसमें राष्ट्रीय एकता एक बाह्य उपकरण प्रतीत होती थी, जिससे शीघ्र ही पूरी तरह छुटकारा पा लेना था और उसके स्थान पर निजी मनुष्य या उसका स्थान लेने वाले निगम के उद्यम को रखना था। अब हम अन्य मूल पक्ष की चेतना तक पहुँचे हैं, और हर व्यक्ति राज्य को अपने एक ठोस पक्ष के रूप में स्वीकार करता है। नागरिक की स्वतन्त्रता मात्र निरंकुशता में नहीं है, वरन् उस तार्किक विश्वास की सिद्धि में है, जो संस्थापित क़ानून में व्यक्त होता है। राष्ट्रीय जीवन के इस नये पक्ष को समझने और आत्मसात् करने की आवश्यकता है, यह परिकल्पित (दर्शन) के अध्ययन का एक और कारण है।[१]

'राष्ट्रीय जीवन को समझने और आत्मसात् करने' के सामान्य रूप को ब्रॉकमेयर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया—

चेतना के मूल में तीन स्थितियाँ होती हैं—अभिव्यक्ति उपलब्धि और वस्तुकरण। इनमें से प्रथम स्थिति जिस पर अन्य दो परवर्ती स्थितियाँ निर्भर हैं व्यक्ति मनुष्य में होती है। तर्क-बुद्धि पहले उसमें व्यक्त होती है, तभी वह इस या उस राजनीतिक सामाजिक या नैतिक संस्था को उपलब्ध कर सकती या उसमें स्थित हो सकती है। और केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति में अपने को व्यक्त करे। उसे उन संस्थाओं में अपने को उपलब्ध भी करना होगा इसके पहले कि कला धर्म या दर्शन में उसका वस्तुकरण हो सके।[२]

अमरीकी इतिहास के ढंग का (बहुत कुछ हीगेल की रचना 'फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट्स' के सन्दर्भ में) पर्यवेक्षण करते हुए स्नाइडर अन्त में उसके महान् संकट पर आते हैं, जिसका विश्लेषण इन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत तीन अवस्थिति में करने के बाद अपना संक्षिप्त निष्कर्ष इस प्रकार रखते हैं—

अमरीकी लोक-आत्मा जैसा हम उसे कह सकते हैं महान् संकट में है, जो महत्-बिन्दु के बहुत आगे बढ़ता ही जाता है। वह अपनी अन्दर ही दो प्रगट भुकाव नहीं तो विरोधयुक्त हिस्सों में बँटी है जो कैसास में या सीधे टकरा जाते हैं। वह एक बँटी हुई लोक-आत्मा बनती जाती है, उत्तर और दक्षिण या मुक्त-राज्यों और गुलाम-राज्यों में बँटी हुई। हर दिल में यह सवाल बस रहा

---

१ 'जर्नल ऑफ़ स्पेकुलेटिव फ़िलासफ़ी', अंक एक (१८६७), पृष्ठ १।

२ प्रोफ़ेसर डी० हारमॅन, 'दी सोशल फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ दी सेन्ट लुई हीगेलियन्स (न्यूयार्क, १९४१), पृष्ठ ७-८।

है—क्या यह कल्पित तंत्र एक अनन्त झगड़े में फँसा, खेदपूर्वक बना रहेगा, या एक और वास्तविक रूप बनेगा ? युग की साधना, इतिहास की चेतना पहले धीमे स्वर में आदेश देती सुनी जा सकती है जो शीघ्र ही गर्जन भरे स्वर में फूट पड़ेगा । नियति का यह घुन जो संविधान के जन्म के समय ही उसमें घुन दिया गया और जिसने अपने गम्भीरतम अन्तर्विरोध का बोझ उस पर डाल रखा है, उसे अब निकलना होगा । आने वाले नेता के भविष्य-द्रष्टा शब्दों में, यह (लोक-आत्मा) आधी गुलाम आधी मुक्त नहीं रह सकती ।'[1]

स्नायडर द्वारा गृह-युद्ध की व्याख्या में हैरिस ने एक रोचक टीका जोड़ी ।

"फ्रांस की क्रान्ति मानव इतिहास में उदारवाद का एक विशाल विषय-पाठ थी और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उस आन्दोलन के अन्तर्विरोधों को हीगेल ने जिस गहराई तक देखा वह आश्चर्यजनक है । किन्तु मुझे सन्देह है कि मार्क्सवाद की भाँति हीगेल ने भी शायद उस दिशा-संकेत के निश्चयात्मक महत्व को नहीं समझा जो विश्व-इतिहास में ऐसे रूप में व्यक्त होते गया कि केवल संयुक्त-राज्य के इतिहास में उसे न समझना सम्भव नहीं था । शायद हम कह सकते हैं कि 'अमरीकी गृह-युद्ध अन्तिम युद्ध' के बाद ही जिसके बारे में आपने इतनी योग्यता से लिखा है, इस दिशा-संकेत में एक निश्चित धर्ममयता आयी । स्पेन और पुर्तगाल द्वारा औपनिवेशीकरण और फ्रांस, स्पेन और इटली में लोकतान्त्रिक शासन के प्रयोग केवल तर्क को मर्यादाहीन बनाने के प्रयास हैं । वास्तव में कुछ ऐसा लगने लगा है जैसे हमारे मजदूर संगठन और आन्दोलन हमारी कुर्सी तोड़ें, हमारे वाल स्ट्रीट (न्यूयार्क का व्यापार-केन्द्र) के ट्रस्ट और इसी प्रकार के दैत्यों की एक लम्बी कतार हमारे सामने आ रही है या भविष्य में उनकी छाया दिख रही है, जैसे मैकबेथ का देखकर विलाप करने वाले बैंक्वो के प्रेतों की पंक्ति (मैकबेथ और बैंक्वो—शेक्सपियर के प्रसिद्ध दुःखान्त नाटक 'मैकबेथ' का नायक और एक पात्र), और लोकतान्त्रिक शासन के लिए खतरा उत्पन्न कर रहे हैं । हमारे विश्वास को बनाये रखने वाली एकमात्र वस्तु यह है कि राजतन्त्र के पुराने रूप की वापसी सम्भव नहीं ।

"फिर हीगेल ने अपनी घटना-क्रिया-विज्ञान के एक तिहाई में फ्रांस की क्रान्ति की विवेचना की है ।'[2]

ये उदाहरण पाठक को कुछ आभास देने के लिए पर्याप्त होंगे कि हीगेल के विचारों को अमरीकी राजनीति पर किस प्रकार लागू किया गया । धार्मिक

---

१ वही, पृष्ठ ४१ ।

२ वही, पृष्ठ ४३-४४ ।

है। हमारे प्रकार के शासन में अन्तर्निहित विचार के मूल पक्षों में से अब तक केवल एक ही विकसित हुआ है—भंगुर व्यक्तिवाद—जिसमें राष्ट्रीय एकता एक बाह्य उपकरण प्रतीत होती थी, जिससे शीघ्र ही पूरी तरह छुटकारा पा लेना था और उसके स्थान पर निजी मनुष्य या उसका स्थान लेने वाले नियम के उद्यम का रखना था। अब हम अन्य मूल पक्ष की चेतना तक पहुँचे हैं, और हर व्यक्ति राज्य को अपने एक ठोस पक्ष के रूप में स्वीकार करता है। नागरिक की स्वतन्त्रता मात्र निरंकुशता में नहीं है, वरन् उस तार्किक विश्वास की सिद्धि में है, जो संस्थापित क़ानून में व्यक्त होता है। राष्ट्रीय जीवन के इस नये पक्ष को समझने और आत्मसात् करने की आवश्यकता है यह परिकल्पित (दर्शन) के अध्ययन का एक और कारण है।[1]

'राष्ट्रीय जीवन को समझने और आत्मसात् करने के सामान्य क्रम को हॉफ्मेयर ने इस प्रकार प्रस्तुत किया—

चेतना के मूल में तीन स्थितियाँ होती हैं—अभिव्यक्ति उपलब्धि और वस्तुकरण। इनमें से प्रथम स्थिति जिस पर अन्य दो परवर्ती स्थितियाँ निर्भर हैं व्यक्ति मनुष्य में होती है। तर्क-बुद्धि पहले उसमें व्यक्त होती है तभी वह इस या उस राजनीतिक, सामाजिक या नैतिक संस्था को उपलब्ध कर सकती या उसमें स्थित हो सकती है। और केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति में अपने को व्यक्त करे। उसे उन संस्थाओं में अपने को उपलब्ध भी करना होगा, इसके पहले कि कला धर्म या दर्शन में उसका वस्तुकरण हो सके।[2]

अमरीकी इतिहास के क्रम का (बहुत कुछ हीगेल की रचना 'फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ राइट' के सन्दर्भ में) परीक्षण करते हुए स्नाइडर अन्त में उसके महान् संकट पर आते हैं, जिसका विश्लेषण द्वन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत तीन अवधियों में करने के बाद अपना संक्षिप्त निष्कर्ष इस प्रकार रखते हैं—

अमरीकी लोक-आत्मा जैसा हम उसे कह सकते हैं महान् संकट में है, जो महत्-बिन्दु से बहुत भारी पड़ता ही जाता है। वह अपने अन्दर ही दो अगर मुखरित नहीं तो विरोधयुक्त हिस्सों में बँटी है जो कैन्सास में तो सीधे टकरा जाते हैं। यह एक बँटी हुई लोक-आत्मा बनती जाती है, उत्तर और दक्षिण या मुक्त-राज्यों और गुलाम-राज्यों में बँटी हुई। हर दिन में यह सवाल बस रहा

---

१ 'जर्नल ऑफ़ स्पेकुलेटिव फ़िलासफ़ी', अंक एक (१८६७), पृष्ठ १।

२ फ्रांसेस ए० हारमॉन, 'दी सोशल फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ दी सेण्ट लुई हीगेलियन्स (न्यूयार्क, १९४३), पृष्ठ ७-८।

बन्द और भी रोचक और अमरीकी के लिए बिल्कुल नया है। संस्थाओं के इस का सर्वेक्षण करने के बाद—परिवार (वाद) वैयक्तिक सम्पत्ति (प्रतिवाद) और राज्य (संवाद)—स्थापकर उसको स्वयं अपनी भाषा और वातावरण पर इस प्रकार लागू करते हैं—

"इस प्रकार व्यक्तिगत स्वामित्व के बाद एक और संस्थात्मक रूप आना चाहिए, या व्यक्तिगत स्वामित्व उसके द्वारा परिवर्तित और संशोधित होना चाहिए, जिसे हमने यहाँ नागरिक साम्यवाद कहा है। समाज को पुनः सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए, विशेषतः उसे स्वयं अपनी सम्पत्ति पर अधिकार करना चाहिए, धीरे-धीरे सावधानी से और न्यायपूर्वक यह निर्णय करते हुए कि उसकी अपनी सम्पत्ति क्या है। कारण कि स्वतन्त्र व्यक्ति ने परिग्रहण की अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके समाज के धन को भी हथिया लिया है। फिर भी निजी स्वामित्व के उचित अधिकार क्षेत्र में उस पर कोई खतरा नहीं आये बल्कि नयी सामाजिक व्यवस्था में उस पर लगायी गयी सीमाओं के कारण उसे और अधिक सावधानी से सुदृढ़ और सुरक्षित किया जाये। किन्तु जहाँ वह स्वतन्त्रता का नाश करने वाला और सचमुच आत्मघाती बन गया है, वहाँ इसे अपने-आप से बचाना जरूरी है।

"आज के सभ्य संसार में सामाजिक एकतन्त्रवादी (मोनोक्रेट) सबसे रोचक व्यक्ति है। दोनों महाद्वीपों के लोग उसे एक प्रकार के भय के साथ देख रहे हैं यह सोचते हुए उससे आगे क्या निकलने वाला है। किसी गणतन्त्र का कोई राष्ट्रपति कोई राजा या सम्राट्, मनुष्य-जाति की दृष्टि को इस प्रकार आकर्षित नहीं करता उसकी कल्पना को उद्वेलित नहीं करता जैसे हमारा एकतन्त्रवादी। उनमें से तीन या चार ने विशाल आकृतियाँ प्राप्त कर ली हैं और सारे संसार का ध्यान उनकी ओर खिंच गया है। इस सम्बन्ध में विचित्र तथ्य यह है कि वह लोकतन्त्र की ही उत्पत्ति है और एकतन्त्र लोकतन्त्र का ही वर्धमान प्रतिरूप और उसकी परिपूर्ति प्रतीत होता है।

अभी तक सामाजिक एकतन्त्रवादी अपने कार्य में पूर्णतः वैयक्तिक है, अपने निजी लाभ के लिए ही सचेष्ट है। क्या यही उसका अन्त है, या कि वह एक अन्य और उच्चतर सामाजिक उद्देश्य के लिए विकसित हो रहा है? हम समझते हैं कि वह सामाजिक इकाई का मान्य संस्थात्मक प्रशासक बनने के लिए प्रशिक्षित हो रहा है, जो इकाई उसे अन्ततः किसी प्रकार से चुनेगी। इस समय वह अपनी प्रतिभा के द्वारा अपनी शक्ति को ग्रहण करता है और निरंकुश रीति से अपने लिए उसका प्रयोग करता है। किन्तु उसे अपनी वैयक्तिक स्थिति से ऊपर उठना है, और केवल अपने लिए ही कार्य न करके सामाजिक रूप में

सभी के लिए करना है। वह सामाजिक संस्था का प्रशासन बाहर से नहीं बल्कि अन्दर से करेगा क्योंकि वह स्वयं उसका अभिन्न अंग होगा और इस रूप में उसका लक्ष्य सभी संस्थाओं का अन्तिम लक्ष्य होगा—संसार में स्वतन्त्रता का वस्तुकरण। उसकी सत्ता मनमानी या पितृसत्तात्मक भी नहीं रह जायेगी, बल्कि संस्थात्मक होगी। शायद संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की भाँति संवैधानिक होगी। एक समन्वय सामाजिक संसार उसे अपना प्रमुख बना सकता है। ऐसी उच्च सेवा के लिए उसे पर्याप्त मुआवजा मिलेगा लेकिन उसे वह अपने लिए स्वयं ही निर्धारित नहीं करेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि आसन्न साम्प्रदायिक स्वामित्व अभी ही उसकी माँग कर रहा है और इस समय अपने भावी संस्थात्मक कार्य की तैयारी की प्रक्रिया में है।[1]

दूसरे शब्दों में स्नाइडर ने राजकीय समाजवाद या उसके अपनी शब्दों में एकत्मिक लोकतन्त्र की कल्पना संस्थागत स्वतन्त्र इच्छा के अन्तिम रूप की शक्ल में की थी। वे और ब्रोकमेयर दोनों ही स्थानीय राजनीति में सक्रिय भाग लेते थे। ब्रोकमेयर मिसौरी के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर थे (१८७६-८०)।

दूसरी ओर हैरिस ने अपने मुख्य योगदान के लिए राष्ट्रीय शिक्षा का क्षेत्र चुना। संयुक्त राज्य के शिक्षा-आयुक्त के रूप में (१८८९-१९०६) सेन्ट लुई के दर्शन को शिक्षा के एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित करके और राष्ट्रीय, सार्वजनिक शिक्षा को स्वतन्त्रता के अन्तिम मूर्तरूप के रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने उस दर्शन को कार्यरूप में परिणत करने का प्रयास किया। 'शिक्षा अपनी मात्र पशु प्रवृत्ति के स्थान पर सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार करने की प्रक्रिया है। यह अनन्त काल की स्वतन्त्रता के लिए क्षण की स्वतन्त्रता का परित्याग है।'[2]

जब ब्रान्सेन ऐल्काट ने सेन्ट लुई की यात्रा के समय यह सब जाना तो वे अचम्भित रह गये। ये बातें न्यू-इंगलैंड के परात्परवाद से बहुत दूर थीं जिसमें वे पले थे। फिर भी वे इनसे आकर्षित हुए, क्योंकि उन्होंने तत्काल समझ लिया कि 'आध्यात्मिक उन्माद' से उनकी अपनी रुचि लोकतन्त्र की इस हीगेलवादी व्याख्या के साथ समरस हो सकती थी। कॉन्कॉर्ड में दर्शन के ग्रीष्म विद्यालय के पीछे (१८७९-८७) जिसे ऐल्काट और हैरिस ने संगठित किया था यही आशा

---

1 डेन्टन जे॰ स्नाइडर, 'सोशल इंस्टिट्यूशन्स' (सेण्ट लुई, १९०१), पृष्ठ २१९-२२०, २२१, २२२ २२३ २२४।

2 सेमन विन्स द्वारा 'दि ऐजुकेशनल आइडियाज़ ऑफ विलियम टी॰ हैरिस' में उद्धृत, 'दी एजुकेशनल रेकार्ड' अंक सत्रह (१९३६), पृष्ठ १२४।

और योजना थी कि न्यू-इंगलैंड के परात्परवाद और पश्चिम के लोकतान्त्रिक आदर्शवाद को एक जगह लाया जाये। किन्तु पूर्व और पश्चिम कॉनकोर्ड में केवल मिले भर ही, क्योंकि इस समय तक इनमें से किसी में भी इतनी शक्ति शेष नहीं थी कि किसी बड़ी दार्शनिक परम्परा का सूत्रपात कर सके।

हीगेलवादी लोकतान्त्रिक आदर्शवाद को एक बहुत-कुछ असम्भाव्य दिशा से एक नयी प्रेरणा मिली। रेवरेण्ड डाक्टर एलिशा मुलफोर्ड, जो एपिस्कोपेलियन सम्प्रदाय (विशपों द्वारा चर्च के प्रशासन को मानने वाला सम्प्रदाय) के पादरी थे और जीवन के अन्तिम वर्षों में (१८८०-८५) कैम्ब्रिज के धर्मशास्त्र विद्यालय में प्राध्यापक थे उपदेशक से अधिक अध्येता थे। उन्होंने कई वर्ष जर्मनी में अध्ययन किया और ऐंग्लिकन मतानुयायी हीगेलवादी और सुधारक फ्रेडरिक डेनिसन मॉरिस के निकटी मित्र बन गये। अमरीका वापस आने पर उन्होंने एक पुस्तक 'दी नेशन (१८७०) प्रकाशित की जिसे दर्शन और धर्मशास्त्र के पाठकों में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उसके बाद १८८१ में 'दी रिपब्लिक ऑफ गॉड' आई जिसमें उनके राष्ट्रवाद के धार्मिक पहलुओं को अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त किया गया। मुलफोर्ड की दी नेशन कई दृष्टियों से ब्राउनसन की रचना 'दी अमेरिकन रिपब्लिक' का प्रोटेस्टेंट प्रति रूप थी। मुलफोर्ड ने अपनी पुस्तक में ब्राउनसन की रचना से बहुतेरे उद्धरण भी दिये किन्तु उसके तत्त्व और प्रमाण भिन्न थे। अमरीकी संविधान को पवित्रता का जामा पहनाने के बजाय उसने लोकतन्त्र की राजनीति से ध्यान हटा कर लोकतन्त्र के आदर्शों की धार्मिक अभिव्यक्ति की ओर खींचने का कार्य किया और इस प्रकार सामाजिक सिद्धान्त को अतिरिक्त प्रेरणा प्रदान की। इंगलिस्तान से भिन्न अमरीका में ईसाई समाजवाद का प्रादुर्भाव पहले आदर्शवादी समुदायों में हुआ। मुलफोर्ड ने अमरीका को 'ईश्वर के राज्य' की उस राष्ट्रवादी धारणा से परिचित कराया जिसका इंगलिस्तान में कोलरिज और थॉमस आर्नोल्ड ने बड़े प्रभावकारी ढंग से प्रचार किया था।

भूमिका में लेखक ने लन्दन के रेवरेण्ड श्री मॉरिस हीगेल और स्टाल ट्रेण्डेलेनबुर्ग और ब्लण्टश्ली' के प्रति आभार प्रदर्शित किया है, किन्तु उनके स्रोतों के इस स्पष्ट वक्तव्य के बिना भी रचना की हीगेलवादी प्रकृति स्पष्ट होती। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

"राष्ट्रीय क़ानूनों और संस्थाओं में स्वयं राष्ट्र का आरम्भ अपनी उपलब्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। राष्ट्र इस प्रकार राजनीतिक ज्ञान की एक वस्तु बन जाता है।

'राज्य की इस कल्पना को जिसमें एकता और निरन्तरता निहित है जो राजनीति-शास्त्र की शर्त है राजनीतिक अनुभववादी और राजनीतिक संविदावादी

क्षेत्रों के विरुद्ध रखता है। यह ऐसा तर्क है जो राजनीति में पहले से मान लिया जाता है—अगर राजनीति ज्ञान का एक विषय हो—किन्तु यह तर्क राष्ट्र की आवश्यक अवधारणा में निहित होता और राष्ट्र की उपलब्धि में व्यक्त होता है। यह तर्क के उन अनुर्वर रूपों में नहीं है, जो रूसो की धारणाओं में मिलते हैं। इस अवधारणा में जो कुछ सुधार रूप से बनता है, उसे निश्चय ही क़ायम रखना है, किन्तु राजनीति-शास्त्र को इसके कार्य के नियमों और स्थितियों को समझना है।

'राष्ट्र एक नैतिक संघटन है। '[1]

मुलफ़ोर्ड जनता की संगीत इच्छा को, जो प्रभु है, उसके सदस्यों के व्यक्तित्वों की उपलब्धि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हर व्यक्ति को 'मानवी प्रकृति के अधिकार' हैं, क्योंकि 'मनुष्य ईश्वर की आकृति में बना है। इन आकृतिक अधिकारों की उपलब्धि विधेयात्मक अथवा नागरिक अधिकारों के द्वारा होती है, जिसका अर्थ है कि अधिकार को संस्थाबद्ध बनाना आवश्यक है। राष्ट्र का प्रभु या 'वास्तविक संविधान एक क़ानूनी संविधान का निर्माण करके और संवैधानिक अधिकारों को निरूपित करके अपने को 'औपचारिक रूप प्रदान करता है। क़ानूनी व्यवस्था अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। 'उसका मूल्य उस जीवन पर ही आधारित है, जिसका वह संरक्षण करती है। अब जनता का प्रतिनिधि किसी विशेष-क्षेत्र या हित के प्रति उत्तरदायी नहीं है, बरन् राष्ट्र के हर सदस्य के निजी विकास के लिए 'केवल राष्ट्र और ईश्वर के प्रति' उत्तरदायी है।

अब आन्तरिक रूप में 'राजन-तंत्र की भावना प्रभुत्व चाहने वाले व्यापार या निजी हितों की भावना है। राष्ट्रीय भावना, स्वाधीनता चाहने वाले प्रजाधिपत्यों की भावना की प्रतिपक्षी है। स्वतन्त्रता की माँग है कि वे राष्ट्र के अधीन हों। बाह्य रूप में, राष्ट्रवाद का प्रतिपक्षी साम्राज्यवाद है, क्योंकि साम्राज्य स्वतन्त्रता के बजाय अपना फैलाव चाहने वालों का समूह है।

इस अन्तिम विषय को मुलफ़ोर्ड ने 'दी रिपब्लिक ऑफ़ गॉड' में धार्मिक धर्म-संघटन के एक सिद्धान्त के रूप में विकसित किया। राष्ट्र ईश्वर के हाथों बनते हैं। वे सभी पवित्र चुने हुए लोग हैं, जिनका लक्ष्य एक ही है, अर्थात् मानवता का उद्धार। धार्मिक भाषा और भावना का लोकतान्त्रिक राष्ट्रवाद से यह मिश्रण अमरीकी समाज में भी वैसी ही प्रबल शक्ति प्रमाणित हुआ, जैसे यूरोप में। उसने स्पष्टत सामाजिक सुधार को एक धार्मिक प्रेरणा प्रदान की।

[1] एलिशा मुलफ़ोर्ड, 'दी नेशन, दी फ़ाउण्डेशन्स ऑफ़ सिविल ऑर्डर ऐण्ड पॉलिटिकल लाइफ़ इन दी यूनाइटेड स्टेट्स (बोस्टन, १८८१) पृष्ठ ५-६।

और इस प्रकार धर्म-संगठनों को 'आध्यात्मिकता' पर उनके कथित एकाधिकार से वंचित किया। वस्तुतः इसने सामाजिक लक्ष्य के लिए कार्य करने वालों में धर्म-संगठनों को भी शामिल कर लिया। किन्तु इसका कुछ और भी महत्व था क्योंकि इसने अत्यधिक साम्प्रदायिक प्रतीत होने वाली व्यवस्था को एक सामान्य सामाजिक धर्म प्रदान किया। बहुतेरे साम्प्रदायिक आदर्शवादियों के लिए हीगेल के दर्शन का यह रूप एक आस्था बन गया और इसने उन्हें धार्मिक निष्ठा का ऐसा क्षेत्र प्रदान किया जो धर्म-संगठन नहीं दे सके थे। राजनीति में साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में दार्शनिक-राजनेताओं की एक पीढ़ी आयी।

इस आदर्शवाद ने शिक्षा के एक दर्शन और एक सामाजिक नीतिशास्त्र को भी जन्म दिया, जिसका अमरीकी संस्कृति पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा और उन्होंने लोकतन्त्र को विचार और कार्य की एक व्यापक पद्धति प्रदान की। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सभी नागरिकों की क्षमताओं की 'उपलब्धि' के द्वारा प्राप्त होने वाले एक विवेकात्मक लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने से सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था को अतिरिक्त महत्व मिला और उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्कूल के बाहर के सामाजिक अनुभव से स्थापित हुआ। आदर्शवाद के एक शिक्षक ने कहा—

'हमें हीगेल के सामने 'प्रभु-प्रभु' की पुकार लगाने की कोई जरूरत नहीं किन्तु उनके व्यापक प्रभाव के कारणों को स्वीकार करना पड़ेगा। जिस निरपेक्षवाद को बहुतेरे लोग भ्रम उत्पन्न करने के लिए सुविधाजनक पाते हैं उसका मनुष्य द्वारा अपने को ईश्वर की अनुकृति बनाने के प्रयास से बहुत थोड़ा सम्बन्ध है। बल्कि, उसका सम्बन्ध दार्शनिक और धर्मशास्त्रीय प्रगति की स्थितियों को मिलाने वाले कुछ आमदान से है, जिसके बिना वस्तुओं का कोई सिद्धान्त असम्भव या असम्बद्ध हो जायेगा। अनुभव स्वयं ही अपना निर्णायक है। एक शब्द में यही हीगेल की युग-प्रवर्तक खोज है।"[1]

यह विश्वास कि अनुभव स्वयं अपना निर्णायक है अमरीकी दर्शन और अमरीकी लोकतन्त्र दोनों के लिए एक आधारभूत सिद्धान्त बन गया। इसके दो नेताओं के दो वक्तव्यों से हमें कुछ पता चलेगा कि इसका व्यवस्थित प्राविधिक विकास किस प्रकार हुआ।

'मन सहकारी व्यक्तियों से मिलकर बनी हुई एक सामाजिक इकाई है, कुछ उसी तरह जैसे किसी वाद्य-वृन्द का संगीत भिन्न किन्तु सम्बन्धित ध्वनियों से मिलकर बनता है। कोई इस बात को आवश्यक या तर्कसंगत नहीं मानेगा कि

---

१ आर० एम० वेनली 'कण्टेम्पररी साइकॉलोजी ऐण्ड थीइज्म' (न्यूयार्क, १८८७ पृष्ठ १८०)।

संगीत को दो प्रकारों में विभक्त किया जाये—सम्पूर्ण वाद्य-वृन्द का और अलग अलग वाद्यों का। इसी प्रकार, सामाजिक मन और व्यक्ति-मन दो प्रकार के मन भी नहीं है।

'सामाजिक मन की एकता सहमति में नहीं बल्कि संगठन में होती है, इस तथ्य में कि उसके अंशों के बीच पारस्परिक प्रभाव या कारणता होती है, जिसके द्वारा जो कुछ भी होता है, वह अन्य हर वस्तु से सम्बन्धित होता है और इस प्रकार सम्पूर्ण का एक परिणाम होता है। परिणाम वाद्य-वृन्द के संगीत की भाँति समरस होता है या नहीं यह विवाद का विषय हो सकता है, किन्तु उसकी ध्वनि चाहे मधुर हो अथवा नहीं एक मानसिक सहयोग की अभिव्यक्ति होती है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

सामाजिक चेतना या समाज का एहसास आत्म-चेतना से अभिन्न है, क्योंकि किसी प्रकार के सामाजिक समूह के सन्दर्भ के बिना हम अपने बारे में नहीं सोच सकते और उस समूह के बारे में भी अपने सन्दर्भ में ही सोच सकते हैं। दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं और वास्तव में हमें एक बहुत कुछ उलझी हुई निजी या सामाजिक इकाई की चेतना होती है जिसका कभी विशिष्ट पक्ष प्रमुख होता है, कभी सामान्य।

व्यक्ति और समाज जुड़वाँ होते हैं एक को जानने के साथ ही हम दूसरे को भी जान लेते हैं और एक अलग स्वतन्त्र अहं की धारणा भ्रामक है।...

हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का लक्ष्य नैतिक एकता का अधिक विशाल संगठन बनना है और जहाँ तक व्यक्ति की भावना में यह इस लक्ष्य को प्राप्त करती है, वहाँ तक उस व्यक्ति में अन्य मनुष्यों के प्रति इस खुले और सीधे दृष्टिकोण का पोषण करती है। विचार में और बहुत-कुछ तथ्य में भी हम एक प्रजाधिपत्य हैं जिसमें हर एक आवश्यकता के साथ-साथ अपनी इच्छा और बुद्धि के अनुसार सदस्य है और तदनुसार जिसमें सदस्यों के बीच पारस्परिक निष्ठा की मानवी भावना स्वभावतः व्याप्त है।

'यह तथ्य ही कि हमारे युग ने बहुत हद तक सभी प्रकार के पदों का परित्याग कर दिया है, एक दृष्टि से स्थायी उत्पत्ति के अनुकूल है, क्योंकि इसका अर्थ है कि हम फिर से मानव प्रकृति का सहारा ले रहे हैं उसका, जो स्थायी और सारभूत है, जिसका पर्याप्त अभ्यास मन की किसी उत्पत्ति को प्रमाण बनाने का प्रमुख माध्यम होता है।[1]

---

१ चार्ल्स हार्टन कूले, 'सोशल आर्गेनाइजेशन, ए स्टडी ऑफ़ दी लार्जर माइण्ड' (न्यूयार्क १९१२) पृष्ठ ३, ४ व १५२, १७६।

"लोकतान्त्रिक समाज बाह्य सत्ता के सिद्धान्त का खण्डन करता है, अतः उसके लिए आवश्यक है कि उसके स्थान पर स्वेच्छया प्रवृत्ति और रुचि को रखे। इन्हें केवल शिक्षा द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। किन्तु एक अधिक गम्भीर व्याख्या भी है। लोकतन्त्र केवल एक प्रकार का शासन ही नहीं है। यह मुख्यतः सम्बद्ध जीवन का संयुक्त सम्प्रेषित अनुभव का एक ढंग है। धरती पर ऐसे व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि जो किसी एक रुचि में इस प्रकार सहभागी हों कि हर एक को अपना कार्य दूसरों के कार्यों के सन्दर्भ में करना हो और अपने कार्य को अर्थ और दिशा प्रदान करने के लिए दूसरों के कार्य को ध्यान में रखना हो वर्ग जाति और राष्ट्रीय क्षेत्र की उन बाधाओं को तोड़ने का कार्य है जिन्होंने मनुष्यों को अपने कार्यकलाप के सम्पूर्ण अर्थ को समझने से रोका है। सम्पर्क-स्थलों की संख्या और विविधता में यह वृद्धि उन उद्दीपनों की विविधता में वृद्धि को व्यक्त करती है जिनकी किसी व्यक्ति पर प्रतिक्रिया होती है। फलस्वरूप यह उसके कार्य में विविधता को प्रोत्साहित करती है। जो शक्तियाँ उस समय तक दबी रहती हैं जब तक कार्य की प्रेरणाएँ आंशिक होती हैं, वे इससे मुक्त हो जाती हैं। किसी भी ऐसे समूह में शक्तियाँ दबी रहेंगी जो अपने अलगाव के द्वारा बहुसंख्यक रुचियों को अपने से बाहर रखेगा।

रुचियों में सहभाग के क्षेत्र का विस्तार और अधिक विभिन्नतापूर्ण निजी क्षमताओं की मुक्ति जो लोकतन्त्र की विशेषता है निःसन्देह विचार और चेतन-प्रयास का फल नहीं है। इसके विपरीत ये विशेषताएँ विनिर्माण और व्यापार यात्रा निष्क्रमण और पारस्परिक सम्पर्क की पद्धतियों के विकास से उत्पन्न हुई, जो प्राकृतिक ऊर्जा पर विज्ञान के अधिकार के फलस्वरूप हुआ। किन्तु एक ओर अधिक वैयक्तीकरण और दूसरी तरफ रुचियों में अधिक व्यापक सहभाग ऐसा हो जाने के बाद फिर उन्हें कायम रखना और उनका प्रसार करना सुविचारित प्रयास का विषय है। स्पष्टतः ऐसे समाज को जिसके लिए अलग-अलग वर्गों में बँट कर बन जाना घातक होगा, यह देखना पड़ेगा कि बौद्धिक अवसर सभी को समान और आसान शर्तों पर उपलब्ध हों।[1]

समानता और समन्वय

'भ्रष्ट लोकतान्त्रिक शासन अन्ततः राष्ट्र को भ्रष्ट कर देगा और जब

---

१ जान डुई 'डेमाक्रेसी ऐन्ड एजुकेशन; ऐन इन्ट्रोडक्शन टु दी फिलासोफी ऑफ एजुकेशन' (न्यूयार्क, १६१६), पृष्ठ १०१।२।

कोई राष्ट्र भ्रष्ट हो जाता है, तो फिर उसका उद्धार नहीं होता। प्राण निकल जाते हैं केवल लाश बच रहती है और उसे भी भाग्य अपना हल चला कर धूल हो जाने के लिए छोड़ कर देता।

लोकप्रिय शासन का अधिकतम गन्दे और पतनशील प्रकार की निरंकुशता में यह परिवर्तन जो धन के असमान बँटवारे का अनिवार्य फल होता है, अब कोई सुदूर भविष्य की बात नहीं है। संयुक्त-राज्य में यह शुरू हो चुका है और हमारी आँखों के सामने तेजी से हो रहा है। हमारी विधान-मण्डलीय संस्थाओं का स्तर निरन्तर गिर रहा है। उच्चतम योग्यता और चरित्र के व्यक्ति राजनीति का परित्याग करने को बाध्य हो रहे हैं और दलाल की चालाकी राजनेता की प्रतिष्ठा से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी है। मतदाता अधिक लापरवाह होने लगा है और धन की शक्ति बढ़ रही है। सुधारों की आवश्यकता के प्रति लोगों को जागरूक बनाना अधिक दुष्कर और उन्हें क्रियान्वित करना अधिक कठिन हो गया है। राजनीतिक मतभेद सैद्धान्तिक मतभेद कम होते हैं और अमूर्त विचार अपनी शक्ति खोते जा रहे हैं। हम ऐसे नियन्त्रण में जा रहे हैं जिन्हें सामान्य शासन में गणतन्त्र और तानाशाही कहा जायगा। ये सब राजनीतिक ह्रास के प्रमाण हैं।[1]

विवेकशील लोकतन्त्रवादी अधिकाधिक समझ रहे थे कि न केवल दलीय पद्धति बल्कि आर्थिक व्यवस्था भी ठीक से काम नहीं कर रही है। विशेषतः अस्सी दशक की मन्दी के बाद प्रगति में जिस विश्वास का उपदेश दिया जाता था उसे कायम रखना असम्भव था। जैसा हेनरी डेमारेस्ट लॉयड ने निर्विवाद रूप में सिद्ध कर दिया धन से प्रजाधिपत्य नहीं बन रहा था। नियन्त्रण एक धनिक-तन्त्र के हाथ में आ गया था और अब प्रश्न 'धन बनाम प्रजाधिपत्य' का था। अगर लोकतन्त्र को जीवित रहना था, तो पुन समानता प्राप्त करना आवश्यक था। समस्या अत्यधिक यथार्थ और व्यावहारिक थी। इसी तरह समस्या के हल भी व्यावहारिक अनुभव से निकले थे और उनका उद्देश्य उपयोगी होना था। हेनरी जार्ज की रचना 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' (१८७९), एडवर्ड बेलामी की पुस्तक 'ईक्वालिटी' (१८९७) और इनके बीच में आने वाले अन्य ग्रन्थों के अनेक सिद्धान्त, जो पापुलिस्ट मतानुयायियों के लिए धर्मग्रन्थ के समान थे शिष्ट राजनीति-शास्त्रियों को प्रारम्भिक त्रुटियों और अनालोचित मान्यताओं से भरे प्रतीत होते थे। फिर भी इन्हें अदार्शनिक कह कर नहीं छोड़ा जा सकता

---

१ हेनरी जार्ज 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' (मॉडर्न लाइब्रेरी संस्करण न्यूयार्क १९१९), पृष्ठ ५१२ ५१३ ।

क्योंकि अपने अधिक वैज्ञानिक समकालीनों की अपेक्षा इन्होंने अमरीकी समाज के रोग को अधिक गहराई तक पकड़ा। इनके लेखन स्वयं अपने लोकतान्त्रिक विश्वास के दृष्टिकोण से ये आलोचनाएँ करने में सफल हुए, जिससे उनके तर्क उसी समाज द्वारा पसन्द किये गये जिसकी उन्होंने आलोचना की किन्तु जिसके वे सामान्य उदाहरण भी थे। ऐसे लोकतन्त्रवादी दार्शनिक 'राजनीतिक अर्थशास्त्र का चरित्र बिल्कुल बदल दे सकते हैं, उसमें वास्तविक विज्ञान की सम्बद्धता और नैतिकत्व दे सकते हैं और जनसाधारण की आकांक्षाओं के साथ उसकी पूर्ण सहानुभूति स्थापित कर सकते हैं जिससे यह अब तक दूर रहा है।'[1] इस प्रकार की रचनाएँ, कठिनाई के समय सदैव तत्पर सहायकों का काम देती हैं और अब भी अमरीकी पुस्तकों की महान् सूची में रखी जाती हैं और जब भी कभी कोई बड़ा संकट, या समय-समय पर होने वाली मन्दी के कारण सामयिक अन्तर्दर्शन की प्रवृत्ति जागती है, तो इनकी याद की जाती है।

हेनरी जार्ज की 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' की शक्ति को संभवतः इस तथ्य से समझा जा सकता है कि उसका जन्म प्रत्यक्षतया उनके अपने कष्टों और प्रेरणाओं से हुआ। तेजी के दिनों में कैलिफोर्निया में एक संघर्षरत मुद्रक और संवाददाता के रूप में प्रकृति द्वारा धन के एक अत्यधिक उपयुक्त प्रदर्शन के बीच स्वयं अपनी ग़रीबी उन्हें उलझन में डालती थी। वे फिलाडेल्फिया से आये थे और बेंजामिन फ्रैंकलिन द्वारा बताये दूरदर्शिता मितव्ययिता और पड़ुत्रों के उपाय द्वारा बड़ी ईमानदारी से धनी और नामी बनने का प्रयास कर रहे थे। आम नई जगह बसने वाले लोगों की तरह मेहनत करते हुए वे कल्पनाएँ करने लगे और सपने देखने लगे। उन्होंने अपनी बहन को जो पूर्व में ही थी लिखा—

'स्वर्ण-युग को भविष्य के नवयुग को मुझे कितनी चाह है, जब हर कोई अपनी सर्वोत्तम और श्रेष्ठतम प्रवृत्तियों का अनुसरण करने को स्वतन्त्र होगा उन प्रतिबन्धों और आवश्यकताओं से मुक्त होगा जो हमारे समाज की वर्तमान स्थिति उस पर लादती है तब ग़रीब से ग़रीब और छोटे से छोटे को भी अपनी सारी ईश्वर प्रदत्त मन-शक्तियों का उपयोग करने का अवसर मिलेगा और वह अपने समय के सर्वोत्तम अंश को ऐसी आवश्यकतें पूरी करने के लिए मेहनत करने में लगाने को मजबूर नहीं होगा जो पशु के स्तर से कुछ ही ऊँची हैं।

'इसमें क्या आश्चर्य कि मनुष्यों को स्वर्ग की आवश्यता रहती है और वे उसके लिए लगभग कुछ भी देने को तैयार रहते हैं जबकि स्वर्ग हर जगह व्याप्त है—उनके हृदयों की शुद्धतम और पवित्रतम आकांक्षाओं और उनकी

---

[1] वही पृष्ठ १९।

श्रेष्ठतम शक्तियों के उपयोग में भी। कितने खेद की बात है कि हम सन्तुष्ट नहीं रह सकते। क्या ऐसा है? कौन जानता है? कभी-कभी हमारे अत्यधिक सभ्य जीवन के भयंकर संघर्ष से मुझे पूर्ण अरुचि हो जाती है और मैं सोचता हूँ कि अच्छा हो मैं शहरों और व्यापार की धक्कमधक्का, खींचतान और चिन्ताओं से बिल्कुल दूर चला जाऊँ और किसी पहाड़ी ढाल पर, जो दूर से इतनी धुँधली और नीली दिखाई देती है कोई ऐसा स्थान खोज लूँ जहाँ मैं उन सबको एकत्र कर सकूँ जिनसे मुझे प्रेम है और प्रकृति व हमारे अपने श्रम जो कुछ प्रदान करें, उसी में सन्तुष्ट होकर रहूँ। लेकिन दुर्भाग्य कि उसके लिए भी धन आवश्यक है।[1]

'प्राकृतिक' बाहुल्य के बीच गरीबी के इस विरोधाभास से परेशान और निरुत्साहित उन्हें बड़ा धक्का लगा और अचम्भा हुआ, जब वे (व्यापार के सिलसिले में) न्यूयार्क गये और वहाँ उन्होंने सामाजिक विषमता की पराकाष्ठाएँ देखीं; अमीर और गरीब को साथ-साथ देखा। यह समस्या मूलतः उनकी अपनी समस्या जैसी ही थी उन्होंने इसे हल करने की 'शपथ' ली। शैशव के विश्वास और बाद के अनुभव दोनों से ही उन्हें यह यकीन था कि ईश्वर उदार है और मानव के अभाव या कष्टों का कारण बताने के माल्थसवादी प्रयास 'धर्म-निन्दक' हैं। उन्होंने निरन्तर 'परमपिता के विधान' की बात कही। इसके अतिरिक्त उन्हें ईश्वरीय न्याय में एक 'प्राकृतिक व्यवस्था' या ईश्वरेच्छा के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था में विश्वास था। अन्य प्राकृतिक अधिकारों के साथ मनुष्य के 'सम्पत्ति का प्राकृतिक अधिकार भी है' एक पवित्र अधिकार, जो इस पर आधारित है कि ईश्वर सबका समान रूप से ध्यान रखता है। ऐसे अधिकारों के बन्धन को जार्ज ईश्वरीय व्यवस्था का अटल बन्धन मानते थे।

यह विश्वास, ईश्वर के सर्वाधिकृत राज्य में हीगेलवादी विश्वास से बिल्कुल भिन्न था। राजकीय समाजवाद और साम्यवाद दोनों ही जार्ज के विचार में भावर्शवादी समुदायों से जुड़े हुए थे। 'ऐसे रूप के निकट किसी रूप में समाजवाद का सफल प्रयोग आधुनिक समाज नहीं कर सकता। एकमात्र वह शक्ति था, जो इसके लिए कभी भी सक्षम प्रमाणित हुई है—एक सक्षम और निश्चित धार्मिक विश्वास—अभाव है और वह दिन व दिन कम होती जाती है।[2]

---

१ चार्ल्स ऐल्बर्ट बीयर 'दी फिलॉसफी ऑफ हेनरी जार्ज' (न्यू यॉर्क, एम॰ सी॰, १९३३) पृष्ठ १०-२०। यहाँ जार्ज की बहन के नाम १५ दिसम्बर, १८६१ का एक पत्र उद्धृत किया गया है।

२ हेनरी जार्ज, 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी', पृष्ठ ३२०।

निजी सम्पत्ति में वार्ड के विश्वास के साथ-साथ उनका यह विश्वास भी था कि पूँजी और श्रम में कोई स्वभावतः अन्तर्निहित संघर्ष नहीं है।

पूँजी और श्रम केवल एक ही वस्तु के भिन्न रूप हैं—मानवी प्रयास। पूँजी श्रम द्वारा उत्पन्न होती है। यह वस्तुतः केवल वस्तु पर लगाया गया श्रम है। अतः जिन परिस्थितियों में मुक्त प्रतियोगिता चल सकती है, उनमें वेतनों को एक सामान्य स्तर पर लाने वाला और मुनाफों में बहुत-कुछ समानता लाने वाला सिद्धान्त वेतनों और ब्याज में यह सन्तुलन स्थापित करने और क़ायम रखने का भी काम करता है। ब्याज और वेतन का एक साथ ही बढ़ना या घटना जरूरी है।'[1]

इतना कुछ उन्होंने जे० एस० मिल की 'पोलिटिकल एकॉनमी' से सीखा था और इस 'सिद्धान्त' को वे न्यायपूर्ण प्राकृतिक व्यवस्था का अंग मानते थे। इसी प्रकार वे यह भी मान कर चले कि श्रम-विभाजन लाभदायक होता है। वे इसे 'समायोजन की क्रियाओं और शक्तियों के विशिष्टीकरण की प्रक्रिया' कहते थे जो मनुष्यों को सामाजिक संगठन में एकत्रित करती है।

इन सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने एक 'प्रगति का नियम' निरूपित किया जिससे उनका तात्पर्य उत्पादन-व्यवस्था का एक ऐसा ढंग सुझाना था जिसमें मनुष्यों को अवसर मिले कि वे मानवी ऊर्जाओं का अधिकतम अंश सुधार करने में लगायें और न्यूनतम अंश 'केवल अस्तित्व को क़ायम रखने' में।

"मनुष्य जब परस्पर अधिक निकट आते हैं और परस्पर सहयोग के द्वारा सुधार में लगाई जा सकने वाली मानसिक शक्ति में वृद्धि करते हैं तो वे प्रगति की ओर उन्मुख होते हैं, किन्तु जैसे ही संघर्ष उत्पन्न होता है, या सम्पन्नता की स्थिति की असमानता उत्पन्न होती है, वैसे ही प्रगति करने की यह प्रवृत्ति क्षीण होती है, रुक जाती है और अन्ततः दिशा पलट जाती है।"[2]

यह निरूपण इतिहास का नियम उतना नहीं है, जितना सुख-प्राप्ति का उपाय। यह एक 'नैतिक' नियम है। इतिहास-दर्शन के प्रति वार्ड का दृष्टिकोण शोपेनहॉर[3] के समान तिरस्कार का था। इतिहास प्रगति नहीं है। यह प्रगति और ह्रास के चक्रों का एक क्रम है।

---

१ वही, पृष्ठ ११८-११९।

२. वही, पृष्ठ ५०४।

३ हीगेल और स्पेन्सर, दोनों की अपेक्षा वार्ड का झुकाव शोपेनहॉर की ओर अधिक था, इसकी चर्चा के लिए पीपर की पुस्तक पृष्ठ ११-१११ देखिए।

"अगर प्रगति का क्रम इस प्रकार चलता कि उससे मनुष्य की प्रकृति में सुधार होता और इस प्रकार आगे प्रगति होती, तो चाहे कभी-कभी अवरोध आ जाते किन्तु सामान्य नियम यह होता कि प्रगति निरन्तर होती जाती। एक क़दम के बाद अगला क़दम उठता और सभ्यता का विकास उन्नततर सभ्यता में होता। न केवल सामान्य नियम बल्कि सार्वभौमिक नियम' इसके विपरीत है। धरती न केवल मृत मनुष्यों बल्कि मृत साम्राज्यों की भी क़ब्र है। बजाय इसके कि प्रगति मनुष्यों को और अधिक प्रगति के योग्य बनाये, हर सभ्यता जो अपने समय में उतनी उन्नत और प्रगतिशील थी जितनी हमारी इस समय है, अपने आप ही रुक गयी।"[1]

अतः प्रगति की समस्या ऐतिहासिक समस्या न होकर, नैतिक और आर्थिक समस्या थी। किन स्थितियों में 'प्रगति के नियम' का उल्लंघन होता है?

जार्ज का उत्तर बड़ा सीधा-सादा था। साहचर्य से भीड़ उत्पन्न होती है। भीड़ होने से किराये बढ़ते हैं। किरायों की असमानता उनके लिए 'अनर्जित लाभ' उत्पन्न करती है, जिनके पास मूल्यवान् भूमि का एकाधिकार है। अगर भूस्वामी का किराया उससे ले लिया जाये तो समानता पुनः स्थापित हो जायेगी और प्रगति फिर हो सकेगी।

हेनरी जार्ज के दुर्भाग्य से वे हजारों अमरीकी किसान जिन्हें विश्वास हो गया था कि उन्होंने गरीबी का कारण खोज लिया है, उनके निदान से उत्साहित नहीं हुए और उनके निदान का स्वागत करने वाले हजारों शहरी मजदूर उन्हें समाजवाद की सम्भावनाओं का विश्वास नहीं दिला सके। फिर भी, दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने अपना मूल लक्ष्य प्राप्त कर लिया। उन्होंने अपने देशवासियों में यह चेतना उत्पन्न की कि राष्ट्र के धन का, विशेषतः भू-सम्पत्ति का अप्रगतिशील' प्रयोग किया जा रहा था और यह कि अगर केवल मनुष्य 'समानता में साहचर्य' को अपना लें, तो 'ईश्वर के विधान' में प्राकृतिक प्रसाधन उन्हें उपलब्ध हो जायें।

प्राकृतिक प्रसाधनों के सार्वजनिक नियन्त्रण के द्वारा अमरीकियों में गरीबी के विनाश की आशा जगाने में जो काम हेनरी जार्ज ने किया, वही काम एडवर्ड बेलामी ने उनमें यह भावना उत्पन्न करने में किया कि औद्योगिक प्रसाधनों और आविष्कारों का अधिक समानतापूर्ण और व्यवस्थित उपयोग करके कितनी प्रगति की जा सकती है। उनके उपन्यास 'लुकिंग बैकवर्ड' (१८८८) ने एक समाजवादी राष्ट्रवादी आन्दोलन को जन्म दिया, जिसने देश के सभी भागों में

१ हेनरी जार्ज 'प्रोग्रेस ऐण्ड पावर्टी' पृष्ठ ४८८।

मध्यमवर्गों के बड़े हिस्से की कल्पना और-शक्तियों पर महत्व प्रभाव डाला। अधिकांश बड़े शहरों में 'बेलामी क्लबों' की स्थापना हुई, जिसमें से कुछ अब भी हैं। इन क्लबों के कार्यकर्ताओं के द्वारा सार्वजनिक स्वामित्व की मांग को बढ़ावा मिला और शताब्दी के अन्तिम दशक में पॉपुलिस्ट आन्दोलन के प्रसार को अतिरिक्त गति मिली।

बेलामी के राष्ट्रवाद का दार्शनिक अभिविन्यास असाधारण है। युवावस्था में उन्होंने एक पुस्तिका 'दी रेलिजन ऑफ़ सॉलिडेरिटी' लिखी जिसमें उन्होंने उन दिनों प्रचलित और लोकप्रिय इस धारणा को एक दार्शनिक व्यवस्था के रूप में विकसित किया कि मनुष्य में अपकेन्द्रिक और अभिकेन्द्रिक शक्तियाँ होती हैं। प्रकृति और समाज दोनों मूलतः अभिकेन्द्रिक और अपकेन्द्रिक शक्तियों का सन्तुलन है और यह सन्तुलन ही समैक्य का सार है। भौतिक और सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य एक धार्मिक इकाई का अंश है। यद्यपि यह विचार लोकतान्त्रिक राष्ट्रवाद का सामान्य अंग था किन्तु अपने साथी लोकतन्त्रवादियों में से अधिकांश की अपेक्षा बेलामी इसे अधिक गम्भीरता से लेते थे। तब उनके मन में एक असाधारण प्रेरणा आयी—श्रम का समाजीकरण कर दिया जाये और इस प्रकार जनता समैक्य को सम्पूर्ण कर दिया जाये। श्रम एक राष्ट्रीय 'कर्तव्य' हो—

'राष्ट्रवादी बिना विभिन्न नागरिकों की सापेक्ष विशिष्ट सेवाओं का कोई ख्याल किये सभी लोगों के निर्वाह की समान व्यवस्था को नागरिकता का एक अंग और एक अनिवार्य शर्त (बनाएँगे)। दूसरी ओर ऐसी सेवाएँ प्रदान करना *पुरस्कारों के विकल्प के साथ नागरिक इच्छा पर छोड़ने के बजाय एक सामान्य नियम* के अन्तर्गत एक नागरिक कर्तव्य के रूप में आवश्यक होगा ठीक उसी तरह जैसे अन्य प्रकार के कराधान या सैनिक सेवा जो ऐसे सामान्य-कल्याण के हित में नागरिकों पर लागू की जाती है, जिसमें हर एक का समान भाग होता है।'[1]

राष्ट्रीय सेना के रूप में श्रम के संगठन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बेलामी और उनके राष्ट्रवादी 'सबसे मुख्यतः' उपयोगी सेवाओं के राष्ट्रीयकरण पर निर्भर करते थे। सारी बुराई की जड़ के रूप में प्रतियोगिता को पूरी तरह समाप्त कर देना था। इस 'बिरादरी' में सारी मनुष्य-जाति शामिल होती। यह महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीयकरण के कार्य-क्रम में समैक्य की राष्ट्रवादी धारणा निहित नहीं थी। आन्दोलन का नैतिक आधार मानवतावादी और बहुदेशीय था। सभी मनुष्य

१ *आर्थर बर्नार्ड द्वारा सम्पादित 'दी कैनेडियन एसेज इन सोशलिज्म'* में 'इन्ट्रोडक्शन टु दी अमेरिकन एडिशन' (न्यूयार्क १८८९) पृष्ठ १७।

समान है क्योंकि हर मनुष्य में 'व्यक्ति का मूल्य और गरिमा' है। यह गरिमा जो मानवी-प्रकृति का गुण है सभी मनुष्यों में मूलतः एक ही होती है और इस कारण समानता लोकतन्त्र का मर्म-सिद्धान्त है।[1] 'इक्वालिटी' में बेलामी ने 'मानवता की बिरादरी' की इस धारणा का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया और एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था निरूपित करनी चाही जिसमें 'सभी भौतिक स्थितियाँ 'व्यक्ति की इस अन्तर्निहित और समान गरिमा के अधीन हों। इस प्रकार वैयक्तिक स्वतन्त्रता के वाल्को आदर्श का परित्याग करते हुए बेलामी ने व्यक्ति के नैतिक गुणों में परम्परागत अमरीकी आस्था को पुनः प्रतिष्ठित किया और खासतौर पर अपने समूहवादी कार्यक्रम को अपने वातावरण की मध्यम-वर्गीय, प्रोटेस्टेण्ट धर्मपरायणता के अनुकूल बनाया।

बेलामी और उनके समकालीन मध्यम-वर्गीय मजदूर-नेताओं का समैक्य का सिद्धान्त वर्ग-सहयोग को मान कर चलता था। यह विश्वास मजदूर समस्याओं में उनके अनुभव का ही परिणाम नहीं था वरन् यह सामान्य जन में आस्था का सारतत्त्व बना रहा है। यह लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों का न्यूनतम सामान्य तत्त्व है, किन्तु इसके अलावा यह एक टिकाऊ किस्म की भावुकता और उत्साह पर आधारित है जिसकी उपेक्षा अमरीकी विचार के किसी भी विवरण में नहीं की जा सकती। सुबुद्धि की अपेक्षा यह सौभाग्य था जिसने अमरीका को मार्क्सवाद के कदम रखने के पहले एक राष्ट्रीय समाजवाद प्रदान किया। फलस्वरूप समैक्य हमारे कट्टरपन्थी समर्थक सब मिलाकर उदार हृदय महत्त्वाकांक्षाहीन और बिखरे हुए गरीब लोकोपकारियों का एक समूह थे। उनमें न वर्ग-चेतना थी न अन्तर्राष्ट्रीय भ्रातृत्व (बेलामी के मामले में एक औद्योगिक सैन्य-दल) के किसी संगठन का विश्वास होता तो उनमें आसानी से क्रान्तिकारी शक्ति आ सकती थी।[2] अमरीकी राष्ट्रीय समाजवाद मार्क्स के पहले का था किन्तु क्रान्ति के बाद का। यह संघर्ष की पिछली पीढ़ियों के अनुभव पर एक टीका थी। बेलामी अमन पाउडरली और कार्मेली के काम की अपेक्षा अब आगे संघर्ष से बचने का

१ एडवर्ड बेलामी 'इक्वालिटी' (न्यूयार्क, १८९४), पृष्ठ २६।

२ हम अब भी सन् २००० की ओर आगे देख सकते हैं, जहाँ से बेलामी पीछे देख रहे थे। और आधी दूरी के इस पड़ाव पर यह बिल्कुल ही निश्चित नहीं है कि अमरीका का राष्ट्रीय समाजवाद मर कर समाप्त हो चुका। किन्तु इसकी सम्भावना अवश्य है कि सन् २००० के राष्ट्रीय समाजवादी इतना काफी पीछे नहीं देखेंगे कि अपने साथ बेलामी के सम्बन्ध को देख सकें।

एक चेतन प्रयास था, जेम्स मैडिसन कैलहाउन और वेब्स्टर की राजनीति और उनके सिद्धान्तों में, जब औद्योगिक क्रान्ति अपने शिखर पर नहीं पहुँची थी वर्ग संघर्ष की स्वीकृति अधिक थी। सहयोग के उपदेश के पीछे संघर्ष की कटु स्मृतियाँ थीं। यह औद्योगिक भोलेपन किन्तु राजनीतिक प्रौढ़ता का दर्शन था। अमरीकी मध्यम-वर्गीय समाजवाद की इन परिस्थितियों के कारण आवश्यक है कि हम उसकी व्याख्या एक स्थानीय आन्दोलन के रूप में करें यूरोपीय आन्दोलनों के प्रसार-मात्र के रूप में नहीं। इसी कारण यह भी आवश्यक है कि हम उसके आदर्शात्मक और धार्मिक गुणों का मूल्यांकन इस प्रकार करें जो यूरोपीय लोगों को अभद्र प्रतीत हो सकता है। अमरीका में इस प्रकार का धर्म न लोगों के लिए अफीम था न वैज्ञानिकता-पूर्ण की पुराकथा। इसका रूप ऐसी ध्यानपूर्वक निर्मित पुराकथा का था जिसका उद्देश्य पूंजीवादियों को सुरक्षा की मिथ्या भावना से बचाना था।

चौथा अध्याय

•

रूढ़िवादिता

उपदेशात्मक दर्शन

'अच्छे और स्वस्थ ज्ञान का यह एक गुण है कि वह सड़ जाता है और गूढ़ात्मक सूक्ष्म व्यर्थ अस्वस्थ और (जैसा मैं कह सकता हूँ) कीड़ों भरे प्रश्नों में विघटित हो जाता है।' १

कीड़ों भरे ज्ञान को देखने पर पहचान लेना कठिन नहीं है, किन्तु दर्शन क्यों सड़ता है और सड़ी हुई अवस्था में उसका अस्तित्व क्यों बना रहता है इसकी आलोचनात्मक व्याख्या करना कठिन और अरुचिकर कार्य है क्योंकि किसी विचार के जीवन को परिमापित करना आसान नहीं है और कब्रों में जीवन के चिह्न खोजना सुखद कार्य नहीं है। बेकन का अनुसरण करते हुए हम जीवित और मृत दर्शन में अन्तर इस आधार पर करेंगे कि दर्शन का प्रयास और अभ्यास सभी कलाओं और विज्ञानों में ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए किया जा रहा है, या कि उसे एक विशिष्ट प्रकार के ज्ञान के रूप में पढ़ाया और परिष्कृत किया जा रहा है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पुनर्जागरण और मध्ययुग दोनों की ही परम्पराओं में 'दर्शन' नाम का कोई अलग विषय नहीं था। धर्मशास्त्र, विज्ञान शासन लोकोपकार सभी दार्शनिक थे। प्राकृतिक और नैतिक दर्शन में एक भेद प्रचलित था, कुछ वैसे ही जैसे आजकल हम प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में भेद करते हैं। लेकिन खोज के विशिष्ट क्षेत्र या सिद्धान्त-समूह के रूप में दर्शन का कोई अस्तित्व नहीं था। सत्य की खोज कहीं भी हो चाहे व्यापक हो या विशिष्ट उसे दार्शनिक उद्यम के रूप में स्वीकार किया जाता था। इस प्रकार दर्शन बिना पढ़ाये ही पनपता रहा। कोई सिद्धान्त या आस्था का विशिष्ट विषय

१ फ्रांसिस बेकन 'एडवांसमेंट ऑफ़ लर्निंग' खण्ड १ भाग—५।

हुए बिना ही दर्शन कक्षाओं और विद्वानों की आत्मा था। अब हमें यह देखना होगा कि किस प्रकार अमरीकी छात्रों की सामान्य संस्कृति से दर्शन के जीवित सम्बन्ध टूट गये और यह शैक्षिक पाठ्यक्रमों में एक प्राविधिक विषय बन गया। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि धर्म और नैतिकता ने धीरे-धीरे अपने दार्शनिक बन्धन किस प्रकार छोड़े और दार्शनिकों की शब्दावली में अप्रयुक्त बन गये।

धार्मिक और शैक्षिक रूढ़ियों और अनुदारता के बीच अन्तर करना होगा। अनुदारता का दार्शनिक होना आवश्यक नहीं है और रूढ़िवाद का अनुदार होना आवश्यक नहीं है। एक दार्शनिक भाव के रूप में रूढ़िवाद का नैतिक अनुदारता से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। इससे केवल इतना संकेत मिलता है कि दर्शन की रुचि परिकल्पनात्मक खोज से हट कर व्यवस्थित शिक्षण पर आ गयी है। अठारहवीं सदी में प्रचलित अर्थ के अनुसार दार्शनिक लोग खोज करने वाले थे (चाहे प्राकृतिक हो या नैतिक)। किन्तु उन्नीसवीं सदी में शिक्षकों के एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो दर्शन के प्राध्यापक कहलाते थे। वे मुख्यतः शिक्षक थे और उनकी आकांक्षा थी कि वे रूढ़िवादी हों सत्य को सिखाएँ, अर्थात्, सर्वश्रेष्ठ लेखकों का सहारा लेकर व्यवस्थित रचनाओं का उपयोग करके और परिशुद्ध सम्प्रतिपत्तियों का निर्माण करके सही सिद्धान्त अपने छात्रों को सिखाएँ। इसी प्रकार धर्मशास्त्रियों की अधिकांश परिकल्पनात्मक या दार्शनिक रुचि खत्म हो गयी और वे अनुयायियों को प्रसन्न करने और प्रतियोगी धर्मशास्त्रियों को विमुख करने की दृष्टि से अपनी व्यवस्थाओं का परिष्कार करने में ही सन्तुष्ट रहे। संक्षेप में अमरीकी दर्शन का हमारा इतिहास अब हमें कालेजों और विद्यालयों की कक्षाओं में ले जाता है। नैतिक विज्ञान सम्बन्धी अपनी प्रसिद्ध रचना के बारे में फ्रांसिस वेलैण्ड ने जो कुछ कहा वही रूढ़िवाद का सामान्य आदर्श था— 'शिक्षण के उद्देश्य से रचित होने के कारण इसका लक्ष्य है कि सरल स्पष्ट और पूर्णतः उपदेशात्मक हो।'[1]

उदारवादियों में रूढ़िवाद

हमने न्यू-इंग्लैंड के धार्मिक उदारवाद की थियोडोर पार्कर और विलियम एलेरी चैनिंग में उसका प्रस्फुटन देखा। अब हमें देखना है कि यह उदारवाद को

१ फ्रांसिस वेलैण्ड, 'दी एलीमेण्ट्स ऑफ़ मॉरल सायन्स (बोस्टन १८४१), पृष्ठ ४।

मुख्यत: प्लेटोनी आदर्शवाद और नवतत्त्ववादी दर्शन से प्रेरित था, किस प्रकार धीरे-धीरे एक एकत्ववादी रूढ़ि बन गया जिसके दार्शनिक मित्र उससे अधिकाधिक अलग होते गये और वह अमरीकी नैतिक प्रश्नों के लिए अधिकाधिक अप्रासंगिक बन गया।

चैनिंग के उदारवाद ने मानव प्रकृति की गरिमा से अपनी प्रेरणा ग्रहण की थी और सृष्टि के निर्धारित उद्देश्य के तर्क के घिसे-पिटे विषयों का तथा आमतौर पर प्राकृतिक धर्म का परित्याग किया था। न्यू-इंगलैण्ड का एकत्ववाद आरम्भ में सर्वप्रथम मानवीय और मानवतावादी था और उसका ध्यान मुख्यत आत्म-संस्कार और सामाजिक प्रगति पर केन्द्रित था। इसके विपरीत एकत्ववादी रूढ़िवाद ने तार्किक धर्मशास्त्र पर जोर दिया, दिव्य-ज्ञान और अन्य छोटे-मोटे चमत्कारों का विरोध किया उच्चतर आलोचना के प्रति अधिक उत्साह नहीं दिखाया और उदारता की कीमत पर तर्क-बुद्धि का अधिकाधिक आत्म-तुष्टि भरा उपयोग किया। यह इतना संकीर्ण हो गया कि उन उदारवादियों की दार्शनिक रुचियों और व्यावहारिक निष्ठा को कायम नहीं रख सका जिनके लिए स्वतन्त्रता का प्रेम राजनीतिक विरासत भी था और परात्परवादी मनोवेग भी। प्रमुख परात्परवादियों को तो [illegible] पर एकत्ववाद ने अपनी अधिकांश बौद्धिक स्फूर्ति और नैतिक उदारवाद भी दे दिया। कई पीढ़ियों तक इसका अस्तित्व विकासशील दिमागों के लिए एक उर्वर भूमि के रूप में बना रहा किन्तु वे दिमाग आमतौर पर अपनी ज्योति आकाश में खोजते थे और अपनी जड़ों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।

मुक्त-विचारकों का भी ऐसा ही पतन हुआ। जहाँ पहले उनकी गिनती अमरीकी विद्रोह और जैफरसनवादी क्रान्ति के प्रमुख वक्ताओं में होती थी, वहाँ वे केवल झगड़ालू तर्कवादियों का एक छोटा-सा गुट रह गये। जब फ्रान्स की क्रान्ति के प्रति उत्साह घट गया और जैकोबिनवाद महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं रहा तो मुक्त-विचारकों ने पेन का अनुसरण करते हुए अपना ध्यान मुख्यत: पादरियों की कट्टरता और विशेषाधिकारों का विरोध करने पर केन्द्रित किया। कई दशकों तक (१८१० के बाद तक) प्रेसबिटेरियन लोगों द्वारा राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के प्रयासों और उत्साही रूढ़िवादियों (जैसे जेडिडिया मोर्स) द्वारा सामान्यत: धर्मद्रोहियों पर किए गये हमलों को लेकर एक भीषण संघर्ष चलता रहा। इन वर्षों में मुक्तविचार को कोई नयी दार्शनिक प्रेरणा नहीं मिली। ऐबनर नीलैण्ड भूतपूर्व सर्ववादी थे और सैमुएल अण्डरहिल भूतपूर्व क्वेकर थे। दोनों ही इसाई प्रमाणों के प्रति अधिकाधिक शंकालु बने और चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन ने अण्डरहिल को भौतिकवाद की ओर झुकाया। अमरीका में अपनी भाषण यात्राओं

इस समय फ्रांसिस राइट ने बेन्थम के विचारों का प्रचार करने की चेष्टा की। प्रो० ए० ब्राउनसन ने फ्रांस और इंगलिस्तान के सर्ववाद के एक मिश्रण का प्रचार किया। इन योग्य नेताओं के बावजूद कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ कोई ऐसी चीज नहीं हुई जिसकी तुलना इंगलिस्तान में उदारवाद के उदय से की जा सके। १८४८ के बाद आकर जर्मन मुक्त-विचारक नये विचार-स्रोत और उद्देश्य लेकर बड़ी संख्या में आये। दूसरी ओर अमरीका में मजदूर आन्दोलन ने कभी भी अनीश्वरवाद से अधिक सहायता नहीं ली। प्रबुद्धताकाल के तर्कनावाद की मशाल को अब भी लेकर चलने वाले उदारतावादियों के छोटे-छोटे समूहों को हक्सले और स्पेन्सर की रचनाएँ सामने आने के बाद ही कुछ प्रेरणा मिली।

इस उत्तर-कालीन तर्कनावाद का एक विशिष्ट उदाहरण केन्टुकी के जोसेफ बुकानन (१७८५-१८२९) का दर्शन था। वे बेंजामिन रश के शिष्य थे और उत्साही जेफरसनवादी थे। एक पत्रकार और शिक्षक के रूप में वे नवागत लोकतन्त्र और प्रचारवादी धर्म की बढ़ती हुई शक्तियों के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष किया यद्यपि उसमें उनकी हार निश्चित थी। उनकी पुस्तक 'फ़िलॉसफ़ी ऑफ ह्यूमन नेचर' (मानव-स्वभाव का दर्शन १८१२) तर्कनावादी (मगर भौतिकवादी नहीं तो) मनोविज्ञान के पक्ष में एक सुगठित तर्क है, जो मुख्यतः स्कॉटलैण्ड में उस समय प्रचलित चिकित्सा मनोविज्ञान पर आधारित है और उसमें ह्यूम हार्टले थॉमस ब्राउन और एरास्मस डार्विन के विचारों का समावेश है। वे मन को मनुष्य के भौतिक गठन का और फलस्वरूप मनुष्य की (रश के शब्द में) 'उत्तेजनात्मकता' का अभिन्न अंग मानते हैं। बुकानन के विचार से शिक्षा और आदत पड़ने से मनुष्य की स्वाभाविक 'उत्तेजना की एकता' कृत्रिम रीति से प्रसारित होती है और 'भावनाएँ' कामों से सम्बद्ध हो जाती हैं। शिक्षा के द्वारा भावनाओं के नियन्त्रण में अपनी रुचि के फलस्वरूप उन्होंने बाद में अपने को शिक्षा-सुधार में लगाया। उन्होंने पेस्टालोजी की विधियों को आगे विकसित किया, और उन्हें आशा थी कि उनकी व्यवस्था लगभग मनचाही रीति से प्रतिभा उत्पन्न कर सकेगी।

"मानव-स्वभाव में भावना कार्य का एकमात्र स्रोत है—एकमात्र शक्ति जो सम्पूर्ण मनुष्य को गतिशील बनाती है और बड़े अंश तक उसकी योग्यताओं का स्तर निर्धारित करती है। स्वयं प्रतिभा के लिए बौद्धिक भावना की शक्ति और स्थायित्व से अधिक आवश्यक और कुछ नहीं। स्वयं समझ का विकास करने में शिक्षक की सफलता इस पर निर्भर है कि वह अपने शिष्यों की भावनाओं पर कितना निर्माणात्मक प्रभाव और तार्किक नियन्त्रण स्थापित कर पाता है।

स्वभाव में उत्साहपूर्ण लगन की प्रतिष्ठा करके वह क्षमता, योग्यता और प्रतिभा उत्पन्न कर सकता है।[1]

इसी प्रकार, बुकानन ने अपने अन्तिम वर्षों में 'लोकप्रियता की कला' (दी आर्ट ऑफ़ पॉपुलरिटी १८१०) का निरूपण किया, जिसके द्वारा उन्हें आशा थी कि वे राजनीतिक नेता उत्पन्न कर सकेंगे।

बुकानन का सक्रिय जीवन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों के धार्मिक और वैज्ञानिक व्यवहार के साम्य का एक प्रतिनिधि उदाहरण है—उसका प्रारम्भ सार्वजनिक जीवन और चिकित्सा सम्बन्धी खोज में हुआ और अन्त एक शिक्षण-व्यवस्था में, जो व्यवहार में असफल हुई, किन्तु जो संयोगवश मनोविज्ञान के एक वास्तविक विज्ञान के निरूपण में सहायक हुई।

मानसिक दर्शन का उदय

लगभग सन् १८२० तक दर्शन को प्राकृतिक और नैतिक, दो भागों में विभाजित करने का चलन था। तर्कशास्त्र, तत्त्वमीमांसा और प्राकृतिक धर्मशास्त्र जैसे अलंकार-शास्त्र और आलोचना, आमतौर पर स्वतन्त्र विषयों के रूप में पढ़ाये जाते थे और इन्हें शायद ही कभी दर्शन के अन्तर्गत रखा जाता था। प्राकृतिक दर्शन के पाठ्यक्रमों में छात्र प्राकृतिक विज्ञानों (जैसे वे उस समय थे) का अध्ययन करते थे।

किन्तु १८२० के लगभग दर्शन के विभाजन के अतिरिक्त इस विचार में ही एक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति हुई कि दर्शन क्या है। स्कॉटलैण्ड का दर्शन इस देश में आया और उसने तेजी से पुराने अठारहवीं सदी के ग्रन्थों को स्थानच्युत कर दिया। टॉमस रीड की 'इन्टलैक्चुअल ऐण्ड ऐक्टिव पावर्स' (जैसा उनकी दो रचनाओं को आमतौर पर संक्षेप में कहा जाता था) और डुगाल्ड स्टेवार्ट की रचनाएँ 'एलीमेन्ट्स ऑफ़ दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ दी ह्यूमन माइन्ड' (जिसे बहुधा इन्टलैक्चुअल फ़िलासफ़ी कहा जाता है) और 'दी ऐक्टिव ऐण्ड मॉरल पावर्स' ने दर्शन को मानसिक और नैतिक में विभाजित करने की नयी पद्धति प्रारम्भ की।

लॉक, बर्कले और ह्यूम के अध्ययन को अब [illegible] पाठ्यक्रम

---

१ 'पिन्डूमी गैज़ेट', ९ फरवरी, १८२१।

: किया गया, जिसे मानसिक या बौद्धिक दर्शन या मानव मन का विज्ञान कहा
ा। इसके साथ नैतिक दर्शन या नैतिकता के विज्ञान का पाठ्य-क्रम था।
कृतिक विज्ञान कई भौतिक विज्ञानों में बँट गया। प्राकृतिक धर्मशास्त्र (पर्वतीय
े की रचनाएँ) को प्रायः बिल्कुल छोड़ दिया गया और उसका स्थान
ाई प्रमाणों' ने ले लिया। राजनीतिक और आर्थिक विज्ञान या तो नैतिक
न के पाठ्यक्रम से बिल्कुल अलग हो गये—मन की नैतिक और सक्रिय'
क्यों नैतिक दर्शन का क्षेत्र बनी—या फिर व्यावहारिक नीतिशास्त्र या कर्तव्यों
सिद्धान्त के रूप में उन्हें मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र के साथ जोड़ दिया गया।
ों का ध्यान केन्द्रित था मनो मन-शक्ति मनोविज्ञान या मानव मन की शक्तियों
सिद्धान्त पर। अतः ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी कि शैक्षिक उद्देश्य के
र दर्शन का रूप मानसिक दर्शन का हो गया और बौद्धिक तथा नैतिक उसके
-विभाग हो गये।

यद्यपि स्कॉटलैण्ड के ग्रन्थों ने अमरीकी शैक्षिक रूढ़िवादिता को प्रेरणा और
ने प्रदान किये किन्तु अमरीकी ग्रन्थों की भी बाढ़ आ गयी, जो सभी एक ही
ति से लिखे गये थे। यह विचित्र बात है कि यह शैक्षिक पद्धति हमें काफी
े सैमुएल जॉन्सन की पुस्तक एलेमेण्टा फिलॉसॉफिका' (दर्शन के तत्त्व
५२) में मिलती है, जिसके बौद्धिक (नाएटिका) और नैतिक (एथिका) दो
ाग थे। किन्तु न तो उनका ग्रन्थ सफल हुआ न बर्कले के विचारों का प्रचार
े का उनका प्रयास।

१८१७ और १८२७ के बीच मानसिक दर्शन पर लगभग प्रतिवर्ष एक
ीकी ग्रन्थ निकलता रहा। इस उत्पादन की परिणति नोह पोर्टर की पुस्तक
न इण्टलैक्ट' (१८६८) और जेम्स मैक्कोश की 'साइकॉलॉजी' (१८८६) में
। इस क्षेत्र के प्रमुख लेखकों में (थामस मौहन प्रेडरिक रौच, फ्रान्सिस वेलैंड,
स पी० रिकॉक मार्क हॉपकिन्स हेनरी एन० डे नोह पोर्टर जेम्स मैक्कोश)
ेथे लगभग अकेले थे जिन्होंने स्कॉटलैण्ड की धारा का लगभग पूरी तरह
रण किया। हार्वर्ड में अनेक वर्षों तक स्कॉटलैण्ड के दर्शन के समर्थक रहे,
े अधिकाधिक परात्परवादी नवीनताओं की आलोचना करने, ऐतिहासिक
रन करने और 'ईसाई प्रमाणों' के अधिक सामान्य कार्य में अपना योग देने
ग गये। इंगलिस्तान के अनुभववाद के अतिरिक्त जर्मन और फ्रांसीसी
ों ने भी रूढ़िवाद में और मानसिक शक्तियों के सिद्धान्त में बड़ी दूर तक
स्थान बना लिया और विलियम हैमिल्टन के लेखन ने जिसे बहुत अधिक
न मिला रीड और स्टैवार्ट के पूर्ववर्ती विचारों की आलोचना को प्रोत्साहित
। अतः जेम्स के पूर्व शैक्षिक दर्शन की सारी अवधि का स्कॉटलैण्ड की धारा

और स्वीकार की प्रबलता के अन्तर्गत भाग लेना नहीं भूल होगी। यह सच है कि कुछ अपवादों के अतिरिक्त दर्शन के प्राध्यापक और कालेजों के अध्यक्ष पादरी ही थे। किन्तु पादरियों में तेजी से दर्शन का स्वतन्त्र रूप में अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ी, अमरीकी विचारों का स्वागत होने लगा और पुरुष, परम्पराओं से भिन्न रचनाएँ लिखी गयीं जिन्हें मौलिक ग्रन्थ कहना कठिन है। धार्मिक अन्तःप्रज्ञावादियों से धार्मिक भाववाद के इस विकास की चर्चा आगे की गयी है। मनोविज्ञान और नैतिक दर्शन में लारेन्स पी० हिकॉक जॉन बैस्कम हेनरी एम डे, नूनियस एच० सीली जे० एम० बाल्डविन और जॉन ड्यूई के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में एक ओर तो हमें नैतिक व्यवस्था के इस लम्बे प्रयास का अन्त मिलता है। दूसरी ओर इनके द्वारा वह आलोचनात्मक आन्दोलन आरम्भ हुआ जो नवें और दसवें दशक में सैकड़ों कालेजों और विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठित हो गया।

नैतिक मन शक्तियों का उपयोग

उन्नीसवीं सदी में धार्मिक नैतिक-दर्शन के मन-शक्ति-मनोविज्ञान से प्रभावित होने का भी ऐसा ही विवरण दिया जा सकता है। इस क्षेत्र में प्रथम प्रभावशाली अमरीकी ग्रन्थ ब्राउन विश्वविद्यालय के अध्यक्ष फ्रांसिस वेलैण्ड द्वारा लिखे गये। यद्यपि वेलैण्ड एक बपतिस्मावादी उपदेशक थे किन्तु उन्हें चिकित्साशास्त्र की भी कुछ शिक्षा मिली थी उन्होंने एण्डोवर सेमिनरी (विद्यालय) में मोजेज स्टुअर्ट से शिक्षा ग्रहण की थी यूनियन कालिज के छात्र रहे थे और खासतौर पर उन्होंने अपने को और अपने ग्रन्थों को सम्प्रदायगत धर्मशास्त्रियों की सीमाओं से मुक्त कर लिया था। पाले और बटलर की रचनाएँ पढ़ाते हुए उनका असन्तोष बढ़ता गया और अन्त में उन्होंने इन लेखकों द्वारा मान्य प्राकृतिक धर्मशास्त्र के सारे प्रयास का ही परित्याग कर दिया। उन्होंने बटलर के अन्तरात्मा के सिद्धान्त को स्वीकार किया और उसे अधिक वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की चेष्टा की।

वेलैण्ड के बाद अमरीका में नैतिक दर्शन के सबसे प्रभावशाली शिक्षक शायद विलियम्स कालिज के मार्क हॉपकिन्स थे। उनके लेखन की अपेक्षा उनका मौखिक शिक्षण अधिक महत्त्वपूर्ण था। फिर भी, 'लेक्चर्स ऑन मॉरल साइन्स' (नैतिक विज्ञान पर भाषण) शीर्षक के अन्तर्गत लोवेल इन्स्टीट्यूट में दिये गये भाषण जो १८६० में ही तैयार किये गये थे किन्तु प्रकाशित १८६२ में हुए, एक उपयोगी और विशिष्ट ग्रन्थ बने। नीतिशास्त्र में हॉपकिन्स का दृष्टिकोण

जेम्स के दृष्टिकोण का एक रोचक वैपरीत्य प्रस्तुत करता है। दोनों व्यक्ति पर्स के विचारों के विरोधी बन गये और हॉपकिन्स ने अनुभव किया कि पर्स के स्थान पर उन शक्तियों का विश्लेषण करना आवश्यक है, जिनके लिए मनुष्य का 'संघटन' बना है। इस प्रकार मनुष्य के 'संघटन' की ओर मुड़कर (यह शब्द और विचार उन्होंने शायद कोम्ब के कपाल-विज्ञान से लिया था) हॉपकिन्स उचित रूप में मात्र 'मानसिक दर्शन' का परित्याग एक अधिक व्यापक अभिस्थापन के पक्ष में कर रहे थे। उन्होंने धर्मशास्त्र की नहीं वरन् चिकित्साशास्त्र की शिक्षा पायी थी, और मानसिक शक्तियों का भौतिक शक्तियों के साथ एक क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित किये बिना वे मनःशक्तियों का अस्तित्व प्रतिपादित करने को तैयार नहीं थे। अतः उन्होंने एक नियम निरूपित किया जिसे उन्होंने 'परिसीमा का नियम' कहा जिसके अनुसार अनुकूल और अनुकूलित शक्तियों के अपने स्वाभाविक क्षेत्र होते हैं, या सीमाएँ होती हैं। इसके अनुसार, प्रकृति में अनुकूलन के स्तरों का एक आरोही क्रम होता है। मनुष्य तक आकर वे पाते हैं कि उसमें (तर्कबुद्धि के अतिरिक्त) चेतना और संकल्प दोनों होते हैं अतः उसमें 'नैतिक रूप में अनुकूलित होने की क्षमता होती है, अर्थात् वह शक्यों के तार्किक चयन द्वारा परिभाषित हो सकता है। मार्क हॉपकिन्स शक्तियों के (गुरुत्वाकर्षण से अन्तरात्मा और पूजा तक) इस 'संघटन' को मात्र एक प्राकृतिक व्यवस्था के रूप में नहीं बल्कि एक प्राकृतिक विकास के रूप में प्रस्तुत करते हैं और बड़े सुन्दर ढंग से उस सिद्धान्त का सारांश प्रस्तुत करते हैं जिसे बाद में उद्गामी विकास कहा गया।

'ईश्वर की पूजा करने में मनुष्य केवल अपनी ओर से ही कार्य नहीं करता। वह प्रकृति की ओर से पुकारता है। वह प्रकृति में सबसे आगे खड़ा है और केवल वही सृजनकर्ता को पहचानता है। ईश्वर की सृष्टि के सभी अंगों से जो यशोगान उठता है, वह मनुष्य के द्वारा ही बुद्धिपूर्ण अभिव्यक्ति पा सकता है। आदिकाल से ही यह सृष्टि ईश्वर की परिपूर्णता की अभिव्यक्ति रही है। सृजन की प्रगति को देखकर आज हम पाते हैं कि यह अभिव्यक्ति प्रारम्भ में अपेक्षतया दुर्बल थी, किन्तु हर नये युग में अधिक पूर्ण और अधिक स्पष्ट होती गयी है। समय की प्रगति के साथ उन शक्तियों और उत्पत्तियों की अभिव्यक्ति में उच्चतर दिशा की ओर प्रगति होती गयी है, जिनके क्रम को हम अपने सामने देखते हैं किन्तु मनुष्य के आने के पहले यशोगान की अभिव्यक्ति चेतन और व्यक्त नहीं हुई थी। उसे समेटना और स्वर प्रदान करना मनुष्य का कार्य था और यह कार्य उसका एक उच्च और विशिष्ट परमाधिकार है। उसके लिए इतना ही आवश्यक है कि वह ठीक से कान लगाए, जैसा उसने किया था जिसने

मानव को ईश्वर की महिमा घोषित करते सुना, या जैसा पैटमास में पैगम्बर जॉन ने किया था और सृष्टि को ईश्वर ने जैसा बनाया है, उससे कान मिलाए तो वह गुरुत्वाकर्षण से उठता हुआ ईश्वर का यशोगान करता एक धीमा स्वर सुन सकता है। और तब जैसे-जैसे वह सम्बद्धता और रासायनिक सम्पुटता वनस्पति जीवन और पशु जीवन और तात्विक जीवन से गुजरता हुआ उठेगा, वह उस स्वर को भी उठते हुए सुनेगा यहाँ तक कि ईश्वरीय सन्देश के वाहक के साथ उसकी पूर्ण सहानुभूति स्थापित हो जायेगी और उनके साथ ही वह समग्र सृष्टि से ईश्वर के बारे में कहने को तत्पर हो जायेगा और हर प्राणी जो स्वर्ग में है, पृथ्वी पर है और पृथ्वी के नीचे है, और वे जो समुद्र में हैं और वे सारे जो उनमें हैं उनको मैंने कहते सुना कि सम्पदा और सम्मान और महिमा और शक्ति उसको अर्पित जो सिंहासन पर बैठा है और ईसा को सदा और सदा के लिए। १

हॉपकिन्स ने मानव प्रकृति के अपने विश्लेषण पर लम्बे समय तक मेहनत की और उसके द्वारा एक तार्किक जोड़-तोड़ प्राप्त किया।

जब ये भाषण सर्वप्रथम लिखे गये उस समय यहाँ और कालिजों में आमतौर पर पाठ्य-पुस्तक पाले की थी। उनसे असहमत होकर और साध्यों के सिद्धान्त को अन्त तक ले जाने में असफल होकर, मैंने कान्ट और कोलरिज द्वारा सिखाये गये अन्तिम औचित्य के सिद्धान्त को अपनाया और उसे साध्य बनाया।' २

पाठ्य ग्रन्थ आमतौर पर ग्रोतों में लिखे जाते थे। मनोविज्ञान के द्वारा नीतिशास्त्र का आधार स्थापित किया जाता था। ऐसे ग्रंथों की परिणति नोह पोर्टर की 'दी एलीमेन्ट्स ऑफ इन्टलेक्चुअल साइन्स' (१८७१) और 'दी एलीमेन्ट्स ऑफ मॉरल साइन्स' (१८८५) में हुई। येल विश्वविद्यालय के अध्यक्ष के ये ग्रन्थ एक पूरी पीढ़ी तक प्रमुख रहे। ये व्यापक स्पष्ट व्यवस्थित और आस्तिपरक थे। प्रारम्भ में उन्होंने धर्मशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में नथेनियल टेलर के नरमपन्थी काल्विनवाद का अध्ययन किया और फिर स्कॉटिश के मान्य ग्रन्थ पढ़े। तब उन्होंने दो वर्ष बर्लिन में बिताये और अपने अधिकांश समकालीनों की अपेक्षा जर्मन विचारों से कहीं ज्यादा अच्छी तरह परिचित हो गये। इन विचारों के बड़े अंश का अपने ग्रन्थों में समावेश करने में उन्हें सफलता मिली।

---

१ मार्क हॉपकिन्स 'ऐन आउटलाइन स्टडी ऑफ मैन' (न्यूयार्क, १८७३) पृष्ठ १०१।

२. मार्क हॉपकिन्स, 'लेक्चर्स ऑन मॉरल साइन्स' (बोस्टन, १८६२) पृष्ठ ८।

यद्यपि वे मनःशक्ति-मनोविज्ञान को मानते थे, किन्तु अंग्रेज अनुभववादियों, विशेषतः मिल स्पेन्सर और बेन का उन्होंने गम्भीर अध्ययन करके उनकी आलोचना की। आमतौर पर उन्होंने अपने ग्रन्थों में ऐतिहासिक अभिस्थापन और स्पष्टीकरण की बड़ी सामग्री का समावेश किया। सबसे बड़ी बात थी कि उनमें वैज्ञानिक तटस्थता प्रतीत होती थी और सचमुच उनकी अपनी परिकल्पना बहुत कम थी जो उनके ग्रन्थों को बोझिल बनाती।

अमरीकी यथार्थवाद के रूप में स्काटलैण्ड की सामान्य बुद्धि

अमरीकी प्रबुद्धता में सर्वाधिक उत्कट अकेली परम्परा शायद स्कॉटलैण्ड की प्रबुद्धता की थी। हचेसन से फर्गुसन तक ह्यूम और आदम स्मिथ सहित दार्शनिक साहित्य का ऐसा समूह आया, जिसने अटलाण्टिक के दोनों ओर लोगों को उसकी क्रान्तिकारी क्षमता से जगाया। अमरीका में बसे स्कॉट और आयरी लोग इस स्रोत से आने वाली प्रबुद्धता के प्रति विशिष्ट रूप में ग्रहणशील थे क्योंकि धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से उखड़े हुए होने के कारण वे अपने देशवासियों के 'तर्कबुद्धि' और 'नैतिक भावना' की बातें सुनने को अपेक्षतया स्वतन्त्र थे। यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि जिसे सामान्यतः एडिनबरा ज्ञान कहा जाता है, उसका प्रभाव मुख्यतः इस कारण था कि उसने तर्कबुद्धि और नैतिक भावना, दोनों का व्यवस्थित विवेचन मानव जीवन के पूरक उपादानों के रूप में और अलौकिक प्रकाश तथा श्रुति के स्थानापन्न रूप में किया। एडिनबरा ज्ञान सामान्य बुद्धि पर नहीं, वरन् प्लेटोवाद पर आधारित थी। जब प्रतिक्रिया *प्रारम्भ हुई, जब अमरीका और स्कॉटलैण्ड दोनों में ही शैक्षिक सत्ता प्रेस्बिटेरियन* लोगों के हाथ में आई, तो ऐबरडीन और प्रिंसीटन उसी प्रकार परम्परावाद के चरम केन्द्र बन गये जैसे एडिनबरा और हार्वर्ड धर्मनिरपेक्षता और आलोचना के केन्द्र रहे थे।

अमरीका में कम से कम डुगाल्ड स्टेवार्ट और थॉमस ब्राउन अब भी प्रबुद्धता-युग के ही थे जबकि ग्लासगो के थॉमस रीड निश्चित रूप से प्रतिक्रिया को व्यक्त करते थे। यह सच है कि थॉमस कूपर जैसा परम भौतिकवादी इन सबको एक ही कोटि में रख सकता था क्योंकि एडिनबरा में चिकित्साशास्त्र के किसी छात्र को सभी धर्मवादी और तत्त्व-मीमांसक अन्धकार-ग्रस्त प्रतीत होते थे। उसकी शिकायत थी कि उन्हें 'शरीर-विज्ञान के अवयवों का भी ज्ञान नहीं

था। किन्तु ऐसे वैज्ञानिकों और चिकित्सा-विशेषज्ञों को छोड़ दें तो थॉमस जैफरसन और चैनिंग जैसे व्यक्तियों ने स्टेवार्ट को 'प्रबुद्ध करने वाला' पाया। थॉमस ब्राउन दैविक 'विज्ञान' की सीमारेखा के अधिक निकट थे। वे धर्मशास्त्रियों के विरोध का मुख्य केन्द्र बने क्योंकि धर्मवादी समझते थे कि उनका 'तर्कनावाद'—जैसा वे आमतौर पर एक पूर्णतः यान्त्रिक या सम्बद्धतावादी मनोविज्ञान निर्मित करने के ब्राउन के प्रयास को कहते थे—भौतिकवाद की ओर ले जायेगा। जैसा हमने बार-बार कहा है, नैतिकता और धर्म के साथ प्राकृतिक विज्ञान का निकट सम्बन्ध प्रबुद्धता का मर्म था। ब्राउन और इरास्मस डार्विन की विचार-व्यवस्थाएँ शारीरिक मनोविज्ञान और जीव-विज्ञान में वैज्ञानिक कार्य का आधार थीं किन्तु नैतिक और धार्मिक ज्ञान में उनका कोई उपयोग नहीं था। यहाँ आकर रास्ते अलग-अलग हो गये। रीड, स्टेवर्ट और सामान्य-बुद्धि की विचारधारा ने नैतिक और धार्मिक निश्चयात्मकता के आधार पुनः स्थापित किये, किन्तु अधिक विवेकशील वैज्ञानिकों को उन्होंने अपने से दूर कर दिया। संक्षेप में स्कॉटी सामान्य-बुद्धि 'लोकप्रिय' बनी इस कारण हो गयी कि पादरियों ने हमारे कॉलेजों में दार्शनिक तर्क का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में एक नैतिक शामक के रूप में किया। उन्होंने आशा की कि इस प्रकार वे प्रयोगात्मक विज्ञानों के घातक शक्तियों के प्रभाव की काट कर सकेंगे।

अमरीका में स्कॉटी सामान्य-बुद्धि का दार्शनिक वैभव इस कारण ही बड़ा गौरव नहीं है कि यह शालीन है, क्योंकि एडिनबरा के सारे भाष्यकार भी आखिरकार शालीन थे। इसका बड़ा कारण इसका आडम्बर है। सामान्य बुद्धि को विज्ञान का शालीन आवरण प्रदान करना बुद्धिमत्ता नहीं है और पुरानी बेकार रूढ़ियों को सामान्य बुद्धि के रूप में प्रस्तुत करना और भी बुरे प्रकार का आडम्बर है। मैक्कॉश जैसे 'सामान्य-बुद्धि' वाले प्रोफेसरों के इस दावे को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए कि वे प्रबुद्धता के उत्तराधिकारी थे और उसका प्रयोग अमरीका की दार्शनिक स्वतन्त्रता के लिए बौद्धिक पूँजी के रूप में कर रहे थे। यह दावा केवल एक थोथी 'आविष्कार' था। किन्तु यह, रूढ़िवाद के अर्थ में, यथार्थवाद की एक उत्तम परिभाषा है। भाववाद और अनीश्वरवाद, दोनों ही ही अमरीकी विचार जगत् में शक्ति पाती थी, किन्तु शिक्षा-जगत् में उनका प्रवेश नहीं था। दूसरी ओर स्कॉटी यथार्थवाद की सुरक्षित और समझदार व्यवस्था, युवकों को परिकल्पनात्मक पराकाष्ठाओं की ओर जाने से रोकने का एक आदर्श उपाय थी।

किन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। एडवर्ड्स के बाद धर्म-सन्देहवादी पन्थों के पास अपने विश्वास का कोई दार्शनिक आधार नहीं रह गया था। मैक्कॉश और उनके प्रेसबिटेरियन सहयोगियों ने उन्हें फिर से एक दार्शनिक

आधार प्रदान किया। इन वर्षों में बहुत बड़ी संख्या में कॉलेजों और विद्यालयों की स्थापना की थी, जिनमें दर्शन का कोई स्थान नहीं था और जिनके लिए सारा दार्शनिक प्रयास निरर्थक था। उनके लिए मैक्कॉश जैसे शिक्षक जो स्कॉट धर्मशास्त्र के प्रथम और मौलिक सत्यों की व्याख्या एक तर्कसंगत तत्वमीमांसा के रूप में कर सकते थे और इसके साथ ही जो विज्ञान के प्रति, यहाँ तक कि विकासवाद के प्रति भी सहानुभूति दिखा सकते थे और जो वस्तुनिष्ठवाद और अनीश्वरवाद का सामना उनके अपने क्षेत्र में जाकर करने की चेष्टा करते थे एक वरदान के समान थे और एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते थे। अगर यह बात धर्मसम्प्रदायवादियों और प्रेस्बिटीरियन लोगों के लिए सच थी तो मैथॉडिस्ट लोगों में व्यक्तित्ववादियों के लिए और भी अधिक सच थी। इनकी चर्चा हम बाद में करेंगे किन्तु शास्त्रीय यथार्थवाद में भी इनका स्थान है। प्रिंसीटन में मैक्कॉश और बोस्टन में बाउन के अध्यापन की खासतौर पर यह विशेषता थी कि वे सफ़ाई देने वालों का परम्परागत दृष्टिकोण न अपनाकर स्पष्ट और धर्मनिरपेक्ष तर्कों के द्वारा तात्विक सत्य की व्याख्या करते थे और धर्मशास्त्रीय पक्ष को निश्चित रूप से गौण स्थान देते थे। उनका यथार्थवाद पूर्णतः दार्शनिक था। विशेषतः मैक्कॉश ने यह बुद्धिमत्ता दिखाई कि अमरीका आकर अपने अध्यापन में उन्होंने सामान्य बुद्धि के स्थान पर यथार्थवाद को और 'मन की अन्तःप्रज्ञा' के स्थान पर प्रथम और मौलिक सत्यों को रख दिया।

मैक्कॉश अमरीका में इस हद तक असफल रहे कि अपनी स्कॉटी दर्शन के द्वारा यथार्थवाद की नींव डालने में सफलता नहीं मिली। उन्होंने स्वयं जिस प्रकार यथार्थवाद की व्याख्या करने में यथार्थ के तात्कालिक बोध के लिए मनोवैज्ञानिक तर्कों का और स्वयंसिद्ध सत्यों के लिए तर्कशास्त्र का सहारा लिया उससे पता चलता है कि मैक्कॉश के पहले से ही स्कॉटलैण्ड का यथार्थवादी अन्तःप्रज्ञावाद तेजी से वस्तुनिष्ठ भाववाद का मार्ग साफ़ कर रहा था। यथार्थवाद की स्थापना करने के बजाय स्कॉटलैण्ड के इस 'मन-शास्त्र' (न्यूमेटोलॉजी) ने क्लासीकी 'विचार-दर्शन' को हटाकर केवल जर्मन मनोविज्ञान और परात्परवाद का मार्ग प्रशस्त किया।

पाँचवाँ अध्याय



परात्परवादी धारा

प्रबुद्धता की सन्तान

नैपोलियन के बाद, राजनीतिक और बौद्धिक प्रतिक्रिया की शक्ति का अनुभव अमरीका की अपेक्षा यूरोप को अधिक हुआ। नैपोलियनकालीन संघर्ष के समय अमरीका की बढ़ती हुई शक्ति और यूरोप ने उसे न केवल 'सन्तोष का युग' प्रदान किया बल्कि यह भावना भी प्रदान की कि उसके पास असीमित विकास के साधन हैं। यूरोपीय शक्तियों के अपने धर्म-संघर्षों और वहाँ पर सामन्ती और संस्थाओं के बने रहने के विपरीत अमरीका के भौतिक विकास का रोमानी चरित्र स्पष्ट दिखता था। प्रबुद्धता के सिद्धान्तों के विरुद्ध [illegible] प्रतिक्रिया का और मध्यमवर्गीय तथा सुधारवादी उपयोगितावाद की शक्ति का अनुभव भी अमरीका को कम ही हुआ। अतः प्रबुद्धता से तर्कबुद्धि की पूरक शक्ति और धर्म निरपेक्ष नैतिकता के सिद्धान्तों में विश्वास को लेकर बिना किसी आघात या प्रतिक्रिया के उन्हें परात्परवाद में समाविष्ट कर लिया गया। रोमानी भाववाद ने अपना महल तर्कबुद्धि में रोमानी विश्वास के खण्डहरों पर नहीं, उसकी नींव पर खड़ा किया। यूरोप में १८१५ के बाद अमरीका की स्थिति फ्रांस, इंग्लिस्तान या आस्ट्रिया की अपेक्षा स्कॉटलैण्ड और प्रशा के अधिक निकट थी। एमर्सन को बर्क की तरह लड़ना नहीं पड़ा, बल्कि काण्ट के जर्मन अनुयायियों और स्कॉटलैण्ड में कूज़िन, कार्लाइल और एडम्स आदि की भाँति वे आसानी से प्रबुद्धता के विश्वास को राष्ट्रीय और वैयक्तिक दोनों स्तरों पर [illegible] और आत्म-निर्भरता के सिद्धान्त का रूप दे सके।

ईसाइयों में आध्यात्मिकता

'ईश्वर के गुणों और सम्पूर्णताओं का ज्ञान हमें कहाँ से प्राप्त होता है ? मेरा उत्तर है कि हम उन्हें स्वयं अपनी आत्माओं से प्राप्त करते हैं। ईश्वरीय गुण पहले हमारे अपने अन्दर विकसित होते हैं और तब हमारे सृजनकर्ता में अन्तरित होते हैं। ईश्वर का विचार, सम्मान और भय उत्पन्न करने वाला हमारी अपनी आध्यात्मिक प्रकृति का विचार है, जो परिशुद्धि और विस्तार के द्वारा असीम का रूप लेता है। ईश्वरीयता के तत्त्व हमारे अपने अन्दर हैं। अतः ईश्वर के साथ मनुष्य की समानता केवल आलंकारिक नहीं है। यह जनक और सन्तान की समानता है, सम्बन्धित प्रकृतियों की समानता है।

— — —

'मैं जानता हूँ कि इन मतों के सम्बन्ध में यह आपत्ति की जा सकती है कि हम ईश्वर का विचार केवल अपनी आत्माओं से ही नहीं वरन् सृष्टि से, ईश्वर की कृतियों से प्राप्त करते हैं। मैं जानता हूँ कि सृष्टि में ईश्वर व्याप्त है। आकाश और पृथ्वी उसकी महिमा की घोषणा करते हैं। संक्षेप में शक्ति ज्ञान और अच्छाई के चिह्न और प्रभाव सारी सृष्टि में व्यक्त हैं। लेकिन किसके लिए व्यक्त हैं ? बाह्य वस्तु के लिए नहीं, सूक्ष्मतम अनुभवेन्द्रियों के लिए भी नहीं। वरन् सम्बन्धित मन के लिए, जो अपने द्वारा सृष्टि की व्याख्या करता है। केवल विचारों की उस ऊर्जा के द्वारा ही जिससे हम विभिन्न और उलझे हुए साधनों को दूरस्थ साध्यों के अनुकूल बनाते हैं और बहुगुणित प्रभावों को समरसता और सामान्य सन्दर्भ प्रदान करते हैं, हम उस सृजनात्मक बुद्धि को समझ पाते हैं, जिसने प्रकृति की व्यवस्था आनुपातिकताओं और समरसता को संस्थापित किया है। हम ईश्वर को अपने चारों ओर देखते हैं क्योंकि वह हमारे अन्दर रहता है।'[1]

चैनिंग के प्रसिद्ध धर्मोपदेश के इस अंश को बहुधा अमरीका में परात्परवादी धर्मशास्त्र की पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति के रूप में उद्धृत किया जाता है। धर्मोपदेश के विशिष्ट सन्दर्भ से अलग करके देखने पर यह थियोडोर पार्कर के अध्यात्म

१ 'दी वर्क्स ऑफ़ विलियम ई॰ चैनिंग' में लाइकनेस टु गॉड : डिस्कोर्स ऐट दी ऑर्डिनेशन ऑफ़ दी रेवरेण्ड एफ़॰ ए॰ फार्ले प्राविडेन्स, आर॰ आई॰ १८२६ (बोस्टन १८८८), पृष्ठ २९१ २९४; जोसेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फ़िलॉसफ़िक ऐड्रेसेज़ १७०० १९००' (न्यूयार्क १९४६), पृष्ठ ५६६ ५८५।

रूपकों जैसा लगता है, किन्तु बौद्धिक का कथन होने के कारण, इसे केवल प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध तत्कालीन प्रतिक्रिया का एक और उदाहरण मान कर बिना किसी संकट के ग्रहण कर लिया गया। वास्तव में यह उस गम्भीर परिवर्तन का एक चिह्न था, जो न केवल धर्मशास्त्र में वरन् सामान्यतः दर्शन में हो रहा था, जिसके फलस्वरूप प्रकृति के अध्ययन का स्थान आत्मा का अध्ययन ले रहा था। मानसिक दर्शन और 'आध्यात्मिक' धर्म ने परिकल्पनात्मक बोध को एक नया आयाम प्रदान किया। शीघ्र ही वे उत्तेजक विचार बन गये, जिनमें एक नये प्रकार के उदारवाद और मुक्ति की सम्भावना व्यक्त हुई।

इस प्रकार की संकुल आध्यात्मिकता के प्रति सर्वप्रथम उत्साह एकत्ववादियों ने नहीं प्रदर्शित किया। एक समूह के रूप में वे अपनी तर्कसंगति के सम्बन्ध में सन्तुष्ट और जिज्ञासाविहीन थे। यह उत्साह उन पादरियों ने दिखाया जो अपने आलोचनात्मक धर्मशास्त्र के बावजूद, ईसाइयत के परम्परागत प्रतीकों और संस्कारों की शक्ति का अनुभव करते थे जिन्होंने परिस्थितियों के बीच पवित्रता के धर्मधर्मेतरवादी पुनर्व्याख्या को ईर्ष्याभरी दृष्टि से देखा और जो अपने विश्वास का दार्शनिक समर्थन करने में अपने को असमर्थ पाते थे। उनके लिए कोलरिज की पुस्तक 'एड्स टु रिफ्लेक्शन' ठीक समय पर आयी।

'आध्यात्मिक' मनन सम्बन्धी कोलरिज का अनुरोध उन लोगों के लिए दैवी सन्देश बन गया जिन्होंने दिव्य-ज्ञान के सत्यों और दैवी प्रकाश के अवतरण का खण्डन किया था, फिर भी जिन्हें मनन के लिए किसी सहारे की आवश्यकता थी। पुनर्जीवन का स्थान प्रेरणा को लेना था, और 'लिखित शब्द' का अन्त हो जाये। स्वयं कोलरिज के लिए और उनके अधिकांश पाठकों के लिए 'एड्स टु रिफ्लेक्शन' ने इस उद्देश्य की पूर्ति की। दार्शनिक मनन एक नये प्रकार का धर्म था और तर्कबुद्धि के इस उपयोग से धर्म निरपेक्ष बुद्धि और विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करने के लिए इसे 'आध्यात्मिक' कहा गया। प्रेरणा अन्तर्दृष्टि या ज्ञान के लिए मनन की पद्धति को, कोलरिज ने, शैलिंग का अनुसरण करते हुए एक अलग और अनुपम मानसी मनःशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित की। वर्णनात्मक या प्रदर्शनात्मक 'समझ' से इसका अन्तर स्पष्ट करने के लिए इसे 'तर्कबुद्धि' कहा गया। इस प्रकार 'प्राकृतिक धर्म' और 'शुद्ध धर्म' दोनों से ही 'आध्यात्मिक धर्म' गुणात्मक रूप में भिन्न था। इसमें बिना अन्धविश्वास के पवित्रता थी और बिना पन्थ के आध्यात्मिकता थी। मार्श तत्काल कोलरिज को अमरीकी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने में लग गये और उनकी पुस्तक के अपने संस्करण (१८२६) में एक लम्बा परिचयात्मक निबन्ध और महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ जोड़ीं। मार्श प्राचीन ग्रन्थों के अध्यापक थे और यूनानी दर्शन के साथ-साथ कैम्ब्रिज के प्लेटोवाद का

अच्छा ज्ञान था। कोलरिज के साधनों और रूपकों का आसानी से उपयोग करके उन्होंने अपनी कक्षाओं के समक्ष न केवल एक आध्यात्मिक धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की, वरन् भाववादी भौतिकी सौन्दर्य-शास्त्र और तत्त्व-मीमांसा भी निरूपित किये। इन नवीनताओं ने धीरे-धीरे धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, और ईसापूर्व के प्रश्नों सम्बन्धी उनके भाषणों को धीरे-धीरे बिल्कुल बदल दिया, जिससे वे पाठ्यक्रम और शिक्षा-पद्धति में एक स्थायी सुधार ला सके और कोलरिज के दर्शन को उन्होंने वरमोंट विश्वविद्यालय की एक दैविक परम्परा बना दिया। मार्श ने कहा कि स्वतन्त्र रूप में मन का विशेषकर अधिकांश मनुष्यों की रुचि और अध्ययन से बहुत दूर जा पड़ता है और इस कारण 'शिक्षण की सर्वाधिक प्रभावशाली विधि' यह है कि 'मनुष्य के आन्तरिक स्वत्व... और अन्तर्बुद्धि अन्तरात्मा और इच्छाशक्ति की रहस्यमय शक्तियों और साधनों' सम्बन्धी विचार को नैतिकता और धर्म के अध्ययन के साथ जोड़ा जाय। इस प्रकार नैतिक और धार्मिक दर्शन के पाठ्यक्रम मनोविज्ञान के सहायक बन गये। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र के बाहर स्थिति उलटी थी। नया मनोविज्ञान, धार्मिक मनन का एक साधन था और उसने एक नये धर्मशास्त्र को जन्म दिया। पादरियों के लिए कोलरिज के 'अन्तर' शब्द का एक नया सन्देश लाये।

"यह प्रदर्शित करना भी इस रचना के लेखक का एक विशेष उद्देश्य है कि आध्यात्मिक जीवन या जिसे हम प्रयोगात्मक धर्म कहते हैं, वह अपने आप में और अपनी समुचित वृद्धि और विकास में समझ की प्रक्रियाओं और रूपों से मूलतः भिन्न है। और यह कि यद्यपि कोई सच्चा धर्म परिकल्पनात्मक तर्क के किसी तार्किक सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकता, फिर भी एक धर्म में वह दर्शन की धारणाओं से भिन्न होता है और अपनी वास्तविक प्रकृति में वह 'वस्तुनिष्ठ विज्ञान और सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि' की पहुँच के परे होता है। 'ईसाइयत कोई सिद्धान्त या परिकल्पना नहीं है, वरन् एक जीवन है। जीवन का दर्शन नहीं वरन् एक जीवन और एक जीवन-प्रक्रिया। अतः इसे ज्ञान का एक प्रकार कहना उतना उचित नहीं है, जितना जीवन का एक रूप कहना।'"[1]

प्रयोगात्मक धर्म ने अन्ततः एक दर्शन प्राप्त कर लिया था जो एमर्सन का स्थान ले सके।

सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप में जीवन का दर्शन मार्श द्वारा परात्परवाद की

---

१ सैमुएल टेलर कोलरिज, 'एड्स टु रिफ्लेक्शन' में, जेम्स मार्श का प्रेलिमिनरी एसे (बर्लिंगटन, वरमाण्ट, १८२९) पृष्ठ ११।

विवेचना का मुख्य विषय बन गया। वस्तुनिष्ठ तर्कबुद्धि को हमारी 'सीमित समझ' से भिन्न हमारी 'स्वतः स्फूर्त' चेतना का नियन्त्रण करती है, एक जीवन की संजीवनी शक्ति है। अतः जीवन की शक्ति नीचे से निकृष्ट तत्त्वों से नहीं आती वरन् ऊपर से आती है।[1] सही कहें, तो हम अलौकिक रचनाएँ हैं।—
सचेतन शक्ति

'एक उच्चतर जन्म है, एक उच्चतर और आध्यात्मिक ऊर्जा का सिद्धान्त है, जिसके अपने समुचित सम्बन्ध आत्मा के जगत् के साथ होते हैं। कुछ अर्थों में, वह प्रकृति के जीवन में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जैसे चेतन जीवन की शक्ति जड़ पदार्थ में प्रवेश करती है। स्वयं अपने सार-रूप में और अपने उचित अधिकार में, वह अलौकिक है और प्रकृति की सारी शक्तियों के ऊपर है। प्रकृति के जीवन के क्षणिक अनुभवों को, स्वयं अपने अमूर्त रूपों में समझना, निखारना और पुनः प्रस्तुत करना इच्छा-शक्ति को भ्रष्ट करके इस प्रकार निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयास की ओर ले जाता है। और इस प्रकार आध्यात्मिक सिद्धान्त प्रकृति के जीवन के बन्धन में फँस जाता है।'[2]

'व्यक्ति प्रकृति द्वारा निर्धारित संकीर्ण और वैयक्तिक लक्ष्य से आध्यात्मिक सिद्धान्त को मुक्त करके और उसे आध्यात्मिक नियम के अन्तर्गत लाकर ही जो उसके अपने सार-रूप के अनुकूल होता है वह पूर्णतः स्वतन्त्र हो सकता है। उस मुक्तावस्था में आकर, जो ईश्वरीय भावना उसे प्रदान करती है, वह स्वतन्त्र होकर उन महान और महिमामय लक्ष्यों के लिए प्रयास करता है, जिन्हें तर्कबुद्धि और ईश्वरीय भावना निर्धारित करती है।'[3]

इन उद्धरणों से पर्याप्त संकेत मिल जाता है कि यहाँ मार्श ने पाप और प्रसार का एक दर्शन पाया (जिसे हम ऊर्ध्वगामी विकासवाद का उलटा रूप कह सकते हैं) जिसके फलस्वरूप वे उद्धार के पुराने मुक्तिवादी सिद्धान्त को और 'प्रमोषात्मक' धर्म के सत्यों को एक नया आन्तरिक अर्थ प्रदान कर सके। उन्होंने इसे आध्यात्मिकता का एक विशिष्ट रूप बता कर, मनन की इस आध्यात्मिक क्रिया का उपदेश दिया और साथ ही सामान्यजनों में प्रचलित भावनात्मक पुनरुत्थानों की भर्त्सना की। उन्होंने कैम्ब्रिज के प्लेटोवादियों की कुछ रचनाओं

१ जोसेफ टोरे द्वारा सम्पादित 'दी रिमेन्स ऑफ़ दी रेवरेण्ड जेम्स मार्श (बोस्टन, १८४३) पृष्ठ १७३।
२ वही पृष्ठ १८२-१८३।
३ वही, पृष्ठ १८९।

का सम्पादन किया और साधारणतः शुद्धतावादी भाववाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

सम्भवतः रेवरेण्ड फ्रेडरिक एच० हेज की गिनती यहाँ ईसाई परात्परवादियों में नहीं करनी चाहिए। वे क्रमशः मेन राज्य में बैंगोर, रोड आइलैण्ड में प्रॉविडेन्स और मैसाचुसेट्स में ब्रुकलिन के एकत्ववादी धर्म-समुदायों में पादरी रहे। १८५७ से १८७८ तक उन्होंने हार्वर्ड में पहले धर्म का इतिहास, फिर जर्मन साहित्य पढ़ाया। अपनी मुख्य दार्शनिक प्रेरणा उन्हें जर्मन स्वच्छन्दतावादी साहित्य का अध्ययन और अनुवाद करने से प्राप्त हुई। उन्होंने १८१० से १८२२ तक जर्मनी में अध्ययन किया था और जर्मन दर्शन के सम्बन्ध में उनकी जानकारी न्यु इंगलैण्डवासियों में शायद सबसे अधिक थी। स्पष्टतः हेज परात्परवादी धारा में सम्मिलित नहीं थे, और यह व्यंग्यपूर्ण है कि उनका नाम परात्परवादी क्लब के साथ इतनी निकट से जुड़ा हुआ था। इसे कभी-कभी 'हेज-क्लब' भी कहा जाता था क्योंकि हेज के नगर में आने पर उसकी बैठक होती थी।

फिर भी उनके धर्मोपदेशों और निबन्धों में मुख्य परात्परवादी विषयों की बहुतेरी प्रतिनिधि विवेचनाएँ हैं। उनके विचार शैलिंग के सर्वाधिक निकट थे। प्रकृति और चेतन-आत्मा की एकता उनका प्रिय विषय था—'विश्राम की स्थिति में प्रकृति जड़-वस्तु होती है, क्रियाशील प्रकृति चेतन-आत्मा होती है। प्राकृतिक इतिहास और मानवी इतिहास केवल प्रकृति की चरम चेतना के विकास के सोपान हैं। 'जो कुछ भी प्राकृतिक है, वह अपने आरोह और कारणता में आध्यात्मिक है, जो कुछ भी आध्यात्मिक है, वह अपने अवरोह और अस्तित्व में प्राकृतिक है। पौराणिक शब्दावली में—

'आध्यात्मिक बनने में मनुष्य एक नया प्राकृतिक जन्म प्राप्त करता है, जिसका अर्थ है कि वह ईश्वर के साथ चेतन समागम में प्रवेश करता है जिसके द्वारा उसकी आत्मा अचेतन रूप में पोषित हुई है। पहली अवस्था आदम की है, दूसरी ईसा की। किन्तु दोनों वही एक ही व्यक्ति हैं—विकास की भिन्न स्थितियों में वही मानवी प्रकृति। पहली पाशविक स्थिति है दूसरी आध्यात्मिक'।[1]

---

१ रोनाल्ड वेल वेल्स, 'थ्री क्रिश्चियन ट्रान्सेण्डेण्टलिस्ट्स: जेम्स मार्श, कैलेब स्प्राग हेनरी, फ्रेडरिक हेनरी हेज' (न्यूयार्क, १९४३) पृष्ठ १०६-१०७। हेज का उद्धरण 'रीज़न इन रेलिजन' (बोस्टन, १८६५), पृष्ठ २९ से लिया गया है।

इस अनुभवी विकास में—इसे यह नाम देना अनुचित न होगा—तीन सोपान हैं—शक्ति के नियमों द्वारा संचालित प्रकृति, कर्तव्य के नियम द्वारा संचालित नैतिकता और प्रेम के नियम द्वारा संचालित आत्मा।

हेज के अनुसार आत्मा का क्षेत्र, जिसमें धर्म प्रभावी होता है, व्यावहारिक नैतिकता से बिल्कुल कटा हुआ नहीं है। प्रेम और कर्तव्य एक-दूसरे में ढल जाते हैं। हेज ने मुख्यतः इस बात पर जोर दिया कि नैतिकता और धर्म, दोनों में ही सुधार की भावना नकारात्मक न होकर रचनात्मक हो। जिसे उन्होंने अपना 'व्यापक धर्म' [illegible] कहा, उसके आधार के रूप में उन्होंने सामाजिक और बौद्धिक उदारवाद का समर्थन किया। वे एकतावाद के उन नेताओं में से थे जिन्होंने अलगाव और संकीर्णता से बचने का प्रयास किया।

एमर्सन

अमरीकी संस्कृति में ऐसी कई प्रवृत्तियाँ थीं, जिनका परात्परवाद ने विरोध किया। इनमें से कुछ प्रबुद्धता से उत्पन्न हुई थीं, कुछ उसकी प्रतिक्रियाएँ थीं। कुछ प्रवृत्तियाँ किसी भी प्रकार के भौतिकवाद की सामान्य शत्रु थीं, कुछ अन्य ऐसी विभिन्न परिस्थितियाँ थीं जिनसे अमरीकी विकास के कुछ विशिष्ट गुणों को समझा जा सकता है।

प्रबुद्धता द्वारा प्राकृतिक नियम की सर्वोच्च प्रतिष्ठा के साथ प्राकृतिक विज्ञान में हुए विकास को हमने देखा। जैसे-जैसे प्रकृति के अध्ययन का रोमानी आकर्षण समाप्त होता गया और यह प्रयोगशाला का कार्य बनता गया, न केवल इसमें नैतिकतावादियों की रुचि समाप्त हो गयी वरन् उन्होंने यह भी कहा कि "प्रकृति पर मनुष्य का साम्राज्य निरीक्षण द्वारा नहीं आता।" परात्परवादियों के इस सूत्र और नारे में विज्ञान का खण्डन नहीं था, वरन् यह अनुभूति थी कि दर्शन या धर्म का स्थान विज्ञान नहीं ले सकता, जिसकी सम्भावना पर लोग प्रबुद्धता काल में विश्वास करने लगे थे। मनुष्य की विजय प्रकृति के 'द्वारा' न होकर प्रकृति के 'ऊपर और परे' होने वाली थी। परात्परवादियों ने एक उच्चतर धर्म-सा दृष्टिकोण अपना कर, प्रकृति का जो कुछ भी नैतिक मूल्य उनकी नज़र में था उसके अनुसार उसका 'उपयोग' किया किन्तु विस्तृत प्राकृतिक ज्ञान या प्रयोगात्मक प्रगति में बहुत कम रुचि दिखाई। तदनुसार उन्होंने मनुष्य की प्रगति की व्याख्या प्रकृति से एक उच्चतर और अधिक शुद्ध वातावरण में विकास के

का सम्पादन किया और साधारणतः मुक्ततावादी भाववाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

सम्भवतः रेवरेण्ड फ्रेडरिक एच० हेज की गिनती यहाँ ईसाई परात्परवादियों में नहीं करनी चाहिए। वे क्रमशः मेन राज्य में बैंगोर रोड आइलैण्ड में प्रॉविडेन्स और मैसाचुसेट्स में ब्रुकलिन के एकत्ववादी धर्म-समुदायों में पादरी रहे। १८५७ से १८७८ तक उन्होंने हार्वर्ड में पहले धर्म का इतिहास, फिर जर्मन साहित्य पढ़ाया। अपनी मुख्य दार्शनिक प्रेरणा उन्हें जर्मन स्वच्छन्दतावादी साहित्य का अध्ययन और अनुवाद करने से प्राप्त हुई। उन्होंने १८१८ से १८२२ तक जर्मनी में अध्ययन किया था और जर्मन दर्शन के सम्बन्ध में उनकी जानकारी न्यू इंगलैण्डवासियों में शायद सबसे अधिक थी। स्पष्टतः हेज परात्परवादी धारा में सम्मिलित नहीं थे और यह व्यंग्यपूर्ण है कि उनका नाम परात्परवादी क्लब के साथ इतने निकट से जुड़ा हुआ था। इसे कभी-कभी 'हेज-क्लब' भी कहा जाता था क्योंकि हेज के नगर में आने पर इसकी बैठक होती थी।

फिर भी उनके धर्मोपदेशों और निबन्धों में मुख्य परात्परवादी विषयों की बहुतेरी प्रतिनिधि विवेचनाएँ हैं। उनके विचार शेलिंग के सर्वाधिक निकट थे। प्रकृति और चेतन-आत्मा की एकता उनका प्रिय विषय था—'विश्राम की स्थिति में प्रकृति जड़-वस्तु होती है कार्यशील प्रकृति चेतन-आत्मा होती है। प्राकृतिक इतिहास और मानवी इतिहास केवल प्रकृति की आत्म चेतना के विकास के सोपान हैं। 'जो कुछ भी प्राकृतिक है, वह अपने आरोह और कारणता में आध्यात्मिक है, जो कुछ भी आध्यात्मिक है, वह अपने अवरोह और अस्तित्व में प्राकृतिक है। पौराणिक शब्दावली में—

"आध्यात्मिक जन्म में, मनुष्य एक नया प्राकृतिक जन्म प्राप्त करता है, जिसका अर्थ है कि वह ईश्वर के साथ चेतन समागम में प्रवेश करता है जिसके द्वारा उसकी आत्मा अचेतन रूप से पोषित हुई है। पहली अवस्था आदम की है, दूसरी ईसा की। 'किन्तु दोनों यहाँ एक ही व्यक्ति है—विकास की भिन्न स्थितियों में वही मानवी प्रकृति। पहली पार्थिव स्थिति है दूसरी आध्यात्मिक'।[1]

---

१ रोनाल्ड वेल वेल्स, 'थ्री क्रिश्चियन ट्रान्सेण्डेण्टलिस्ट्स जेम्स मार्श, कैलेब स्प्राग हेनरी, फ्रेडरिक हेनरी हेज' (न्यूयार्क १९४१), पृष्ठ १ १ १०७। हेज का उद्धरण 'रीज़न इन रेलिजन' (बोस्टन, १८६५) पृष्ठ २९ से लिया गया है।

इस ऊर्ध्वगामी विकास में—इसे यह नाम देना अनुचित न होगा—तीन सोपान हैं—गति के नियमों द्वारा संचालित प्रकृति, कर्तव्य के नियम द्वारा संचालित नैतिकता और प्रेम के नियम द्वारा संचालित आत्मा।

हेज के अनुसार आत्मा का क्षेत्र जिसमें धर्म प्रभावी होता है व्यावहारिक नैतिकता से बिल्कुल कटा हुआ नहीं है। प्रेम और कर्तव्य एक-दूसरे में बस जाते हैं। हेज ने मुख्यतः इस बात पर जोर दिया कि नैतिकता और धर्म दोनों में ही सुधार की भावना नकारात्मक न होकर रचनात्मक हो। जिसे उन्होंने अपना 'व्यापक धर्म' कार्यक्रम कहा उसके आधार के रूप में उन्होंने सामाजिक और बौद्धिक उदारवाद का समर्थन किया। वे एकत्ववाद के उन नेताओं में से थे जिन्होंने अलगाव और संकीर्णता से बचने का प्रयास किया।

एमर्सन

रूप में की। 'निरीक्षण' और प्रकृति की शक्तियों की खोज के दृष्टिकोण के विरुद्ध उनकी मुख्य आपत्ति यह थी कि उसमें एक पराधीनता और आज्ञाकारिता की भावना निहित है, जो कभी भी मनुष्य को उसकी वांछित स्वतन्त्रता के उपयोग की ओर नहीं ले जा सकती। परात्परवादी स्वतन्त्रता और विप्रतिषेधवादी थे। वे किन्हीं ऐसे नियमों को नहीं मानते थे जो उनके अपने नियम न हों। बल्कि, वे किन्हीं ऐसे संसारों को भी नहीं मानते थे जो व्यक्ति आत्माओं द्वारा अपने लिए, बाह्य शक्तियों के ऊपर अपनी प्रभुता की अपनी अभिव्यक्ति के रूप में 'निर्मित' न किये गये हों। यद्यपि वे ईश्वर को 'परमात्मा' के रूप में स्वीकार करते थे किन्तु उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि ईश्वर कोई अधिपति नहीं है और उसकी भावना उस अनुशासन से जुड़ी है और उसे व्यक्त करने वाली है, जिसे स्वतन्त्र इच्छा-शक्तियाँ स्वयं अपने सम्बन्ध में व्यक्त करती हैं। या इस सिद्धान्त को अधिक प्राविधिक रूप में रखें तो, ईश्वर इसी कारण प्रकृति से ऊपर है कि वह मनुष्य की आत्मा में निहित है।

इतिहास के प्रति परात्परवादियों का दृष्टिकोण भी प्रकृति के प्रति उनके दृष्टिकोण के समान था। वे अपने को उससे ऊपर समझते थे। उन्नीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में न्यू इंगलैण्ड इतिहासकारों का अपना पहला समूह उत्पन्न कर रहा था—बैंक्रॉफ्ट प्रेस्कॉट मोटली पार्कमैन हिल्ड्रेथ और इनसे कम महत्व के अन्य बहुतेरे। पीछे की ओर जाती नयी दृष्टि मंज़िल पर पहुँच जाने की भावना को व्यक्त करती थी। बोस्टन संस्थापकों के प्रयासों का फल लेकर कुछ देर को सुस्ता रहा था और दो शताब्दियों की प्रगति का सर्वेक्षण कर रहा था। गुलामप्रथा अतीत की वस्तु बन चुका था और अब वह न संघर्ष था न खतरा। प्राचीनता के प्रति अमर प्रेम नहीं, तो एक भावनात्मकता दिखाई पड़ने लगी थी। उदाहरण के लिए हॉथोर्न गुलामप्रथा और उसकी मन्त्रणा में किसी रोमानियत की दुनिया का-सा आनन्द पाते थे। अतीत के अन्धकार और पुरखों की गलतियों की ऐसी तलाश को परात्परवादी तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। निस्सन्देह वे इतिहास पढ़ते थे और जितना प्राचीन और दूरस्थ इतिहास हो उतना ही अच्छा, किन्तु वे केवल अपनी कल्पनाओं को जागृत करने या आध्यात्मिक पाठों के लिए सामग्री प्राप्त करने के लिए उसे 'हथिया लेते थे'। उनमें से कुछ आदर्शवादी सुधार की भावना से आगे देखते थे कुछ शाश्वत की ओर अपने अन्तस् में, किन्तु इतिहासकार की रुचि के साथ पीछे देखने वाले बहुत कम थे। अठारहवीं सदी से संघर्ष का अनुभव वे अब भी कर रहे थे और उन्हें विश्वास था कि वे अब भी सृजनात्मक कार्यकलाप के केन्द्र में हैं इतने व्यस्त कि संस्मरणों के लिए समय नहीं, इतने आशापूर्ण कि कोई खेद नहीं।

वे सामान्य बुद्धि और शिष्टाचरण के विरुद्ध थे। वे वैयक्तिकता का आदर सनक की हद तक भी करते थे, किन्तु ऐसा नहीं कि हर बूढ़े व्यक्ति का आदर करें—वे भद्रता और 'संस्कृति' के प्रस्तुता थे। उन्हें लोकतन्त्र का दार्शनिक कहा गया है और एक ढीले-ढाले अर्थ में उनका स्वतन्त्रता-प्रेम परम्परा का तिरस्कार और स्वयं अपने साधनों का विकास जीवन के लोकतान्त्रिक आदर्श के साथ जोड़ा जा सकता है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से वे लोकतन्त्रवादियों के नहीं उदारवादियों के युग के थे। वे प्रतिनिधि मनुष्य नहीं थे निश्चय ही राजनीतिक लोकतन्त्रवादी नहीं थे। उनका आचार और बोलचाल का ढंग शिष्ट और बनावटी था। जो स्वतन्त्रता वे प्रदर्शित करते थे वह स्वतः स्फूर्त नहीं थी, विवेकशील थी। वे डायरियाँ और जर्नल बहुत अधिक लिखते थे। वे दर्शन का उपयोग साहित्यिक उद्देश्यों के लिए करते थे और उनकी आडम्बरपूर्ण भाषा के पीछे बहुधा बिल्कुल सामान्य विचार छिपे होते थे। वे ऐसे व्यक्ति थे जो जानबूझ कर विक्टोरिया-कालीन अंग्रेज होने का प्रयास करते थे। वे इतने अधिक 'परिष्कृत' थे कि सुसंस्कृत नहीं हो सकते थे। जो कुछ संस्कृति उनमें थी वह आत्मप्रेरणात्मक रूप में बहुदेशीय और हर स्थान से उधार ली हुई थी। प्राचीन जर्मन फ्रांसीसी इटालवी, कान्फ्यूशियसवादी वैदिक बौद्ध, सभी साहित्यों को वे अपना लेते थे और वे (जब आवश्यक न हो तब भी) स्वयं स्वर्ग को भी सर्वथा अनुकूल पाते क्योंकि आत्मा के किसी भी ओर सभी वर्गों का वे उत्साह से स्वागत करते थे। इस ग्रहणशीलता में वे निश्चय ही परात्परवादी दर्शन के अपने जर्मन और अंग्रेज साथियों से आगे थे सम्भवतः इस कारण कि अपनी प्रारम्भिकता की सीमाओं के कारण उन्हें बाहर से आयी सामग्री पर अधिक निर्भर रहना पड़ता था। जो भी हो अत्यधिक विभिन्न विश्वासों और अभिव्यक्तियों को अपना लेने में उनका उद्योग और उनकी सहानुभूति उनकी शिक्षा का प्रमाण होने के साथ-साथ अमरीकी शिक्षा को उनकी देन भी है।[1] इसके बावजूद पहले तो वे आत्म

---

१ डेरिक बार्० कारवेलन्ट ने इस ओर संकेत किया है कि न्यू-इंगलैण्ड के इस मानवतावाद ने न केवल परात्परवादी स्वच्छन्दतावाद को, वरन् लॉन्गफेलो, और लोवेल आदि की भावना को भी जन्म दिया। गुह्यवादी मानवतावाद एक होकर पार्थिव मानवतावाद बन गया। कारलिन का धर्म, मुसलमों का धर्म बन गया। लोवेल ने इस विरूपता का अनुभव किया, जब उन्होंने अपने विशिष्ट व्यंग्य हास्य के साथ भविष्य-वाणी की कि "छोटे भावों और लम्बे सिरों की व्यक्तिगत जोत होगी और यह जरूरी होगा कि हम अपने गुह्यवादी पैगम्बरों की भांति तीव्रता से अनुभव करें कि सामान्य

निर्भरता के विरुद्ध मान कर उसका तिरस्कार करते थे और इसे केवल वहीं तक उचित मानते थे जहाँ तक यह पाठक को प्रतिबिम्बित प्रकाश में स्वयं अपने को देखना सिखाये।

शायद परात्परवादियों का गम्भीरतम विरोध संस्थाओं के प्रति था। संगठन में निर्भरता की या भौतिक शक्ति की दबाव की स्वीकृति निहित थी और ये दोनों ही भावनाएँ आत्मा के जीवन के लिए विजातीय थीं। वे प्रबुद्ध-काल के व्यक्तिवाद को कट्टरपन्थी पराकाष्ठाओं तक ले गये। उन्होंने सिखाया कि शासन को शाब्दिक अर्थ में स्वशासन होना चाहिये और किसी भी मनुष्य को अन्य किसी मनुष्य पर शासन करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। निम्नतर या 'भौतिक' स्तर पर संगठन और संस्थाओं को उचित ठहराया जा सकता था लेकिन भौतिक अस्तित्व की समस्याओं और आत्मा के चिन्तन-क्षेत्र में दखल नहीं करना चाहिये। भौतिक जीवन की समस्याओं को वास्तविक अस्तित्व की आवश्यक 'शर्तों' के रूप में स्वीकार करना चाहिये, उनके 'आधार' के रूप में नहीं। संस्थाओं में भी चर्चों का औचित्य सबसे कम था क्योंकि वे शासन और सत्ता को आत्मा के क्षेत्र में ले आते थे जहाँ स्वतन्त्रता का राज्य है। कम से कम न्यू इंग्लैण्ड में कालविनवाद से लड़ना आवश्यक था क्योंकि एकत्ववाद ने यह काम पहले ही कर दिया था। परात्परवादियों ने अपनी कुछ सबसे तीखी आलोचनाओं का लक्ष्य एकत्ववादियों को बनाया जिनसे स्वयं उनका विकास हुआ था। एकत्ववादियों और चर्चों के सौभाग्य से गुलामी-प्रथा की राजनीति ने परात्परवादियों के लिए राज्य को इतना घृणित बना दिया कि उन्होंने अपना पादरियत्व-विरोध बन्द कर दिया और बहुधा स्वयं धर्मपीठों से उन्होंने शासन की भर्त्सना की। उनमें स्वतन्त्रता का सिद्धान्त और व्यवहार अपने चरम बिन्दु तक पहुँचा।

सेण्ट लुई के हीगेलवादी डेण्टन जे॰ स्नाइडर ने अमरीकी इतिहास के इस अंश का निरूपण करते हुए बताया कि स्वतन्त्रता के हित में एमर्सन ने संस्थाओं को नकारा' लेकिन उन्होंने अपना लक्ष्य या अभीष्ट स्वतन्त्रता स्वयं एक संस्था बनकर प्राप्त की। उनका यह कथन उनके इस्तेमाल [illegible] पदे, एक अन्तर्भेदी आनुभविक सत्य है और इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान खींचता है कि

के उन अंगों को संस्कृति के द्वारा विस्तार और दीर्घता प्रदान की जा सकती है।" यद्यपि यह महत्वपूर्ण है कि उन्होंने संस्कृति को तादात्म्य का एक साधन बताया किन्तु यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि उन्होंने इसे मुक्तताकारी अतीत के साथ जोड़ा और उसे उद्धार का एक जारी रहने वाला साधन बनाया।—(फ्रेडरिक आई॰ कारपेण्टर 'दी जेण्टिल ट्रेडिशन; ए रीइण्टरप्रेटेशन,' 'दी न्यू-इंगलैण्ड क्वार्टरली' अंक पन्द्रह (१९४२), पृष्ठ ४३९।

अमरीकी दर्शन के इतिहास में, न केवल व्यक्ति एमर्सन के मन की व्याख्या करना आवश्यक है, बल्कि अमरीकी संस्कृति में एमर्सन के संस्थात्मक रूप की भी। परात्परवाद जहाँ तक एक संगठित आन्दोलन था और अब भी एक सामाजिक शक्ति है, वहाँ तक यह संस्था-विरोधी संस्था है।

एमर्सन ने अपने को वास्तविक अर्थ में, परात्परवादी आत्म-निर्भरता के द्वारा बचाया। १८३२ में अपने को एकत्ववादी पादरियत से मुक्त करने के बाद उन्होंने पाया कि स्वतन्त्रता का बोझ और भी भारी था। शरीर और मन से बीमार, उन्होंने यूरोप की यात्रा का सहारा लिया। यद्यपि यह विश्राम उनके लिए लाभकारी था और निस्सन्देह इंगलिस्तान के परात्परवादियों से मिलकर उन्होंने प्रोत्साहन और सीख पायी किन्तु उन्हें नयी शक्ति और नया लक्ष्य इन सम्पर्कों से नहीं मिला। इसे उन्होंने विदेशों में बिताये एक साल की अवधि में, सामाजिक और बौद्धिक दोनों ही क्षेत्रों में आत्म-निर्भरता की कला सीख कर प्राप्त किया। उन्होंने स्वयं अपने लिए सोचना और कार्य करना सीखा और वस्तुओं में स्वयं अपने अर्थ प्राप्त किये। यद्यपि आमतौर पर उन्होंने कोई नये अर्थ नहीं प्राप्त किये किन्तु उनके लिए महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उन अर्थों को उन्होंने अपना लिया और वे सचमुच 'उनके अपने' अर्थ बन गये। इस बोध को संकेत चिह्न के रूप में लेकर, वे यह देखने के लिए प्रकृति इतिहास पुस्तकों मित्रों, अनुभव आदि की ओर मुड़े कि इनमें से हर एक का उनके लिए क्या अर्थ था। जब वे इस पद्धति का साधारणीकरण करने में सफल हो गये तो उनके पास न केवल एक व्याख्या-माला थी, वरन् एक दर्शन भी था। उन्होंने 'स्वयं अपना विश्व निर्मित' कर लिया था और अब वे अपने साथी अमरीकियों से कह सकते थे कि उनमें से हर एक स्वयं अपने विश्व का निर्माण करे। इस तथ्य से कि यह व्यक्तिनिष्ठ पद्धति उनके लिए एक निजी युक्ति थी एमर्सन के लेखन और भाषण की शक्ति को बहुत कुछ समझा जा सकता है। वे हमेशा अपने अनुभव से बोलते प्रतीत होते थे चाहे वे केवल किसी पढ़ी हुई बात को दोहरा ही रहे होते। इस पद्धति का ही यह स्वाभाविक परिणाम था कि उनके विचारों में कभी एकरूपता या व्यवस्था नहीं आयी। हर उक्ति आत्मा के सच्चे ज्ञान की तरह होती थी और उसका उपयोग वे स्वयं और अन्य उपदेशक सूत्र के रूप में लगभग बाइबिल के सूत्रों की तरह असंख्य धर्मोपदेशों के लिए कर सकते थे।

उनके विचारों की ये दो मौलिक विशेषताएँ एक अमरीकी संस्था के रूप में एमर्सन की शक्ति के बड़े अंश का कारण है—(१) उन्होंने एक-निरपेक्ष उपदेश पीठ उपदेशात्मक देशना की एक धर्म-निरपेक्ष पद्धति और एक धर्म-निरपेक्ष 'ज्ञान

साहित्य' का निर्माण किया जिससे उनके वाक्यों में एक प्रकार का पैगम्बरी गुण आ गया, (२) वे एक मनुष्य के रूप में दूसरे मनुष्य को सम्बोधित करते थे, एक अनुभव की ओर से दूसरे अनुभव से अपील करते थे। इस प्रकार उनकी शैली और उनके सन्देश दोनों का ही ऐसी जनता ने विशिष्ट रूप में स्वागत किया जो धर्मोपदेशों पर पली थी और उनसे ऊब चुकी थी। उन्होंने अन्य विचारकों को भी (चाहे हम उन्हें विद्वान् न भी मानें) वही आत्म-विश्वास आत्म-संस्कार और वैयक्तिकता प्रदान की, जो उन्होंने स्वयं प्राप्त की थी।

एमर्सन न मायावादी था न प्लेटो का अनुयायी था न कान्ट का, यद्यपि दोनों का ही उन्हें थोड़ा-बहुत ज्ञान था। उन्हें न वस्तुओं के सार्वभौमिक रूपों में रुचि थी न उनके प्राकृतिक अस्तित्व में। उनकी रुचि वस्तुओं में (मनुष्य की) काव्यात्मक कल्पना को जागृत करने की योग्यता में थी जिसे वे और उनके साथी परात्परवादी विवेक या आत्मा कहते थे।

"यह आत्मा' दोहरे रूप में व्यक्तिनिष्ठ थी—यह ज्ञान की अपेक्षा कल्पना थी, विज्ञान नहीं कविता थी और आत्म-ज्ञान उसका स्वीकृत लक्ष्य था। यह अन्तर्दर्शन और विमर्श का संयोग था और इसने एक आत्माभिमान उत्पन्न किया जो कभी साहसिक होता, कभी कारुणिक।

'काल स्वयं हमारे लिए देखता है, हमारे लिए सोचता है। यह ऐसी दूरबीन है, जैसी गलीलियो के पास कभी नहीं रही। हमारे लिए अन्तर्दृष्टि जो सुलभ है, कभी किसी के लिए नहीं रही। कोई शंका न करे कि यह समय और अवसर ईश्वरीय है। यह जो इस दिन की प्रतिमा का प्रतिनिधित्व करेगा, यह जो अतीत और भविष्य के बीच इस महान् कगार पर खड़ा होकर आलोचना नीतिशास्त्र इतिहास के नियम लिखेगा एक युग के बाद वह न मूढ़ होगा न अभागा बल्कि उसकी गिनती तत्काल उन सभी पुरुषों के समान स्तर पर होगी जिन्हें हम आज मान्यता देते हैं। मैं अभी भी प्रमुख व्यक्तियों में इस प्रभाव को देखता हूँ। वे उसका परित्याग कर रहे हैं जिस पर पहले उन्हें गर्व था। वे तिरस्कार का सामना करते हैं और तिरस्कृत व्यक्तियों के साथ रहते हैं। वे एक अधिक सौम्य अधिक दिव्य मुखाकृति प्राप्त करते हैं।'[1]

१ 'दी जर्नल्स ऑफ़ राल्फ वाल्डो एमर्सन' (बोस्टन, १६०६-१४), भाग पाँच, पृष्ठ २८१, ३११। थोरो ने यही बात कुछ विनोद के स्वर में कही—

"फ़िफ़र इज़ दस हैप्प ऐण्ड लेज़्ज़ पाल्म रियर्स
"फ़ुम दि एलिज़ाबेथ ऑफ़ हाई नोट,
"दैट पाइ हियरोस्ट्स और पम्प ऐपोथर्स,
"पास दी रेमर दैमि ऑफ़ हाई नोट।'

एमर्सन ने अपने में और अपनी समाज में बुद्धि के आध्यात्मिक प्रयोग के अभाव का अनुभव किया। विज्ञान और नैतिकता सामान्य वस्तुएँ थीं और प्रभुसत्ता की परम्परा में, उन्हें तर्कबुद्धि के जीवन के दो केन्द्र समझा जाता था। आवश्यकता थी सार-ज्ञान अन्तः प्रज्ञात्मक अन्तर्दृष्टियों, आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्यों और भविष्यद्रष्टा विचारों को विकसित करने की। "संस्कृति, प्रकृति की अपरिष्कृत दृष्टियों को अपवर्तित कर देती है और फलस्वरूप मन जिसे पहले यथार्थ कहता था उसे आसमान समझता है और जिसे स्वप्नदृष्टि कहता था उसे यथार्थ कहने लगता है।"[1]

सामान्य में चामत्कारिक को देखना ज्ञान का अचूक चिह्न है। प्रकृति की जड़ता या पाशविकता आत्मा का अभाव है। शुद्ध आत्मा के लिए वह तरल चलत और आज्ञाकारी होती है। हर आत्मा अपने लिए घर बनाती है और घर के परे एक संसार, और संसार के परे एक स्वर्ग। अतः जान लीजिये कि संसार का अस्तित्व आपके लिये है। पूर्ण दृश्य-घटना आपके लिये है। अतः स्वयं अपना संसार बनाइये। जितनी तेजी से आप अपने जीवन को अपने मन के शुद्ध विचार के अनुरूप बनायेंगे, उतना ही उसके महान् अनुपात व्यक्त होंगे। आत्मा के अन्तर्प्रवाह के साथ-साथ वस्तुओं में भी तदनुकूल क्रान्ति आयेगी। प्रकृति पर मनुष्य का साम्राज्य—ऐसा स्वामित्व जो अभी मनुष्य द्वारा ईश्वर की कल्पना के भी परे है—तब वह उसी तरह बिना आश्चर्य किये पा सकेगा, जैसे वह अन्धा आदमी जिसकी सम्पूर्ण दृष्टि धीरे-धीरे वापस लौट आती है।[2]

एमर्सन का प्राथमिक लक्ष्य यह था कि विचार प्रकृति को अस्तित्व के रूप में न देखकर, आत्मा के भोजन के रूप में देखें और आदर्शवाद के पक्ष में यही उनका मुख्य तर्क था। उन्होंने उस शक्ति का अनुभव किया जो आध्यात्मिक कल्पना प्रदान करती है, किन्तु वस्तु की उपेक्षा करके मन की उपलब्धियों का स्वागत करने की उत्सुकता में वे (और उनके अधिकांश मित्र) लगभग हर उस वस्तु का स्वागत करने की पुरानी हदों तक चले गये, जिसमें असामान्य शक्ति दिखाई पड़े।

प्राकृतिक समाज की आदतों से आत्मा को मुक्त करने के प्रयास में, लगभग

(तेरे स्वर के अमृत में ऐसा स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन है कि तेरे कण्ठ की गुनन ध्वनि से, ईश्वर भी अधिक युवा प्रतीत होता है।)

'कलेक्टेड पोएम्स' में 'प्रयाल की बैक रेट सर्वी कॉम' से। कार्ल बोड द्वारा सम्पादित (शिकागो, १९४१), पृष्ठ २०४।

१ 'नेचर' में आदर्शवाद सम्बन्धी अध्याय से।

२ 'नेचर'।

अवैज्ञानिक वस्तु को बिना परखे सहानुभूति देने के तत्कालीन फैशन में परात्परवादी भी हिस्सेदार और बढ़ावा देने वाले बने। इस विशेषता में और आमतौर पर भी एमर्सन न्यू इंगलैण्ड के परात्परवाद के मध्यममार्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि उन्होंने अपने आसपास के सुधारकों और रहस्यवादियों को संरक्षण दिया और उनसे सहानुभूति रखी लेकिन वे स्वयं इन दिशाओं में नहीं भटके। विचारों और उत्साहों का आलोचनात्मक आत्म-संस्कार के लिए उपयोग करते हुए, उन्होंने अपने को अलग रखा। न केवल व्यक्ति रूप में बल्कि संस्था के रूप में भी एमर्सन उदार आलोचक और रचनात्मक आशावादी दोनों ही थे। उनमें थोड़ी विनोद और गम्भीरता के साथ काव्यात्मक कल्पना और स्वतन्त्रता का मिश्रण था। अपने बौद्धिक और सामाजिक वातावरण और परम्परा के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रखने की उनकी योग्यता ने उन्हें एक महान् अमरीकी मध्यस्थ बनाया। उनके श्रोता और पाठक उनकी ऐसी बातों को वेदवाक्य की तरह स्वीकार कर लेते जो अन्य स्वरों या कल्पनाशक्तियों में आने पर धर्मविरुद्ध या पाखण्डपूर्ण कह कर अस्वीकार कर दी जातीं।

आध्यात्मिक साहचर्य

इंगलैण्ड के अधिकांश मानवीयतावादी सुधार आन्दोलन प्रमुखतया वे उत्पन्न हुए थे और परात्परवाद के साथ उनका सम्बन्ध अस्पष्ट ही था। चैनिंग ब्राउनसन, पार्कर, गैरिसन—सभी को अपनी प्रेरणा और प्रारम्भिक आदर्श धर्मबुद्धि के गुण से मिले थे। यह बात एक हद तक फोरियरवादी उत्साह और समाज के पुनर्जीवन की आदर्शवादी योजनाओं के लिए भी सच थी। परन्तु एच० चैनिंग रिपले डिवाइट और अन्य दूसरों ने अपने सम्पन्नता के सिद्धान्त ऐसे स्रोतों प्राप्त किये जिनमें सामाजिक अनुबन्ध के सिद्धान्त परिलक्षित होते थे, और जब उन्होंने परात्परवादी दर्शन सीखा तो अपनी सामाजिक योजनाओं को परात्परवादी वार्तालाप के लिए अधिक अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने के अवसरों के रूप में देखा। यद्यपि ब्रुक फार्म मुख्यतः परात्परवादियों का समुदाय था, किन्तु वास्तविक अर्थ में यह परात्परवादी समाज नहीं था। फिर भी आदर्शवादी समाजवाद पर परात्परवादी सिद्धान्त का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, क्योंकि इन समुदायों का, जिनकी कल्पना मुख्यतः सुधार योजनाओं के रूप में धन की प्रतिष्ठा सम्पत्ति की समानता और नैतिक शुद्धि के लिए की गयी थी, परात्परवादियों ने

इस रूप में समर्थन किया कि वे आत्मा को भौतिक चिन्ताओं की गुलामी से बचाती थीं। अन्त में वे समुदाय रोमानी भाववाद की समाधीकृत अभिव्यक्ति बन गये।

किन्तु ब्रान्सन ऐल्काट का मामला कुछ भिन्न है। उनका सामाजिक सिद्धान्त आरम्भ से ही परात्परवादी था। शिक्षक के रूप में उनका कार्य और फ्रूटलैण्ड्स का उनका सामाजिक प्रयोग एक भाववादी दर्शन को व्यावहारिक रूप देने के प्रयास थे। उन्होंने बोस्टन के टैम्पिल स्कूल में बच्चों में आत्म-अभिव्यक्ति और नैतिक विमर्श की आदतों को प्रोत्साहित करना शुरू किया। शैक्षिक अनुशासन के लिए उन्होंने बातचीत और डायरियों को (उनके अपने जीवन की दो बुनियादी आदतें) आधार बनाया। वे पैस्टालोत्सी[1] के अनुयायी सुधारक थे किन्तु शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारों में उन्होंने भाववाद में अपनी उस रुचि को भी जोड़ दो उन्हें मार्श द्वारा प्रकाशित कोलरिज के संस्करण और फिर बाद में प्लेटो प्लोटिनस और उसके बाद अधिकाधिक संख्या में पूर्व और पश्चिम के रहस्यवादियों को पढ़कर प्राप्त हुई। यद्यपि बोस्टन में उनका स्कूल चल नहीं सका, किन्तु उसकी ख्याति इंगलिस्तान तक फैली और इसके फलस्वरूप ऐल्काट का परिचय इंगलिस्तान के 'संकटवादी सुधारकों' के एक समूह से हुआ जिन्होंने 'मानव प्रगति के मित्रों' के रूप में अपनी बैठक की 'सुधार, संरक्षण और निर्माण' पर चर्चा की, और तय किया कि एक स्थान चुना जाये जहाँ नया अदन का बाग लगाया जाये और मनुष्य, बुराई के फन्दे से बचा हुआ अपने जनक, अपने-आप अन्य मनुष्यों और सारी बाह्य प्रकृतियों के साथ समरस होकर रहे।[2] फलस्वरूप १८४१ में हार्वर्ड मैसाचुसेट्स में 'फ्रूटलैण्ड्स' का प्रयोग आरम्भ हुआ जिसके लिए धन की व्यवस्था ऐल्काट के अंग्रेज दोस्त चार्ल्स लेन ने की और 'प्रबन्ध' भी उन्हीं के हाथ में था। ऐल्काट के लिए यह मूलतः पाइथागोरस के' पवित्र-सिद्धान्त के साथ सम्बद्ध परिवार के जीवन का निर्माण करने का प्रयास था। फ्रूटलैण्ड्स के नये अदन में सेब एक मुख्य भोजन था लोभ का प्रतीक नहीं। मनुष्य पशु और यहाँ तक कि धरती को भी अनावश्यक बन्धन और विकारों से बचाना था। परिशुद्ध 'परिवार' को, सारे समाज की आधारभूत संस्था के रूप में अपना औचित्य सिद्ध करना था। इसके अतिरिक्त उसे

---

१ पैस्टालोत्सी—स्विट्ज़रलैण्डवासी शिक्षा-सुधारक १७४६-१८२७। —अनु०

२. ओडेल शेपर्ड पैडलर्स प्रोग्रेस, दी लाइफ ऑफ़ ब्रॉन्सन ऐलकॉट" (बोस्टन, १९३७), पृष्ट ३३५।

आध्यात्मिक जगत की सृजनात्मक शक्ति का उदाहरण बतलाता था। ऐल्कॉट का सचमुच विश्वास था कि आत्मा वस्तु से पहले आयी और सारी 'उत्पत्ति' आत्मा की है। ईश्वर ने मनुष्य की आत्मा का सृजन किया और मनुष्य ने जैसे-जैसे वह अधिकाधिक पतित और पशुवत् होता गया अस्तित्व की निम्नतर और भौतिक भ्रष्टताओं को जन्म दिया। संक्षेप में ऐल्कॉट का भाववाद रहस्यवाद द्वारा भ्रष्ट हो गया। उनके रहस्य-कथन (ऑर्फिक सेइंग्स) जिनकी शैली और भावना प्रारम्भ में कोलरिज जैसी थी बाद में ऐसे बन गये कि विशिष्ट संस्कारयुक्त लोग ही समझ सकें।

डब्ल्यू० टी० हैरिस और सेण्ट लुई के हीगेलवादियों ने उन्हें अंशतः उनकी भ्रान्तियों से बचाया और उन्हें बाध्य किया कि वे अपने भाववाद को परिभाषित करें और अपने रोमानी व्यक्तिवाद का परित्याग करें। उन्होंने फ्रुटलैण्ड्स की असफलता का कारण भी आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं की उपेक्षा करते हुए, परिवार पर अपने अत्यधिक 'व्यक्तिवादी आग्रह को बतलाया। सेण्ट लुई के हीगेलवादियों के साथ ऐल्कॉट के परिचय के फलस्वरूप कॉन्कॉर्ड में दर्शन के ग्रीष्म स्कूल (१८७९-८८) का जन्म हुआ जो अमरीकी भाववाद के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि उसमें हीगेलवादी और न्यू-इंग्लैण्ड के परात्परवादी एक जगह एकत्र हुए।

आध्यात्मिक एकान्त

हेनरी थोरो एक स्फूर्तिमय सही स्वभाव के विद्रोही थे। उन्होंने न केवल मुक्तावादी अन्तरात्मा को अस्वीकार किया वरन् परात्परवादी अन्तरात्मा को भी अस्वीकार किया और आत्मसंस्कार के एक सिद्धान्त के रूप में भाववाद (पैगनिज्म) को अभिव्यक्ति दी। वे न्यू-इंग्लैण्ड के मौलवी थे। उनका सिविल नाफ़रमानी' का सिद्धान्त केवल समाज के प्रति विशेषतः अपने समाज के प्रति उनके पूर्ण तिरस्कार का चेतन और दार्शनिक औचित्य मात्र था। उन्होंने निजी विद्रोह की एक आलोचनात्मक व्यावहारिक योजना खोज ली। ऐसा नहीं था कि *उन्हें प्रकृति से अधिक प्यार था, बल्कि उन्होंने पाया कि उनकी आत्मा (अर्थात्* कुछ पढ़ने पर उनका मानस) एकान्त और खुली हवा में अधिक मुक्त होती थी। वे प्रखर प्रकृतिवादी थे तो केवल आकस्मिक रूप में। वे एक कवि थे जिन्हें संस्थात्मक नैतिकता की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता था।

'मैं व्यर्थ प्रयासों का एक समूह हूँ, बँधे हुए संयोग के बन्धन से एक साथ,

'इधर-उधर झूलते हुए, उसकी कड़ियाँ इतनी ढीली और चौड़ी बनी थीं
मैं सोचता हूँ, अधिक कोमल मौसम के लिए।'[1]

उन्होंने न्यू-इंगलैण्ड के परात्परवाद के सर्वप्रमुख विषय—अर्थात् धार्मिक और राजनीतिक क्रियाओं में डूब जाने से स्वतन्त्र आत्मा के जीवन को खतरा—को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की।

"छह दिन तुम मेहनत करोगे और अपनी सारी कुताई करोगे लेकिन सातवें दिन निश्चय ही अपनी पढ़ाई। यह खुशी है जो ह्विटमन की भावना के साथ सिवम्बार की इस गुनगुनी धूप में नहा सकता है जो विश्राम और श्रम दोनों के समय सभी प्राणियों को प्रभावित करती है। कोई स्वस्थ मनुष्य, जिसका रोजगार टिकाऊ हो जैसे पचास सेण्ट प्रति गट्ठर के लिए लकड़ी काटना और जंगल में एक तम्बू हो वह ईसाइयत के लिये अच्छा विषय नहीं है। बाइबिल का न्यू टेस्टामेण्ट उसके लिये किन्हीं दिनों उसकी पसन्द की पुस्तक हो सकती है, लेकिन सभी या अधिकांश दिनों के लिये नहीं। वह आराम के घण्टों में मछली पकड़ने जाना ज्यादा पसन्द करेगा। ईसाई सन्त भी यद्यपि मछुआरे थे किन्तु वे समुद्री मछुआरों की गम्भीर जाति के थे और उन्होंने धरती की नदियों में कभी छोटी मछलियाँ पकड़ने के लिए बंसी नहीं लगाई थी। मनुष्यों में एक विचित्र इच्छा होती है कि वे किसी खास बात के सम्बन्ध में अच्छे बनें क्योंकि शायद वे अस्पष्ट रूप में सोचते हैं कि अन्ततः यह उनके लिए अच्छा होगा। हर जगह 'अच्छे मनुष्य' पीछे हट रहे हैं और दुनिया आगे जाकर फिर भोलेपन पर भरोसा करने लगी है। बेहतर हो कि आगे जो कुछ भी हो उसकी ओर बढ़ें। ईसाइयत केवल आशा करती है। उसने अपना साज पेड़ पर टाँग दिया है और वह अपरिचित देश में गीत नहीं गा सकती। उसने एक उदास सपना देखा है और अभी आनन्द के साथ सुबह का स्वागत नहीं करती।[2]

किन्तु यह धार्मिक और नैतिक विद्रोह थोरो के आत्मभाव से इस अर्थ में बिल्कुल भिन्न है कि यह मिलनसार आडम्बरहीन और दयालु है।

थोरो के नैतिक व्यभिचार के बावजूद", उनमें समग्र जीवन की एकता की एक भावना एक प्रकृति-रहस्यवाद जीवन की सार्वभौमिक धड़कन के साथ तीव्र

---

१ कार्ल बोड द्वारा सम्पादित, हेनरी डेविड थोरो, 'कलेक्टेड पोएम्स' में प्राप्त 'ट्रेम ए पार्सेल ऑफ वेन स्ट्राइविंग टाइड' (शिकागो, १९४१), पृष्ठ ८१।

२. हेनरी डेविड थोरो 'ए वीक ऑन दी कॉनकॉर्ड ऐण्ड मेरीमैक रिवर्स' में 'सन्डे'।

लेने की चेतना विकसित हुई। 'मैं उस समस्त कुछ को देखता, सूँघता, स्वाद लेता, सुनता और अनुभव करता हूँ जिसके साथ हम सम्बद्ध हैं। आंशिक रूप में बौद्ध दर्शन और भगवद्गीता पढ़ने के फलस्वरूप और आंशिक रूप में जंगल में अपने जीवन के बारे में लिखने की आदत के फलस्वरूप वे केवल समाज से निष्कासित एक अकेले व्यक्ति ही नहीं रहे। वे एक सच्चे ब्राह्मण बन गये और उन्होंने अनन्त जीवन के साथ सबसे कम मुखर किन्तु सबसे अधिक व्यापक समागम में आनन्द पाया। अगर हम उनके 'जर्नल्स' (डायरी) के आधार पर फैसला करें तो वे ऐसे व्यक्ति बन गये जिसे पूर्व में 'मन-निबन्ध' लिखने वाला 'धम्म-पति' कहा जाता है।

'मैं प्रकृति में एक विचित्र स्वतन्त्रता के साथ आता-जाता हूँ। क्या मैं धरती के साथ मौन वार्तालाप न करूँ? क्या मैं स्वयं आंशिक रूप में पत्तियाँ और वानस्पतिक उपज नहीं हूँ?'[1]

प्रकृति में यह तन्मयता प्रकृति की व्यवस्था की स्पिनोज़ावादी पूजा नहीं थी न प्रकृति के प्राणियों और प्रक्रियाओं के निरीक्षण का प्रेम था वरन् उस जीवन के अनन्तत्व की एक भावना थी, जिसमें मनुष्य भाग लेता है। थोरो उसी प्रकार अनायास अपने को प्रकृति में विलय कर सकते थे जैसे ह्विटमैन ब्रुकलिन में।

समुद्र पर

मध्य-शताब्दी के विद्रोहियों में सर्वाधिक विद्रोही प्रकृति, हरमैन मेलविले (१८१९-९१) भौगोलिक और दार्शनिक दोनों ही दृष्टियों से न्यू-इंगलैण्ड के परात्परवादियों के सीमान्त क्षेत्र से आये थे। उन्होंने अपने प्रारम्भिक और अन्तिम वर्ष न्यूयार्क नगर में बिताये वे हडसन नदी की घाटी से अल्बानी तक परिचित थे, और कुछ समय तक पश्चिमी मैसाचुसेट्स में अपने कृषि-फार्म में रहे। बारह वर्ष की आयु में उन्होंने 'पिस्तौल और गोली के स्थान पर' समुद्र को अपनाया। 'अधेड़ आयु और बाद के जीवन की कटुता की बात न करो एक लड़का भी उस ढंग का अनुभव कर सकता है। अपने पिता की मृत्यु के पहले मैंने कभी जीविका के लिए काम करने की बात नहीं सोची थी और नहीं जाना था कि दुनिया में कठोर हृदय भी होते हैं।...अपने समय के पूर्व ही मैंने बहुत

---

१ हेनरी डेविड थोरो, 'वाल्डेन'।

और कटुता के साथ सोचना सीख लिया था।"[1] समुद्री जीवन उनके लिए 'सिसरो और लॉको' की अपेक्षा कार्य का स्थानापन्न अधिक था। उनकी रोमानियत भी इसी प्रकार नित्यप्रति के श्रम से भागकर, मन का एकान्त भटकना था। अमरीका के एक कारखाने 'लड़कियों का नरक' का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा—"खाली दिखते हुए पटलों पर खाली दिखती हुई लड़कियाँ, अपने खाली हाथों में खाली सफेद, मुड़े कागज़ लिए, खाली कागज़ को खाली ढंग से मोड़ती बैठी थीं।'[2] तथाकथित सभ्य मनुष्यों और सभ्यताओं में छिपी हीनता के प्रभाव को वे कभी सहन नहीं कर सके और न कभी अपने व्यावहारिक पड़ोसियों के व्यावहारिक भावों को स्वीकार कर सके। जिन सिद्धान्तों का वे समर्थन करते थे वे परात्परवादी निरपेक्षताएँ थीं, अपने आप में सम्पूर्ण, लेकिन जिनकी कोई उपयोगिता नहीं थी। शारीरिक साहसिकता को वे समझ पाते थे और प्राकृतिक शक्तियों के क्षेत्र में उनको मज़ा मिलता था, किन्तु परिकल्पना और नैतिकता दोनों का ही अदृश्य संसार उन्हें आतंकित कर देता था। 'यद्यपि अपने बहुतेरे दृश्यमान् पक्षों में संसार का निर्माण प्रेम में हुआ प्रतीत होता है किन्तु अदृश्य क्षेत्रों का निर्माण भय में हुआ।'[3] अतः परात्परवादी भावना से पूर्णतः ओत-प्रोत होने के कारण, मेलविले पर विरोधों का संसार छाया हुआ था। योना की भाँति उनका मन होता था कि ईश्वर से भागें, लेकिन मोबी डिक के कप्तान अहाब की भाँति वे दृढ़ थे कि अवसर से उसका सामना करेंगे। "अधिकांश मनुष्य ईश्वर से डरते हैं और मूलतः उसे नापसन्द करते हैं, इस कारण कि उसके हृदय पर उन्हें पूरा विश्वास नहीं है और वे उसकी कल्पना घड़ी की तरह केवल दिमाग़ के रूप में करते हैं।"[4] मेलविले का मूल बौद्धिक दृष्टिकोण यह था कि ईश्वर की ओर 'दिमाग़' के द्वारा नहीं, 'दिल' के माध्यम से पहुँचा जाये। उनकी कल्पना थी कि यद्यपि मनुष्य और ईश्वर दोनों ही अपने लिये और एक-दूसरे के लिए अगम्य रहस्य हैं फिर भी वे एक दुःखान्तिका में

---

१ रेमॉण्ड वीवर 'हरमैन मेलविले मैरिनर एण्ड मिस्टिक' (न्यूयार्क, १९२१) पृष्ठ ७५।

२. एफ० ओ० मैथीसन, 'अमेरिकन रेनासाँ, आर्ट ऐण्ड एक्सप्रेशन इन दी एज ऑफ़ एमर्सन ऐण्ड ह्विटमैन' में उद्धृत, 'दी टारटारस आफ मेड्स' (लंदन और न्यूयार्क, १९४१), पृष्ठ ४०१।

३ रेमॉण्ड वीवर की पुस्तक, पृष्ठ ९९।

४ रेमॉण्ड वीवर की पुस्तक में उद्धृत, हॉथॉर्न के नाम एक पत्र से, पृष्ठ १११।

एक साथ प्रवेश करते हैं, जिसमें वे दोनों अनुभव और कार्य कर सकते हैं। 'मन की दु:खान्तिका' जैसा कि मेलविल ने इस विषय को उपयुक्त ही कहा है, प्रोमेथियस जॉब और जोना की दु:खान्तिकाओं का मिश्रण है। यह डर कि ईश्वर कहीं सचमुच भयानक न हो केवल 'बुरा एक-विषयी पागलपन' नहीं है, जैसा कि अहाब की घृणा और पागलपन विवेकहीन पाठक को प्रतीत होते हैं। यह असीम में साहसपूर्ण दार्शनिक प्रवेश के परिणामों का निडर होकर सामना करना है।

परात्परवादी सिद्धान्तों का 'सभ्य' प्रतिमानों से मिलाने का कोई भी प्रयास मेलविल्ले को शैतानियत प्रतीत होता था। एमर्सन जैसे विचारकों के प्रति उनके मन में केवल तिरस्कार था। उन्होंने कहा कि शुभाशकों और 'पारस्परिकताओं' में विश्वास करने वालों के 'माथे फूटे हुए हैं'। किन्तु ऐसे लोगों के प्रति उनके मन में अगर तिरस्कार नहीं, तो केवल दया थी जो इसके विपरीत परात्परवादियों की पूर्णतः उपेक्षा करते थे और बड़ी आसानी से नियतिवादी ढंग से यह कहने को तैयार हो जाते थे कि 'पापी जीवन की छोटी-सी अवधि नाप करके काट दे।'[1] वे ईसा के इस सुझाव को पूरी गम्भीरता से लेते थे कि 'नया जन्म' लेना एक मात्र उपाय है किन्तु उनके अनुसार 'इस जन्म में 'नये' जन्म के सिद्धान्तों को समझने का आधारभूत महत्त्व है और उनकी मुख्य परात्परवादी अन्तर्दृष्टि सचमुच यह समझने में थी कि निरपेक्ष और सापेक्ष प्रतिमान एक-दूसरे के लिए आवश्यक हैं, किसी एक को अपने-आप में नहीं समझा जा सकता।

'व्हाइट जैकेट' में वे मनुष्य जाति को गुप्त आदेशों के अनुसार चल रहे एक तेज चलने वाले, कभी न डूबने वाले जहाज, जिसका शिल्पी ईश्वर था' पर चित्रित करते हैं। इस पुस्तक की अन्तिम पंक्तियों की व्याख्या आस्था की स्वीकृति के रूप में भी की जा सकती है, निराशा की स्वीकृति के रूप में भी।

'हम निचली मंज़िल की अन्ध-विश्वासी गप्पों पर ध्यान न दें कि हम किधर जा रहे हैं क्योंकि अभी तक जहाज पर हममें से कोई भी इसे नहीं जानता—स्वयं कप्तान भी नहीं। निश्चय ही पादरी नहीं। हमारे प्रोफेसर के वैज्ञानिक अनुमान भी व्यर्थ हैं। और जहाजों में रहने वाले सख्त-मुहर्रमी लोगों पर विश्वास मत करो जो तिरस्कार भरी हँसी के साथ तुमसे कहेंगे कि हमारा विश्व-जहाज किसी भी अन्तिम बन्दरगाह की ओर जाने वाला नहीं है। अन्यथा कि यह विश्व-जहाज हमारा अन्तिम निवास स्थान कैसे प्रमाणित हो सकता है

१ हरमैन मेलविले 'क्लारेल' खण्ड दो, पृष्ठ २५१।

जबकि छोर के बच्चों के रूप में पहली बार इस पर चढ़ने पर इसके छोर से हिलने डुलने से—जिसका बाद की जिन्दगी में पता नहीं चलता—हममें से हर एक का समुद्र-रोग हो जाता है ? क्या इससे यह भी पता नहीं चलता कि जिस वायु में हम यहाँ साँस लेते हैं, वह भी अनुकूल नहीं है और केवल धीरे-धीरे आदत पड़ जाने से सहनीय बन जाती है और यह कि कोई श्रेष्ठ शान्त बन्दरगाह अभी चाहे जितनी दूर हो, हम सब के भाग्य में अवश्य होगा ?

ओ जहाज के साथियों और संसार के साथियों चारों ओर हम, जो लोग हैं, बहुतेरी बुराइयाँ सहते हैं। व्यर्थ हम नीचे अफसरों के बारे में कप्तान से अपील करते हैं। व्यर्थ ही—अपने विश्व जहाज पर चढ़े हुए—अनिश्चित नौसेना कमिश्नरों से अपील करते हैं जो हमारी दृष्टि से परे इतनी दूर ऊपर हैं। फिर भी अपनी सबसे बड़ी बुराइयाँ हम स्वयं अन्धे होकर अपने पर लादते हैं। हमारे अफसर चाहें भी तो उन्हें कम नहीं कर सकते। अन्तिम बुराइयों से कोई व्यक्ति किसी दूसरे को नहीं बचा सकता। उसमें हर व्यक्ति को स्वयं ही अपना उद्धारक बनना होगा। शेष के लिए हम विद्रोह न करें हम कभी भी यह न भूलें कि

"चाहे जो हमें पीड़ित करे, चाहे जो दुःख हमें घेरे,
"जीवन एक यात्रा है, जिसका अन्त घर है।[1]

उनकी लम्बी कविता 'क्लारेल' इसी प्रकार अस्पष्ट है। यह 'पवित्र भूमि' और उसकी यात्रा करने वालों पर एक टीका है। ईसा की भाँति क्लारेल अध्ययन के लिए पैदा है, घृणा से अधिक दया में किन्तु ईसा की भाँति यह विभिन्न प्रकार के तीर्थयात्रियों और उनके आदर्शों में एक निजी रुचि भी लेता है। तीन पात्रों का चित्रण विशेषतः बड़ी सहानुभूति से किया गया है—क्लारेल (धर्मशास्त्र का एक विद्यार्थी) वाइन (एक सन्यासी)[2] और रात्फ, जो गोटे के प्रकार का परम्परावादी है। मेल्विले के अपने दिमाग के तीन प्रमुख सूत्रों के प्रतिनिधि ये तीन अमरीकी विभिन्न प्रकार के लातिनी, यूनानी, यहूदी और अरब पात्रों के सामने आते हैं और समस्त सभ्यता, विशेषतः अमरीकी सभ्यता के या योरोपीय आलोचकों के संशयवाद को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। एक अमरीकी (अंगार) अपने आत्मवाद की व्याख्या के साथ अमरीका सम्बन्धी निम्नलिखित कटु विचारों को भी जोड़ देता है—

---

१ हरमैन मेल्विले, 'व्हाइट जैकेट' (न्यूयार्क, १८५०) पृष्ठ ४६१-४६५।

२. हेनरी बेन्स के अनुसार वाइन के रूप में हॉथोर्न का चित्रण है।

ए. लोकतन्त्र



'एक परमाणु युग की प्रमुख भाषा,
और भी गन्दी दुष्टता से उत्पन्न,
''अच्छा है कि उस पर प्रतिबन्ध लगें
'नहीं तो विश्व के विश्राम भवन को ध्वस्त कर देगी'
कम से कम एशिया वहीं रोकेगा
'पूर्व की वह पुरानी निष्क्रियता।



'किन्तु नई दुनिया में चीजें जल्दी करती हैं
'न केवल मनुष्य 'राज्य तेजी से बदलता है
'गर्भवान अपने और सांप्रिये तेजी से जन्म देती है
उनीदें बहुगामीयों को जिनका विस्फोट निश्चित है—वह आएगा, वह आएगा।
''एक वर्णोत्तेजक बहुत परेशान कर सकता है
ऐसे लाख हों तो कैसा होगा ?
और प्रबल वाणिज् मताधिकार
'या पाले भावी पशु-शक्ति से
' उनका समर्थन करने को ? क्या बोयेगा
' तीव्र प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदायों के समूहों को
''ईसाइयत विहीन ? हाँ, लेकिन वह आयेगा।
''क्या आयेगा ? तुम्हारा सभी (का) युद्ध।''



''सभी सामान्यता का मृत स्तर
''एक सांप्र-संकलन चीन देखो
'शायद तुम्हारे विश्राम मैदानों पर जाति को लज्जित करे
' लोकतन्त्र के अन्धे युगों में।



'भाषा की प्रगति को उल्टी अनुपथ करना
और अन्तिम विरासत को नष्ट होवे;
'और पुकारना-सीमाओं के देवता के मन्दिर निर्मित करो !

'कोलम्बस ने धरती की रोमानियत समाप्त कर दी
"अब मनुष्य जाति के लिए कोई नयी दुनिया शेष नहीं।"[1]

ये निराशावादी पंक्तियाँ, कम से कम मेल्विले के लिए असाधारण रूप में सचमुच हैं और उनके अपने मतों को परिलक्षित करती प्रतीत होती हैं। किन्तु कविता का अन्त इस स्वर पर नहीं होता। तीनों अमरीकी, इन आरोपों का खण्डन तो नहीं कर पाते किन्तु अपनी नियति में सामान्य रूप से आस्था व्यक्त करते हैं और अपने यूरोपीय आलोचकों की 'वैज्ञानिक' आस्था और प्रकृतिवादी निराशावाद का खण्डन करते हैं।

आध्यात्मिक समाजवाद और स्वतः स्फूर्ति

विद्रोहियों में बड़े हेनरी जेम्स (प्रसिद्ध लेखक के पिता) सर्वाधिक मौजी बुद्धि के व्यक्ति थे, किन्तु उनके विद्रोह का रूप इतना विरोधाभासपूर्ण था कि एक ओर तो उन्हें 'स्वतः स्फूर्ति' की निरपेक्ष धारणा का सहारा लेना पड़ा और दूसरी ओर मनुष्य-जाति के ऐक्य में एक रहस्यवादी आस्था का। वे उस समूह के सर्वाधिक प्रमुख व्यक्तियों में से थे जिन्होंने असाधारण रीतियों से वैयक्तिकता के विकास की चेष्टा की। किन्तु उनका विश्वास था कि उनकी विशिष्ट स्वतः स्फूर्ति कोई वैयक्तिक गुण नहीं थी, वरन् एक आध्यात्मिक प्रसाद था, जिसमें सभी मनुष्य सहभागी हैं। उनका प्रयास था कि आध्यात्मिकता की धर्म-निरपेक्ष धारणा के सन्दर्भ में व्यक्तिवाद और समूहवाद में मेल बिठायें। किन्तु व्यवहार में वे कुछ अनुगामियों में विचारोत्तेजना उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाये। अपने तीखे व्यंग्य को उन्होंने अत्यधिक महत्त्व जहाँ से ढँका और उसे एक बड़ी ही विरल तरह, शैली में व्यक्त किया। वे एक प्रतिभाशाली लेखक और विधिनिषेधवाद के इतिहास में निस्संदेह ही सर्वाधिक शानदार और मौलिक धर्मशास्त्रियों में से एक थे।

विधिनिषेधवाद को समझने की आवश्यकता है। यह कानून और नैतिक व्यवस्था के विरुद्ध नास्तिक विद्रोह है। यह आत्मा के जीवन को आत्म-निर्भर, आत्म-केन्द्रित नैतिकता के प्रतिरूप के रूप में देखता है। हेनरी जेम्स का विधिनिषेधवाद इस कारण विशेषतः महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने इसे एक धर्म

---

1 मेल्विले, क्लारेल, खण्ड दो पृष्ठ २४० २४९-२५०।

निरपेक्ष रूप दिया। उन्होंने राजनीतिक लोकतन्त्र को मानव प्रकृति में, और ऐसे समाज की ओर प्रगति में आस्था की अभिव्यक्ति माना, जिसमें नियम शासन और सभी निजी भेदों का लुप्त हो जाना निश्चित है। 'हमारी वर्तमान नैतिकता की अस्वच्छता' के धार्मिक पक्षों के विरुद्ध ईश्वर अभिमुख आध्यात्मिक समाज को प्रस्तुत करके, जिसमें 'प्रोप्रियम (स्वत्व के लिए स्वीडेनबर्ग का शब्द) के साथ सम्पत्ति का लोप हो जाता है, वे निरपेक्षवाद को धार्मिक क्षेत्र में ले गये।[1]

अमरीकी प्रेस्बिटीरियन लोगों की आत्म-तुष्टि और संकीर्ण झगड़ों से चिढ़कर वे इंगलिस्तान गये, जहाँ उनके मित्र विल्किंसन ने उनका परिचय महान् भौतिकशास्त्री माइकेल फैरेडे से कराया। बौद्धिक और वैयक्तिक दोनों दृष्टियों से फैरेडे जेम्स के निकट थे और उन्होंने जेम्स का परिचय एक अत्यधिक असाधारण प्रकार के काल्विनवाद से कराया। फैरेडे ग्लासवादी चर्च के सदस्य या सैण्डेमैन के अनुयायियों में से थे। यह अलगाववादियों का एक छोटा-सा स्कॉटी पन्थ था जिसका विश्वास था कि ईश्वर का साम्राज्य केवल आध्यात्मिक है। धर्मसन्देहवादियों के प्रचलित उत्साह का प्रतिकार करने के लिए वे आस्था द्वारा औचित्य को बड़े ही सरल शब्दों में प्रस्तुत करने में सफल हुए थे। अपने ससुर जॉन ग्लास का अनुसरण करते हुए, रॉबर्ट सैण्डेमैन ने कहा था कि प्रभास्त्र की दृष्टि में किसी स्थापना के सत्य में सामान्य विश्वास ही आस्था है, और यह कि ऐसा विश्वास या तो स्वतः स्फूर्त होता है, या असम्भव। उन्होंने कहा था कि धर्म का सार, विश्वास करने की इच्छा में नहीं वरन् उन भद्रजनों के बीच भाई चारे के संस्कारों में होता है, जिन्हें ईश्वर ने अपनी प्रभु इच्छा से प्रसाद प्रदान किया हो। उनके अनुयायियों ने धर्म-सामुदायिक भाई-चारे का एक सरल रूप विकसित किया—बहुधा होने वाले समागम सम्पत्तियों में सहभाग सवैतनिक पादरियों और लोकपरक रुचियों का अभाव। 'यहाँ किसी व्यक्ति के गर्व को तुष्ट नहीं किया जाता। किसी के पास यह मानने का कोई आधार नहीं है कि ईश्वर की उस पर दूसरों से अधिक कृपा है।'[2] इस अति-लोकतान्त्रिक, अति सरल-श्रद्धा को जेम्स ने सम्पूर्ण हृदय से स्वीकार कर लिया। इसके बाद

---

१ हेनरी जेम्स, 'लेक्चर्स ऐण्ड मिसलेनीज़' (न्यूयार्क १८५२), पृष्ठ १५, १७, ४८। पहला भाषण, 'डेमाक्रेसी ऐण्ड इट्स इश्यूज़'; दूसरा भाषण, 'प्रापर्टी ऐज़ ए सिम्बल।'

२ राबर्ट सेण्डेमैन, 'लेटर्स ऑन थेरान ऐण्ड ऐस्पेसियो', ऑस्टिन वारेन कृत 'दी एल्डर हेनरी जेम्स' (न्यूयार्क, १९३४), में उद्धृत पृष्ठ ३६।

थे, वे लैमेनैस की भाँति सारे पादरी-वर्ग को 'पाखण्ड' और 'अहंकारपूर्ण नैतिकतावाद' मानने लगे। उन्होंने लैमेनैस के 'वर्ड्स' का एक अमरीकी संस्करण १८३४ में प्रकाशित किया और १८४ में 'रिमार्क्स ऑन दी एपॉस्टॉलिक कौंसिल्स' (धर्म-पैगम्बरों के उपदेश पर टिप्पणियाँ) शीर्षक एक संक्षिप्त निबन्ध लिखा।[1] उनके द्वारा अपनी आध्यात्मिक व्यथा और उससे उत्पन्न संकटावस्था के निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने नये विश्वास को बड़ी गम्भीरता से लेते थे।

"अपने जन्म के समय से ही, न केवल मैंने यह नहीं जाना कि किसी सच्ची आवश्यकता अपनी प्रकृति की किसी आवश्यकता की पूर्ति न कर पाना कैसा होता है, वरन् अपनी मनमर्जी के अनुसार मैं इतना अपव्यय भी कर सकता था, जो किसी गृहस्थी परिवार के निर्वाह की आवश्यकता के बराबर था। फिर भी मेरे निकट ही हजारों व्यक्ति थे, जो हर दृष्टि से मेरे समकक्ष हैं और कुछ दृष्टियों से मुझसे ऊँचे हैं, कभी अपने सारे जीवन में अच्छा भोजन नहीं पाया, अच्छी नींद नहीं पायी, अच्छा वस्त्र नहीं पाया, सिवाय अपनी निजी मेहनत के बल पर या किसी माता-पिता या सम्बन्धी की कीमत पर, और बिना कठोर सामाजिक दबाव के सम्मानजनक रूप में, शायद वे कभी एक बार भी अपनी मनमर्जी को पूरा न कर सके। निश्चय ही यह बिल्कुल न्यायोचित है कि मुझे भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधा हो और अपने निजी मकान से निकाल कर मुझे विस्थित किया जाय। किन्तु ईश्वरीय न्याय या औचित्य की यह घोर अवज्ञा है कि जिसे समाज कहा जाता है उसके द्वारा मुझे आजीवन ऐश्वर्य और अपनी मर्जी करने की सुरक्षा प्राप्त हो, जब कि इतने सारे अन्य स्त्री-पुरुष जो मुझसे ऊँचे हैं, सब दिन भोजन वस्त्र और निवास का कष्ट उठाते रहें और अन्ततः अपनी पीढ़ी के ही अज्ञान और अविकसितता में मर जायें यद्यपि दुर्भाग्यवश वैसे जोखिम में नहीं।

"मैं लम्बे अरसे से अनुभव कर रहा था कि उपेक्षित और अपमानित ईश्वरीय न्याय से उत्पन्न यह गम्भीर आध्यात्मिक चिन्तना बड़े समय से आत्मा के अन्दर दबा हुआ व्याकुल अन्तरात्मा की ज्वालामुखी जैसी ध्वनियों और आपदाओं में व्यक्त होता था किन्तु निकलने का कोई स्पष्ट मार्ग मुझे नहीं दिखता था। अन्ततः असीम कृतज्ञता के साथ, मैंने यह समझ लिया कि ईश्वरीय विधान का हाथ अगर मेरे गर्व और अहंकार को हर सुख आकांक्षा को निरन्तर अपमानित और नष्ट न कर देता तो मैं भी अत्यधिक अन्यायपूर्ण वर्तमान वस्तुस्थिति को स्वीकार कर लेने वाले अन्य किसी भी मनुष्य की तरह होता।

किसी बाह्य अभाव का मुझे ज्ञान न था। अविच्छिन्न सामाजिक प्रतिष्ठा मुझे प्राप्त थी। मैं प्रख्यात व्यक्तियों के वार्तालाप और मित्रता का आनन्द उठाता था। वस्तुतः मैं मनोभिलाषपूर्ण आह्लाद के समुद्र पर उतराता था। और सारे समय ईश्वरीय न्याय के प्रति मैं अगर हृदय से विरुद्ध नहीं तो इतना उदासीन था कि रह-रहकर मेरी प्रमादपूर्ण प्रवृत्तियों और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के समक्ष ईश्वरीय न्याय अगर आध्यात्मिक आतङ्क न उत्पन्न करता तो मैं अपने सारे दिन आत्म तुष्टि के उस झूले में ही झुलाए देता और मुझे कभी यह स्वप्न भी न आता कि मेरे साथी मनुष्यों की बाह्य आवश्यकताएँ—प्रकृति और समाज सम्बन्धी उनकी आवश्यकताएँ—वास्तव में केवल मेरी अपनी अधिक सच्ची आवश्यकता के ईश्वर के सन्दर्भ में मेरी अपनी अधिक आन्तरिक कंगाली के चिह्न और रूप हैं। अतः मेरे प्रसन्नता भरे आश्चर्य और सुखद आह्लाद की कल्पना करें जब स्वस्थ धार्मिक नम्रता की इस स्थिति में जब ईश्वरीय अप्रसन्नता से मेरी रक्षा करने के लिए, पाखण्डित्व के आवरण की एक नन्हीं सी पत्ती भी मेरे पास नहीं थी मैंने स्विडनबर्ग की आध्यात्मिक वस्तु की पहली झलक देखी या ईसाई सत्य की गम्भीर दार्शनिक अर्थमत्ता को पहचाना। इस सत्य ने तत्काल मुझे यह साहस प्रदान किया कि मैं बिना झिझके धर्म का परित्याग करके और अपने धार्मिक चरित्र की चिन्ता भेड़ियों के लिए छोड़ कर स्वयं अपनी पुनर्जीवित बौद्धिक प्रवृत्तियों का अनुसरण करूँ केवल जिनका ही ऐसा ध्यान प्रेरणाप्रद है। आध्यात्मिक ईसाइयत का अर्थ है, ईश्वर के नाम को पूर्णतः धर्म-निरपेक्ष बनाना या मानो के लिए उसे केवल मनुष्य की सामान्य या प्राकृतिक आवश्यकता से सम्बद्ध करना—वह आवश्यकता जिसमें सभी मनुष्य पूरी तरह एक हैं और फलस्वरूप मनुष्य की निजी या वैयक्तिक पूर्णता से उसका पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद करना जिसमें हर मनुष्य केवल रूप में अपने पड़ोसी से अलग है। ताकि सिवाय अपने सामाजिक या तथाकथित प्राकृतिक रूप में, मैं कभी भी ईश्वरीय कृपा की आकांक्षा न करूँ और ईश्वर की सहनशीलता का पात्र भी कठिनाई से ही बनूँ—अर्थात् उस रूप में, जिसमें सभी जातियों और धर्मों के मनुष्यों के विशाल समुदाय के साथ नैतिक दृष्टि से एक रूप रहूँ, किसी अन्य मनुष्य के प्रति विरोधी हितों की चेतना न बहुत करूँ बल्कि इसके विपरीत ईश्वर से हर ऐसी निजी आशा को अस्वीकार करूँ, जो पूर्णतः उसके द्वारा मानव-प्रकृति के उद्धार से उत्पन्न न हो, या शुद्ध और सीधे मानवजाति के प्रति ईश्वर के पक्षपातहीन प्रेम पर आधारित न हो।"[1]

१ विलियम जेम्स द्वारा सम्पादित, 'दी लिटरेरी रिमेन्स ऑफ़ दी लेट हेनरी जेम्स' (बोस्टन, १८८४), पृष्ठ ८९-९१, ९२, ९१।

हेनरी जेम्स को यह 'विश्वधाम की आध्यात्मिक वस्तु की झलक' १८४१ में स्वीडेनबर्ग की रचनाएँ पढ़कर प्राप्त हुई। शेफोमैन के अनुयायियों ने उनमें 'स्वत्व' को नष्ट कर दिया था और उन्हें पूर्णरूप से एक विश्वप्रतिपेक्षवादी बना दिया था। स्वीडेनबर्ग की रचनाओं (विशेषतः गार्थ विलकिन्सन द्वारा उनकी उदार व्याख्या) ने उन्हें 'जैसी प्राकृतिक मानवता' की एक विध्यात्मक धारणा प्रदान की।

जेम्स के लोकतन्त्र के दर्शन की सबसे प्रभावशाली और नाटकीय अभिव्यक्ति गृह-युद्ध आरम्भ होने के बाद न्यूपोर्ट रोड आइलैण्ड में उनका चार जुलाई (अमरीकी स्वतन्त्रता दिवस) का भाषण है। इसमें वे अमरीका को वर्ग समाज के विरुद्ध यूरोप के संघर्षों के उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस कारण एक ऐसे राष्ट्र के रूप में जिसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में अपना विश्वास सुरक्षित रखकर आगा 'आरम्भ करने की विशेष सुविधा' है। वे एक ऐसे सामूहिक लोकतन्त्र की उपलब्धि को राष्ट्र का सर्वोच्च लक्ष्य मानते हैं जिसमें सभी मनुष्य मनुष्य जाति के एक आध्यात्मिक संघ के सदस्य के रूप में सम्मिलित हों। यह लोकतान्त्रिक आदर्श निरूपित करने के बाद वे पूछते हैं—

अब हमारे राज्य की सन्देह-रहित रूप में यह भावना होने पर उसकी भौतिक संरचना में हमारे धार्मिक मर्म में भावुक उत्तराधिकारी में क्या दोष था जिसने इस औचित्यपूर्ण पैतृक भावना की अवज्ञा की और उसकी समृद्ध सम्भावना को निष्फल बनाया इस तरह से कि हम उसके बच्चों को धार्मिक लक्ष्यों के लिए कटिबद्ध मनुष्यों की आशापूर्ण और प्रेममय बिरादरी से सीमो, ऐश्वर्यपूर्ण पशुओं का झुण्ड बना दिया मर्यादाहीन राजनीतिक साहसिकों और लोभियों का समूह बना दिया जिसकी भ्रष्टता की दुर्गन्ध सागर के नीचे विस्तार पर छाई है, यूरोप के अन्दर तक फैली है और हर संघर्षरत उभरती हुई आशा को निराशा से रुग्ण कर देती है।[1]

उनका उत्तर था कि गुलामी-प्रथा और 'धनलोभ' की दो बुराइयाँ, जो अमरीकी राजनीति और सभ्यता की जड़ में रही हैं उन्हें राष्ट्र के आध्यात्मिक जीवन से निकालना आवश्यक है, अन्यथा अमरीकी 'पृथ्वी पर सर्वाधिक तिरस्करणीय लोग' बन जायेंगे। 'किसी राष्ट्र को जन्म के समय ऐसी सुन्दरतम

---

१ हेनरी जेम्स 'दी सोशल सिग्निफिकेन्स ऑफ आवर इन्स्टीट्यूशन्स ऐन ओरेशन डेलिवर्ड ऐट न्यू पोर्ट, आर आई जुलाई फोर्थ १८६१ (बोस्टन १८६१), पृष्ठ ११। जोसेफ ब्लॉ द्वारा सम्पादित 'अमेरिकन फिलोसॉफिक एड्रेसेज १७००-१९०० (न्यूयार्क १९४६) में यह भाषण पूरा का पूरा उद्धृत है पृष्ठ २१४ २४६।

आध्यात्मिक विरासत नहीं मिली। किन्तु कहा जाएगा कि उन्होंने 'उसे निर्लज्ज कामना और सफलीभूत सत्ता से भरे गन्दे से गन्दे भौतिक मिश्रण के लिए बेच दिया।'[1]

फ़ौरियर का अनुसरण करते हुए, हेनरी जेम्स ने 'सभ्यता' शब्द का प्रयोग तिरस्कार व्यक्त करते हुए 'नैतिकता में डूबे हुए' मनुष्य के लिए किया और परात्परवादियों में अपने सर्वाधिक सुसंस्कृत निकट मित्रों को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने विशेषरूप से 'उन बहुसंख्यक व्यक्तियों' की ओर इशारा किया।

'जो समाज की वर्तमान अति दुर्लभ संरचना से सन्तुष्ट होकर रहते और समृद्ध होते हैं—कवि साहित्यिक निबन्धकार अध्येता कलाकार परात्परवादी आकांक्षी या भाववादी वैज्ञानिक जो सारे ही अन्धे होकर नैतिकता को मानव जीवन का परम नियम समझते हैं।'[2]

जेम्स एमर्सन के विचारों के तीव्र आलोचक थे यद्यपि उनके निजी सम्बन्ध अच्छे थे। उनकी दृष्टि में आत्म-निर्भरता का सिद्धान्त दर्प और पाप की पराकाष्ठा था। एकत्ववादियों ने 'धर्म का एक रूप क़ायम रखा' इस कारण जेम्स ने उनकी हँसी उड़ाई और वे सभी धर्मों से अधिक नैतिकतावादी थे इस कारण उनकी भर्त्सना की। उन्होंने धर्मों के बाहर 'परात्परवाद' या 'नैतिक संस्कृति' या 'लोकोपकार' के रूप में भी नैतिकतावाद पर व्यंग्य किया और आडम्बरपूर्ण आत्मचेतना और आत्म-संस्कृति वाली न्यू-इंगलैण्ड की अन्तरात्मा'[3] को आमतौर पर अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया।

परात्परवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध हेनरी जेम्स के विद्रोह की पूर्णता का प्रदर्शित करने के लिए उनकी रचनाओं में से और भी प्रमाण इकट्ठा किये जा सकते हैं। किन्तु इस तथ्य की ओर ध्यान खींचना आवश्यक है कि उनके द्वारा व्यक्तिवाद का पुनःस्थापन प्लेटोनी भाववाद के पुनर्जीवन का प्रयास था।

हेनरी जेम्स के विचारों में निहित भाववाद इन सुबोध संक्षिप्त पंक्तियों में स्पष्ट हो जाता है—

मनुष्य के जीवन के तीन क्षेत्र हैं, एक बाहरी या शारीरिक दूसरा आन्तरिक या मानसिक और तीसरा अन्तरतम का या आध्यात्मिक। इनमें से हर एक अपनी समुचित एकता या संगठन की माँग करता है, पहला 'सभ्य' संगठन की, दूसरा 'वैज्ञानिक' संगठन की और तीसरा 'दार्शनिक' संगठन की। अब इनमें से हर एक संगठन या इकाई अपना उपयुक्त प्रकाश माँगती है। बोध का प्रकाश

---

१ वही पृष्ठ ४०।

२ वारेन की पुस्तक पृष्ठ २०२।

३ वही पृष्ठ २०१।

पूर्ण है। विज्ञान का प्रकाश तर्क-बुद्धि है। दर्शन का प्रकाश दिव्य-ज्ञान है। दिव्य-ज्ञान सारी मनुष्य जाति के लिए, ईश्वर के समक्ष मनुष्य की एकता स्थापित करता है जिसका एक बपतिस्मा और सभी का एक ईश्वर और पिता है जो सबके ऊपर है सबके द्वारा और सब में है। इस मनुष्य के स्पष्टत: सामाजिक होने के कारण इसमें सभी सदस्यों के साथ हर व्यक्ति की और हर एक के साथ सब की ऐसी एकता निहित है जो अन्तत: सारी जातीय विषमताओं को इस पृथ्वी पर से समाप्त करेगी या मनुष्यों के बीच उस सारी आधारहीन और असाध्य सारी बड़ी असमानता का अन्त करेगी जो हमारी वर्तमान बुराई और अपराध का बीज-स्रोत है।[1]

उदारवाद की इससे अधिक उग्र आलोचना इस देश में कोई और नहीं हुई यद्यपि इससे अधिक यथार्थवादी आलोचनाएं कई हैं। शायद हेनरी जेम्स के दर्शन की सबसे तात्कालिक व्यावहारिक उपलब्धि थी विलियम जेम्स के मन पर पड़ा उसका प्रभाव। इसके बारे में अधिक हम आगे चलकर कहेंगे किन्तु अपने पिता के 'लिटरेरी रिमेन्स' की विलियम द्वारा लिखित भूमिका से निम्न उद्धरण हेनरी जेम्स की विशिष्टता प्रकट करने के साथ-साथ विलियम के विरोधी दृष्टिकोण का पूर्वानुमान लगाने में भी सहायक होगा—

"हर परम नीतिज्ञता बहुत्ववादी होती है। हर परम धर्म एकत्ववादी होता है। इससे भी जेम्स की धार्मिक अन्तर्दृष्टि की गहराई का पता चलता है कि उन्होंने आरम्भ से अन्त तक हमेशा नीतिज्ञता को अपनी तीव्रतम आलोचना का लक्ष्य बनाया और उसे धर्म के समक्ष शत्रु के रूप में रखा, जिनमें से एक के सच्चे रूप में जीवित रहने के लिए दूसरे का पूर्ण नाश आवश्यक है। नीतिज्ञता और धर्म का भेद गहरी है। उनका विरोध बुनियादी है। केवल दोनों पक्षों के गम्भीरतम विचारक ही यह देख पाते हैं कि एक को जाना पड़ेगा।[2]

---

१ हेनरी जेम्स की अमर प्रभूत पुस्तक पृष्ठ ४१ ४१।

२ विलियम जेम्स, 'दी लिटरेरी रिमेन्स ऑफ़ दी लेट हेनरी जेम्स' (बोस्टन १८८५) पृष्ठ ११८-११९।

छठा अध्याय



विकासवाद और मानवी प्रगति

ब्रह्माण्डीय दर्शन

१८५९ में जबकि इंग्लिस्तान में 'दी ओरिजिन ऑफ स्पीसीज़' (डार्विन की प्रसिद्ध पुस्तक) छप रही थी मिडिलटन कनेक्टिकट में एक लड़का उत्कण्ठा से किसी ऐसी आस्था की तलाश कर रहा था, जो 'कालविनवाद के सर्वाधिक प्रवंचिकर रूप' का स्थान ले सके जिसमें वह पला था और जिसे अब वह निश्चित रूप से अस्वीकार करता था। जॉन फिस्क केवल सत्रह वर्ष के थे लेकिन वे यूनानी साहित्य और इतिहास, तुलनात्मक भाषाशास्त्र और 'धर्मशास्त्रीय परिकल्पनाओं' में डूबे थे। ज्ञान के इन क्षेत्रों में से किसी का भी ईसाई धर्मशास्त्र से मेल नहीं बैठता था। प्रकाश की आशा में वे उदार कालविनवादियों की ओर मुड़े, किन्तु वे उनके लिए व्यर्थ से भी बुरे थे। उन्होंने बाद में स्वीकार किया कि अन्य किसी वस्तु से अधिक बुश्नेल की आलंकारिक रचनाओं ने जिनमें भौतिक विज्ञान का पूर्ण अज्ञान था मेरे विश्वास को हिला दिया। अपनी तलाश में उन्हें अचानक दो पुस्तकें मिलीं जिन्होंने तत्काल एक ज्वलन्त आस्था भी प्रदान की और एक जीवन-लक्ष्य भी—जान हम्बोल्ट की 'कॉसमॉस' और बकिल की *'हिस्टरी ऑफ सिविलाइज़ेशन'*। पहली पुस्तक उनके लिए सृष्टि का महाकाव्य थी। दूसरी ने उन्हें प्रगति का कारण समझाया। दोनों को मिला देने पर प्रकृति और नैतिकता का एक पूर्ण विज्ञान उपलब्ध हो जाता। लेकिन क्या उन्हें मिलाया जा सकता था? क्या यह प्रदर्शित किया जा सकता था कि मानवी क्रिया के विज्ञान प्रकृति के विज्ञानों पर निर्भर हैं? क्या कोई तात्त्विक नियम है, जो प्राकृतिक इतिहास और मानव-इतिहास दोनों का संचालन करता हो? ऐसा नियम अगर उसका पता चल सके तो न केवल प्राकृतिक धर्मशास्त्र को पुनः उस उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करेगा जहाँ से वह च्युत हो

गया था, वरन् सभ्यता के उदय से विकासमान् नये विज्ञान को मानव प्रगति के दर्शन को भी अपने में समेट लेगा। एक सामाजिक भौतिकी ! उन्हें इसका पता लगाना होगा। कुछ महीनों के अन्दर ही उन्होंने वस्तुनिष्ठवाद को खोज लिया जिसमें विज्ञानों का अपना वर्गीकरण और ऐतिहासिक सोपानों का अपना नियम था जिससे यह प्रमाणित होता था कि सामाजिक विज्ञान का भौतिक विज्ञानों पर आधारित होना आवश्यक है। उन्हें यह भी पता लगा कि हर्बर्ट स्पेन्सर अपने तात्विक प्रगति के नियम और एक सर्वव्यापी कस्मेयी दर्शन के विवरण के द्वारा कौम्टे की विचार-व्यवस्था में सुधार करना चाहते थे। फिस्क ने तत्काल 'सिंथेटिक फिलॉसफी' के अंक मँगाने शुरू कर दिये।

ब्रह्माण्डीय दर्शन की माँग यूरोप के साथ-साथ अमरीका में भी व्यापक और गहरी थी, क्योंकि वहाँ भी प्राकृतिक विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ रही थी और एक सामान्य मत भौतिकों और धर्मशास्त्रियों में फैल गया कि अगर वे प्राकृतिक नियम और प्राकृतिक इतिहास से समझौता नहीं करते, तो उन्हें या तो कौम्ट-समर्थक प्रत्यक्षवादियों को सौंपी और अ-रक्षु भूमि ग्रहण करनी होगी, या फिर मानव प्रकृतियों के प्रमाण के दावे छोड़ने होंगे और तथ्यों का सहारा लेना होगा। नैतिक विज्ञान की स्वतन्त्रता अधिकाधिक अमान्य ही नहीं अवांछनीय भी हो गयी। यह कहीं ज्यादा अच्छा था कि मानव इतिहास में सृष्टि के प्रक्रियाओं को देख सकें, जो स्वयं, हम्बोल्ट के शब्दों में 'निरन्तर नये रूपों में विकसित और व्यक्त हो रही है'। या, जॉन फिस्क के अतिपूर्ण शब्दों में 'मनुष्य और प्रकृति एक समान ही अतल के पुल को पार कर रहे हैं जिसका आदि और अन्त शाश्वत के पूर्ण अन्धकार में डूबे हुए हैं।' रोमानी प्रकृतिवाद का यह ब्रह्माण्ड प्रकृति की वह स्थिर अनन्त व्यवस्था नहीं थी जिसमें ईश्वरवाद का विश्वास था, वरन् एक चल व्यवस्था थी, पार्थिव घटनात्मक और प्रगतिशील। संसार स्वयं अब एक दैविक पतन के क्रम में प्रकट हुआ, काल में जिसकी गति को देखा जा सकता है, यद्यपि उसका मूल और वस्तु हमेशा अज्ञेय रहेंगे। अगर उसे दूर विधाता के हाथ में होने की अपेक्षा ऐसा विश्व कम सुरक्षित प्रतीत होता था। किन्तु बुद्धिवाद में चित्रित पूँजीवत वस्तु की अपेक्षा, या न्यूटन-समर्थकों की केवल घूमने और चक्कर काटने वाली सृष्टि की अपेक्षा यह विश्व अधिक बोधगम्य, अधिक प्रेरक और मनुष्य के लिए अधिक उपयुक्त घर प्रतीत होता था। इस प्रकार ईश्वर की मानव समरूपता को समाप्त करने के नाम पर उन्नीसवीं शताब्दी के इन ब्रह्माण्डीय दार्शनिकों ने अपने लिए एक ऐसी प्राकृतिक व्यवस्था निर्मित कर ली, जो उनकी अपनी विशिष्ट समाज-व्यवस्था के अनुकूल थी।

'असीम और परम शक्ति जिसे मानव-समरूपता के सिद्धान्त ने अनन्त रीतियों से तत्त्वमीमांसा के निरूपणों द्वारा परिभाषित और सीमित करना चाहा है वह शक्ति है जिसे ब्रह्माण्डवाद तत्त्वमीमांसक निरूपणों द्वारा परिभाषित और सीमित नहीं करता और इस तरह स्वीकार करता है—जहाँ तक मानवी बोली और विचार की आवश्यकताएँ इसकी इजाजत देती हैं—कि वह असीम और परम है। इस प्रकार मानव-समरूपता से ब्रह्माण्डवाद तक प्रगति में धार्मिक दृष्टिकोण आरम्भ से अन्त तक अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार, विज्ञान और धर्म में जो विरोध दिखाई पड़ता है, जो बीच या पिछले ज़माने के लोगों को हमेशा आतंकित करता है और जिसे दूर करने में वस्तुनिष्ठ दर्शन को अपेक्षतया कम ही सफलता मिली ब्रह्माण्डीय दर्शन में पूरी तरह और हमेशा के लिए खत्म हो जाता है।'[1]

यहाँ इस ओर ध्यान दें कि फिस्क किस प्रकार देववाद[2] के लिए मानववाद की तुलना में प्रकृतिवाद के दावों पर जोर देते हैं। उनके लिए और उस काल के अन्य कई गम्भीर रूप में धार्मिक दार्शनिकों के लिए, प्राकृतिक ज्ञान की सापेक्षता की खोज आस्था की एक महान् युक्ति बन गयी एक असीम अज्ञातीत शक्ति का अस्तित्व प्रतिपादित करने का एक नया आधार बन गयी और इससे उन्हें सापेक्षवादियों की अपेक्षा 'परम' के स्वयं अपनी सत्ता तक पहुँचने की एक धार्मिक वस्तुनिष्ठ विधि प्राप्त हो गयी। फिस्क विद्वान् थे किन्तु उनमें आविष्कार बुद्धि नहीं थी। ब्रह्माण्डीय देववाद के प्रति इस उत्साह के दृष्टिकोण से स्पेन्सर के दर्शन की व्याख्या करने के अतिरिक्त फिस्क ने कुछ विशेष नहीं किया। और वे यह जान कर रुष्ट और परेशान दोनों ही हुए कि स्वयं स्पेन्सर ब्रह्माण्ड के विचार को समाविष्ट करने का महत्त्व नहीं समझते थे। स्पेन्सर के लिए वस्तुनिष्ठ विज्ञानों की संश्लिष्टि प्राथमिक लक्ष्य थी। इसके विपरीत फिस्क के लिए, विज्ञान इस कारण रोचक थे कि वे उन्हें 'प्रकृति के महाकाव्य' तक ले जाते थे और प्रकृति इसलिए रोचक थी कि वह उन्हें ईश्वर तक ले जाती थी।

उनका ब्रह्माण्डीय देववाद फिस्क को वस्तुनिष्ठतावाद के प्रति उनके युवा उत्साह से कितनी दूर ले गया इसका पता उस समय चला जब कॉन्कॉर्ड में

---

१ जॉन फिस्क 'आउटलाइन्स ऑफ कॉस्मिक फिलासफी' (लन्दन, १८७४), खण्ड १ पृष्ठ १८४।

२ थीइज्म अथवा ईश्वर के दिव्य-ज्ञान में विश्वास। इसके विपरीत ईश्वरवाद (डाइज्म) ईश्वर में विश्वास करता है, किन्तु उसके दिव्य-ज्ञान में नहीं।—अनु

दर्शन के बोस्टन स्कूल में उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण भाषण दिये। १८८४ के भाषण को उन्होंने 'मनुष्य की नियति' (दी डेस्टिनी ऑफ़ मैन) का शीर्षक दिया और १८८५ के भाषण को 'ईश्वर का विचार' (दी आइडिया ऑफ़ गॉड) का। अपने दूसरे भाषण की भूमिका में फिस्क ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि 'मनुष्य की नियति' को सामान्यतः इस रूप में समझा गया कि उसमें उनके 'मत-परिवर्तन' का संकेत मिलता था। अतः उन्होंने समझाया कि अब इस ओर इशारा करके कि विकास-सिद्धान्तों के फलस्वरूप एक कॉपरनिकस-विरोधी क्रान्ति हुई थी और उसने मनुष्य को 'सृष्टि में प्रमुखता के पुराने स्थान पर' पुनः प्रतिष्ठित कर दिया था उसी तरह जैसे वह दाँते और ऐक्विनास के समय में था। वे केवल अपने 'ब्रह्माण्डीय दर्शन' में एक और अध्याय जोड़ रहे थे। उन्होंने यह नहीं बताया कि उनकी व्याख्या कहाँ तक स्पेन्सर के 'अज्ञेय' के सिद्धान्त के अनुकूल थी। 'ऐसे कठिन मसले पर यही सबसे उत्तम है कि आदमी सहज अपनी ओर से बोले।'[1] इसके बाद उन्होंने इस प्रकार ईश्वर का वर्णन किया—

'वह असीम और अनन्त ऊर्जा जिससे सारी वस्तुएँ निकलती हैं' और जो वही शक्ति है जो 'हमारे अपने अन्दर चेतना के रूप में उभरती है,' निश्चय ही वह शक्ति है जिसे यहाँ ईश्वर के रूप में मान्य किया गया है। 'अज्ञेय' शब्द का मैंने जानबूझ कर प्रयोग नहीं किया। इस निबन्ध में यह शब्द कहीं नहीं है। यह केवल ईश्वर के एक पक्ष को व्यक्त करता है किन्तु उसे हर विचारधारा के कितने लेखक अपने लेते हैं इसका ऐसे प्रभाव होता है जैसे यह पूर्णतः ईश्वर का पर्याय हो और इसे अत्यधिक निराशात्मक निरर्थक बातों का विषय बनाया जाता है, जिनकी बाढ़ मध्य-युगीन शास्त्रीयता के बाद अब आयी है।—

"सम्पूर्ण सृष्टि के हर तत्त्व में जीवन धड़क रहा है—वस्तुतः जीवन के सामान्य सीमित अर्थ में नहीं वरन् व्यापक अर्थ में। जीवित और अजीवित का अन्तर जो कभी पूर्ण समझा जाता था अब सापेक्ष अन्तर बन गया है और

---

१ जान फिस्क, 'दी आइडिया ऑफ़ गॉड ऐज़ ऐफ़ेक्टेड बाइ मॉडर्न नॉलेज' (बोस्टन, १८८०) भूमिका, पृष्ठ २१। १८७१ में हक्सले के साथ 'ईश्वर सम्बन्धी एक गम्भीर बातचीत' का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, 'हक्सले ने अपने असाधारण ढंग से कुछ विचार मेरे सामने व्यक्त किये—हम दोनों दयनीय प्राणी, ऐसे विचारों को समेटने की चेष्टा करते हुए, जो मानव मन के लिए बहुत बड़े हैं।'—जॉन स्पेन्सर क्लार्क, 'लाइफ़ ऐण्ड लेटर्स ऑफ़ जॉन फ़िस्क' (बोस्टन और न्यूयार्क, [illegible]१७), पृष्ठ [illegible]।

भौतिक गठन में व्यक्त जीवन सार्विक जीवन का केवल एक विशिष्ट रूप माना जाता है।

"पदार्थ को मृत या जड़ मानने की धारणा वस्तुतः एक ऐसी विचार-व्यवस्था की है जिससे आधुनिक ज्ञान आगे निकल गया है। अगर भौतिकी का अध्ययन कुछ सिखाता है तो यही कि प्रकृति में कहीं भी जड़ता या स्थिरता नहीं है। सब कुछ ऊर्जा से कम्पित है।

"सृष्टि की हर धड़कन में जो असीम और अनन्त शक्ति व्यक्त होती है, वह और कुछ नहीं जीवित ईश्वर है। हरेक-घटना का अनन्त स्रोत और कुछ नहीं वह अनन्त शक्ति है, जो औचित्य का निर्माण करती है। आप उसे खोज कर नहीं पा सकते। आप उसमें अपनी आस्था रखें और आपके विरुद्ध नरक के द्वार हावी नहीं होंगे क्योंकि अनन्त के विरुद्ध न ज्ञान है न समझ, न विमर्श।"[1]

फिस्क के श्रोताओं का यह सोचना सम्भव था कि वे अपने पूर्वजों के विश्वास पर वापस लौट गये थे। कारण कि यद्यपि उनके ब्रह्माण्डीय दर्शन की भाषा कुछ बदली हुई थी किन्तु आस्था ईसाई थी और उद्देश्य मेल करने का था। कॉन्कॉर्ड में एकत्रित परात्परवादी भी उनसे असहमत नहीं हो सकते थे।

चार्ल्स सैण्डर्स पियर्स की ब्रह्माण्डीय परिकल्पना बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी क्योंकि उन्होंने यूरोपीय विचार-व्यवस्थाओं विशेषतः जर्मन का ध्यानपूर्वक अध्ययन तो किया किन्तु उनमें अत्यधिक मौलिक और चतुर संशोधन किये, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व निरन्तर बढ़ रहा है यद्यपि उनकी अपनी पीढ़ी के समय उनकी बातें विभिन्न प्रकार की अज्ञातावस्था में पड़ी रहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने शेलिंग के प्रभाव में अपने 'सिनेकिस्टिक अगापास्टिक टाइकिज्म' (नैरन्तर्यवादी स्नेहपूर्ण संयोगवाद) का निरूपण करना आरम्भ किया।

"मैं कॉन्कॉर्ड के पड़ोस में—यानी कैम्ब्रिज में—उस समय पैदा हुआ और पला था, जब एमर्सन हेज और उनके मित्र उन विचारों का प्रचार कर रहे थे जो उन्होंने शेलिंग से प्राप्त किये थे और शेलिंग ने प्लोटिनस, बोएम और पूर्व (एशिया) के चाहितात रहस्यवाद से पीड़ित ईश्वर वाले भिन्न-भिन्न लोगों से प्राप्त किए थे। किन्तु कैम्ब्रिज के वातावरण में कॉन्कॉर्ड के परात्परवाद के कीटाणुओं का नाश करने वाले बहुतेरे तत्त्व मौजूद थे और मुझे इसका ज्ञान नहीं है कि उन कीटाणुओं में से किसी ने मेरे अन्दर प्रवेश किया हो। फिर भी यह सम्भव है कि कुछ सम्भावित कीटाणु रोग का कोई हल्का रूप अनजाने

---

१ फिस्क, 'दी आइडिया ऑफ़ गॉड' पृष्ठ ९५—९८; १४६-१५०, १५६, १६७।

ही मेरी आत्मा में प्रविष्ट हो गया और वह अब लम्बी परिपाक के बाद गणितीय धारणाओं और भौतिक खोज-कार्य में प्रशिक्षण द्वारा संशोधित होकर ऊपर आ गया है।' १

निरपेक्ष भाववाद से पीयर्स ने एक विकासवादी विचार ग्रहण किया जो 'परिवर्धन' या 'व्यष्टीकरण' की सामान्य धारणा से बिल्कुल भिन्न था। सृष्टि जो पहले मात्र अव्यवस्था थी धीरे-धीरे 'मन की आदतें' ग्रहण करके व्यवस्थित और बोधगम्य बनती जा रही है। यह प्रक्रिया तीन सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होती है—(१) स्वतःस्फूर्ति स्वतन्त्रता परिवर्तनीयता संयोग—विश्व में खेल करने की संयोग का सहारा लेने की एक प्रवृत्ति है और प्रकृति का कोई भी कार्य पूर्णतः परिशुद्ध नहीं होता। पीयर्स का विचार था कि संयोग या स्वतःस्फूर्ति का यह तत्व जीव-द्रव्य के गठन और व्यवहार में विशेषतः स्पष्ट और महत्वपूर्ण होता है। इस जीवित पदार्थ, 'मनुष्य के कांचोपम सार' में सीखने और आदतें डालने की योग्यता प्रमुख है, किन्तु ऐसा मानने का कोई कारण नहीं कि किसी जीवित अवयव (टिशू) ही आदतें डाल सकते हैं। (२) एकरूपता नियम, निरन्तरता दूसरा सिद्धान्त है। आदि स्वतःस्फूर्ति के स्थान पर नियमितता आ जाती है। व्यष्टि पारस्परिक दबाव या संघर्ष में एक दूसरे को अपने-अपने स्थान पर रखते हुए, एक साथ चलते हैं। वस्तु-वस्तु का नियम पालन एक पूर्णतः यान्त्रिक व्यवस्था का प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत वस्तुएं जहाँ तक व्यवस्थित हैं, वहीं तक मानसिक गुण प्रदर्शित करती हैं। (३) सामान्यता, आदत आत्मीकरण प्रसार-विस्तार में यह तत्व दिशा प्रदान करने वाला है। नियमितता बढ़ती या फैलती है। पीयर्स ने प्रकृति में व्यवस्थित गति के फैलाव या सामान्यता को मन में सामान्य धारणाओं की अभिवृद्धि के साथ जोड़ा। यह प्राकृतिक आकर्षण जो वस्तुओं को वर्गों या जातियों में व्यवस्थित करता है, विकास का मूल सिद्धान्त है—यह उद्देश्य आकांक्षा या 'विकासात्मक प्रेम' है और प्लेटोनी प्रेम की भाँति ज्ञान का स्रोत है, क्योंकि इसका लक्ष्य सामान्यता है।

"विकास और कुछ नहीं है सिवाय एक निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के। कोई वर्ग उन वर्गों से अधिक आधारभूत और व्यापक नहीं हो सकते जो किसी उद्देश्य द्वारा निरूपित होते हैं। कोई भी उद्देश्य एक सक्रिय आकांक्षा होता है। यह आकांक्षा हमेशा सामान्य होती है। यद्यपि हमेशा किसी 'प्रकार' की वस्तु या

---

१ चार्ल्स हार्टशोर्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित 'कलेक्टेड पेपर्स ऑफ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स (कैम्ब्रिज १९३१-३५) खण्ड १, पृष्ठ ८०।

घटना होती है, जिसकी आकांक्षा की जाती है। कम से कम उस समय तक जब तक इच्छा-शक्ति का तत्त्व जो हमेशा किसी विशिष्ट अवसर पर किसी विशिष्ट वस्तु के लिए सक्रिय होता है इतना प्रभावी नहीं हो पाता कि आकांक्षा के सामान्य चरित्र को दबा दे। इस प्रकार आकांक्षाएँ वर्गों को और अत्यधिक व्यापक वर्गों को जन्म देती हैं। किन्तु आकांक्षाएँ, उनकी पूर्ति के प्रयास में अधिक विशिष्ट हो जाती हैं।[1]

पीयर्स ने डार्विन के नैसर्गिक वरण के सिद्धान्त की व्याख्या 'केवल आकस्मिक परिवर्तनों' के रूप में की और विकासात्मक प्रेम के अपने सिद्धान्त के साथ इसका मेल बिठाने का विशेष प्रयास नहीं किया।

अमरीकी वैज्ञानिक-दार्शनिकों के बीच ऐसी सारी ब्रह्माण्डीय और विकासवादी परिकल्पनाओं का कम से कम एक कट्टर विरोधी था—नार्थम्प्टन, मसाचुसेट्स के चॉन्सी राइट 'गणितज्ञ नाटिकल अल्मनक' (नाविक पंचांग) के गणक 'अमेरिकन ऐकेडेमी ऑफ आर्ट्स ऐण्ड साइन्सेज' के अभिलेखन सचिव कुछ समय तक हार्वर्ड में प्राध्यापक प्रसिद्ध 'मेटाफ़िज़िकल क्लब' के सदस्य, मिल और डार्विन दोनों के निष्ठावान् शिष्य। राइट और पीयर्स में प्राकृतिक विज्ञान की दार्शनिक व्याख्या के सम्बन्ध में कई बार लम्बी बहसें हुईं। पीयर्स यथार्थवाद उद्देश्यवाद और अव्यवस्था से व्यवस्था के विकास के रूप में विकास के अपने सामान्य सिद्धान्त का समर्थन करते। राइट उन्हें समझाने की चेष्टा करते कि सृष्टि के इतिहास में कोई दिशा नहीं है, वरन् केवल 'ब्रह्माण्डीय मौसम' होता है और यह कि डार्विनवाद की व्याख्या विकास की एक सामान्य पद्धति के रूप में नहीं वरन् शारीरिक प्रतिजीविता की समस्याओं में उपयोगितावाद के एक विशिष्ट प्रयोग के रूप में करना चाहिये। राइट ने आलोचनात्मक रीति से और दृढ़पूर्वक प्राकृतिक विज्ञान के एक अनुभववादी रूप और नैतिकता तथा उद्देश्यवाद के एक उपयोगितावादी सिद्धान्त का समर्थन किया। सृष्टि के साथ साथ मानव जीवन सम्बन्धी उनकी सामान्य धारणा उनके एक प्रारम्भिक लेख में बड़े सुन्दर और संक्षिप्त रूप में व्यक्त हुई है।

'मनुष्य हर जगह अपने को प्रकृति में प्रतिबिम्बित पाता है। मनमौजी अस्थिर, हमेशा आराम खोजता हुआ हमेशा नई जुरअतों से प्रेरित जिनमें से सबसे बड़ी यह स्वयं उत्पन्न करता है—एक पवित्र प्रकृति के सक्रिय जीवन की रक्षा और उसका पोषण करता हुआ या नष्ट और ध्वस्त करता हुआ—स्वयं नई क्षमताओं को जन्म देने में असमर्थ किन्तु जो बच रही हैं उन्हें समृद्धि न

१ हार्टशोर्न और वीस की पुस्तक खण्ड १ पृष्ठ २०५-२०६।

समय पोषित करता और संकट के समय तीव्रतर बनाता हुआ—वह स्वयं अपने जीवन के कार्यकलाप को प्राकृतिक तत्वों के संघर्ष में देखता है । उसकी शक्तियाँ और कार्यकलाप उसकी आध्यात्मिक क्षमताओं से सम्बन्धित होते हैं जैसे सजीव शक्तियाँ संघटक जीवन से सम्बन्धित होती हैं । उसकी उच्चतर प्रकृति का पुनर्जीवन एक गुप्त, आकस्मिक, असम्बद्ध सृजन के समान होता है । हवा जहाँ चाहती है, बहती है और तुम उसकी आवाज सुनते हो लेकिन यह बता नहीं सकते कि वह कहाँ से आती है और कहाँ जाती है । १

एक स्थल पर जिसका लक्ष्य निस्सन्देह पीयर्स के विकास सिद्धान्त का विरोध था यद्यपि उसमें जिक्र ऐनैक्सागोरस का है, राइट ने आदि-व्यवस्था के सिद्धान्त की आलोचना की और वास्तविक अव्यवस्था में अपना विश्वास प्रकट किया ।

'ऐसा सामान्यत: कहा जाता है कि ऐनैक्सागोरस ने प्रकृति के वर्णन में नाउस' (यूनानी शब्द) या एक स्वतन्त्र कर्ता के रूप में बुद्धि का प्रवेश कराया । इस बात की जानकारी उतनी नहीं है कि उसके साथ ही और इसके प्रतिपक्ष के रूप में उन्होंने एक और भी विशिष्ट विचार आदि-अव्यवस्था का विचार रखा । ऐनैक्सागोरस की अव्यवस्था विरोधी बुद्धि भौतिकविदों और समग्र सृष्टि में ईश्वर को देखने वालों की धारणा नहीं है । एकमात्र अव्यवस्था जिस पर प्राचीन अणुवादियों ने विचार किया वह अव्यवस्था है जो उन्होंने हमेशा अपनी चारों ओर अस्तित्व में देखी । वह अव्यवस्था जो किसी भी समय, समग्र सृष्टि की अनिश्चित उलझी हुई वास्तविक अवस्था में हमेशा रही थी । २

राइट प्रति-क्रियाओं में विश्वास करते थे लेकिन किसी सामान्य विकासात्मक प्रवृत्ति में नहीं । उनका विचार था कि इन प्रति-क्रियाओं को यान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर समझा जा सकता है । मिसाल के लिए, उन्होंने मौसम की गतियों को सामान्य यन्त्रात्मक सिद्धान्त के अनुसार समझाने की चेष्टा की । विकास सिद्धान्त के विरुद्ध और विशेषत: स्पेन्सर के सिद्धान्त के विरुद्ध उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा—

"हमें बड़ा शक है कि 'विकास' का नियम उन घटनाओं में दिखाई नहीं पड़ेगा जिनका प्रत्यक्ष या दूरस्थ सम्बन्ध व्यक्ति संघटनों के जीवन से न हो या

---

१ चॉन्सी राइट 'दी विण्ड्स ऐण्ड दी वेदर', 'दी ऐटलाण्टिक मन्थली' खण्ड १ (१८५८) पृष्ठ २७८ ।

२ चॉन्सी राइट, 'फिलॉसॉफिकल डिस्कशन्स (न्यूयॉर्क १८७७), पृष्ठ ३८१ ।

संकेत-चिह्नों के चेतन प्रयोग और अन्ततः आत्म-चेतना का उदय हुआ होगा। इसलिए कि यद्यपि चेतना स्वभावतः बहिर्मुखी होती है, किन्तु यह 'अपने आप में इतनी स्पष्ट होती है कि प्रसंग से ध्यान आकर्षित करे' और इस तरह एक विशिष्ट प्रकार का कार्य अर्थात् विमर्श उत्पन्न करे।

"इस प्रकार विमर्श अधिकांश तत्त्वमीमांसक जैसा मानते प्रतीत होते हैं उसके विपरीत मनुष्य में एक मूलतः नयी मन:शक्ति नहीं होगी जो उतनी ही भास्वर और तात्त्विक हो जितनी स्मृति या अमूर्त ध्यान-शक्ति या साधारणीकरण में संकेत-चिह्नों और प्रतिनिधि बिम्बों का कार्य। बल्कि यह अपनी वस्तुओं की प्रकृति द्वारा अन्य मन:शक्तियों से अपने विरोधों में निर्धारित होगी। व्यक्ति-पक्ष में उसकी संरचना उन्हीं मन:शक्तियों से होगी—अर्थात् स्मृति, ध्यान और अमूर्तन—या इन्द्रियों के प्राथमिक उपयोग में प्रयुक्त होती है। इन्द्रियाँ स्मृति को जो कुछ प्रदान करती हैं वह उन्हीं पर कार्य करेगा किन्तु उनके द्वारा प्रस्तुत समूहीकरण या अनुक्रम की किन्हीं व्यवस्थाओं से स्वतन्त्र होकर कार्य करेगा उसी तरह जैसे विभिन्न इन्द्रियाँ स्वयं एक-दूसरे से स्वतन्त्र कार्य करती हैं।"[1]

इस निबन्ध में सर्वाधिक महत्त्व की बात यह है कि राइट ने चेतना और आत्म चेतना के अन्तर को समझा है और आत्म चेतना की व्याख्या करने का गम्भीर प्रयास किया है, जब कि उनके समकालीन अधिकांश लोग चेतना के साथ ही व्यस्त थे।

डार्विन से प्रोत्साहन पाकर राइट ने मन के एक नये प्रकार के विज्ञान की अवधारणा की एक नया उद्देश्यवाद जो चेतना आदर्शों आचार और नैतिकता का मूल्यांकन (मानव) जाति की अतिजीविता के सम्बन्ध में या अधिकतम संख्या के अधिकतम सुख' के लिए उनकी उपयोगिता के आधार पर करे। यह विज्ञान उपयोगितावाद और डार्विनवाद का संश्लिष्ट होगा।

पश्चिमी सफरमैना समाज में विकास-सिद्धान्त आदर के साथ सुना जाने लगा तथा इसमें जासिफ लाकोंट के तुलनात्मक विकास के दर्शन का काफी प्रभाव था। वे न्यूयार्क नगर के चिकित्सकों और सर्जनों के कालेज के स्नातक थे अभाशिस और ये के अधीन हार्वर्ड में अनुसन्धानकर्ता काम रहे और तब उन्होंने भूविज्ञान में सैद्धान्तिक व्याख्या और व्यवहार दोनों ही क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योग दिया। वे उत्तर दक्षिण और पश्चिम के दूर-दूर तक बिखरे हुए क्षेत्रों में रहे, पढ़ाया और खोज की किन्तु उनका सर्वाधिक प्रभाव

१ चॉन्सी राइट, 'फ़िलॉसॉफ़िकल डिस्कशन्स' (न्यूयार्क १८७७), पृष्ठ-२१७।

कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में पढ़ा, जहाँ उन्होंने १८६९ से लेकर १९०१ में अपनी मृत्यु तक पढ़ाया। भू-विज्ञान में अपनी अनुसंधानात्मक खोजों के अलावा वे अपनी मुख्य वैज्ञानिक देन शक्तियों के रूपान्तरण के अपने सिद्धान्त को मानते थे, जिसे उन्होंने १८५९ में 'दी कोरिलेशन ऑफ़ फ़िज़िकल, केमिकल ऐण्ड वाइटल फ़ोर्सेज़' (भौतिक रासायनिक और जीवशक्ति का सहसम्बन्ध) शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया। दर्शन में वे विकास के साधारण सिद्धान्त के उत्साही समर्थक थे। अपने प्रारम्भिक काल में उन्होंने डार्विन के नये व्युत्पत्ति द्वारा विकास (इवल्यूशन बाइ डेराइवेशन) के सिद्धान्त के विरुद्ध अगासिज़ के 'अभिवृद्धि' (डेवेलपमेण्ट) सिद्धान्त का समर्थन किया किन्तु नैरन्तर्य और रूपान्तरण सम्बन्धी अपने अध्ययन के प्रभाव से वे नये विकासवाद के उत्साही प्रचारक बन गये जिसकी व्याख्या प्रकृति में एक निहित इच्छाशक्ति द्वारा सृजन की निरन्तर प्रक्रिया के रूप में की गयी। उन्होंने कहा कि विकासवाद "सचमुच महान् आनन्द की महान् सूचना है, जो सभी लोगों को प्राप्त होगा। मेरा युग इस नगर में इस सन्देश का प्रचार न करे। इसे वास्तविक अर्थ में प्रदर्शित किया जा सकता है कि विज्ञान में जो सारे अधार्मिक और भौतिकवादी निहितार्थ प्रकट होते हैं, वे विज्ञान की इस अन्तिम सन्तान, या यूँ कहें कि विज्ञान और दर्शन के परिणाम की इस धुरी द्वारा उलट दिये गये हैं।"[1]

वे विकासवाद को न केवल भू-विज्ञान और जीव-विज्ञान के तथ्यों से निकलने वाला केवल आगमन मानते थे वरन् काल में कारणता के नियम के रूप में, विज्ञान का एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त मानते थे उसी प्रकार, जैसे गुरुत्वाकर्षण दिक् में कारणता का नियम है।

"विकास 'पूर्णतः' निश्चित है। विकास पूर्व रूपों से नये की व्युत्पत्ति के नियम के रूप में, विकास, नैरन्तर्य के नियम के रूप में 'बनने' के एक सार्विक नियम के रूप में। इस अर्थ में यह न केवल निश्चित है, वरन् स्वयंसिद्ध है। 'काल में क्रमिक घटनाओं का सम्बन्ध (कारणता) उतना ही निश्चित है जितना 'दिक् में एक साथ उपस्थित वस्तुओं के सम्बन्ध (गुरुत्वाकर्षण) का। पहला 'एक आवश्यक सत्य है, दूसरे का आमतौर पर आकस्मिक सत्य के अन्तर्गत रखा जाता है।"[2]

---

१ विलियम जानस आर्मेस द्वारा सम्पादित 'दी आटोबायग्राफ़ी ऑफ़ जोसेफ़ लीकोण्टे' (न्यूयार्क १९०३), पृष्ठ ३३५।

२ जोसेफ़ लीकोण्टे, 'इवोल्यूशन इट्स नेचर इट्स एविडेन्स, ऐण्ड इट्स रिलेशन टु रिलिजस थॉट' दूसरा, संशोधित संस्करण (न्यूयार्क १८९४), पृष्ठ ६५-६६।

लाकोंन्टे ने जड़ पदार्थ से लेकर, जीवन से होते हुए 'आत्मा' और आत्म-चेतना तक ऊर्जा के 'वैयक्तीकरण' की रचना की। जीवन के वैयक्तीकरण की चरम परिणति मनुष्य में होती है और आत्मा के वैयक्तीकरण की ईसा के 'दैवी व्यक्तित्व' में। इस 'धार्मिक अभिकल्पना' की दृष्टि से देखने पर, सारे 'असत् अभिकल्पना' के तर्क अनावश्यक हो जाते हैं और सारी बुराई का अन्त अच्छाई में होता दिखाई देता है। लाकोंन्टे ने इस सिद्धान्त को 'वैकासिक भाववाद' कहा। यद्यपि उनके शिष्य जोसिया रॉयस ने इसके बहुतेरे तर्कों और उत्साहों को अस्वीकार किया किन्तु रॉयस के अपने भाववाद पर इसका निर्माणात्मक प्रभाव था।

एक अन्य जीवशास्त्री जिन्होंने दर्शन में बहुत अधिक हाथ डाला पेन्सिलवेनिया के प्रोफेसर एडवर्ड ड्रिंकर कोप (१८४०-९७) थे। वे एक जीवाश्म शास्त्री (फासिल-विज्ञान के अध्येता) थे पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे और कई पश्चिमी वैज्ञानिक अभियानों के खोज-कार्यों में उन्होंने भाग लिया था। बड़ी देर से उन्होंने जीव-विज्ञान में लैमार्क के सिद्धान्तों का समर्थन किया था। एक वैज्ञानिक के रूप में उन्होंने प्राग्-अनुभविक परिकल्पना का खण्डन किया और स्वयं अपने शब्दों में सत्य को तत्त्व मीमांसा से अलग करने की चेष्टा की। किन्तु 'योग्यतम के उद्गम' सम्बन्धी उनकी परिकल्पनाएँ जो स्वयं उनके लिए सच्ची वैज्ञानिक स्थापनाएँ थीं उनके साथी जीवशास्त्रियों की दृष्टि में सन्देहास्पद अनुमितियाँ थीं जो ऐसी मान्यताओं पर आधारित थीं जिनकी प्रामाणिकता जाँची नहीं जा सकती थी। वे स्वयं अपने 'आर्केस्थेटिज्म' के सिद्धान्त को (आदि-मन या चेतना सम्बन्धी स्थापना) 'तत्त्वमीमांसात्मक विकासवाद' कहते थे किन्तु उनका विचार था कि उनके पास उसके लिए अच्छा प्रमाण है। उनके विचार में वह एक वैकासिक मनोविज्ञान के साथ-साथ एक वैज्ञानिक ईश्वरवाद का भी आधार था। वे विकासवाद के सिद्धान्त के लिए इसे आवश्यक समझते थे कि जैविक विकास की प्रक्रियाओं को केवल वातावरण द्वारा प्राकृतिक चयन के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय आन्तरिक शक्तियों के कार्य के रूप में समझाया जाये।

तदनुसार कोप ने 'योग्यतम के उद्गम' की व्याख्या एक विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा की कल्पना करके की जिसे उन्होंने 'अभिवृद्धि-शक्ति' या 'बाथमिक' ऊर्जा कहा और जिसमें ऊर्जा या शरीर में कार्य के लिए उपलब्ध ऊर्जा के सामान्य व्यय की पूर्ति करने की विशिष्ट शक्ति थी। इस शक्ति को जिसे जीव-कोष विभाजित होने और जीवों की अभिवृद्धि करने में प्रदर्शित करते हैं उन्होंने चेतना संवेदन या मन के साथ एकरूप माना। इस प्रकार मन मुख्यत एक

अनुभूति रूप के रूप में प्रकट हुआ, जो जीव को चेतन-प्रयास के द्वारा अपनी प्रतिजीविता के लिए उपयोगी आदतें विकसित करने के योग्य बनाता है।

कोप ने इस सिद्धान्त का विकास न केवल एक प्राकृतिक धर्मशास्त्र के रूप में किया, वरन् नैतिकता के इतिहास या 'विकास' की व्याख्या के एक विषय के रूप में भी किया।

'संगठित नैतिक गुणों की शक्ति मानवी कार्य की प्रेरणाओं के रूप में सामान्यतः उन गुणों से अधिक नहीं हो सकती जिनसे मनुष्य को शारीरिक परिरक्षण प्राप्त होता है। ऐसे मनुष्यों के वंश, जिनमें सहानुभूति और उदारता के गुण, आत्मरक्षा के गुण पर हावी हो जाते हैं अनिवार्य ही समाप्त हो जायेंगे। इन दो प्रकार की शक्तियों के बीच समानता से अधिक उच्च-स्तर पर मनुष्य जाति विकास के द्वारा नहीं पहुँच सकती (व्यक्तियों में कभी-कभी चाहे वो भी प्रकट हो)। इसके बाद मनुष्य जाति में मस्तिष्क की सामाजिक शक्तियों का संगठन हमेशा दबा दिया जायेगा। फलस्वरूप अपने-आप बिना सहायता के विकास के उच्चतम फल के रूप में हम केवल इतनी ही आशा कर सकते हैं कि सामाजिक शक्तियों और ऐसी शक्तियों में जिनमें स्वार्थ मात्र अधिक है, एक सन्तुलन प्राप्त करें। इस स्थिति में, विरोधी प्रकार की प्रेरणाओं के बीच निर्णय स्थगित हो जाता है और साधारणतः यह हमेशा सन्देहास्पद रहेगा कि फलस्वरूप होने वाला कार्य न्यायपूर्ण और उचित होगा या इसके विपरीत। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिक विकास की प्रक्रिया से आत्म-निर्भर निःस्वार्थ न्याय' की कोई संगठित मनःशक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। वरन् परिणाम न्याय और अन्याय के बीच निरन्तर चलने वाला एक संघर्ष होता है।[1]

यहाँ कुछ मोटी-मोटी रेखाओं में बुद्धि के उस आनुवंशिक सिद्धान्त का एक रूप प्रस्तुत है, जिसका आगे चलकर अमरीकी दर्शन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। अतः शारीरिक समानान्तरवाद में प्रचलित विश्वास के विरुद्ध चेतना की अनुरूपी शक्तियों के इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के लिए कोप पर बड़ा जोर डाला गया,[2] और उनके उत्तर से यह स्पष्ट था कि वे नैतिक दर्शन और मनोविज्ञान दोनों के लिए अपने विचारों के महत्त्व को अच्छी तरह समझते थे। विलियम जेम्स की भाँति वे उनमें सर्वमनोवाद और स्वतन्त्रता में विश्वास का एक आधार देखते थे किन्तु उन्हें सबसे अधिक चिन्ता इसकी थी कि इन विचारों को चेतना की एक कार्यात्मक व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करें।

---

१ एडवर्ड ड्रिंकर कोप 'दी ओरिजिन ऑफ दी फिटेस्ट' (न्यूयार्क, १८८९) पृष्ठ २१७-२१८।

२. एडमण्ड मॉण्टगोमरी के साथ हुई एक चर्चा में।

आनुवंशिक सामाजिक दर्शन

'इस बात को जितनी जल्दी समझ लिया जाए उतना अच्छा कि विज्ञान एक है और हम भाषा को चाहें या दर्शन धर्मशास्त्र इतिहास या भौतिकी को हमारे सामने वही एक समस्या रहती है, जिसकी परिणति हमें स्वयं अपने ज्ञान में होती है। भौतिकी का ज्ञान केवल मनुष्य की इन्द्रियों से ही सम्बन्धित है विचार का उसके दिमाग से धर्म का उसकी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के रूप में इतिहास का उसके कार्यों के विवरण के रूप में और भौतिक विज्ञानों का उन नियमों के रूप में जिनके अन्तर्गत वह रहता है। दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों को अभी यह सीखना है कि कोई भौतिक तथ्य उतना ही पवित्र होता है, जितना कोई नैतिक सिद्धान्त। हमारी अपनी प्रकृति हमसे इस दोहरी निष्ठा की माँग करती है।'[1]

इन शब्दों के साथ प्रोफेसर अगासिज़ ने डार्विन की रचना 'दी एक्सप्रेशन ऑफ़ दी एमोशन्स इन मैन ऐण्ड ऐनिमल्स' (मनुष्य और पशुओं में भावनाओं की अभिव्यक्ति) का स्वागत किया। उन्होंने आगे कहा 'मैं केवल इच्छित ही सकता हूँ कि डार्विन ने यह मोड़ ले लिया है, यद्यपि विषय के प्रतिपादन से मैं बहुत अधिक असहमत हूँ।' एक विकासवादी पीढ़ी के लिए यह एक बौद्धिक की बौद्धिक वसीयत थी और उस पीढ़ी के समक्ष इसने सार्वभौमिक पुनर्निर्माण के लक्ष्य प्रस्तुत किये। कारण कि अगर विज्ञान एक है तो प्राकृतिक ज्ञान अवश्यम्भव आत्म ज्ञान की ओर ले जायेगा। इस कार्य के लिये नये जीव-विज्ञान ने विश्लेषण के श्रेष्ठ साधन प्रस्तुत किये। वातावरण के प्रति अनुकूलन' 'स्वत स्फूर्त परिवर्तन' अस्तित्व के लिए संघर्ष उत्तरजीवन मूल्य' ये एक साथ ही भौतिक और उद्देश्यवादी धारणाएँ संस्कृति के सभी सोपानों पर और सभी संस्थाओं की आलोचनाओं में सरलता से प्रयुक्त हो सकती थीं। इस प्रकार आनुवंशिक पद्धति ने नीतिज्ञों और सामाजिक वैज्ञानिकों का एक ऐसा कार्यक्रम प्रदान किया जिसमें विकासवादी-रुचि का केन्द्र मानवीय उद्गमों और ईश्वरीय योजनाओं की समस्याओं से हटकर दैनिक जीवन और समकालीन समाज की समस्याओं पर आ गया।

---

१ लुई अगासिज़, 'इवोल्यूशन ऐण्ड दी परमानेन्स ऑफ़ टाइप', दी अटलांटिक मन्थली' खण्ड तेंतीस (१८७४), पृष्ठ ६५।

सामाजिक वातावरण की माँगों के प्रति जैविक अनुकूलन के उदाहरणों के रूप में और परिवर्तनशील स्थितियों के सापेक्ष तर्कशास्त्र भाषा रिवाज और नियम की आनुवंशिक व्याख्या या सामाजिक मनोविज्ञान का नया विज्ञान तेजी से विकसित हुआ। आनुवंशिक सामाजिक मनोविज्ञान के प्रयास को विशेष महत्व इस तथ्य ने प्रदान किया कि विकासवादी प्रकृतिवादियों की पूर्व पीढ़ी सामाजिक विकास को गम्भीरता से लेने में असफल रही थी। ऐसा समझा जाता था कि एक ही जाति के अन्दर भी सभी पशु मूलतः स्वयं अपने अस्तित्व के लिए अलग संघर्ष करते-रहते हैं। हर जीव हर अन्य जीव के 'बाहरी' 'भौतिक' वातावरण का अंग था। उन लोगों ने भी संघर्ष को व्यक्तिगत रूप में ही देखा जिनकी रुचि मुख्यतः मनुष्य-जाति या अनुगृहीत जातियों के प्रतिजीवन के सिद्धान्त में थी। यह बात स्पेन्सर के अनुयायियों के लिए विशेषतः सच थी क्योंकि आठवें दशक के प्रारम्भ में प्रकाशित स्पेन्सर के समाजशास्त्र ने 'योग्यतम के प्रतिजीवन' के सन्दर्भ में आर्थिक और राजनीतिक व्यक्तिवाद का सिद्धान्त निरूपित किया। इस प्रकार जिसे बैगेहॉट ने अधिक उचित रूप में 'योग्यतम पौलिटिकी' कहा था उसे दुर्भाग्यवश 'सामाजिक डार्विनवाद' कहा जाने लगा और हक्सले के अथकतम प्रयासों के बावजूद डार्विन के जीव-विज्ञान की आमतौर पर भर्त्सना की गयी कि वह स्पेन्सर के समाजशास्त्र को अनिवार्य बनाता है।

अमरीका में स्थिति इंग्लिस्तान से भी अधिक व्यंग्यपूर्ण थी क्योंकि स्पेन्सर के सर्वप्रसिद्ध अमरीकी शिष्य जॉन फिस्क ने योग्यतम के प्रतिजीवन के नैतिक पक्ष के अधिक कठोर रूपों का परित्याग करके विकासवादी सिद्धान्त को स्वयं अपना सामाजिक परार्थवादी और धार्मिक रंग प्रदान किया था। अतः स्पेन्सर के समाजशास्त्र का समर्थन करने का भार एक अन्य शास्त्री ने उठाया। वे थे येल कालेज में राजनीति और सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर विलियम ग्राहम समनर। १८७९ में सामान्य मन्दी के समय वे इस प्रकार के सार्वजनिक भाषण कर रहे थे—

अगर हमें योग्यतम का प्रतिजीवन पसन्द नहीं है तो हमारे सामने एक ही विकल्प है और वह है अयोग्यतम का प्रतिजीवन। पहला सभ्यता का नियम दूसरा सभ्यता-विरोध का। हमारे सामने ये दोनों ही रास्ते हैं या हम अतीत भाँति दोनों के बीच भूलते रह सकते हैं किन्तु कोई तीसरी योजना—जिसका साथ समाजवादी महसूस करते हैं—ऐसी योजना जिसमें अयोग्यतम का पोषण के साथ-साथ सभ्यता की प्रगति हो कभी किसी का नहीं मिलेगी।[1]

१ विलियम ग्राहम समनर, 'एसेज', ए० जी० केलर और आर० एम० द्वारा सम्पादित, (न्यू हेवेन, १९३४), खण्ड दो, पृष्ठ ५६।

निस्सन्देह समनर न केवल स्पेन्सर के समाजशास्त्र को वरन् आत्म-निर्भरता मिताचार और दूरदर्शिता की परम्परागत यांकी नैतिकता को भी व्यक्त कर रहे थे। 'हर व्यक्ति गम्भीर, उद्यमी दूरदर्शी और बुद्धिमान हो और अपने बच्चों को भी ऐसा ही बनाये तो कुछ ही पीढ़ियों में गरीबी समाप्त हो जायेगी।'[1] जब पुराना स्कॉटी धर्मशास्त्र इस प्रकार सामाजिक डार्विनवाद की भेड़िये की खाल पहन कर सामने आया तो अच्छे प्रकृतिवादी गड़रियों के लिए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण था कि वे रक्षा के लिए डार्विनवाद का अधिक सामाजिक रूप सामने रखें।

पशु-बुद्धि के नये मनोविज्ञान के विकास से समस्या और भी तीव्र हो गयी। इसने सारे मानसिक दर्शन को 'चयनात्मक विचार' के सिद्धान्त में अन्तरित कर देना चाहा। चेतना की व्याख्या अब बाह्य प्रभावों को निश्चेष्ट ग्रहण करने की या अन्तःप्रज्ञात्मक यथार्थ की मनःशक्ति के रूप में नहीं की जाती थी। इसकी व्याख्या 'व्यवहारिक' रूप में की गयी कि यह जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित साधनों के चयन में जीव के अन्दर भावना की और टटोलने की व्यवस्था से सम्बद्ध है और इस कारण स्वभावतः भावनाओं के अधीन है। भावनाएँ स्वयं व्यवहार में या 'अवरोध रूप में' अभ्यनुकूलन का माध्यम और प्रतिजीवन का साधन हैं। जब १८९० में जेम्स का 'मनोविज्ञान' (साइकोलोजी) प्रकाशित हुआ तो सक्रिय चयनपूर्ण व्यवहार के रूप में मन की यह अवधारणा तत्काल लोकप्रिय हो गयी और जेम्स के शब्दों में इसने मनोविज्ञान को 'एक प्राकृतिक विज्ञान' बनने की महत्वाकांक्षा प्रदान की। मन की प्रकृति सम्बन्धी यह अवधारणा व्यक्तिवादी समाजशास्त्र के लिए बड़ी अनुकूल थी क्योंकि इस पुरानी मान्यता [illegible] स्थान पर कि मन का लक्ष्य तर्कबुद्धि है और तर्कबुद्धि का सत्य अब यह आवश्यक हो गया कि प्राकृतिक चयन की जैविक प्रक्रिया में उपयोगी परिवर्तनों के रूप में तर्कबुद्धि की योग्यताओं और वैज्ञानिक विधियों का ही औचित्य सिद्ध किया जाये। जेम्स ने स्पेन्सर के इस सारे सिद्धान्त का ही खण्डन करने के लिये कि मन 'बाह्य' शक्तियों द्वारा बनता है और यह अनुभव की व्यवस्था को ही पुनः निर्मित करता है, डार्विनवाद का उपयोग प्रभावशाली रीति से किया। जेम्स के अनुसार मनुष्य का मन 'स्वतः स्फूर्त' परिवर्तनों के एक अनुक्रम का फल है, जिनमें से किसी को भी प्राकृतिक नियम के सन्दर्भ में नहीं समझा जा सकता। हम नहीं जानते कि परिवर्तन कैसे आते हैं किन्तु एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद वातावरण उनका मूल्यांकन करता है और जो उपयोगी होते हैं

१ वही, खण्ड १, पृष्ठ १०६।

वे बने रहते हैं। जेम्स ने विश्व की व्याख्या करने वाली उपयोगी अवधारणाओं का आविष्कार करने के मनुष्य के विभिन्न प्रयत्नों को भी मनुष्य के मानसिक 'परीक्षण द्वारा भूल-सुधार' और 'बाह्य व्यवस्था' के बीच संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया। इस संघर्ष में विचार की 'वैज्ञानिक' पद्धतियाँ 'संगत' सिद्ध हुईं और इस कारण बच रहीं।

"हमारे विचार की वस्तुओं में उन सम्बन्धों की, जिन्हें 'वैज्ञानिक' कहा जाता है, विशेषता यह है कि यद्यपि वे नैतिक और सौन्दर्यात्मक सम्बन्धों की भाँति ही, बाह्य व्यवस्था का आन्तरिक 'प्रतिरूप' नहीं हैं, किन्तु उनका उस व्यवस्था से टकराव नहीं है। आन्तरिक शक्तियों की क्रिया से एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद ऐसा पाया जाता है कि उनकी—कम से कम उनमें से कुछ की अर्थात् वे ही जो इतने काफी समय तक जीवित रहे हैं कि अभिलेखन की वस्तु बनें—उन दिक्-काल सम्बन्धों से संगति है जो हमारे द्वारा गृहीत प्रभावों में—प्रकट होते हैं।

"दूसरे शब्दों में, यद्यपि प्रकृति की सामग्री हमारे प्रयासों के फलस्वरूप नैतिक रूप धीरे-धीरे और कठिनाई से ही ग्रहण करती है और सौन्दर्यात्मक रूप उसकी अपेक्षा कुछ सरलता से ग्रहण करती है, किन्तु वैज्ञानिक रूप वह अपेक्षतया आसानी से और पूर्णता के साथ ग्रहण कर लेती है। यह सच है कि यह रूपान्तर शायद कभी भी समाप्त नहीं होगा। केवल हमारे चाहने मात्र से ही बोध-अव्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती और न उसके स्थान पर वांछित प्रत्यय ही तत्काल उत्पन्न हो जाते हैं। बहुधा यह एक कठिन संघर्ष होता है और बहुतेरे वैज्ञानिक किसी खोज के बाद, ब्राह्मण पुजारी की भाँति कह सकते हैं—इस कार्य में रक्त बह जाता है। किन्तु एक के बाद एक हुई विजय हमें आश्वस्त करती है कि हमारे शत्रु का अन्त पराजय में होगा।

"'वैज्ञानिक' होने की आकांक्षा वर्तमान पीढ़ी को ऐसी स्पष्ट है, हममें से [illegible] एक माँ के दूध के साथ उसे इस तरह पी लेता है कि हमें किसी ऐसे प्राणी की कल्पना कठिन लगती है जो इसका अनुभव न करता हो और इसे मुक्त रूप में एक बिल्कुल विशिष्ट और एकांगी रुचि मानना, जो यह वास्तव में है और भी कठिन लगता है। किन्तु वास्तव में, हमारी जाति के सुसंस्कृत व्यक्तियों में भी कम ही ऐसे हैं जो इसमें सहभागी रहे हों। इसका आविष्कार तो केवल एक या दो पीढ़ी पहले हुआ था।"[1]

---

१ विलियम जेम्स, 'दी प्रिंसिपल्स ऑफ साइकॉलाजी' (न्यूयार्क, १८९०), खण्ड २, पृष्ठ ६३९-६४०।

अतः जेम्स के अनुसार मानसिक विकास का निरूपण प्राकृतिक नियमों के *सन्दर्भ में नहीं वरन् मनुष्य के अत्यधिक अस्थिर दिमाग के कार्यात्मक क्रिया* कलाप में आकस्मिक बिम्बों, कल्पनाओं और स्वतःस्फूर्त परिवर्तनों की आकस्मिक उत्पत्तियों[1] के सन्दर्भ में करना चाहिये। अतः इतिहास के कोई नियम नहीं हैं।

'मूलतः ये सभी वस्तुएँ और अन्य सभी संस्थाएँ किसी व्यक्ति के दिमाग में प्रतिभा की चमक थीं जिनका हमारे वातावरण में कोई चिह्न नहीं था। जाति द्वारा स्वीकृत होने और उसका उत्तराधिकारी बन जाने के बाद ये जिन नयी प्रतिभाओं को जागृत करती हैं उन्हें नये आविष्कारों और खोजों की प्रेरणा देती हैं और इस तरह प्रगति होती चलती है। किन्तु प्रतिभाओं को निकाल लें, उनकी विशिष्टताओं को बदल दें तो वातावरण में कितनी बड़ी हुई एकरूपताएँ दिखाई देंगी? हम चुनौती देते हैं कि श्री स्पेन्सर या अन्य कोई व्यक्ति इसका उत्तर दे।

'सीधा-सा सत्य यह है कि विकासवाद का 'दर्शन' (परिवर्तन के विशिष्ट मामलों सम्बन्धी हमारी विशेष जानकारी से अलग) एक तत्त्वमीमांसक सिद्धान्त है और अन्य कुछ नहीं।[2]

मानवी इतिहास और मानसिक शक्तियों सम्बन्धी यह रोमानी धारणा लेकर जेम्स ने डार्विनवादी सामाजिक दर्शनों में व्यक्तिवाद का अपना रूप भी जोड़ दिया। स्पेन्सर-विरोधी प्राकृतिक नियम विरोधी और निर्बन्धता-विरोधी होते हुए वह समनर के व्यक्तिवाद का प्रतिपक्षी था। फिर भी इसने उन भौतिकों के सामने एक और कठिनाई उपस्थित की जिनकी सभ्यता की प्रगति में विकासवादी आस्था थी।

अनुवंशिक सामाजिक मनोविज्ञान की दिशा में पहली महत्त्वपूर्ण देन जॉन फिस्क के इस सिद्धान्त की थी कि विकास ने एक 'मानसिक' मोड़ ले लिया था। *लेस्टर एफ॰ वार्ड ने इस सिद्धान्त को अत्यधिक विस्तृत रूप दिया। १८९३ में* उनकी रचना 'दी साइकिक फैक्टर्स ऑफ सिविलाइज़ेशन (सभ्यता के मानसिक तत्त्व) प्रकाशित हुई जिसमें, जैसा कि उन्होंने कहा 'ऊपरी ढाँचे को ज्यादा ऊँचा और नींव ज्यादा चौड़ी बना कर' उन्होंने अपनी 'डाइनैमिक सोशियालॉजी' (गत्यात्मक समाजशास्त्र—१८८३) को सम्पूर्ण करने की चेष्टा की थी। ज्यादा

---

१ विलियम जेम्स, 'दी विल टु बिलीव, ऐण्ड अदर एसेज़ इन पॉपुलर फिलासफी' (न्यूयार्क, १८९७) पृष्ठ २४०।

२ वही, पृष्ठ २५१।

गहरी नींव शोपेनहॉर में प्राप्त की गयी थी। ज्यादा ऊँचा उठारी होगा व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं का हल करने में सामाजिक शक्तियों के सिद्धान्त का उपयोग करने का और इस प्रकार एक नये विज्ञान की नींव डालने का प्रयास था जिसे उन्होंने 'उन्नयनवाद' मानवी या सामाजिक स्थिति के सुधार या उन्नयन का विज्ञान कहा। शोपेनहॉर से वार्ड को बुद्धि और संकल्प का सही सम्बन्ध समझने में सहायता मिली थी। अब उन्होंने सामाजिक कार्य की व्याख्या संकल्प या इच्छा की शक्ति द्वारा प्रेरित एवं क्रियात्मक कला के रूप में की। बुद्धि या वस्तुनिष्ठ मन भावना या वैयक्तिकता के पहले नहीं आता जैसा कि सम्वेदनावादी मनोविज्ञान के अनुसार पहले माना जाता था। यह इच्छा की व्यक्तिनिष्ठ शक्तियों के पीछे आता है क्योंकि वैयक्तिकता या संकल्प ही यथार्थ और जीवन है। शोपेनहॉर के मनोविज्ञान से जो 'स्वाधारणा' जेम्स के समान ही था वार्ड को यह विचार मिला कि सामाजिक संकल्प या सामाजिक कार्यकलाप के प्रादुर्भाव से विकास ने एक नया मोड़ ले लिया था।

"निम्नतर पशुओं की भाँति ही केवल उनसे अधिक तीव्रता के साथ इच्छाओं द्वारा प्रेरित होकर, उन उच्चतर और अधिक सामान्य वृत्तियों की तलाश करते हुए, जिन्हें सामूहिक रूप में सुख कहा जाता है, मनुष्य ने लगभग निम्नतर पशुओं की भाँति ही अचेतन रूप में सार्वत्रिक निरन्तर और बेचैनी भरे कार्यकलापों के द्वारा विभिन्न बहुमुखित और अथक प्रयास किये हैं जिनके फलस्वरूप उनके चारों ओर के वातावरण में व्यापक तथा और विशाल परिवर्तन हो गये हैं। निम्नतर प्राणियों में हुए परिवर्तनों की भाँति ये परिवर्तन हमेशा उपयोगी ही नहीं रहे, किन्तु सब मिलाकर प्रगतिशील रहे हैं और सामूहिक रूप में, जिसे हम सभ्यता कहते हैं, उसका निर्माण करते हैं। अपने आप में ये न प्रकृति का लक्ष्य है न मनुष्य का और जहाँ तक इसके फलस्वरूप लाभ हुआ है वहाँ इसका श्रेय लाभ समाज को हुआ है जो इसके प्रति उतना ही निर्वैयक्तिक और चेतनारहित है, जितना पशु क्रियाकलाप के सम्बन्ध में 'विकास' को मानना होगा।

'समाज की लक्ष्यात्मकता मनुष्य' पशु जीवन की भावात्मकता की प्रतिपक्षी है। जिस मानसिक तत्व की चर्चा की गयी है वह प्रकृति के स्थान पर कला को ले आता है। अगर हम जैविक प्रक्रियाओं को प्राकृतिक कहते हैं तो हमें सामाजिक प्रक्रियाओं को कृत्रिम कहना होगा। जीव-विज्ञान का मूल सिद्धान्त प्राकृतिक चयन है, समाजशास्त्र का कृत्रिम चयन। योग्यतम का उत्तरजीवन केवल सबल का उत्तरजीवन है और उसमें दुर्बल का विनाश निहित है और उसे यही कहना अधिक उचित होगा। अगर प्रकृति में दुर्बल के विनाश द्वारा प्रगति

होती है, तो मनुष्य की प्रगति पुर्वस के संरक्षण द्वारा होती है और सर्वत्र ऐसा ही है। सारे सन्दर्भ उलट जाते हैं।[1]

वार्ड ने देखा कि बुद्धि या जैसा कि विकास के उद्भवों के लिए अब उन्होंने उसे कहा 'अन्तःप्रज्ञा' विमर्श की मनःशक्ति नहीं है, वरन् सामाजिक वातावरण में अत्यधिक व्यावहारिक' होती है।

'मनुष्य जब चाहे कितनी भी आदिम सामाजिक स्थिति में आया तो दूरदर्शिता का प्रयोग हुआ जो अपने आप में एक प्रकार की अन्तःप्रज्ञात्मक मनःशक्ति है और भविष्य के लिए 'व्यवस्था करने की आदत पैदा हुई। इसका तात्कालिक फल हुआ कि उसकी आवश्यकताओं पर तात्कालिक भूख की सीमा नहीं रही। परिणामस्वरूप जीविका के साधनों की उसकी इच्छा सावधिक होने के बजाय निरन्तर हो गयी और इस लक्ष्य की पूर्ति के प्रयास अपरिमाप्य बन गये। मनोवेग और उसकी तुष्टि के साधन दोनों ही स्वयं समाज के विकास की शर्तें थी और इसी दृष्टि से देखें तो वे सभ्यता के भी प्रमुख तत्त्व रहे हैं। किन्तु यहाँ चूँकि मनुष्य को मनुष्य से निपटना पड़ता है, वैसा ही एक संघर्ष चलता रहा, यद्यपि एक उच्चतर बौद्धिक स्तर पर जैसा पशु-जगत् में चलता है वस्तुतः अपने अस्तित्व को बनाये रखने का संघर्ष।

इस महान् संघर्ष में पशु-शक्ति का स्थान घटता गया और मन का बढ़ता गया। निम्न प्रकार की चतुराई और पशुवत् बुद्धिमत्ता बहुत प्रमुख होने पर भी उनका स्थान उसी मानसिक सिद्धान्त की अधिक सूक्ष्म और परिष्कृत अभिव्यक्तियों ने ले लिया। संस्थाओं की अभिवृद्धि और सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक आचार-संहिताओं की स्थापना से इस विकास में बड़ी तेजी आई। अनगढ़ पशु-प्रवृत्तियाँ असहनीय थीं, और अगर अन्यथा नहीं तो प्राकृतिक चयन के द्वारा समाज ने उनका परित्याग कर दिया।[2]

वार्ड ने इस प्रकार एक 'सामाजिक संकल्प' के कार्य को समझाया और इससे उन्हें समाज-तन्त्र या सामूहिक सामाजिक कार्य के कोम्टे के आदर्श में विश्वास करने का एक नया आधार मिला। अतः उनका गत्यात्मक समाजशास्त्र न केवल समनर और गिडिंग्स के समाजशास्त्र का प्रत्युत्तर बना बल्कि उसने अमरीकी समाजशास्त्रियों की नयी पीढ़ी को स्पेन्सर द्वारा प्रवर्तित विकासवादी पूर्वग्रहों का परित्याग करने की भी प्रेरणा दी। इसने उदार अर्थशास्त्रियों द्वारा

---

१ लेस्टर एफ वार्ड, 'दी साइकिक फैक्टर्स ऑफ सिविलाइज़ेशन' (बोस्टन, १८९३), पृष्ठ १२६-१३०, १३५।

२ वही, पृष्ठ १५६-१५७।

विकासवादी विश्वास को एक क्रियात्मक सामाजिक सन्देश में परिवर्तित करने के प्रयास का भी समर्थन किया ।

सामाजिक विश्लेषण का एक अधिक दीर्घजीवी देन शिकागो के एक समूह की थी—ऐल्बियन स्माल, जान डुई, जेम्स एच० टफ्ट्स, जार्ज एच० मीड, डब्ल्यू० आई० टॉमस और थार्स्टीन वेबलेन । डार्विन और पूर्ववर्ती आनुवंशिकी विदों की भाँति उन्होंने सामाजिक कार्यों और आदर्शों तथा भौतिक वातावरण के प्रति शारीरिक अनुकूलन के गुणात्मक अन्तर पर जोर दिया । व्यवहारात्मक विश्लेषण के द्वारा उन्होंने यह दिखाया कि सामाजिक सम्बन्धों और अन्य सम्बन्धों में निर्णायक अन्तर होता है । इनके सामाजिक कार्यों के मनोविज्ञान ने मन के आनुवंशिक सिद्धान्त के प्रति एक नया और अधिक गम्भीर दृष्टिकोण प्रदान किया ।

सामाजिक मनोविज्ञान को डुई की मुख्य देन यह थी कि उन्होंने मानवी अनुभव के विकास में कार्यात्मक और नैतिक रुचियों का महत्व प्रदर्शित किया । १८८४ में उन्होंने इस ओर इंगित किया कि लेस्टर वार्ड और अन्य विकासवादियों ने आनुवंशिक विश्लेषण को पर्याप्त गम्भीरता से नहीं लिया बल्कि उन्होंने अत्यधिक मात्रा में डार्विन-पूर्व के मनोविज्ञान को अनालोचनात्मक रीति से अपना लिया था । और १९०२ में उन्होंने स्पेन्सर द्वारा नृवंशशास्त्रीय सामग्री के प्रयोग का मजाक उड़ाया ।

टॉमस ने 'सेक्स और सोसायटी' में आदिम मनुष्य की अवस्था से सभ्य मनुष्य की विभिन्न रुचियों के विकास का वर्णन किया और समाज के विभिन्न परिवर्तनों—विचार, संस्थाएँ, विश्वास, मान्यताएँ, भाषा, कलाएँ, साहित्य—से होकर चेतना के 'सामान्य सूत्र' का मार्ग चिह्नित करने की चेष्टा की । इस प्रकार उन्होंने वुण्ट के लोक-मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक जीवशास्त्रीय और व्यवहारात्मक लोक-मनोविज्ञान की नींव डाली ।

व्यवहारात्मक परिवर्तनों द्वारा विचार-शक्ति के रूपान्तरण और संस्कृति के नये प्रकारों के विकास के इस विचार ने शिकागो वालों को एक नया सामाजिक मनोविज्ञान प्रदान किया । आनुवंशिक तर्कशास्त्र के लिए इसके महत्व को तो छोड़ ही दें । डुई और उनके साथियों ने तत्काल शिक्षा और नैतिकता की समस्याओं में इस सामाजिक मनोविज्ञान का प्रयोग किया । उदाहरण के लिए, ऐल्बियन स्माल के 'गत्यात्मक' समाजशास्त्र ने समाज के विज्ञान को सामाजिक अभिवृद्धि या सुधार के एक अभिन्न अंग के रूप में देखा । टफ्ट्स ने दिखाया कि नीति शास्त्र में ऐसी विकासवादी पद्धति का प्रयोग किस प्रकार आत्म-सिद्धि के आदर्शवादी सिद्धान्त को एक नया अर्थ प्रदान करने के लिए किया जा सकता है । भाषा

और प्रतीकात्मक *प्रक्रियाओं के विश्लेषण के द्वारा आत्मा के सामाजिक निर्माण के* इस सिद्धान्त में मीड ने सर्वाधिक विस्तृत और व्यवस्थित योग दिया। उन्होंने वुण्ट के मुद्रा सिद्धान्त को अपना प्रस्थान-बिन्दु बनाया और उस विचार को एक उग्र सामाजिक सिद्धान्त में विकसित किया।

'चूँकि जीव और वातावरण एक-दूसरे का निर्धारित करते हैं और अपने अस्तित्व के लिए परस्पर आश्रित हैं अतः जीवन-प्रक्रिया को पर्याप्त रूप में समझने के लिए उसे उनके परस्पर सम्बन्धों के सन्दर्भ में देखना चाहिए।

सामाजिक क्रियाकलाप की प्रक्रिया के सन्दर्भ में सामाजिक वातावरण का *अर्थ प्राप्त होते हैं। वह वस्तुनिष्ठ सम्बन्धों का एक संगठन है, जो सामाजिक* अनुभव और व्यवहार की प्रक्रियाओं में ऐसे क्रियाकलाप में लगे जीवों के समूह के सम्बन्ध में बनता है। सामाजिक वातावरण के साथ व्यवहार की सामाजिक प्रक्रिया का सम्बन्ध—या सामाजिक जीव का सम्बन्ध—वैसा ही होता है जैसा *भौतिक-जैविक वातावरण के साथ वैयक्तिक जैविक क्रियाकलाप की प्रक्रियाओं* का सम्बन्ध—या व्यक्ति जीव का सम्बन्ध।

'सामाजिक जीव-गठन—अर्थात् व्यक्ति जीवों का एक सामाजिक समूह स्वयं अपना वस्तुओं का विशेष वातावरण होता है या बनाता है, उसी तरह जैसे *व्यक्ति जीव स्वयं अपना वस्तुओं का विशेष वातावरण होता है या बनाता है।*

मानव पशु एक व्यक्ति के रूप में कभी भी वातावरण पर नियन्त्रण प्राप्त नहीं कर सकता था। यह नियन्त्रण सामाजिक संगठन के द्वारा उत्पन्न हुआ है। जिस बोली का वह प्रयोग करता है, विचार का वह अन्त ही जो उपलब्ध है सामाजिक उत्पत्तियाँ हैं। स्वयं अपने आत्मा को वह अपने सामाजिक समूह के दृष्टिकोण को अपना कर ही प्राप्त कर पाता है। अपना-आप बनने के लिए उसे सामाजिक बनना पड़ता है। अतः जब आप इस विकास की बात करते हैं मनुष्य के रूप में उसके एक चरम-बिन्दु पर पहुँचने की बात करते हैं तो आपको यह समझना होगा कि वह उस बिन्दु पर वहीं तक पहुँचता है जहाँ तक मनुष्य के रूप को सामाजिक इकाई के एक जैविक अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है। अब कुछ भी इतना सामाजिक नहीं है इतना सार्विक नहीं है जितना विज्ञान। कोई भी मनुष्य को मनुष्य से समूहों को समूहों से अलग करने वाली सीमाओं का वैसी सफलता से नहीं लाँघता, जैसा विज्ञान करता है। विज्ञान में कोई संकीर्ण प्रान्तीयता या राष्ट्रीयता नहीं हो सकती। वैज्ञानिक

१ जार्ज एच. मीड, 'माइण्ड सेल्फ ऐण्ड सोसायटी, फ्रॉम दी स्टैण्डप्वाइण्ट ऑफ अ सोशल बिहेवियरिस्ट' (शिकागो, १९३४), पृष्ठ १३०।

पद्धति इसे असम्भव बना देती है। विज्ञान अनिवार्य ही एक सार्विक अनुशासन है जो सभी विचार करने वालों को समेट लेता है। यह सभी तर्कनावादी लोगों के स्वर में बोलता है। उसका हर जगह सत्य होना आवश्यक है अन्यथा वह वैज्ञानिक नहीं होता। किन्तु विज्ञान विकासात्मक है। यहाँ भी एक निरन्तर प्रक्रिया है, जो क्रमशः विकसित होती रहती है।

इस प्रकार मन और आत्मा सम्बन्धी मीड के सामाजिक सिद्धान्त की परिणति उनके द्वारा इस रूप में तर्क-बुद्धि या विज्ञान के स्पष्टीकरण में हुई कि यह मानवी समाजों में सर्वाधिक सार्विक है।

मीड और सामाजिक मनोविज्ञान में उनके सहयोगियों ने इस प्रकार बुद्धि के संस्थागत रूप ग्रहण करने में मानव विकास का एक सोपान स्वीकार किया। मनुष्यों के अपनी संस्थाओं के प्रति और संस्थाओं के मनुष्यों के प्रति परस्पर अनुकूलन का मतलब था कि वातावरण को भी बदला जा सकता था और सामाजिक सुधार को जैविक विकास का ही एक प्रसार और परिणति माना जा सकता था।

इस दार्शनिक समूह के सभी सदस्य नैतिक और औद्योगिक सुधारों में सक्रिय भाग लेते थे और शिक्षकों, पत्रों, और राजनीतिज्ञों के रूप में अपने कार्यकलाप को विचार व सिद्धान्त का सैद्धान्तिक पुनर्निर्माण करने के अपने कार्य का ही प्रसार मानते थे।

इसमें थॉर्स्टीन वेबलेन एक अपवाद थे। वे आर्थिक संस्थाओं सम्बन्धी अपने विकासवादी सिद्धान्तों को और साधारणतः विज्ञान को ही 'निरुद्देश्य जिज्ञासा' का रूप मानते थे। इस व्यावहारिक सक्रिय समूह के वे सर्वाधिक 'निष्क्रिय' और असामाजिक सदस्य थे। दूसरी ओर उनके सिद्धान्त बड़े ही विवादपूर्ण थे और उनका रूप बड़ा ही व्यावहारिक था। ऐसा प्रतीत होता है कि वे स्वयं उनके व्यंग्य और विद्रूप प्रदर्शन में आनन्द लेते थे जैसे उस स्पष्ट अपव्यय और उच्चतर शिक्षा में यह उनका अपना व्यंग्य-सा योग हो जिसका अपनी पुस्तकों में उन्होंने बड़ी निर्ममता से विश्लेषण किया। छात्र रूप में उन पर नव-कान्टवादी दर्शन व जीव-शास्त्रीय या डार्विनवादी रूप का प्रभाव पड़ा जो जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में मान्य था और उन्होंने येल में नोह पोर्टर और सम्नर के अन्तर्गत अपना दार्शनिक अध्ययन जारी रखा। १८९२ में शिकागो आकर उन्होंने तत्सम विकासवादी सिद्धान्त को अर्थशास्त्र पर, विशेषतः 'समाजवाद' के विकास पर लागू

---

१ जार्ज एच० मीड, 'मूवमेंट्स ऑफ थॉट इन दी नाइन्टीन्थ सेंचुरी' (शिकागो, १९३६), पृष्ठ १६८।

करना शुरू किया। उन्होंने संस्थापित अंग्रेजी अर्थशास्त्र (जिसे उन्होंने बाद में 'सौभाग्य तुष्टि का अर्थशास्त्र कहा) और श्मोलर के जर्मन ऐतिहासिक अर्थशास्त्र दोनों से विद्रोह किया। उनके लिए सच्चा विज्ञान 'कारणात्मक' विज्ञान या कारणता 'निर्वैयक्तिक और 'संयमी' थी और एक सचमुच आनुवंशिक सामाजिक विज्ञान 'सांस्कृतिक अनुक्रम में आर्थिक हितों के संचित फलन का पता लगाता।'[1] उन्होंने नये 'सक्रिय' मनोविज्ञान की भावना को खुले दिल से स्वीकार किया और आर्थिक प्रक्रियाओं की व्याख्या प्राकृतिक नियमों के सन्दर्भ में न करके, हितों या उद्देश्यपरक कार्यों के सन्दर्भ में की और इन हितों की व्याख्या उन्होंने उनके कारणात्मक सम्बन्धों में अर्थात् उनकी सामाजिक प्रभावात्मकता और निपुणता के सन्दर्भ में की। उनके संचित प्रभावों या विकास को तटस्थ होकर बिल्कुल निर्वैयक्तिक रीति से देखा जा सकता था। कारणता के विज्ञान से अलग प्रगति के सिद्धान्त के लिए उनके मन में केवल तिरस्कार था। वोल्ब की ऐसी सारी आदतों को वे 'जीववाद' या विधाता में विश्वास के अवशेष मानते थे।

अपने आनुवंशिक अर्थशास्त्र का पहला महत्वपूर्ण प्रयोग उन्होंने 'दी थियरी ऑफ दी लेजर क्लास; ऐन एकोनामिक स्टडी इन दी इवोल्यूशन आफ इन्स्टिट्यूशन्स' (अवकाशमय वर्ग का सिद्धान्त संस्थाओं के विकास का एक अर्थशास्त्रीय अध्ययन—१८९९) में किया। इस ग्रन्थ में उन्होंने बताया कि वर्तमान अवकाश युक्त वर्ग की आदतें और प्रतिमान—उसका स्पष्ट अपव्यय' अशोभन वेश-भूषा में रुचि और शोषक चरित्र— किसी काल के योद्धा वर्ग के अवशेष हैं जिसमें वास्तविक 'वीरता थी और जो लूटमार या गुलामी के सहारे जिन्दा रहता था। इस वर्ग द्वारा आर्थिक शक्ति के प्राचीन प्रयोग से लेकर आर्थिक शक्ति के वर्तमान प्रदर्शन तक, इसके क्रमिक पतन की कहानी ने वेबलेन को एक असाधारण अवसर प्रदान किया कि जिन्हें वे आविष्कारी पद्धतियाँ समझते थे उनका प्रयोग सामाजिक इतिहास में करें और उसके साथ ही समकालीन अन्यायपूर्ण और अकारणात्मक' वर्ग सम्बन्धों की प्रतिभापूर्ण आलोचना लिखें। कारणात्मक प्रक्रियाएँ औद्योगिक यन्त्रतन्त्र' की थीं, अर्थात् आधुनिक मशीनरी के उत्पादक कौशलों की। 'मूल्य पद्धति' को और पूंजी विनियोग में वित्तीय हितों को वे पुरानी संस्कृतियों के अनार्थिक, अनुत्पादक अवशेष मानते थे।

वेबलेन का अर्थशास्त्र इस विकासी समूह की सामान्य प्रवृत्ति का विशेषक

---

१ थॉर्स्टीन वेबलेन, 'ह्वाइ इज एकोनामिक्स नाट ऐन इवाल्यूशनरी साइन्स ?' 'क्वार्टरली जर्नल ऑफ एकानॉमिक्स', खण्ड १२ (१८९८) पृष्ठ ३९४।

प्रच्छा उदाहरण है कि अपनी रुचियों को धीरे-धीरे आनुवंशिक पद्धतियों से हटाकर कार्मिक आलोचनाओं की ओर और सामाजिक विकास से हटाकर सामाजिक पुर्ननिर्माण की ओर ले जायें।

हताश प्रकृतिवाद

हेनरी आडम्स की निराशा एक ऐसे व्यक्ति की निराशा थी जिसने एमर्सन की सलाह मानी थी कि 'सुधार के पथ पर अपना रथ हांक दो' और इस कारण जो सिद्धान्त में गति और परिवर्तन का प्रेमी था किन्तु जिसने यह समझना सीख लिया था कि उसका अपना और सामान्यतः मनुष्य जाति का जीवन ऐसी शक्तियों के शिकंजे में है, जो मानवा नियन्त्रण के बाहर है और यह जीवन ऊर्जा का ऐसा क्षय है जो प्रगति से अधिक अराजकता के निकट है। युवावस्था में, गृह-युद्ध आरम्भ होने के समय उन्होंने बड़े उत्साह से राजनीति में प्रवेश किया और उनका विश्वास था कि उन्हें ह्वाइट-हाउस (राष्ट्रपति निवास) में रहना है। उच्च प्रवेश समाज में अपना कूटनीतिक जीवन, साहित्यिक पत्रकार का जीवन और वाशिंगटन निवास उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास के साथ आरम्भ किया इस आशा में कि वे एक राजनेता बनने वाले हैं। उनके सपने का कोई अन्त न था जब उन्होंने देखा कि प्रेसीडेण्ट ग्रान्ट और उनके जैसे लोग सत्तापीठों पर जमे हुए हैं परलस्वरूप व रूप में लोकतान्त्रिक दल बिल्कुल व्यर्थ है और सारा आडम्स परिवार उन्हें सलाह दे रहा है कि हार्वर्ड में मध्यकालीन इतिहास के सहायक प्रोफ़ेसर का पद स्वीकार कर लें। न केवल अपनी सम्भावना में वरन् सामान्यतः लोकतन्त्र के प्रति भी उन्हें राजनीतिक निराशा हुई क्योंकि उन्हें आशा थी कि अपने पितामह की भांति वे गम्भीर, वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर एक नये राष्ट्रीय लोकतन्त्र के निर्माण का नेतृत्व करेंगे। अंतिम बार १८८० में प्रकाशित उनके उपन्यास के एक पात्र के शब्दों में—

"क्या मनुष्य का इस तरह था, स्त्रियों और पुरुषों का यह जंगल उतना ही एकरस जितने वे सूर मकान जिनमें वे रहते हैं? अपनी निराशा में उसने हताश उपाय अपनाये थे। उसने मूल कार्यक्रम में दर्शन पढ़ा था और जितना अधिक वह पढ़ती उतनी ही अधिक निरुत्साहित होती कि इतनी अधिक मंस्कृति का फल कुछ भी न हो—कुछ भी नहीं।"[१]

---

१ हेनरी आडम्स, 'डेमोक्रेसी, ऐन अमेरिकन नॉविल' (न्यूयॉर्क, १८८०), पृष्ठ १।

एक सेनेटर को जो विकासवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध भाषण देते रहे थे यही पात्र उत्तर देता है—

आप बन्दरों के प्रति बड़े कठोर हैं। बन्दरों ने कभी आपका कोई नुकसान नहीं किया। वे सार्वजनिक जीवन में नहीं हैं। वे तो मतदाता भी नहीं हैं। अगर होते तो आप में उनकी बुद्धि और सद्गुण के प्रति बड़ा उत्साह होता। आखिरकार हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि इस उदास संसार में मनुष्य क्या करते अगर बन्दरों से उन्हें वसीयत में उल्लास न मिला होता—और भाषण कला भी।[1]

---

१ वही, पृष्ठ १०२ १ १। एक अन्य पात्र, मथान और, मसाचुसेट्स का एक साहित्यिक जो विदेश में किसी सरकारी पद का अभिलाषी है, इस प्रश्न का उत्तर बड़ी गम्भीरता से देता है कि 'क्या तुम स्वयं सोचते हो कि लोकतन्त्र सर्वोत्तम शासन है और वास्तव मताधिकार सफल हुआ है?' उसके द्वारा व्यक्त मत शायद वही हो जो आडम्स का उस समय था—

'ये ऐसे मामले हैं जिनके बारे में मैं शायद ही कभी तनाव में बात करता हूँ। ये किसी ईश्वर के सिद्धान्त, या अगले जन्म या भूत-धर्म के समान हैं—ऐसे विषय जिन्हें आदमी स्वभावतः निजी विमर्श के लिए सुरक्षित रखता है। किन्तु आपने चूंकि मेरा राजनीतिक मत पूछा है अतः आपको बताऊँगा। मेरी केवल यही शर्त है कि यह बात केवल आपके लिए होगी इसे आप कभी दोहराएंगे नहीं, न मेरी कह कर कबूल करेंगे। मैं लोकतन्त्र में विश्वास करता हूँ मैं उसे स्वीकार करता हूँ। मैं निष्ठापूर्वक उसकी सेवा और रक्षा करूंगा। मै इसमें विश्वास करता हूँ, क्योंकि जो कुछ इसके पहले हो चुका है यह मुझे उसका अनिवार्य परिणाम प्रतीत होता है। लोकतन्त्र इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि जनसाधारण की बुद्धि का स्तर अब पहले से ऊँचा हो गया है। यह लक्ष्य हमारी सारी सभ्यता का साध्य है। इसमें सहायक होने के लिए हम जो कुछ कर सकते हैं, करना चाहते हैं। मैं स्वयं इसका फल देखना चाहता हूँ। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह एक प्रयोग है, किन्तु यही एक दिशा है जिसे समाज ग्रहण कर सकता है जो उसके ग्रहण करने योग्य है। उसके कर्तव्य की एकमात्र इतनी काफी व्यापक धारणा है जो उसकी मूल-प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट कर सके। एकमात्र फल है, जो प्रयास करने या जोखिम उठाने के योग्य है। हर अन्य सम्भव कदम पीछे जाता है और अतीत को दोहराने में मेरी कोई रुचि नहीं है। समाज को ऐसे प्रश्नों से उलझते देख कर मुझे खुशी होती है, जिनके प्रति कोई भी व्यक्ति तटस्थ नहीं रह सकता।

दोष-दृष्टि के ऐसे दौरों के द्वारा हेनरी आदम्स ने अपने को दिलासा देने की चेष्टा की, किन्तु उनसे उन्हें सामान्य ह्रास के कारणों सम्बन्धी कोई अन्तर्दृष्टि प्राप्त नहीं हुई।

१८९३ की जबरदस्त मन्दी के समय तक उन्होंने नहीं समझा था, जैसा उन्होंने बाद में कहा कि वे और उनकी पीढ़ी 'रेल-कम्पनियों के पास अमानत रख दिये गये थे और यह कि बोस्टन और वाशिंगटन दोनों ही न्यूयार्क के 'स्वर्णकीटों' और वाल स्ट्रीट (न्यूयार्क का व्यापार-केन्द्र) के लुटेरे सरदारों की मुट्ठी में थे। इतिहास का एक ऐसा दर्शन निरूपित करके जो इस स्थिति की व्याख्या करता था, उनके छोटे भाई ब्रुक्स आदम्स बौद्धिक-दृष्टि से अपने को इस स्थिति के अनुरूप बनाने में सफल हुए। उन्होंने पाया कि सारा इतिहास ऊर्जा के केन्द्रीकरण और क्षय के बीच लोभ और भय के बीच रस्साकशी का एक संघर्ष है।

' प्रस्तावित सिद्धान्त इस मान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है कि शक्ति और ऊर्जा का नियम प्रकृति में सर्वत्र लागू होता है और यह कि पशु जीवन उन माध्यमों में से एक है जिनके द्वारा सूर्य की ऊर्जा क्षय होती है।

"इस मूल स्थापना से आरम्भ करके पहला निगमन यह है कि मानवी समाज चूँकि पशु जीवन के ही रूप हैं अतः इन समाजों की ऊर्जा में परस्पर उस अनुपात में अन्तर होगा, जिस अनुपात में प्रकृति ने उन्हें ऊर्जोत्पन्न सामग्री की कम या अधिक बहुलता प्रदान की है।

"विचार मानवी ऊर्जा की अभिव्यक्तियों में से एक है और विचार के प्रारम्भिक और अपेक्षाकृत सरल सोपानों में दो सोपान स्पष्ट दिखाई देते हैं—भय और लोभ। भय जो कल्पना को उद्दीपित करके एक अदृश्य संसार में विश्वास उत्पन्न करता है और अन्ततः एक पुरोहितवर्ग का विकास करता है और लोभ जो युद्ध और व्यापार में ऊर्जा को क्षय करता है।

"सम्भवतः किसी समुदाय के सामाजिक आन्दोलन की गति उसकी ऊर्जा और घनत्व के अनुपात में होती है और उसका केन्द्रीकरण उसकी गति के अनुपात में होता है। अतः मानवी आन्दोलन की गति तीव्र होने पर समाज केन्द्रित होते हैं। केन्द्रीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओं में भय वह माध्यम प्रतीत

" मुझे विश्वास है। शायद पुराने पताकाओं पर नहीं, किन्तु नये पताकाओं पर है। मानव प्रकृति में विश्वास है। हम अपने काल के प्रति सच्चे हों, चीजनी लो! अगर हमारे युग को हारना है, तो हम पूर्वपंक्ति में मरें। अगर उसकी विजय होनी है, तो हम पंक्ति का नेतृत्व करने वालों में प्रथम हों। किसी भी सूरत में, हम ठहरने का शिकायत करने वाले न बनें।" (वही, पृष्ठ ७(-१८))।

होता है जिसके द्वारा ऊर्जा सर्वाधिक सरलता से मार्ग पाती है। तदनुसार, प्रारम्भिक और बिखरे हुए समुदायों में कल्पना स्पष्ट होती है और उत्पन्न मानसिक प्रतिरूप धार्मिक, सैनिक या कलात्मक होते हैं। सामीप्य बढ़ने के साथ-साथ भय के स्थान पर क्षोभ आ जाता है और भावनात्मक या रचनात्मक गठन के ऊपर आर्थिक गठन के हावी होने की प्रवृत्ति आती है।[1]

किन्तु हेनरी आडम्स को ऐसी सरल व्याख्या से कोई सन्तोष नहीं मिला। उनका अपना स्वभाव ऐसा था कि बारी-बारी से क्षोभ और भय उन पर हावी हो जाते थे। अपना आधा समय वे किसी 'स्वर्णकीट' की भाँति अपनी पैतृक धन को संचित करने में व्यतीत करते और शेष आधा सम्पूर्ण व्यवस्था के अन्तिम रूप से ध्वस्त होने की निराशापूर्ण भविष्यवाणियाँ करने में। ऊर्जा के केन्द्रीकरण और भय की ऐसी लहरें, अनुभव की सामग्री थीं किन्तु वे इतिहास का 'वैज्ञानिक नियम' नहीं थीं। उनका विचार था कि ब्रुक्स के सिद्धान्त को अनिवार्य का रूप माना जा सकता था क्योंकि उससे सबसे सस्ते का अतिजीवन प्रमाणित होता था। किन्तु उन्हें स्वयं इतिहास के एक वास्तविक भौतिक विज्ञान की खोज थी अर्थात् कोई ऐसा सूत्र जो भौतिक विज्ञान के ज्ञात नियमों के सन्दर्भ में मानवी अनुभव और इतिहास को नाप सके। यान्त्रिक कार्य के लिए उपलब्ध ऊर्जा का सिद्धान्त (एन्ट्रोपी) केवल उष्मागतिकी का दूसरा नियम था। इतिहास का सच्चा विज्ञान ऊर्जा के क्षय के सिद्धान्त को और भी अधिक साधारण शक्ति के सिद्धान्त में संश्लिष्ट करेगा जो मानवी कम होगा गणितीय अधिक। इस तरह वर्षों तक वे अपने समकालीनों पर 'किसी दैविक की तरह गुर्राते', निश्चल और व्यापारग्रस्त से किसी 'अनुदारवादी ईसाई अराजकतावादी' की भाँति विनाश के दिन की और उसे बोधगम्य बनाने वाली प्रेरणा की प्रतीक्षा करते, अपने में ही डूबे रहे।

जब वे इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था का तिरस्कार करते हुए जॉब (बाइबिल का एक पात्र) के समान अपने सिद्धान्तों को प्रकाशित कर रहे थे जॉब के समान ही ईश्वर की प्राकृतिक शक्ति ने उन्हें छूकर विनम्रता का बोध प्रदान किया। १८७० में उन्हें अपनी बहन के पास जाना पड़ा जो धनुस्तम्भ रोग की पीड़ा में मर रही थी। अचानक उनमें 'एक भयंकर स्वप्न, शक्तियों के एक पागलपन' के रूप में प्रकृति के जीवन के प्रति दृष्टिकोण की 'गम्भीर चेतना' आयी।

१ ब्रुक्स आडम्स, 'दी लॉ ऑफ सिविलाइज़ेशन ऐण्ड डिके, ऐन एसे ऑन हिस्टरी (न्यूयार्क, १९४३), पृष्ठ ५९-६०।

पहली बार, स्त्रियों की मंच-सज्जा ध्वस्त हो गयी। मानव मर्म ने दुनिया को नष्ट होते अनुभव किया, आकारहीन ऊर्जाओं के एक धुन्ध में काँपते हुए, जो अदम्य अनन्त के साथ पसी को टकरा रहा, नष्ट और ध्वस्त कर रही थीं जिसे उन्हीं ऊर्जाओं ने निर्मित किया था और अनादि काल से सम्पूर्ण बनाने के लिए श्रम करती रही थीं। समाज संगतिविहीन हो गया, यान्त्रिक गति वाले मौन-नाट्य का एक दृश्य। और उसका कल्पित विचार मात्र जीवन के एक भाव में और उस भाव की पुष्टी में विलयित हो गया। सामाजिक चिकित्सा की सामान्य पीड़ा नाशक ओषधियाँ स्पष्टतः मूक बन गयीं। समभाव (स्टोइसिज्म) शायद सर्वोत्तम था। धर्म सर्वाधिक मानवीय था। किन्तु यह विचार कि मनुष्य में केवल विकृत और पागल स्वभावों में मिलने वाली पाशविक क्रूरता से किसी बेचारी स्त्री को यातना देने में किसी निर्गुण देव को खुशी या लाभ मिल सकता था एक क्षण को भी नहीं माना जा सकता। यह ऐसी शुद्ध धर्म निष्ठा है कि इसकी तुलना में शुद्ध अनीश्वरवाद बेहतर है। जैसा धर्म कहता है, ईश्वर एक पदार्थ हो सकता है, किन्तु वह कोई व्यक्ति नहीं हो सकता।[1]

फिर, १८८४ में जब उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी, तो उन्होंने अपनी सामाजिक और राजनीतिक रुचियाँ त्याग दीं और आग्रह किया कि दुनिया के लिए वे मर चुके और अपने कलाकार मित्र जॉन ला फार्ज के साथ पूर्व (एशिया) की यात्रा पर चले गये। वहाँ उन्हें निर्वाण या जैसा वे उसे कहना पसन्द करते थे 'ईश्वरीय शान्ति मिली, अनिवार्य की एक स्वस्थ स्वीकृति शोक और दुःख के परे—वाशिंगटन के रॉक क्रीक कब्रिस्तान में आडम्स की समाधि पर संगमरमर की बनी सेन्ट गॉडेन की प्रतिमा इस दृष्टिकोण को बड़े प्रभावोत्पादक रूप में व्यक्त करती है। किन्तु पूर्व में, निर्वाण में प्रवेश करने के समय ही उनमें रंग रूप और मौन नाट्य के प्रति एक स्वतःस्फूर्त आनन्द भी उत्पन्न हुआ—नाच और चित्रों में समृद्ध कलात्मक जीवन, किन्तु जिसके परिणाम संकेतित करने वाले या नैतिक नहीं थे। इस दोहरी तटस्थता का दृष्टिकोण लेकर वे यूरोप लौटे और अचानक उन्होंने देखा कि मध्यकालीन इतिहास, जिससे हार्वर्ड में उन्हें ऊब होती थी, उनके अन्दर जीवित हो उठा है। उन्होंने 'मान्ट सेन्ट मिशेल ऐण्ड चार्ट्रेस' की रचना की और उसमें कुमारी मरियम की शक्ति की चेतना लायी। वे 'विद्युत्-यन्त्र और कुमारी मरियम' के विषय में डूब गये, दो शक्तियाँ जिनके बीच वे अपने को जकड़ा हुआ महसूस करते थे, वे जकड़ा हुआ इस अर्थ में

---

१ हेनरी आडम्स 'दी एजुकेशन ऑफ हेनरी आडम्स' (बोस्टन १९१८), पृष्ठ ३८८-३८९।

महसूस करते थे कि उन्हें ऐसी शक्तियाँ बहा ले जातीं जिन्हें वे निरूपित नहीं कर पाये। पारम्परिक शक्ति के धर्मोपासकों से उन्हें कुमारी मरियम की यथार्थ उपस्थिति को समझने में सहायता नहीं मिली किन्तु गोथिक कला से मिली।

धीरे-धीरे आडम्स ने शक्ति का एक बड़ा ही चतुर और संगतिहीन दर्शन निरूपित किया। अब उनका विचार था कि शक्ति के 'सोपानों' में प्रगति हो सकती है, जिसे ऊर्जा के उत्तरगामी रूपों का विकास कहा जा सकता है, किन्तु जिसका मानव प्रगति के परम्परागत सिद्धान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं। इस सिद्धान्त ने इतिहास को भौतिकी बना दिया। उन्होंने ऐतिहासिक गुरुत्वाकर्षण (आकर्षण या दबाव) और सांस्कृतिक त्वरण का एक सिद्धान्त निरूपित किया, जिसके अनुसार पदार्थ के 'सोपान' (ठोस तरल वाष्पी विकीर्ण ईथरीय और अवकाशिक) क्रमिक युगों के अनुकूल होते हैं। शक्तियाँ सघनता के अनुसार प्रकट हुईं। पहले मूल-प्रवृत्ति का या पशु-प्रकृति की स्वचालित शक्तियों द्वारा नियन्त्रण का 'ठोस' युग था जिन शक्तियों में सुप्त प्रजनन की ऊर्जा थी। दूसरा आस्था की शक्ति के अन्तर्गत धार्मिक काल था। फिर यन्त्र काल फिर बिजली काल जो विद्युत्-यन्त्र (डायनेमो) के आविष्कार और साधारण उपयोग से प्रारम्भ हुआ। एक अन्य 'ईथरीय सोपान' आने वाला था जब विचार अपनी सम्भावनाओं की सीमा' तक पहुँच जायेगा। इससे इतिहास का अन्त हो जायेगा किन्तु अवकाश' या शुद्ध गणित का एक अनिश्चित काल तब भी बच रहेगा जिसकी आनुभविक वस्तु की *भविष्यवाणी करना कठिन है।* ऐसा हो सकता है कि ऊर्जा निर्वात में सम्भाव्य विचार के सागर में प्रविष्ट होकर शान्त हो जाये। किन्तु—

अगर इसके अन्तिम सोपानों के अत्यधिक तीव्र कम्पन में विचार उसी तरह सार्विक विलायक का कार्य करता रहे जैसा कि वह अब है और अणु परमाणु व एलेक्ट्रॉन को वैसा ही निर्मूल्य सेवक बना दे जैसा उसने पृथ्वी और वायु, भाप और पानी के पुराने तत्त्वों को बना लिया है अगर मनुष्य प्रकृति की असीमित शक्तियों को मुक्त करता रहे और ब्रह्माण्डीय पैमाने पर ब्रह्माण्डीय शक्तियों का नियन्त्रण प्राप्त कर सके तो परिणाम उतने ही आश्चर्यजनक हो सकते हैं जितना पानी का भाप में कीड़े का तितली में रेडियम का एलेक्ट्रान में परिवर्तन।[1]

अगर त्वरण का नियम इतिहास के लिए सही है, जैसा कि होना ही तो प्रतिलोम-वर्ग नियम के आधार पर ऊर्जा के महान् रूपान्तरों की तिथियों का

१ हेनरी आडम्स, 'दी डिग्रेडेशन ऑफ दी डेमाक्रेटिक डॉग्मा' में 'दी रूल ऑफ फेज एप्लाइड टु हिस्टरी', (न्यूयार्क १९२०), पृष्ठ ३०६।

मोटा हिसाब लगाना सम्भव हो सकता है। पहली अवधि की लम्बाई का हिसाब नहीं लगाया जा सकता। धार्मिक काल (लगभग ९०,००० वर्ष) का अन्त सन् १६०० में गैलिलियो के साथ हुआ। यन्त्र-काल १८७० में समाप्त हुआ।[1] बिजलीकाल का अन्त १९१७ में हुआ। चार त्वरित वर्षों के बाद, ईथरीय काल का १९२१ में। १९१८ में जब हेनरी आडम्स की मृत्यु हुई, तो वे सोचते थे कि उनकी भविष्यवाणियाँ शायद अक्षरशः प्रमाणित हो जायें।

'इतिहास के विज्ञान' के रूप में, यह तर्कहीन योजना हास्यास्पद है और इतिहासकारों की गम्भीरता से इसका अध्ययन करते देख कर निश्चय ही हेनरी आडम्स को हँसी आती। अनुगामी विकासवाद के एक दर्शन के रूप में भी यह एक बूढ़े व्यक्ति के खिलौने से अधिक विशेष कुछ नहीं है। इसमें महत्व इस बात का था, जिसने स्वयं हेनरी आडम्स के लिए भी इसे अर्थमय बनाया कि इसने उन्हें उनके इस विश्वास के लिए एक आकर्षक पुराकथा प्रदान की कि उन्नीसवीं से बीसवीं शताब्दी में संक्रमण का समय पश्चिम के इतिहास में संकट का समय था। उन्हें भय था कि प्रकृति जिन ऊर्जाओं को मनुष्य के माध्यम से व्यक्त करती है, वे उसे जितना तोड़ती हैं, बीसवीं सदी में मनुष्य उससे भी अधिक टूटेगा। उन्होंने लिखा—

'हम बड़ी सरलता से निश्चित करते हैं और बेतार के तार या वायुयानों से भी समाज का पुनर्निर्माण आवश्यक हो सकता है यथा अमरीकी—अपराजेय विद्युत्-शक्ति और विकीर्ण ऊर्जा की सन्तान प्रकृति की किसी पूर्व रचना की तुलना में एक प्रकार का ईश्वर होगा।'[2]

"हम भिखारी नहीं हैं। हमें क्या परवाह
'भावनाओं या वर्षों की प्रेम या घृणा की?
"सृष्टि की क्या? हम देखते हैं
'केवल अपनी निश्चित नियति
"और भाग्य का अन्तिम शब्द।"
"पकड़ो फिर, परमाणु को। तोड़ो उसके जोड़।
'खींच लो उससे उसके गुप्त जोड़।
'उसे पीस कर मिटा दो।—यद्यपि यह स्थित करता है
'हमें और उसका जीवन-रक्त अभिषिक्त करता है
'मुझे—मृत परमाणुराज।"

---

१ इस काल की लगभग ३०० वर्ष की लम्बाई सारे हिसाब का आधार है।

२ 'दी एजुकेशन ऑफ हेनरी आडम्स', पृष्ठ ४९६।

"डाइनेमो से प्रार्थना" की इन पंक्तियों के साथ-साथ 'कुमारी मरियम से प्रार्थना' की कुछ पंक्तियों को भी रखना चाहिये।

'मुझे उठाने में सहायता दो। मेरा अपना शिशु-प्यार नहीं
'वरन् तुम्हारा, जिसने अठाया असफलता को ईश्वर की
ज्योति शक्ति, ज्ञान और विचार की—
असीम की निष्फल मूर्खता की।



सदियों तक मैं अपनी चिन्ताएँ तुम्हारे पास लाया
'और एक बच्चे की शोखियों से तुम्हें तंग किया'
'तुमने मेरी प्रार्थनाओं की बोझिल बात सुनी
'तुम उन्हें स्वीकार नहीं कर सकती थीं किन्तु तुम कम से कम मुस्कुराईं।
'अगर तब मैंने तुम्हें छोड़ दिया तो वह मेरा अपराध नहीं था
'या अगर अपराध था तो केवल मेरा ही नहीं।
'घुमक्कड़ समय के साथ सभी बच्चे भटकते हैं।
'मुझे भी क्षमा करो। तुमने एक बार अपने पुत्र को क्षमा दी थी।
'क्योंकि उसने तुमसे कहा—'क्या तुम नहीं चाहतीं कि मैं
अपने पिता के कार्य में लगूँ? इसलिए
"अपने पिता को खोजता वह अपने मार्ग पर गया
सीधे उस सलीब को जिसकी ओर हम सभी को जाना पड़ता है।
इस तरह मैं भी उस दल के साथ भटक गया
जिसने पिता का चिह्न खोजने के लिए धरती को छान डाला।
मैंने पिता को नहीं पाया लेकिन मैंने वह दिया
'जिसकी खबर अब मैं ज्यादा करता हूँ माँ—तुमको।[१]

एडविन आर्लिंगटन रॉबिन्सन ने बिलकुल भिन्न प्रकार की कविता की रचना की यद्यपि जिसके पाठक को वे भी असीम की व्यर्थता के अन्तहीन गीत गाते प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत, जिनके जीवन भाग्य द्वारा निर्दिष्ट हैं उनके लिए पूर्ण सत्य की अनवरत खोज ही रॉबिन्सन के अनुसार स्वतन्त्रता और अर्थवत्ता का

---

१ मेबैल ला फार्ज 'लेटर्स टु ए नीस ऐण्ड प्रेयर टु दी वर्जिन ऑफ चार्ट्रेस (कैम्ब्रिज १९२०) पृष्ठ १२४ १२६, १३०।

अनुसरण किया कि पूर्ण अवबोध वैज्ञानिक अवलोकन के द्वारा नहीं, वरन् सहानुभूति पूर्ण रस-ग्रहण के द्वारा होता है।

रॉबिन्सन की कविताओं का वर्गीकरण मानव अस्तित्व के विभिन्न पक्षों पर इस सिद्धान्त को लागू करने के क्रमिक प्रयोगों के रूप में किया जा सकता है। सर्वप्रथम समूह ने जिसकी परिणति 'दी मैन अगेंस्ट दी स्काइ' में हुई, मनुष्य को उसकी ब्रह्माण्डीय पृष्ठभूमि में और भौतिक अस्तित्व की 'छायाओं' पर 'प्रकाश' के लिए संघर्ष करते हुए प्रस्तुत किया।

हम रात्रि की सन्तान
उस आवरण को उतार दें जो आग को छिपाता है।—
हम प्रकाश की सन्तान बनें
और युगों को बतायें कि हम क्या हैं।[1]

इन कविताओं में उनका दर्शन और उनकी छन्द-रचना दोनों ही अपेक्षतया परम्परानुगत हैं। फिर कुछ ऐसी कविताएँ आयीं जो मनुष्य द्वारा अपने 'छिद्रों' से निकलने के प्रयास पर केन्द्रित थीं—जिसे रोमानी प्रेम और औपचारिक कर्तव्य के मिले-जुले प्रतीक थे। उन्होंने प्रेम और कर्तव्य के संघर्ष और पलायन की रोमानी प्रक्रिया का चित्रण करने के लिए आर्थर (इंग्लिस्तानी इतिहास में शौर्य के प्रतीक) की किम्वदन्ती का प्रयोग किया। इस क्रम की सर्वप्रमुख कविता 'मर्लिन' है। इसके बाद उन्होंने मनुष्य के घरों पर विवाह की समस्याओं पर विचार किया और उनके विभिन्न द्वारों में सभी को 'रात्रि' की ओर खुलने वाला चित्रित किया। अन्त में उन्होंने 'दैत्यों और मिममियों' के बारे में जनता की अन्धी इच्छा और शक्ति के लिए आर्थिक संघर्ष के बारे में लिखा। इस विषय पर उनकी महान् रचना 'किंग जैस्पर' है जो सचमुच एक श्रेष्ठ दुःखान्तिका है।

'किंग जैस्पर' का विचार रॉबिन्सन को कॉकविल कलवेस्ट में पदासीन होने के बाद बैंक की छुट्टी के समय बोस्टन के स्टेट स्ट्रीट में टहलते हुए मिला। इसके मुख्य पात्र का नाम उस बैंक का नाम था जिसमें पैंतीस वर्ष पूर्व उन्होंने अपनी पैतृक विरासत खोयी थी। समकालीन विषय के सम्बन्ध में वे शंकालु थे किन्तु जिसे उन्होंने अपना 'अर्थशास्त्र पर निबन्ध' कहा उसे लिखने का लोभ वे संवरण नहीं कर सके। उन्होंने कविता को तीन स्तरों पर अर्थवत्ता प्रदान की। सर्वप्रथम कुछ दुःखी व्यक्तियों की कहानी के रूप में जो ऐसे तूफान में फँसे हैं जो उनके लिए सारा जीवन है, फिर पूँजीवादी व्यवस्था के विघटन के

---

१ 'चिल्ड्रेन ऑफ दी नाइट' से।

एक प्रतीकात्मक नाटक के रूप में, और अन्ततः प्रकाश और ज्ञान तथा आकांक्षा के एक साम्यावसान रूपक के रूप में।"[1]

इस दुःखान्तिका में सामाजिक तूफान से बच निकलने वाला एकमात्र पात्र 'ज्रो' है, जो जीवन शक्ति और बुद्धि का पूर्ण रूप है और अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की सारी आदतों व 'न्यू-इंग्लैण्ड की अन्तरात्मा' के नैतिकतावाद से मुक्त है। यह कविता व्यंग्य का श्रेष्ठ उदाहरण है और इससे पता चलता है कि रॉबिन्सन में गम्भीर भावना के साथ-साथ पूर्ण निरपेक्षता से प्रयोजनों की आन्तरिक प्रक्रियाओं के अतिरिक्त, सामाजिक वातावरण का विश्लेषण करने की भी क्षमता थी जैसे जंजीरों में जकड़ा हुआ कोई प्रमिथियस अन्य सभी जीवों की बेचैन अन्धी गतियों को देख रहा हो।

हार्वर्ड के उदात्त युवा सत्यमीमांसक कवियों में जिनमें से हरएक सच्ची सत्य द्वारा प्रेरित था, किन्तु जो निरपवाद असामाजिकता में अलग-अलग रहते थे जार्ज सान्तायना भी एक थे। स्नातकीय छात्र के रूप में उन्हें भी रॉयस द्वारा प्रस्तुत शोपेनहॉवर ने आकृष्ट किया था और उत्तर-स्नातकीय शिक्षा के लिए बर्लिन में बिताये एक या दो वर्षों में उन्होंने शोपेनहॉवर और निर्वाण पर ड्यूसेन के भाषण सुने थे। जब वे १८८८ में रॉयस के अधीन डॉक्टर की उपाधि लेने को वापस आये तो उन्होंने अनुरोध किया कि उन्हें शोपेनहॉवर पर लिखने की अनुमति दी जाये किन्तु उन्हें लोत्से पर निबन्ध लिखना पड़ा, जो एक सामान्य, अगम्भीर कार्य प्रमाणित हुआ। इस बीच उनके अन्दर, बहुत कुछ शोपेनहॉवर के समान एक दोहरा उत्साह पलता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह उत्साह बर्लिन में पॉलसेन द्वारा प्रथम उपक्रम में यूनानी नीति-शास्त्र पर और दूसरे उपसत्र में स्पिनोज़ा के 'नीतिशास्त्र' पर दिये गये भाषणों से उत्पन्न हुआ। उन्होंने हिब्रू (यहूदी) विचार-पद्धति और यूनानी विचार-पद्धति के प्रतिस्थापन और संस्थापन को अपनाया—मनुष्य जाति के उद्गम और इतिहास के सम्बन्ध में प्रकृतिवाद और नैतिक भावना में, तर्कबुद्धि की प्रेरणा के रूप में मिथक जिसके द्वारा मानव मन सत्य और शाश्वत की अवधारणा करता है और आदर्श रूप में उनमें भाग लेता है।[2]

अपने युवा स्वच्छन्दतावाद में सान्तायना ने यूनानी स्पिनोज़ावादी और निरपवादी नीतिशास्त्र के एक मिश्रण के रूप में प्राकृतिक पवित्रतावाद को

---

१ हरमन हेगेडॉर्न, 'एडविन आर्लिंगटन रॉबिन्सन' (न्यूयार्क, १९३८), पृष्ठ १९९।

२ जार्ज सान्तायना, 'दी मिडिल स्पैन' (न्यूयार्क, १९४५

अवधारणा की। प्रकट रूप में, अगर हम उनके सॉनेटों पर विश्वास करें तो ईसाई धर्म के स्थान पर जो अब असहनीय था वे प्राकृतिक धर्म की ओर मुड़े। शाश्वत माँ मैं गोलगोथा[1] से चलकर तेरे पास आया। यह कोई आराम देने वाला धर्म नहीं था किन्तु सुन्दर था और सबसे अधिक बौद्धिक दृष्टि से साहस पूर्ण था। उन्हें आराम की तलाश नहीं थी और वे इतना तड़प अनुभव करते थे कि युवावस्था की 'उस भीष्म तृष्णा' से अपनी आगे निराशा और पीछे मिथ्याभिमान पाने के लिए' जायें। अपने प्रतिभासम्पूर्ण नाटक 'ल्यूसिफ़र' में अपनी प्रोमिथियस से भी आगे जाने वाली अवज्ञा को उन्होंने काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। इसमें यूनानी और ईसाई देवताओं की एक ही स्थान पर आने का प्रयास है, किन्तु वे एक-दूसरे से अपनी बात स्वीकार नहीं करा पाते और अन्त में दोनों निष्फल प्रमाणित होते हैं। आत्मविद्रोही ल्यूसिफ़र (शैतान) के साथ वे अन्ततः स्वस्थ किन्तु निराशा के साथ खड़े होते हैं।

ईश्वर महान्, जब गैलिली का तेरा सौम्यतम पुत्र
परित्यक्त सलीब पर अपनी मृत्यु के निकट था
'तेरे हाथों में उसने अपनी साँस समर्पित कर दी।
'मृत्यु का अर्थ विस्मरण मेरे लिए कोई मरहम नहीं।
अब से मैं सूर्य को देखूँगा
'शोक है क्योंकि मेरा कार्य अभी पूरा नहीं हुआ
'मेरी अनन्त पीड़ा का कार्य।
'मेरी पीड़ा ज्यादा बड़ी है, उससे जितनी किसी व्यक्ति की हो सकती थी।
जिसका पिता स्वर्ग में था और जो सचमुच
अपने को सुखी समझता था। और यह आवश्यक है कि मैं प्राप्त करूँ
उससे बड़ा, उससे अधिक प्रिय जो मुझे सहारा दे।
ओ सत्य ओ सत्य अनन्त कटु सत्य
'तू मेरी शरण बन जब अन्य सब कुछ भग्न है।
'तू मेरे उन्नत मन का सार है,
तेरे शुद्ध ओठों पर मैं अपना जीवन पुनः नया करूँगा।
'तेरा आनन्द-हीन उर कभी अनुदार नहीं रहा
'उसके प्रति जिसने तुझे प्यार किया, अब हम एक हो जायें।
'मेरा कोई अन्य मित्र नहीं मैंने छोड़ दिया है

---

१ गोलगोथा—यरूशलम के निकट की पहाड़ी जहाँ ईसा को सलीब पर चढ़ाया गया था।—अनु०

'तेरे सिवाय अन्य सारा प्रेम। मेरा मूर्खतापूर्ण जीवन समाप्त हुआ।
'किन्तु ओ पहाड़ियो जिन्हें मैं दीर्घकाल से जानता हूँ
'जिन्हें सूर्य ने क्षत नहीं किया, ओ हिमानी समूह
'सदा निद्रित मुझे अपनी अंचल में ले लो
और इन चट्टानों की अपनी बाहों में
मेरा धसता हृदय सुला लो। मेरे ऊपर फैलाओ
अपना बर्फीला कफ़न और हिम पुष्पों से मुझे ढँक दो
'कि अनन्त घड़ियों में मैं तुम्हारे साथ देखूँ
' और कुछ ज्ञात न रहे। देखो! मैं अपना सर उठाता हूँ
'शून्य में, उस सब के तिरस्कार में जो जीवित है,
"आशा और पीड़ा और निरर्थक युद्धों में।
इसलिए कि शोक को जानकर मैं शोक करना भूल गया हूँ
'और पीड़ा सहकर, बिना आँसुओं के स्वीकार करता हूँ
"अपने रात्रि-पहरों का आगमन।' १

कवि १८८८ में प्रोफेसर बन गये और इसके बाद एक दर्शन व कवित्व वर्षों की ऐसी अवधि आई जिसे बाद में सान्तायना ने 'निराधार' के 'मध्यम वर्ष' कहा किन्तु कार्य-क्रम के आधार पर जो अत्यधिक रचनात्मक और सब मिलाकर, दैविक सम्बन्ध और सृजन के मुख्य वर्ष थे। अगर हम मानव-प्रगति के सोपानों का वर्णन करने वाली सान्तायना की योजना को स्वयं उनके जीवन पर लागू करें तो इन वर्षों को हमें उनका 'तर्कनावादी' काल कहना चाहिये जो उन्हें तर्क-पूर्व की कविता से तर्कोत्तर एकान्त मनन की ओर ले गया। यह गम्भीर अवधि हीगेल के 'फैनामेनोलाजी डेस गीस्टेस' (बौद्धिक अभिव्यक्ता का घटना-क्रिया-विज्ञान) पर रॉयस के भाषणों मनोविज्ञान पर विलियम जेम्स के भाषणों और इतिहास-दर्शन पर स्वयं सान्तायना के भाषणों से आरम्भ हुआ। दर्शन, कला और धर्म के इतिहास का अधिक निकट से परिचय प्राप्त करने पर उनके मन में 'दी लाइफ ऑफ रीजन (तर्कबुद्धि का जीवन) का विचार आया। मानव प्रगति की मनुष्य और समाज में तर्कबुद्धि के व्यक्तिपरक और वस्तुपरक विकास की यह पारदर्शक व्याख्या अरस्तू के नीतिशास्त्र और हीगेल के घटना क्रिया-विज्ञान का मिश्रण है और यह परम्परा के श्रेष्ठ निरूपणों के बीच चिरस्थायी स्थान पाने के योग्य है। इसके बारे में सच्चाई के साथ यही कहा जा

---

१ जार्ज सान्तायना, 'ल्यूसिफर ए थियोलॉजिकल ट्रैजेडी' (शिकागो १८९९), पृष्ठ १८६ १८७।

सकता है, जो सान्तायना ने अपनी बाद की 'व्यवस्था' के बारे में कहा कि "इसका उद्देश्य केवल मानवीय ज्ञान में योग देना एक विमर्शात्मक कल्पनात्मक और स्वच्छन्द मन की अभिव्यक्ति बनना है।"[1] इसमें मौलिकता नहीं है, किन्तु उदार साविकता है और यह उस बात को व्यवस्थित, आकर्षक रीति से कहती है, जिसे दर्शन का हर प्रोफेसर कहने की चेष्टा करता है। पहले और सैद्धान्तिक दृष्टि से आधारभूत खण्ड 'रीज़न इन कॉमन सेन्स' (सरल समझ में तर्कबुद्धि) में उन्होंने अनुभव के विश्लेषण के रूप में जेम्स के मनोविज्ञान की व्याख्या की। उन्होंने बताया कि 'प्रवाह' (जेम्स का 'चेतना-प्रवाह') किस प्रकार 'इरादे' सहित या संवेदन (जेम्स की 'बुद्धि' या 'कुशाग्रता') की चयनात्मक या विवेकशील क्रिया के द्वारा बोधगम्य संवस्तुओं (वस्तुओं) में संगठित होता है। नैरन्तर्य के साहचर्य पर आधारित संवेदन भौतिक वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करते हैं। समानता के साहचर्य पर आधारित संवेदन विचार या सम्भाषण के रूप प्रदान करते हैं। अतः ज्ञान के दो ध्रुव हैं—भौतिकी अस्तित्व में होने वाले संवेदनों का सह्‌चालन और द्वन्द्वात्मक तर्क विचारों मूल्यों और 'इरादे' के तत्त्वों का स्पष्टीकरण। सम्भाषण में संवेदन को वे कभी-कभी 'दीर्घायु सार' कहते हैं और उनमें अनुभव के प्रवाह में एक ओर तथा भौतिक अस्तित्व में दूसरी ओर स्पष्ट अन्तर किया गया है।

अपनी वस्तुपरक मूर्तता में तर्कबुद्धि का जीवन संस्थाओं का रूप लेता है—समाज, धर्म कला और विज्ञान। अपनी कृति में ये संस्थाएँ जीवन का वही रूप मर्यादित करती हैं, जो वैयक्तिक अनुभव प्रदर्शित करता है। प्रगति के तीन स्तर या सोपान देखे जा सकते हैं—पूर्वतार्किक, जिसमें जीवन मूल-प्रवृत्ति आकांक्षा और रीति के प्राकृतिक आवेगों द्वारा नियन्त्रित होता है, तार्किक जिसमें जीवन इन आवेगों की चेतन अभिव्यक्ति, स्पष्टीकरण और वस्तुकरण के द्वारा नियन्त्रित होता है और तर्कोत्तर, जिसमें जीवन चेतना और कल्पना की मुक्त प्रक्रिया के अधीन होता है। 'दी लाइफ ऑफ रीज़न' के विविध खण्ड क्रमशः समाज, धर्म, कला और विज्ञान के इन तीन स्तरों का वर्णन करते हैं।

जैसा उन्होंने बाद के निबन्धों में कहा दर्शन भी इसी जीवन में सहभागी होते हैं। उनका जन्म स्वाभावतः कार्य के लक्ष्यों या 'पशु-आस्था' की धारणाओं के रूप में होता है, किन्तु वे धीरे-धीरे स्वयं अपना एक जीवन उत्पन्न करते हैं जिसमें मनुष्य का सामान्य जीवन 'क्रियात्मक आत्मरस' 'भावनात्मक नाद' और 'साहित्यिक मनोविज्ञान' के प्रतिरूपों में रूपान्तरित हो जाता है। विमर्श के इन

[1] सान्तायना 'दी लिविंग सेल्फ' पृष्ठ १५६।

प्रतिरूपों को उनके उद्गमों और लक्ष्यों के सन्दर्भ में रखकर देखने पर, वे मनुष्य के सुख और उसकी प्रबुद्धता में सहायक हो सकते हैं किन्तु यह भी सम्भव है कि वे स्वयं लक्ष्य बन जाएँ और अपने स्वाभाविक सन्दर्भ और प्रयोगों की पूर्ण उपेक्षा करते हुए, मन को मुक्त परिकल्पना और रहस्यात्मक आनन्दों के क्षेत्र में ले जायें।

जैसे ही सान्तायना अपने दैविक कार्यों को छोड़ सके वैसे ही उन्होंने अपनी को मुक्त धारणा बनने की इस उर्वरतर कक्षा में लगाया। संयोगवश उनके अमरीका से अपना सम्बन्ध तोड़ने के शीघ्र बाद ही विश्व-युद्ध शुरू हो गया और तब से अधिकांश मनुष्यों की शक्तियाँ संघर्ष में व्यय होती रही हैं। किन्तु सान्तायना अपने महान् परित्याग पर क़ायम रहे। वे प्रकृति से भागे नहीं न उन्होंने अलौकिक रहस्यवाद में ही पलायन किया किन्तु वे अपनी एकाकी संयमाशु उच्चता से समाज मानववाद और नैतिकता को कुछ तिरस्कार से देखते रहे, वहाँ संस्कृत निर्लिप्तता और विधाम उदारता के साथ वे साफ़ देख सकते थे कि मनुष्य की व्यावहारिक चिन्ताएँ 'केवल स्वाभाविक' हैं।

"अन्तिम वस्तुओं पर निष्पक्ष विचार सभी प्राकृतिक आवेगों को बिना उनकी भर्त्सना किये परिपुष्ट करता है, क्योंकि प्राकृतिक होने के कारण वे अनिवार्य और अपने आप में निर्दोष हैं और 'केवल प्राकृतिक' होने के कारण वे सब सापेक्ष और एक अर्थ में व्यर्थ हैं।...

"आध्यात्मिकता केवल पक्षियों और शिशुओं जैसी निर्लिप्तता की ओर एक प्रकार की वापसी है। संसार का अनुभव बिना दृष्टि धुंधली किये चित्त को उलझा सकता है। यद्यपि प्रतिजीवन के हितों में प्रमुख घटनाओं के पशु-अर्थ में बुद्धि का जन्म और विकास बिल्कुल प्राकृतिक रीति से होता है, किन्तु मूलतः बुद्धि अपने को इस अधीन अर्थ से मुक्त कर लेती है (जो केवल बुद्धि की इन्द्रिय का कार्य है) और प्रारम्भ से ही उसका अपना दृष्टिकोण परिकल्पनात्मक और निष्पक्ष होता है, और यह ईश्वर, सत्य और शाश्वत का दृष्टिकोण अपनाने को चोरी नहीं समझती।

जब अन्ततः आत्मा सत्य के समक्ष आती है तो परम्परा और अनर्पकता का कोई स्थान नहीं होता। इसी तरह मानववाद और मत परम्परा का कोई स्थान नहीं होता और स्वयं नैतिकता का भी।

"एक बोझिल पवित्रता जिसका हमेशा एक अस्वस्थ पक्ष होता है, आदरणीय सद्गुण का स्थान ले लेती है और बहुसंख्यक शत्रुओं का भय आत्मा का सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है। किसी वस्तु की प्राकृतिकता को उस निर्दोष आवश्यकता को समझे बिना जिसके द्वारा उसने अपना विरोध और शायद—

असाधारण रूप ग्रहण किया हो उस वस्तु को सचमुच समझना सम्भव नहीं है।' [1]

उन्होंने समझा कि वे अकेले खड़े होने को तैयार, एक प्राकृतिक पवित्रता और साहस को स्वीकार करते हुए, 'खुले आकाश के नीचे अप्रतिश्रुत और नग्न' किसी ल्यूकर या स्पिनोज़ा की स्थिति में हैं। किन्तु उन दोनों के विपरीत, उन्होंने निरपेक्षता में विश्वास और प्राकृतिक व्यवस्था से प्रेम को भी त्याग दिया।

क्या ऐसा प्रतीत नहीं होने लगा कि एक नग्न आत्मा का एकाकीपन शायद एकाकी न हो ? जिस अनुपात में हम अपने लघु अधिकारों और दायित्वों का त्याग करते हैं उसी अनुपात में क्या हम अधिक ताज़ी और अधिक स्वास्थ्य वर्द्धक वायु में साँस नहीं लेने लगते ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हर वस्तु का परित्याग हर वस्तु को परिशुद्ध कर दे और हर वस्तु को उसके वास्तविक यथार्थ रूप में हमें वापस कर दे और साथ ही हमारे संकल्पों को भी परिशुद्ध करते हुए, हमें उदार बनने की क्षमता प्रदान करे। [2]

निश्छिन्न और एकाकी अब उन्होंने अस्तित्व के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया और मुक्त आत्मा के स्वाभाविक निवास के रूप में एक व्यवस्थित सार-तत्त्व सिद्धान्त (ऑन्टोलाजी) का निर्माण किया। उन्होंने अपनी जैम्स से भी गहरी सरल समझ को हटाते और 'प्रवाह' संक्रमण और चेतना-प्रवाह के आनुभविक निष्कर्ष में अपने विश्वासों को त्याग दिया और ह्यूम के मनोविज्ञान को पुनः अपनाया। उन्होंने कहा कि 'विवेकशील सारों की अन्तःप्रज्ञा वस्तुओं में 'पशु विश्वास' से बिल्कुल असम्बद्ध हो सकती है। किसी प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व आवश्यक नहीं है क्योंकि ज्ञान की उत्पत्ति प्रस्तुत की अन्तःप्रज्ञा से नहीं होती वरन् अन्य भौतिक वस्तुओं के साथ जीवों की परस्पर प्रतिक्रिया से होती है। कल्पना या अन्तःप्रज्ञा की प्रक्रिया इस खोज द्वारा मुक्त हो गयी है कि विज्ञान का एक व्यावहारिक पशु आधार है। इस प्रकार, शोपेनहॉर के प्रति अपने युवावस्था के उत्साह को सान्तायना ने एक अधिक संघातवादी घटना-क्रिया-विज्ञान और अधिक व्यवहारवादी ज्ञान-मीमांसा के द्वारा गम्भीरता प्रदान करके समयानुकूल बनाया। 'दी रियाम्स ऑफ बीइंग (अस्तित्व के क्षेत्र) के चार खण्डों में क्रमशः सार, पदार्थ सत्य और आत्मा का अन्वेषण किया गया है और पूर्वाग्रह

[1] जार्ज सान्तायना, 'दी जेण्टील ट्रेडिशन ऐट बे' (न्यूयार्क १९३१), पृष्ठ ४९, ६४, ६५, ७१-७२ ७३।

[2] जार्ज सान्तायना, 'ऑबिटर स्क्रिप्टा; लेक्चर्स, एसेज़ ऐण्ड रिव्यूज़' (न्यूयार्क, १९३६) पृष्ठ २८७।

तथा प्रभु आस्था के इस मिश्रण की व्याख्या एक व्यवस्थित सार-तत्त्व विज्ञान के रूप में की गयी है। किन्तु यह ग्रन्थ केवल सार-तत्त्व विज्ञान ही नहीं है, क्योंकि इसमें सान्तायना ने अपने सौन्दर्य-बोध के साथ-साथ जो कुछ सांसारिक ज्ञान उनके पास था उसका भी समावेश किया है। निस्सन्देह यह दार्शनिक संरचना के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में से एक है और निश्चय ही हमारे काल के बाद भी जीवित रहेगा क्योंकि यह किसी भी युग और संस्कृति के मननशील पाठक को उत्प्रेरित करता है और एक चिरकालिक सत्य को एक नयी भाषा में व्यक्त करता है। यह आग्रह करके कि हार्वर्ड में सिद्धान्त की जो कई तूफानी हवाएँ उनके चारों ओर बह रही थीं और जो अब भी अमरीकी दर्शन में विरोधी दिशाओं में बहती हैं, उन्हें स्थिरता और दिशा प्रदान करने के प्रयास के रूप में निकट अतीत के अमरीकी विचार के परिप्रेक्ष्य में इस पर विचार किया जाए इसके लेखक से विवाद करना व्यर्थ होगा, क्योंकि जहाँ भी दर्शन पनपे वहीं यह ग्रन्थ एक स्मरणीय उपलब्धि के रूप में स्थान पाने के योग्य है। फिर भी यह बता देना उचित होगा कि इसकी आन्तरिक कठोरता में 'अन्तिम शुद्धतावादी का इतना अंश है और इसके सिद्धान्त में प्रकृतिवादी तत्त्वमीमांसा का इतना अंश है कि इससे अवश्य ही अमरीका में इसके प्राकृतिक उद्गम का पता चल जाता है, चाहे अधिक स्वच्छ आकाशों के नीचे और अधिक सूक्ष्म रुचियों वाले लोगों के बीच, अन्यत्र इसका जन्म क्यों भी हो।

सातवाँ अध्याय

•

भाववाद

शैक्षिक जागरण

शैक्षिक रूढ़िवाद की भूमि से भाववाद का उद्भव धीरे-धीरे हुआ किन्तु अपने विकास के साथ यह एक नया जीवन लाया। अमरीकी विचार और शिक्षा में इस नयी भावना का सम्पूर्ण प्रभाव आश्चर्यजनक था और इसे अगर पुनर्जागरण नहीं तो पुनःस्वास्थ्यलाभ अवश्य कहना चाहिये। उन्नीसवीं शताब्दी की अन्तिम चौथाई में हमारे प्रतिष्ठित कालिजों और विश्वविद्यालयों के संकायों में दर्शन एक स्वतन्त्र विभाग का नाम हो गया। दार्शनिक विमर्श की कला को इससे लाभ हुआ या हानि यह अब भी एक विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु स्पष्टतः यह पाठ्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था और दर्शन की शैक्षिक प्रतिष्ठा में इस अन्तर के कुछ अधिक सामान्य सांस्कृतिक निहितार्थ भी थे। दार्शनिक विचार और लेखन व्यावसायिक बन गये और फलस्वरूप दर्शन की अमरीकी 'व्यवस्थाएँ' उत्पन्न होने लगीं। अमरीकी संस्थाओं में दर्शन की पूर्ण-विकसित शैक्षिक व्यवस्थाएँ इतनी देर से प्रकट हुईं यह मुख्यतः इस तथ्य के कारण था जिसका जिक्र हमने शैक्षिक रूढ़िवाद के उदय की चर्चा करते समय किया था कि दार्शनिक विचार मुख्य धर्मशास्त्रीय राजनीतिक और धार्मिक विचार-व्यवस्थाओं का एक अभिन्न अंग था और यह कि 'मानसिक दर्शन' का उदय होने के पहले एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में दर्शन की माँग बहुत कम थी। अब हमें एक शैक्षिक अनुशासन के रूप में 'मानसिक दर्शन' के विभाजन का वर्णन करना है, एक ओर 'मानसिक विज्ञान' या मनोविज्ञान में और दूसरी ओर परिकल्पनात्मक विचार के अवशेष में जिसकी अवधारणा अब बौद्धिक परमता, 'स्वत' दर्शन या 'प्राथमिक दर्शन' के रूप में की गयी जिसमें ब्रह्माण्ड-दर्शन तत्त्व-मीमांसा और ज्ञान-मीमांसा का विषय था। धर्मशास्त्र अलंकार-शास्त्र और राजनीति से

स्वतन्त्र, सार-रूप और आदर्श में शिक्षा-शास्त्र से भी स्वतन्त्र, यद्यपि इसके प्रोफ़ेसर आमतौर पर अध्यापकों के रूप में अपनी जीविका अर्जित करते हैं। दर्शन और मनोविज्ञान का व्यावसायिक रूप स्वयं जर्मनी से लाया गया था। अतः यह बात समझी जा सकती है कि भाववाद की जर्मन-धाराओं को अमरीकी जीवन में सबसे पहले व्यवस्थित अभिव्यक्ति मिली।

जर्मन भाववाद की व्यवस्थित व्याख्या करने वाले पहले अमरीकी धर्मशास्त्री और प्रोफ़ेसर, यूनियन कॉलेज के लारेन्स परसिकस हिकोक (१७९८–१८८८) थे। जोसेफ़ हेनरी की भाँति छात्र-जीवन में उन्होंने उस विलक्षण अध्यापक एलिफ़लेट नॉट से प्रेरणा पायी और (वेस्टर्न रिज़र्व तथा ऑबर्न सेमिनरी में) धर्मशास्त्र के प्रोफ़ेसर के रूप में उनका दृढ़ निश्चय था कि एक पूर्णतः आलोचनात्मक तर्कनावादी धर्मशास्त्र निरूपित करें। यह ध्यान देने योग्य है कि उनकी सर्वप्रथम प्रकाशित रचना आलोचनात्मक व्यावहारिक भाववाद की एक अभिव्यक्ति है। १८३३ में जब वे लिचफ़ील्ड, कनेक्टिकट में पादरी थे, उन्होंने 'कनेक्टिकट पीस सोसायटी' के समक्ष एक आकर्षक रूप में तर्क-संगत और प्रभावकारी भाषण 'दी सोर्सेज ऑफ़ मिलिटरी डेल्यूज़न ऐण्ड दी प्रैक्टिकेबिलिटी ऑफ़ देयर रिमूवल' (सैनिक भ्रम के स्रोत और उसे दूर करने की व्यावहारिकता) पर दिया। १८६८ में यूनियन कॉलेज की अध्यक्षता से अवकाश ग्रहण करने के बाद हिकोक ऐमहर्स्ट, मैसाचुसेट्स राज्य में रहने लगे जहाँ वे अपने भांजे और भूतपूर्व छात्र ऐमहर्स्ट कॉलेज में दर्शन के प्रोफ़ेसर और बाद में कॉलेज के अध्यक्ष जूलियस एच-सीली के साथ रह सकते थे। सीली ने उनके सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थों को संशोधित किया और इस प्रकार उनके प्रभाव को कई शैक्षिक पीढ़ियों तक जारी रखा।

हिकोक ने काण्ट के पदार्थों के सिद्धान्त को संवेद, समझ और तर्कबुद्धि की तीन मन-शक्तियों से सम्बद्ध तीन 'प्राग् अनुभव बौद्धिक क्रियाओं' की एक व्यवस्था में पुनः निर्मित किया। संवेद अनुभव के एक असाधारण रूप में आलोचनात्मक विवरण के बाद जिसका अन्तिम और असामान्य काण्ट रूप घटना का द्वैध अस्तित्व सम्बन्धी था उन्होंने समझ के 'रचनात्मक' कार्यों का विस्तृत विवेचन किया और 'प्रकृति की झूठी व्यवस्थाओं का पर्यवेक्षण' किया जिनमें से उदाहरण हैं प्लेटोवाद और न्यू-इंग्लैण्ड के एडवर्ड्स समर्थक अनुयायियों को भी मिलते थे। उनकी आलोचनात्मक रचना के अन्त में तर्कबुद्धि में प्राग् अनुभव 'अर्थग्रहण' का विश्लेषण है। उनके मतानुसार तर्कबुद्धि की प्राग् अनुभव बौद्धिक क्रिया का सम्बन्ध 'पूर्णतः' अलौकिक से था और इसका क्षेत्र वह था "जिसे काण्ट ने सारे परिकल्पनात्मक दर्शन से अलग कर दिया है और उस

विशिष्ट क्षेत्र के अन्तर्गत रखता है, जो उनके अनुसार, व्यावहारिक तर्कबुद्धि है।'[1] हिकॉक के अनुसार तर्कबुद्धि शुद्ध स्वतःस्फूर्ति या क्रिया का अर्थ ग्रहण कर सकती है।

'परम शुद्ध क्रिया की यह तर्कबुद्धि अवधारणा इस प्रकार, दिक्-काल और वस्तुओं को प्रकृति से किसी प्रकार सीमित नहीं है और सभी रूपों में प्रकृति से पायी जाने की एक प्राग्-आनुभविक शर्त है। सिवाय शुद्ध माध्यम की इस तर्क बुद्धि-अवधारणा के जो प्रकृति की किन्हीं भी स्थितियों के अन्तर्गत नहीं आती और जिसमें तार्किक निर्णय के आवश्यक सम्बन्धों में से कोई भी उपस्थित नहीं होता प्रकृति से अलौकिक की ओर जाने का कोई भी मार्ग खोजना बिल्कुल असम्भव है। और यही व्यक्तित्व का हमारा पहला तत्व होगा।

अर्थग्रहण की क्रिया की मनःशक्ति के रूप में तर्कबुद्धि के पूर्ण विचार का इस प्रकार व्यक्तित्व में परम स्थान है। प्रकृति को किसी शुद्ध स्वतःस्फूर्त स्वायत्तता और स्वतन्त्रता में समझा जा सकता है। या, यही बात दूसरे शब्दों में— तर्कबुद्धि प्रकृति को एक परम व्यक्ति के दायरे में समझ सकती है'।[2]

'रेशनल साइकॉलॉजी' (तर्कनावादी मनोविज्ञान) जहाँ समाप्त होती है, वहीं से 'रेशनल कास्मोलॉजी' (तर्कवादी ब्रह्माण्ड दर्शन) प्रारम्भ होती है।

'कहीं कोई स्थिति ऐसी अवश्य होगी जहाँ से साफ देखा जा सके कि सृष्टि के ऐसे नियम हैं जो अपरिवर्तनीय अन्त और शाश्वत सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित होते हैं। प्रकृति में किसी वस्तु को और उसी प्रकार स्वयं प्रकृति को भी वहीं तक बोधगम्य बनाया जा सकता है, जहाँ तक वह किसी तार्किक सिद्धान्त के अन्तर्गत आती है। और, ऐसा सिद्धान्त प्रकृति के अनुगत में हो नियन्त्रण रहा होगा और बनाया गया होगा। अन्यथा, प्रकृति सदैव अर्थहीन और लक्ष्यहीन रहेगी। अतः सिद्धान्त किसी सर्वथा सम्पूर्ण अन्तर्दृष्टि को अपने में ही दिखा देगा कि तथ्य क्या होंगे और परम-तर्कणा के लिए तथ्यों के किसी भी आगमन की आवश्यकता नहीं हो सकती।[3]

---

१ लारेन्स पर्सिवल हिकॉक, 'रेशनल साइकॉलॉजी, ऑर द सब्जेक्टिव आइडिया ऐण्ड द आब्जेक्टिव लॉ ऑफ आल इंटेलिजेन्स' (स्केनेक्टेडी न्यूयार्क, १८५४) पृष्ठ १५६।

२ वही, पृष्ठ ६२०।

३ लारेन्स परसिवल हिकॉक, 'रेशनल कास्मोलॉजी, ऑर द एटर्नल प्रिंसिपिल्स ऐण्ड द नेसेसरी लॉज ऑफ द यूनिवर्स' (न्यूयार्क, १८५८) पृष्ठ १।

परम तर्कना या ईश्वर का ज्ञान कभी भी 'सम्बन्धकारक समझ के निर्णयों की वस्तु' नहीं हो सकता वरन् केवल 'तर्कना की अन्तर्दृष्टि की वस्तु हो सकती है। पर्याप्त है कि सृष्टि में हम प्रकृति में उत्पन्न होने वाले तथ्यों के सम्बन्ध में एक अर्थ-संकेत मात्र उपास्यता पाते हैं।'[1]

ईश्वर तर्कनापरक है इसका एकमात्र प्रमाण हमारे पास यही है कि उसकी सृष्टि की परिणति तर्कबुद्धि में होती है। हिर्कोंक ने प्रभावशाली रूप में सृष्टि को बेचैनी से अपने को पाने और जाने की प्रक्रिया के रूप में चित्रित किया जब तक कि अन्त में उसने मनुष्य में अपने जनक के साथ तार्किक समागम प्राप्त करके विश्राम की स्थिति प्राप्त नहीं की।

अपनी अपनी महत्त्व रचना 'ह्यूमैनिटी इम्मॉर्टल ऑर मैन ट्राइड फालेन ऐण्ड रेडीम्ड (अमर मानवता या मनुष्य का विचारण पतन और उद्धार १८७२) में हिर्कोंक ने मनुष्य के इतिहास को, उसके प्राकृतिक जीवन से शाश्वत जीवन में आरोहण की प्रक्रिया के रूप में 'पूर्ण विचार में समझने की चेष्टा करके अपने इस सिद्धान्त को पूरा किया कि मनुष्य सृष्टि का अन्तिम रूप है। मनुष्य को एक 'मध्य अवस्था' में चित्रित किया गया है जिसमें वह अन्तिम निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है, जब मनुष्य की परिमित आत्मा की सीमाएँ, सृजनकर्ता के बहुतेरे कार्यों की साम्यता को समझने में उसकी अयोग्यता दूर हो जायेगी और ईश्वर का उद्देश्य 'स्पष्ट हो जायेगा'।

मानव इतिहास के इस सिद्धान्त में निहित सर्वेश्वरवाद का अनुभव सबसे अधिक स्वयं हिर्कोंक ने किया। रूढ़िवादी पादरियों ने उन्हें पैन्थीस्ट[2] कह कर उनकी आलोचना की थी किन्तु इन आरोपों से उन्हें इतनी चिन्ता नहीं हुई जितनी स्वयं अपने इस भाव से कि आनुभव सिद्धान्तों और नियमों पर निर्भर रहने से परम तर्कना का अस्तित्व चाहे प्रमाणित हो सके किन्तु इससे मानवी अनुभव की शक्ति केवल उद्धार की पुरातनता के सन्दर्भ में ही बोधगम्य रह जाती है। धर्मशास्त्र का मात्र प्राकृतिक नियम के सन्दर्भ में मानवी अनुभव की एक पूर्णतः तर्कनावादी समझ असम्भव प्रतीत होती थी। अब हिर्कोंक का ध्यान इतिहास के तर्क में लगा। अनुभव के युक्तिकरण के रूप में अरस्तू और हीगेल दोनों के अवधारणाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे कि अरस्तूवादी बन नहीं सकता और हीगेलवादी रह नहीं सकता। अतः उन्होंने

१ वही, पृष्ठ १५७।
२ पान्थीइज्म—यह सिद्धान्त कि ईश्वर हर वस्तु है और हर वस्तु ईश्वर —अनु०

संयमित सार्विकता के तर्कशास्त्र का निर्माण करने का अन्तिम और साहसपूर्ण प्रयास किया, जिसे उन्होंने 'तर्कना का तर्कशास्त्र, सार्विक और शाश्वत' (दीलाजिक आफ़ रीज़न यूनिवर्सल ऐण्ड एटर्नल, १८७५) कहा। भाववादी तर्कशास्त्र के इस पुनर्निरूपण में उन्होंने तार्किक और आनुभविक पद्धतियों के द्वैत को दूर करने की चेष्टा की जो चेष्टा उनकी अन्य सभी रचनाओं में निहित है और मानवी अनुभव में परम अनुभव की रेखाओं को चिह्नित करने का प्रयास किया। अर्थात् उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि यहाँ और इस समय भी मानवी अनुभव में ऐसे तत्त्व हैं जिनकी विशेषता है कि वे 'आत्म-सारभूत, आत्म-बुद्धिपूर्ण आत्म-भरित, आत्म-अधिकृत, और आत्म-स्वीकृत' हैं। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि एक पूर्णत: अमूर्त विज्ञान के रूप में अद्वितीय तर्कशास्त्र अपनी सीमाओं से मुक्त हो सकेगा और एक सार्विक' विज्ञान का आधार बन सकेगा जिसके सन्दर्भ में 'संयमित सार्विकताओं' का पर्याप्त निरूपण हो सके।

'यद्यपि अपेक्षतया कम लोग अभी यह देख पाते हैं कि ऐसा व्यापक अच्छा तर्कशास्त्र एक सर्व-व्यापी संशयवाद से बचने का एकमात्र उपाय है, किन्तु इसका पूर्ण विश्वास कि वह समय ज्यादा दूर नहीं जब यह एक सामान्य विश्वास बन जायेगा और एक नये और बेहतर तर्कशास्त्र की आवश्यकता का व्यापक रूप में अनुभव होगा हम पर एक अतिरिक्त भार डालता है कि हम न केवल इस स्थिति को शीघ्र लाने के लिए जो कुछ हो सके करें, वरन् इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भी जो कुछ हम कर सकते हो करें।'[1]

ऐमहर्स्ट के दैशिक वातावरण को जिसकी नींव हिकॉक ने इतनी अच्छी डाली थी, उनके एक शिष्य चार्ल्स एडवर्ड गारमैन की रचनाएँ एक असाधारण पुनर्व्यभिरख तक ले गयी। उन्होंने कॉलेज के दिनों में हिकॉक की रचनाओं को, या कॉलेज के अध्यक्ष सोस्पी के अनुसार 'क्याति' को रटते हुए बहुतेरा समय व्यर्थ गँवाया था। किन्तु बाद के वर्षों में स्वतन्त्र अध्ययन और मनन के द्वारा उन्हें भाववादी सिद्धान्त के महत्त्व का निजी रूप में बोध हुआ। कॉण्ट के दर्शन ने विशेषतः उनके अपने अनुभव में एक नया जीवन प्राप्त किया। गारमैन ने अपना सारा जीवन इस कला के विकास में लगाया कि छात्र दैशिक समस्याओं को महत्त्वपूर्ण निजी चिन्ता का विषय समझें। उनका विचार था कि जिस प्रकार उनकी अपनी पीढ़ी प्रकृतिवाद द्वारा उत्पन्न धार्मिक संकट में व्यस्त रही उसी प्रकार अगली पीढ़ी उस सामाजिक संकट में व्यस्त रहेगी जो 'लोभ और भ्रष्टाचार' की अभिवृद्धि से

---

१ लॉरेन्स परसिवल हिकॉक, दी लॉजिक ऑफ़ रीज़न, यूनिवर्सल ऐण्ड एटर्नल' (बोस्टन, १८७५), पृष्ठ ४।

उत्पन्न हो रहा था। अतः उनके लिए भाववाद का अर्थ था, दोहरी नागरिकता का सिद्धान्त—प्रकृति की नागरिकता और राज्य की नागरिकता। उन्होंने ज्ञान और आचार दोनों में ही 'मानव-सामान्य' पूर्वग्रहों के आलोचनात्मक स्थानापन्न के रूप में 'आध्यात्मिक सिद्धान्तों' या वस्तुपरक मानकों की शिक्षा देने में हिकॉक के सामाजिक दर्शन का बड़ी प्रभावकारी रीति से उपयोग किया। किन्तु हिकॉक के ग्रन्थों का उपयोग करने के बजाय दार्शनिक समस्याओं का व्यावहारिक महत्त्व प्रदर्शित करने के लिए (एक समय में एक) और इस प्रकार अपने छात्रों को कक्षा में गम्भीर वाद-विवाद के लिए और पाठ्य-ग्रन्थों को बुद्धिपूर्वक पढ़ने के लिए तैयार करने के उद्देश्य से उन्होंने स्वयं अपनी कुछ पुस्तिकाएँ अपनी कक्षाओं में बाँटीं। इस प्रकार उन्होंने लोत्से के निष्प्राण ग्रन्थ को—लोत्से को 'दर्शन के लेखकों में सबसे महान—पैठने-वाला सबसे-अधिक-देर तक-नीचे-डूबने-वाला और सबसे बड़ा कीचड़-निकाल-लाने-वाला'[1] कहा जाता था—एक निजी अनुशासन में परिवर्तित कर दिया, जिसने अनुसन्धक प्रतिष्ठित अमरीकी विचारकों को जन्म दिया। उनका उत्साह संक्रामक था क्योंकि वे सचमुच विश्वास करते थे कि न्यू-इंगलैण्ड के शैक्षिक क्षेत्र में हो रहा दार्शनिक जागरण अमरीकी जीवन में एक महान् सुधार का आरम्भ होगा।

अमरीकी जीवन और नैतिकता को सुधारने वाली शक्ति के रूप में कॉण्ट के भाववाद पर गारमैन की आस्था में शिष्यों का एक विशिष्ट समूह सहभागी था। इनमें से हर एक की अपनी अलग विचार-व्यवस्था थी, किन्तु वे अपने छात्रों में दर्शन के महत्त्व की भावना जगाने में और इस प्रकार चर्चों से स्वतन्त्र आध्यात्मिक ऊर्जा के एक स्रोत का निर्माण करने में सफल हुए। ये भाववादी चर्चों की प्रतिद्वन्द्विता में अलग उपदेशपीठों की स्थापना करना नहीं चाहते थे, फिर भी इन्होंने धार्मिक आस्था और नैतिकता को पादरियों के प्रभाव से मुक्त किया जैसा कि साहित्यिक परात्परवादियों ने शिक्षा संस्थाओं के बाहर किया था। ये लगभग सारे ही देववादी थे, किन्तु ईश्वर के प्रति उनकी दृष्टि प्रार्थना की अपेक्षा आलोचना की थी और उन्होंने उस धर्म निरपेक्ष आध्यात्मिकता का विकास किया मार्श और हैरिस जिसके पैगम्बर रहे थे। हार्वर्ड में जॉर्ज हर्बर्ट पामर ऐसा सामाजिक नीति-शास्त्र पढ़ा रहे थे जिसका उद्देश्य शुद्धाचार और हीगेलवाद के बीच मध्यस्थता करना था। 'मैसाचुसेट्स इन्स्टिट्यूट ऑफ

---

१ चार्ल्स एडवर्ड गारमैन, 'लेटर्स, लेक्चर्स एण्ड एड्रेसेज', एलिज़ा माइनर गारमैन द्वारा सम्पादित (कैम्ब्रिज १६०६), पृष्ठ ४४३।

टैक्नालाजी' में और बाद में कैलिफोर्निया विश्ववि॰ जॉर्ज होम्स हॉविसन एक बहुत्ववादी, वैयक्तिक आदर्शवाद की शिक्षा दे रहे थे। बोस्टन विश्वविद्यालय में बोर्डेन पार्कर बाउन एक अधिक एकत्ववादी वैयक्तिकता का अध्यापन और प्रचार कर रहे थे। येल मिशिगन और फिर स्मिथ कालेजों में मॉरिस स्टुअर्ट फ्रेम्प्स थे जिनकी अगर चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही आकस्मिक मृत्यु न हो जाती तो वे इस समूह के सर्वप्रमुख सदस्यों में होते। विलियम कॉलेज के जान बैस्कम और जॉन ई० रसेल थे वेस्लेयन विश्वविद्यालय के ए सी० आर्मस्ट्रांग थे येल के जार्ज ट्रम्बुल लैड थे पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के जार्ज फुलर्टन थे जॉन्स हॉपकिन्स और मिशिगन विश्वविद्यालयों के जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस थे प्रिन्सीटन के जॉन ग्रायर हिबेन और अलेक्जेण्डर टी आर्मण्ड थे कॉर्नेल के जैकब गूल्ड शुरमन थे और फिर कोलम्बिया के निकोलस मरे बटलर थे ही।[1] सामान्य प्रेरणा से अनुप्राणित होकर, इन महान् शिक्षकों ने न केवल अमरीका में दर्शन सम्बन्धी व्यावसायिक प्रयत्नों की नींव डाली, वरन् व्यवस्थित दर्शन को अमरीकी जीवन में एक गम्भीर आलोचनात्मक कार्य-स्थान प्रदान किया जिसकी शक्ति शीघ्र ही शिक्षा-संस्थाओं से बाहर बहुत दूर तक प्रकट हुई।

---

१ कोलम्बिया की स्थिति विशिष्ट थी। स्कॉटलैण्ड से बुलाये गये प्रोफेसर चार्ल्स एम० नैर्न अन्तःप्रज्ञावाद के पुराने समर्थक थे। ११ अप्रैल, १८८१ को ही जी० टी० स्ट्रांग की अप्रकाशित डायरी के अनुसार ट्रस्टियों ने निश्चय किया था कि प्रोफेसर नैर्न के 'आनुभविक सौन्दर्यशास्त्र' सार-तत्व विज्ञान 'वृत्तीय संकलन', वाले स्कॉटी तत्त्वमीमांसा शिक्षक और पाखण्ड को साफ करके इन कोरी कल्पना की छायाओं के स्थान पर साहित्य के इतिहास और दर्शन के इतिहास की ठोस और बोधगम्य शिक्षा प्रतिष्ठित की जाये जैसी कि मैक्विकर हमें दिया करते थे। अन्ततः आठवें दशक में उन्होंने शरीर-क्रियात्मक मनोविज्ञान के एक प्रोफेसर की तलाश की और दुर्भाग्यवश प्रिन्सीटन के आर्चिबाल्ड अलेक्जेण्डर को नियुक्त किया जो शरीर-क्रियात्मक मनोविज्ञान के सम्बन्ध में कुछ न जानने के अतिरिक्त, नैर्न से भी खराब अध्यापक सिद्ध हुए। धीरे-धीरे, जर्मनी में अध्ययन करके लौटे हुए निकोलस मरे बटलर ने दर्शन और मनोविज्ञान में आलोचनात्मक शिक्षण संगठित किया। पहला पाठ्यक्रम १८८५-८६ में आरम्भ हुआ। १८८९ में बटलर दर्शन के प्रोफेसर नियुक्त हुए और १८९० में उन्होंने एक स्नातकीय 'दर्शन विद्यालय' स्थापित किया।

भाववाद की धाराएँ

इस दैशिक पुनर्जागरण से दर्शन के आगमन—महान् प्रोफेसरों की महान् पीढ़ी से, जिनमें से हर एक ने स्वतन्त्र रूप से जर्मन भाववाद का एक अमरीकी संस्करण विकसित किया दर्शन की कई धाराएँ विकसित हुईं जो एक पीढ़ी से अधिक समय तक प्रभावी रही हैं और जिनमें से हर एक अपने विशिष्ट प्रकार के भाववाद को प्रतिष्ठित करती है। हम चार मुख्य धाराएँ पहचान सकते हैं जिनमें से हर एक का एक प्रभावशाली दैशिक केन्द्र है, एक संस्थापक है और स्वाभाविक निष्ठावान् शिष्यों की एक पीढ़ी है। इन्हें सुविधापूर्वक इस प्रकार रखा जा सकता है—

१ वैयक्तिकता बोस्टन विश्वविद्यालय, बार्डेन पार्कर बाउन

२ परिकल्पनात्मक या वस्तुपरक भाववाद कॉर्नेल विश्वविद्यालय जेम्स एडविन क्रीटन

३ सत्तात्मक भाववाद; मिशिगन विश्वविद्यालय जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस; और

४ परम भाववाद हार्वर्ड विश्वविद्यालय जोसिया रॉयस।

इनमें से वैयक्तिकता ईश्वरवाद और दैशिक उदारवाद के क्षेत्र के सर्वाधिक निकट रही है, सर्वाधिक व्यक्त रूप में एक धर्म के दर्शन का कार्य करती रही है और इसमें एक सम्बद्ध विचारधारा के बाह्य चिह्न सबसे अधिक कायम रहे हैं। यह मेथॉडिस्ट (धर्म-सम्प्रदायवादी) धर्म की संकीर्ण बौद्धिक सीमाएँ तोड़ने में सहायक हुई। मेथॉडिस्ट धर्म में अमुक सिद्धान्तों के प्रति भय और तिरस्कार की धर्म-सम्प्रदायवादी भावना आ रही थी किन्तु अपने वैयक्तिकतावादी धर्मदार्शनिकों को चुन-चुन कर यह दार्शनिक सम्प्रदायों का और अपर उसके सर्वाधिक साहसपूर्ण नेताओं को देखें तो अन्य के दार्शनिक दृष्टिकोणों का भी अभ्यस्त हो गया है। बोस्टन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बाउन अपनी पीढ़ी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली अध्यापकों और स्वतन्त्र-बुद्धि व्यक्तियों में थे और यद्यपि उनकी पुस्तकों के सिद्धान्त पुराने पड़ गये हैं, किन्तु अपनी स्पष्टता और विचार तथा अभिव्यंजना-शक्ति के कारण पढ़ने में अब भी रोचक हैं। बाउन ने अपना ध्यान साहसपूर्वक अपने काल के दैशिक दर्शन की दो मुख्य समस्याओं में लगाया—उन्होंने मन-शक्ति मनोविज्ञान की दुर्बलताएँ प्रदर्शित कीं और एक सारवान आत्मा में पुरानी पड़ी आस्था के स्थान पर आत्मा के आनुभविक यथार्थ की विवेचना प्रस्तुत की। सर्वप्रथम दार्शनिक प्रेरणा उन्हें उस समय मिली जब वे न्यूयार्क विश्वविद्यालय में छात्र थे, जहाँ उन्होंने स्पेन्सर की एक उदात्त आलोचना

लिखी। फिर, जर्मनी में स्नातकोत्तर अध्ययन के समय उन पर लोट्ज़े का प्रभाव पड़ा। एक ओर दैविक बुद्धिवाद तथा दूसरी ओर मिलीवी अनुभववाद की आलोचना करने में लोट्ज़े के आनुमानिक आत्म के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण प्रासंगिकता का उन्हें तत्काल अनुभव हुआ। लोट्ज़े के सिद्धान्त में आत्म या व्यक्ति एक अन्तिम, आनुमानिक यथार्थ है, जिसकी एकता अनुभव और प्रकृति दोनों के लिए आधारभूत बताई गयी है। बाउन ने इस 'परात्परवादी अनुभववाद' के देववादी निहितार्थों को विकसित किया और कॉम्ट के पदार्थों के सिद्धान्त को पुनर्निरूपित किया। अपने तर्क को पर्याप्त कारण के सिद्धान्त पर आधारित करते हुए वे इस नतीजे पर पहुँचे कि व्यक्तियों का कारण केवल व्यक्ति ही हो सकते हैं और यह कि अन्तिम कारण या जनक को कम से कम वैयक्तिक अवश्य होना चाहिए। बाउन अच्छी तरह समझते थे कि परिकल्पनात्मक स्थापनाएँ और अभिधारणाएँ 'ज्ञान की प्रगति' में उपयोगी नहीं होतीं किन्तु इसके बाद भी उन्होंने इनको मनुष्य के संकल्प के अनिवार्य और प्राकृतिक रूप कह कर इनका समर्थन किया।

'स्थापनाएँ दो प्रकार की होती हैं। कुछ केवल तथ्यों की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं और हमें तथ्यों पर कोई नया नियन्त्रण नहीं प्रदान करतीं। ये पर्याप्त कारण की माँग को सन्तुष्ट करने के लिए आवश्यक हैं। और जब कोई प्रतियोगी स्थापना मन को उतना अधिक सन्तुष्ट नहीं करती तो हम उससे मिलने वाली मानसिक शान्ति के लिये उसे अपनाते हैं, यद्यपि ज्ञान की प्रगति के लिये हम उसका उपयोग नहीं कर सकते। अणु सिद्धान्त भूविज्ञान के अधिकांश सिद्धान्त भौतिकी के बहुतेरे सिद्धान्त विश्व का देववादी दृष्टिकोण आदि ऐसी ही स्थापनाएँ हैं।

दूसरे प्रकार की स्थापनाओं में नियमन सम्भव होता है और वे हमें घटनाओं पर नियन्त्रण प्रदान करती हैं। इनका प्रमाण केवल इतना ही नहीं होता कि ये ज्ञात तथ्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त होती हैं वरन् यह भी कि उनके परिणाम अन्य तथ्यों से भी मेल खाते हैं जो मूलतः सोचे या देखे न गये हों। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त और प्रकाश का ईथर सिद्धान्त इसके उदाहरण हैं। उनका उपयोग ज्ञान की प्रगति के लिए हो सकता है और ये सामान्यतः गणितीय होते हैं। कभी-कभी कोई वस्तुनिष्ठ प्रवृत्तियों का विचारक निर्णय कर देता है कि केवल ये दूसरे प्रकार की स्थापनाएँ ही अनुमेय हैं। पहले प्रकार की स्थापनाओं को कल्पना की सन्तान कह कर जिनकी प्रामाणिकता परखी नहीं जा सकती वह उनको अस्वीकार कर देता है। दुर्भाग्यवश इस सम्बन्ध में उसकी धारणा हमेशा पूर्णतः

स्पष्ट नहीं होती कि प्रामाणिकता का अर्थ क्या है और इसके अतिरिक्त, मानव मन उसके विरुद्ध है। [1]

बाउन की 'स्टडीज़ इन थीइज़्म' (१८७९) 'फिलॉसफ़ी ऑफ़ थीइज़्म' (१८८७) और 'प्रिंसिपल्स ऑफ़ एथिक्स' (१८९१) लोकप्रिय पाठ्य-पुस्तकें थीं विशेषत मैथॉडिस्ट विद्यालयों और कालेजों में। उनकी पुस्तक 'पर्सनलिज़्म' (१९०८) ने मानववादी दर्शन और धर्मशास्त्र की एक विशिष्ट धारा को व्यवस्थित निरूपण प्रदान किया। बाउन ने वैयक्तिकता का समर्थन परम्परागत ब्रह्माण्ड-दर्शन के आधार पर किया था, किन्तु बाद में इस धारा के समर्थकों विशेषत जी० ए० को ई० एस० ब्राइटमैन ए० सी० नुड्सन और आर० टी० फ्लोवेलिंग ने इसका समर्थन मूल्यों या आस्थों के एक दर्शन के रूप में अधिक किया। उनके कथनानुसार चूंकि सारे मूल्य परिप्रेक्ष्य और अर्थ व्यक्तित्व में ही स्थित हैं अत व्यक्तित्व ही अन्तिम आनुभाविक यथार्थ है और ईश्वर व्यक्तियों का व्यक्ति है। यह दर्शन स्पष्टत ईश्वरवाद का समर्थक है और इस प्रकार एक रूप में ईसाइयत की ओर से सफाई देने का प्रयास है, किन्तु यह केवल मानववाद के पक्ष में 'मानसिकता' के या अर्थों के तर्कों की पुनर्प्रतिष्ठा नहीं है। इसका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है किन्तु इसका मनोविज्ञान अनुभववाद का आलोचक है। विशेषत ब्राइटमैन ने अपने ईश्वरवाद को और एक 'परिमित ईश्वर' में विश्वास के अपने समर्थन को एक साधारण मूल्य मीमांसा या मूल्य की सत्ता-मीमांसा के अधीन रखा है जिसके फलस्वरूप वैयक्तिकता का उनका रूप हॉकिंसन कालिन्स और मैटन की वैयक्तिकता के और मानववादी विचार के अन्य प्रचलित रूपों के बहुत निकट है। ये मानववादी 'परिमित आत्म या आनुभविक आधार को चेतन क्रिया के रूप में देखते हैं और मूल्यांकन या चयन में ऐसी क्रिया सर्वाधिक स्पष्ट रूप में विद्यमान है। वस्तुपरक मन की खोज अगर उनका अस्तित्व है तो उन मानकों में की जा सकती है जिनके द्वारा आत्माएँ अपना और एक-दूसरे का संचालन करती हैं। इस प्रकार ये वैयक्तिकतावादी बाउन के मूल-बुनाई सिद्धान्त उद्देश्यवाद और नीतिशास्त्र को और विकसित करने में सफल हुए हैं यद्यपि उन्होंने ईश्वरवाद के पक्ष में ब्रह्माण्ड दर्शन के उन तर्कों को नहीं अपनाया जिन पर बाउन की प्रारम्भिक रचनाएँ आधारित थीं। अधिकतर, वे अपने पक्ष को इस सिद्धान्त पर आधारित करके सन्तुष्ट हैं कि 'जिसमें मूल्यों और अर्थों की स्थायी वास्तविक प्रतिष्ठा हो सके ऐसी एकमात्र

---

१ बोर्डेन पी० बाउन 'थियरी ऑफ़ थॉट ऐण्ड नॉलेज' (न्यूयॉर्क, १८९७), पृष्ठ २०८-२०९।

विश्वदृष्टि नहीं है, जिसके लिए मन, व्यक्तित्व और उनके मूल्य सर्वोच्च हों।[1]

कॉर्नेल विश्वविद्यालय की धारा का वस्तुपरक भाववाद, वैयक्तिकता का प्रतिपक्षी है। यहाँ आत्मा का एक ऐसा दर्शन पनपा है, जो मनोविज्ञान के प्रति उदासीन है और जो मानवी अनुभव को उसकी ऐतिहासिक काल-गति और *संस्थागत रूपों में समझने को ही एकमात्र पूर्ण अनुभववाद मानता है।* कॉर्नेल के 'सेज स्कूल ऑफ़ फिलॉसफ़ी' में 'वस्तुपरक मन' का जो यह अध्ययन होता रहा है, वह भाववाद के अन्तर्गत उस आन्दोलन का अमरीकी पक्ष है, जिसने जर्मनी और इंग्लिस्तान दोनों में ही पदार्थों के आलोचनात्मक विश्लेषण (कान्ट की परम्परा) के साथ मानव आत्मा की ऐतिहासिक अवधारणा (हीगेल की परम्परा) को सम्बद्ध किया। इस प्रकार एक आलोचनात्मक तर्कशास्त्र और एक इतिहास दर्शन को संयुक्त करके व्यक्ति और समाज दोनों में ही एक संघटित इकाई के रूप में, अनुभव के एक सिद्धान्त का रूप दिया गया।

सेज स्कूल के पहले आचार्य, बाद में विश्वविद्यालय के अध्यक्ष जेकब गूल्ड शुरमन थे। कान्ट के प्रति अपना उत्साह उन्हें स्कॉटलैण्ड में प्राप्त हुआ था, जो कनाडा में भी उनके साथ रहा जहाँ वे कई वर्षों तक डलहौजी कॉलेज में दर्शन पढ़ाते रहे। १८८६ में जब उन्हें कॉर्नेल बुलाया गया तो उनके अन्दर यह विचार विकसित हुआ कि आलोचनात्मक भाववाद का अमरीका के लिये विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह सिद्धान्त मूलतः महान् मध्यस्थ था और राष्ट्रों के बीच महान् मध्यस्थ बनना अमरीकी की नियति थी। ह्यूम के अनुभववाद और लाइबनीज़ के तर्कनावाद के बीच मेल बिठाने में कान्ट ने जिस रीति से सफलता प्राप्त की थी उस पर शुरमन ने कान्ट की व्याख्या करते हुए विशेष ज़ोर दिया और उन्होंने पदार्थों *के सिद्धान्त को आनुभविक तर्कना के आवश्यक रूपों के विज्ञान* के रूप में विकसित किया। उन्होंने ज्ञान के प्रागनुभव और अनुभवजन्य तत्त्वों को परस्पर पूरक और किसी भी विज्ञान के लिए समान रूप से आवश्यक माना। इसी प्रकार विज्ञानों और कलाओं के बीच मध्यस्थता को उन्होंने दर्शन का मुख्य कार्य माना। १८९२ में जब उन्होंने 'फिलॉसॉफ़िकल रिव्यू' का प्रकाशन प्रारम्भ किया, तो इस पत्रिका के कार्य-लक्ष्य की व्याख्या उन्होंने सांस्कृतिक मध्यस्थता के सन्दर्भ में की और यह विचार भी प्रस्तुत किया कि अमरीकी दर्शन और भी *अधिक मध्यस्थता करने वाला होगा क्योंकि अमरीकी संस्कृति को सामान्यतः* पूर्व और पश्चिम के बीच महान् समाधानकारक बनना होगा।

१ जे० ए० लेटन 'दी प्रिंसिपिल ऑफ़ इण्डिविजुअलिटी ऐण्ड वैल्यू' जिसफ़ोर्ड बैरेट द्वारा सम्पादित 'कण्टेम्पोरेरी आइडियलिज़्म इन अमेरिका' में (न्यूयार्क, १९३२) पृष्ठ १९०।

'ऐसा मानने के सभी कारण हैं कि 'रुसो' और 'अन्य (प्लेटो की विशेष उपयुक्त सम्भावनाओं में) के मिश्रण-स्थल के रूप में अमरीका ही वह मंच होगा जिस पर वह श्रेष्ठ सृजनकर्त्री मानव-आत्मा दार्शनिक अन्वेषण व्याख्या और रचना का अपना अपना शिखर-सोपान प्रस्तुत करेगी। यूनानी संस्कृति की विशेषता थी स्वतन्त्रता—नगर राज्यों के लिए शासन की स्वतन्त्रता व्यक्ति के लिए कार्य की स्वतन्त्रता और धर्म में विचार की स्वतन्त्रता (जिसमें सिद्धान्त की कोई एकरूप व्यवस्था नहीं थी और न कोई प्राधिकार-युक्त नियमित रूप से संगठित पुजारियत थी)। दूसरी ओर रीति और नियम के प्रति आदर और समय के प्रति व्यक्ति की अधीनता भी यूनानी संस्कृति की विशेषता थी। इन विरोधी विशेषताओं ने यूनानी दर्शन के जन्म के समय के लगभग विकास की पूर्ण समरसता प्राप्त कर ली थी। यूनानी संस्कृति की मौलिकता और स्वतन्त्रता के साथ-साथ उसकी व्यवस्था और क्रम-बद्धता का उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियों का श्रेय भी इन्हीं विशेषताओं को है। यूनानी सभ्यता के ये अनुकूल पक्ष आज अमरीका में पुनःप्रकट हुए हैं—स्वतन्त्रता का अमरीकी प्रेम और नियम का अमरीकी आदर काउन्टी और नगर शासनों सहित लगभग पचास 'प्रभु' प्रशासितन्त्रों की एक संघीय सम्प्रता के अधीन एकता अमरीकी पार्टों का लोकतान्त्रिक संगठन और उनके बहुविध तथा लचीले मत विचार और बोली की अमरीकी स्वतन्त्रता, जिसमें हमेशा मात्र ध्वंस की ही नहीं वरन् निर्माण की प्रवृत्ति रही है। अन्यथा तो यह कल्पना करना कठिन है कि पृथ्वी के निवासियों में (यूनानी सभ्यता के) ये गुण सम्मिश्रता में भी कहाँ मिल सकते हैं।

'दर्शन के विकास के लिए नैसर्गिक गुणों, संस्कृति और परिस्थितियों का ऐसा अनुकूल संयोग सह-सात करोड़ जन-संख्या के राष्ट्र में विद्यमान हो यह मानव सभ्यता के भविष्य के लिए अत्यन्त आशाजनक संकेत है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हमारी भावनाएँ मात्र आशा के सहारे जियें। संकेत और वस्तुतः इस समय भी फलीभूत हो रहे हैं। स्थिति में जो कुछ पूर्व अनुमेय है, समय उसे आज भी विकसित करके जन्म दे रहा है। हमारे इतिहास में कभी भी दार्शनिक विषयों में रुचि इतनी गम्भीर और इतनी व्यापक नहीं रही। पहले की गम्भीर अविचारशील आशावादी मनःस्थिति अब भले ही न हो किन्तु हम इस तथ्य को छिपा नहीं सकते कि राष्ट्र अपने जीवन की दूसरी शताब्दी में बेचैनी एक नयी भावना और पहले से अधिक गम्भीरता और मनन की प्रवृत्ति लेकर प्रवेश कर रहा है। अपार वस्तुओं सीमाओं और दुर्गम प्रारम्भों को लेकर, 'जिनके जीवन नहीं पाया है भविष्यवाणी की जा सकती हो तो हम इस ... नैतिक क्रियाकलाप को लेकर, बशर्ते कि स्थितियाँ ऐसी ही बनी

भविष्यवाणी करने का साहस कर सकते हैं कि इससे विचारों की वैसी ही पौध उत्पन्न होगी जैसी ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी में यूनानी में हुई थी, या जिसे लगभग तीन पीढ़ी पूर्व ही जर्मनी में प्रौढ़ता प्राप्त हुई थी। किन्तु एक महत्वपूर्ण अन्तर होगा। हमारे राष्ट्र में दर्शन का जन्म विशेष दार्शनिक रुचियों के प्रति निष्ठा का और विशेष दार्शनिक क्षेत्रों में मार्गों का श्रम होगा। हमारी संस्थापित विचार-व्यवस्थाएँ, अगर कभी उनका निर्माण हुआ तो, किसी भी पूर्वकालिक दार्शनिक व्यवस्था की तुलना में तथ्यों के कहीं अधिक व्यापक आगमन पर आधारित होंगी। यह सचमुच सौभाग्य की बात है कि विशेषज्ञता की भावना दर्शन में व्याप्त हो गयी है और अमरीकियों द्वारा की गयी विशेष खोजों और विशेष प्रबन्धों पर हम अपने को बधाई दे सकते हैं। किन्तु सहयोग के बिना श्रम-विभाजन से कोई लाभ नहीं होता।[1]

जब शुरमन १८९२ में कार्नेल विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बन गये तो सेज स्कूल के आचार्य के रूप में उनका स्थान जेम्स एडविन क्रेटन ने लिया जो [illegible] में शुरमन के शिष्य रह चुके थे और १९२४ में अपनी मृत्यु के समय तक आदर्शवाद की कार्नेल धारा के मुख्य प्रतिनिधि रहे। उनके सहयोगी असाधारण रूप में सक्षम अध्यापक थे। अध्यापकों और विद्यार्थियों की इस प्रतिष्ठित परम्परा की पहली पीढ़ी में ही फ्रैंक थिली (पॉलसेन के शिष्य उनकी कुछ रचनाओं और अन्य जर्मन ग्रन्थों के अनुवादक) विलियम ए० हैमण्ड और अर्नेस्ट एल्बी जैसे व्यक्ति थे। अमरीका में दर्शन के अध्यापकों के एक बड़े हिस्से ने कार्नेल में शिक्षा पाई और उनके माध्यम से कार्नेल के सिद्धान्तों और पद्धतियों ने दार्शनिक शिक्षण और शोध-कार्य में प्रभावी स्थान प्राप्त किया। १९०२ में 'अमेरिकन फिलॉसॉफिकल एसोसिएशन' (अमरीकी दार्शनिक संघ) के निर्माण में भी कार्नेल ने अगुआई की और क्रेटन उसके पहले अध्यक्ष बने। व्यावसायिक और सहयोगी दार्शनिक अध्ययनों में कार्नेल का यह प्रमुख भाग आकस्मिक नहीं था। इस धारा द्वारा मन की वस्तुपरक अवधारणा और विचार की सामाजिक प्रकृति में विश्वास का यह व्यावहारिक प्रयोग था। अपने अध्यक्षीय भाषण में क्रेटन ने इसे स्पष्ट कर दिया।

'शोध-कार्य के हर विभाग में यह विश्वास बढ़ता हुआ प्रतीत होता है कि वास्तविक प्रगति के लिए बौद्धिक साहचर्य और सहयोग आवश्यक है। इसमें अन्तर्निहित मान्यता यह है कि वैज्ञानिक कार्य में आवश्यक है कि शक्तियों का संयोजन हो और कुछ अलग-अलग व्यक्तियों के रूप में नहीं वरन् सहयोगी

---

१ जेकब गूल्ड शुरमन, 'दी फिलॉसॉफिकल रिव्यू' में 'प्रिफेटरी नोट' खण्ड एक (१८९२), पृष्ठ १-४, ३।

दिमाग़ों के एक सामाजिक समूह के रूप में कार्य किया जाये। हमने सीख लिया है कि मौलिक रूप में अपने को प्रकट कर लेना अपने कार्य को निष्फल बनाना है, कि हर पीढ़ी में समस्याओं की एक मुख्य दिशा होती है और अगर सामान्य लक्ष्य की पूर्ति में हम कोई योग देना चाहें, तो हमारे लिए उसी दिशा में काम करना आवश्यक है।'[1]

और अपने सर्वोत्तम निबन्धों में से एक में उन्होंने इसी विचार को विकसित किया।

'मन एक पूर्ण इकाई है, और अगर अनुभव के कुछ रूपों में उसकी सामाजिक प्रकृति प्रदर्शित होती है, तो हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह अपनी किसी पक्ष में एकाकी और आत्म-केन्द्रित बना रहेगा। फिर भी सामान्य विचार और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दोनों में ही विचारशील मन को एक विशिष्ट प्रकार का अस्तित्व मानने की प्रवृत्ति है जो किसी प्रकार एक शरीर के अन्दर स्थित रहता है और एक मस्तिष्क के कार्यों को व्यक्त करता है। जिस प्रकार एक शरीर दूसरे शरीर को अपने स्थान से बाहर रखता है, उसी प्रकार व्यक्ति के विचारशील मन को एकाकी विकर्षक और अपने में सीमित माना जाता है। विचारक को एक अकेला व्यक्ति माना जाता है, जो अकेले, बिना सहायता के स्वयं अपनी समस्याओं से उलझता है। ऐसा माना जाता है कि वह अपने मन की शक्ति से स्वयं अपने विश्लेषणों और मनन के द्वारा सत्य का सृजन करता है। इस मत के विरुद्ध, मैं कहना चाहता हूँ कि प्रामाणिकता की जाँच की प्रक्रिया में हमेशा बहुतेरे मनों का सहयोग और परस्पर-कार्य सम्मिलित होता है। अन्य मनुष्यों के विचारों के सहारे और उनके प्रकाश में ही व्यक्ति अपने को वैयक्तिक कल्पनाओं और पक्षपातों में किये गये सामान्यीकरण से मुक्त करता है और इस प्रकार वास्तविक सत्य को प्राप्त करता है। परिणाम इस अर्थ में मौलिक नहीं होता कि वह पूरी तरह उसी के दिमाग़ से निकला हो बल्कि वह बहुतेरे मनों से मिलकर काम करने का फल होता है। विचार की क्रिया किसी अपूर्ण व्यक्ति-मन के कार्य का फल नहीं वरन् मनों के एक समाज के कार्य का फल होती है, उसी प्रकार जैसे नैतिकता और राजनीतिक संस्थाएँ और धर्म व्यक्तियों की ऐसी ही संगठित एकता से उत्पन्न होते और उसी में स्थित होते हैं। बिना समाज के व्यक्ति नहीं, यह वक्तव्य मनुष्य के विचारक रूप पर उसी तरह लागू होता है, जैसे उसके नैतिक या राजनीतिक रूप पर।'[2]

१ जेम्स एडविन क्रीटन 'स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलॉसफ़ी' (न्यूयार्क १९२५) पृष्ठ ७।

२. वही, पृष्ठ ५०-५१।

जिस कारण विचार सामाजिक है, उसी कारण से ऐतिहासिक भी है। अनुभव की निरन्तरता और एकता को (मनुष्य की) एक चेतन सम्पत्ति बनना होगा।

"दार्शनिक विज्ञान 'प्राकृतिक' विज्ञान नहीं है और उससे अपने 'तथ्य' नहीं ले सकता। ऐसा करने का अर्थ होगा दर्शन के स्थान पर 'मनोविज्ञानवाद' और '*प्रकृतिवाद*' को स्थापित करना। किन्तु दर्शन को, दर्शन बन सकने के लिए, तथ्यों का मानवीयकरण करना होता है, अर्थात् उन्हें पूर्ण और आत्म-चेतन मानवी अनुभव के दृष्टिकोण से देखना होता है, क्योंकि इसी दृष्टिकोण से उनका कोई अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार दार्शनिक मुख्यतः प्रकृतिवादी होने की अपेक्षा मानववादी होता है और उसका निकटतम सम्बन्ध उन विज्ञानों से होता है जिनका कार्य-क्षेत्र मनुष्य के विचार और उद्देश्य क्रिया-कलाप के प्रश्न होते हैं। प्राकृतिक विज्ञान के साथ अपने सम्बन्ध में उसकी दिलचस्पी तथ्यों के वस्तुपरक रूप की अपेक्षा उन वैचारिक क्रियाओं में अधिक होती है, जिनके द्वारा वे तथ्य प्राप्त किये गये। वह प्राकृतिक विज्ञान के दृष्टिकोण को नहीं अपनाता वरन् उसे पूरी तरह रूपान्तरित करके, चेतन अनुभव के सन्दर्भ में प्राकृतिक तथ्यों की एक नयी व्याख्या प्रदान करता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति भौतिक प्रकृतिवादी के अमूर्त दृष्टिकोण को दार्शनिक व्याख्या के द्वारा मानवीय बनाना होता है। दार्शनिक व्याख्या 'जिस रीति से तथ्यों के अर्थ ग्रहण करती' है और प्रकृति में मनुष्य के मन के साथ वह अनुकूलता देखती है, जिसके द्वारा ही प्रकृति बोधगम्य होती है। दूसरी ओर दार्शनिक दृष्टिकोण इसे आवश्यक *बनाता है कि मनोवैज्ञानिक 'प्रकृतिवादी' द्वारा प्रस्तुत मन के तथ्यों के विवरण* से भिन्न एक विवरण प्रस्तुत किया जावे। मनोवैज्ञानिक प्रकृतिवादी के मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण को उसी प्रकार प्रस्थान-बिन्दु नहीं बनाया जा सकता जैसे भौतिक-विद् के मात्र वस्तुपरक दृष्टिकोण को। जिस प्रकार भौतिक तथ्यों को मन के सन्दर्भ में देखकर दर्शन उन्हें मानवीय रूप देता है, उसी प्रकार वह वैयक्तिक तथ्यों को ऐसे कार्यों के रूप में देख कर जिनके द्वारा व्यक्ति प्रकृति के साथ और अन्य मनुष्यों के साथ अपनी एकता को उपलब्ध करता है, उन्हें वस्तुपरक बनाता है।"[1]

पाठक इन पंक्तियों में 'वीस्सविसेनशाफ्ट' (कला) की भावना को पहचान लेंगे। यह भाववाद प्रवृत्ति और रुचि दोनों में ही मानववादी था। प्रकृति की व्याख्या मनुष्य के वातावरण, उसके अनुभव-स्थल के रूप में की जाती थी—

---

१ वही, पृष्ठ २१।

प्रकृति न बाहर थी, न केन्द्र में थी। इसी प्रकार, प्रकृति के विपरीत ध्रुव पर स्थित व्यक्ति मन के लिये न केन्द्रस्थ है, न आकस्मिक। प्रकृति समाज और व्यक्ति मिलकर विचार और संस्कृति का एक समुदाय बनाते हैं। स्वयं अपने विचार में और साथ ही अपने अध्यापन और सम्पादन में भी ब्रीटम ने आग्रह किया कि अब 'सफरमैना' कार्य सम्भव नहीं था अब केवल कलाओं और विज्ञानों के विशाल विकसित क्षेत्र में सहकारी श्रम ही सम्भव था। विचार का अर्थ है सामान्य कार्यों में अन्य मनों के साथ काम करना। स्पष्टतः यह सिद्धान्त मात्र ज्ञान-मीमांसा या मात्र सैद्धिक अध्ययन का कार्यक्रम भी नहीं था। जर्मनी और इंग्लिस्तान के समान अमरीका में भी यह मानवी कार्य और स्मृति के पक्षाघात से व्यापक क्षेत्रों से दर्शन को सम्बद्ध करके उसे एक नयी प्राणशक्ति प्रदान करने का (लैबेन्सफिलॉसॉफी—जीवन्त दर्शन) प्रयास था। जैसा अधिकांश दार्शनिक विचारों के साथ और निश्चय ही अधिकांश आदर्शों के साथ होता है इसका सिद्धान्त कि यथार्थ क्या है, इससे सूचक है कि महत्त्वपूर्ण क्या है। अतः यह कथन कि समग्र अनुभव एक सम्पूर्ण सम्बद्ध आंगिक इकाई है, उसे ऐसा बनाने के एक सबल प्रयास का अंग था।

कॉर्नेल से भी अधिक जीवन के तर्क से पैदा रूप में सम्बद्ध तत्त्वात्मक मानववाद की धारा थी जो कुछ वर्षों तक जोन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में और कुछ अधिक समय तक मिशिगन विश्वविद्यालय में पनपी। इस धारा ने मानवी अनुभव की सांस्कृतिक प्रकृति के साथ-साथ उसकी जैविक प्रकृति पर भी जोर दिया। डार्टमथ कॉलेज के स्नातक और यूनियन थियोलॉजिकल सेमिनरी के छात्र, जार्ज सिल्वेस्टर मॉरिस उन बहुतेरे युवा उदारवादी पादरियों में से थे जिन्होंने धर्मपीठ को अपनाने के बजाय जर्मनी में अपना अध्ययन जारी रखना पसन्द किया और इस निर्णय के फलस्वरूप ईसाई पादरियों का कार्य हमेशा के लिए छोड़ कर अपने को दर्शन के अध्यापन में लगाया। उन पर हाले नगर के उलरिसी और बर्लिन में ट्रेन्डेलनबुर्ग का प्रभाव पड़ा। इनसे उन्होंने धर्म-ईसाई प्रतिपक्षकारी धर्मशास्त्र के बजाय एक 'वास्तविक अस्तित्व के विज्ञान' में अरस्तू की तत्त्वमीमांसा द्वारा प्रबुद्ध परात्परवाद में सत्य की खोज करना सिखाया। १८६८ में अमरीका वापस आने के बाद कई वर्ष तक वे बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से टटोलने में ही लगे रहे। वे आधुनिक साहित्य और भाषाएँ पढ़ाने के लिए १८७० में मिशिगन गये किन्तु अमरीका में मानववाद की एक विशिष्ट धारा के संस्थापक के रूप में उनकी भूमिका १८७८ में ही निश्चित हुई, जब उन्होंने मिशिगन और जोन्स हॉपकिन्स दोनों में ही पढ़ाना आरम्भ किया।

वे जर्मनी से काण्ट के पदार्थों की क्रियावादी व्याख्या और मानववाद में रुचि

विकास अभिवृद्धि और वास्तविकीकरण सम्बन्धी अरस्तुवादी धारणाओं को सम्मिलित करने के पक्ष में उत्साह लेकर लौटे। ट्रेण्डेलेनबुर्ग और अन्य नव-कॉण्ट समर्थक संकल्पवादियों की भाँति उन्होंने कहा कि विचार के कार्य वास्तविक अर्थ में गति होते हैं और विचार की श्रेणियाँ गति की श्रेणियाँ होती हैं। अतः मन के विज्ञान को ऊर्जा के अन्य प्राकृतिक रूपों के विज्ञान में सम्मिलित किया जा सकता है। मन की सृजनात्मक (निर्माणात्मक) शक्तियों को प्राकृतिक ऊर्जाओं के रूप में समझा जा सकता है, जो स्वतःस्फूर्त या तात्विक होने के कारण स्वतन्त्र हैं। तर्कबुद्धि के जीवन के इस विश्लेषण का उद्देश्य हीगेलवादियों द्वारा तर्क और तदात्मकता पर अति आग्रह की आलोचना प्रस्तुत करना था। मॉरिस के अनुसार इतिहास के क्रम में विचार की गति पूर्व पक्षों के एक 'तर्कपूर्ण' अनुक्रम से अधिक, जीवन्त क्रियाओं की अभिवृद्धि थी। मॉरिस ने मन के सृजनात्मक क्रिया-कलाप की इस व्याख्या का उपयोग ऐसे दृष्टिकोण के रूप में किया जहाँ से वे स्पिनोजा लाइबनीज और हीगेल की 'तादात्म्य-व्यवस्थाओं' की आलोचना कर सकें और सामान्यतः विश्लेषण की दार्शनिक पद्धतियों को गणित और द्वन्द्ववाद की पद्धतियों के विरुद्ध प्रस्तुत कर सकें। वे दर्शन को एक स्वतन्त्र और विशिष्ट विज्ञान मानते थे एक अर्थ में प्रयोगात्मक किन्तु पद्धति और लक्ष्य में एक ओर प्राकृतिक विज्ञानों से तथा दूसरी ओर गणितीय और तार्किक विज्ञानों से मुख्यतः भिन्न। उनके लिए यह शरीर के (अरस्तुवादी अर्थ में) जीवन या आत्मा का विज्ञान जीवन में या 'क्रिया में' अनुभव का विज्ञान था।

ज्ञान-मीमांसात्मक यथार्थवाद और रोमानी संकल्पवाद के इस संयोजन के द्वारा मॉरिस ने दर्शन को बिना अन्य विज्ञानों के अधीन किये उसे पूर्णतः वैज्ञानिक आधार पर रखने का प्रयास किया। यह प्रयास जॉन्स-हॉपकिन्स में विशेष महत्त्वपूर्ण था जहाँ शैक्षिक शोध-कार्य के केन्द्र के रूप में पहली बार प्राकृतिक प्रयोगात्मक विज्ञानों का समर्थन किया जा रहा था। एक प्रकार के मानववाद का विज्ञानों के बीच विज्ञान के रूप में समर्थन करने के अपने प्रयास में वे अपनी बात न अध्यक्ष गिलमैन को समझा पाये न जी० स्टैनली हाल को जो उनकी विचार-व्यवस्था को नैतिक दर्शन मानते थे प्राकृतिक विज्ञान नहीं। उन्हें जॉन्स हॉपकिन्स में अपना प्रयास छोड़कर एक नीतिज्ञ होने की प्रसिद्धि लेकर मिशिगन वापस जाना पड़ा।

इस बीच, जॉन्स हॉपकिन्स में उनके सहयोगी सी० एस० पीयर्स कॉण्ट के पदार्थों का अपने ढंग से संशोधन करने का कार्य कर रहे थे। वे मन के बीच विज्ञान सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणाओं के साथ उन्हें सम्बद्ध कर रहे थे और नैरन्तर्य-सिद्धान्त का अपना ही रूप प्रतिपादित कर रहे थे। इन मूल वर्गों और

समस्याओं में मॉरिस और पीयर्स सहगामी थे किन्तु प्रमाण सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न थे। मॉरिस गणितीय तर्कशास्त्र का मूल्य आंशिक रूप में समझते थे, किन्तु प्रमाण के लिए उनकी दृष्टि में उसका कोई महत्त्व नहीं था।

वुण्ट और अन्य जर्मन मनोवैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं में प्रशिक्षण पाने के बाद जब जी० स्टेनली हॉल भी जॉन्स हॉपकिन्स के संकाय में आ गये तो उन्होंने अमरीका में प्रयोगात्मक शरीर क्रियात्मक मनोविज्ञान का प्रवेश कराया। उनकी दृष्टि में मॉरिस और पीयर्स की तत्त्व-मीमांसा इतनी परिकल्पनात्मक थी कि वह जीव-वैज्ञानिक नहीं हो सकती थी। जॉन डुई ने जो १८८१ में वरमॉण्ट से आये और मुख्यतः मॉरिस के अधीन अध्ययन किया दार्शनिक जीव-विज्ञान के इन विभिन्न रूपों की शक्ति का अनुभव किया और इन सभी का आलोचनात्मक उपयोग करते हुए, 'मनोविज्ञान' की स्वयं अपनी व्यवस्था तैयार करने लगे जो एक मूल-ग्रन्थ के रूप में १८८७ में प्रकाशित हुई। डुई ने मॉरिस के अधीन 'काण्ट का मनोविज्ञान' पर पी० एच० डी० उपाधि के लिए शोध कार्य से अपना कार्य आरम्भ किया। जर्नल ऑफ स्पेकुलेटिव फिलॉसफी में उन्हीं दिनों प्रकाशित पॉस्टीन वेबसेन के लेख के समान (उसके पीछे भी मॉरिस की प्रेरणा थी) डुई का शोध-निबन्ध काण्ट के निर्णय के सिद्धान्त पर केन्द्रित था जिसके अनुसार निर्णय मानवी अनुभव में सम्बन्ध का कार्य करता है। उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि काण्ट के सिद्धान्त के अनुसार 'तर्कना या आत्मा मनुष्य के अनुभव के सम्पूर्ण क्षेत्र का केन्द्र और उसका संघटित एकत्व' है और बुद्धि (काण्ट की 'तर्कना' के लिए मॉरिस का शब्द) को यह केन्द्रीय स्थान और कार्य प्रदान करने के कारण काण्ट सच्ची दार्शनिक पद्धति के संस्थापक थे और 'जहाँ उन्होंने उसे नहीं अपनाया वहाँ वे स्वयं अपनी त्रुटियों और अन्तर्विरोधों में फँस गये।

१८८४ में डुई मिशिगन में मॉरिस के सहयोगी बने और १८८५ की गर्मियाँ मॉरिस ने विदेश में विशेषतः स्कॉटलैण्ड और इंग्लिस्तान में बिताईं जहाँ वे ब्रिटिश भाववादियों विशेषतः एडवर्ड केर्ड एफ० एच० ब्रैडले और विलियम वैलेस से मिले। उस समय से लेकर १८८९ में मॉरिस की मृत्यु के समय तक मॉरिस और डुई दोनों ने ही हीगेल को अधिकाधिक स्वीकार किया। उनकी राय में हीगेल मूलतः एक वस्तुनिष्ठ अनुभववादी थे जिन्होंने बुद्धि के द्वारा मानवी अनुभव के संयोजन या सम्बद्धता' को प्रदर्शित करना चाहा था। अपने भाववाद के इस हीगेलवादी रूप को मॉरिस की अपेक्षा डुई ने अधिक व्यवस्थित रूप में प्रतिपादित किया। जिसे मॉरिस ने 'बोध या विवेक विज्ञान' कहा था वह डुई के अनुसार मनोविज्ञान में वस्तुपरक पद्धति बन गयी। (पाठक को याद होगा कि स्नाइडर और सेण्ट लुई के कुछ अन्य हीगेलवादी मनोविज्ञान शब्द का प्रयोग

पंस्थाएँ है। भावना के क्षेत्र में श्रता है। सम्पूर्ण आत्म क क्षेत्र में धर्म है। भाषा-विज्ञान विज्ञान का तर्कशास्त्र इतिहास समाजशास्त्र आदि इन विभिन्न विभागों का वस्तुपरक रूप में अध्ययन करते हैं और उनके तत्वों का जोड़ने वाले सम्बन्धों का पता लगाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु इनमें स कोई भी विज्ञान इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखता कि विज्ञान धर्म कला आदि सार हो स्वयं अपने ही नियमों के अनुसार अपने को विकसित करते हुए मन या आत्म का उत्पत्ति है और इस कारण इनका अध्ययन करने में हम केवल चेतन आत्म की मूल प्रकृति का ही अध्ययन करते हैं। मानवी ज्ञान क्रिया और सृजन के इन व्यापक विभागों में ही हम आत्म के बारे में सर्वाधिक जानकारी प्राप्त करते हैं और उनके अन्वेषण कार्य के द्वारा ही हम उसके क्रिया-कलाप क नियमों को सर्वाधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त होते पाते हैं। १

हुई मे आउटलाइन्स ऑफ एथिक्स (नीतिशास्त्र की रूपरेखा—१८६१) में मंस्टर क वस्तुपरक मनोविज्ञान की ओर आगे विकसित किया। हुई जब नीतिशास्त्र सम्बन्धी अपनी विचार-व्यवस्था को संशोधित कर रहे थे उन्हीं दिनों जेम्स की 'साइकॉलोजी' में प्रतिपादित उपकरणवाद का ज्ञान हुआ और स्वतन्त्र तर्कशास्त्र और नीतिशास्त्र के प्रति अपनी जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से विस्तृत भाववादी आधार का परित्याग करके उन्होंने अधिक प्रकृतिवादी और कम विशिष्ट शब्दावली अपनायी।

अन्त में हम भाववाद की उस धारा पर आते हैं जिसे हमने 'परम भाववाद' कहा है, यद्यपि यह संज्ञा उसे उपयुक्त रूप में व्यक्त नहीं करती। इसमें जोसिया रॉयस द्वारा प्रस्तुत परम सिद्धान्त के भिन्न रूप और उनके द्वारा अन्य धाराओं की विशेषताओं को अपनाने क आंशिक प्रयास आते हैं ताकि व ईश्वर का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत कर सकें—निरपेक्ष रूप नहीं। हार्वर्ड में रॉयस स्वयं ही एक धारा बन गये थे और यद्यपि उन्होंने भाववादियों का कोई गुट नहीं तैयार किया किन्तु उनकी अपनी विवेचना इतनी स्पष्ट और प्रभावकारी थी कि उसने कई दशकों में कई प्रकार के दार्शनिकों पर गम्भीर प्रभाव डाला। उनकी चर्चा हम एक अलग खण्ड में करेंगे।

जोसिया रॉयस

बर्कले में कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय के द्वार खुलने (१८७१) के दो वर्ष बाद ही जोसिया रॉयस नामक एक बालक वहाँ आया जिसके पीछे

१ जान डूई 'साइकॉलोजी' (न्यूयार्क १८८७), पृष्ठ ८ ४११ ११-१

पर धूप के दाग पड़े हुए थे वहाँ से ए० बी० की (स्नातकीय) उपाधि लेकर, अध्ययन के लिए जर्मनी जा रहा था। ऐथिक्स के प्रामेथियस या धर्मशास्त्र' शीर्षक उनके निबन्ध ने वहाँ बसी बसाने वाले कुछ समृद्ध लोगों को इतना अधिक प्रभावित किया कि वे उन्हें इतना काफ़ी कैलिफ़ोर्निया का स्वर्ण देने को तैयार हो गये जिससे वे जर्मनी में लोत्जे शोपेनहॉर और पलीडरर का अध्ययन करते हुए और गॉटिन्जेन में लॉत्जे का भाषण सुनते हुए दो वर्ष बिता सके। वे ऐसे समय पर अमरीका वापस लौटे कि जॉन्स हॉपकिन्स की सर्वप्रथम छात्र-वृत्तियों में से एक उन्हें मिल गयी। उन्होंने एक कोटिवादी समस्या पर अपना प्रबन्ध लिखा और मॉरिस ने दर्शन के इतिहास में उनकी परीक्षा ली। डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने के बाद (१८७८) वे तर्कशास्त्र और अलंकारशास्त्र के शिक्षक के रूप में कैलिफ़ोर्निया वापस आये। कुछ वर्षों में ही उन्होंने फिर पूर्व की यात्रा की इस बार हार्वर्ड में साहित्य और दर्शन पढ़ाने के लिए। सभी लोग तत्काल उनसे प्रभावित हुए और तीन वर्ष के अन्दर ही अध्यक्ष इलियट ने उन्हें लावेल भाषणमाला के भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया। इसके लिए उन्हें एक हजार डालर मिलने थे। भाषणमाला के संरक्षक श्री लावेल ने युवक रॉयस को समझाया कि भाषण चूँकि धर्म पर होने थे, अतः अनुबन्ध पक्का होने के पहले उन्हें एक सरल मत-वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने होंगे। इस पर रॉयस ने घोषणा की कि वे धन के लिए किसी मत पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे और लावेल भाषण देने के बजाय वे 'कैलिफ़ोर्निया एक स्टडी ऑफ़ अमेरिकन कैरेक्टर' (कैलिफ़ोर्निया अमरीकी चरित्र का एक अध्ययन) शीर्षक एक निबन्ध तैयार करने में लग गये। इस निबन्ध का अन्तिम अंश उद्धृत करने योग्य है—

'राज्य या सामाजिक व्यवस्था ही ईश्वरीय है। हम सब केवल मिट्टी हैं सिवाय वहाँ तक समाज-व्यवस्था हमें जीवन देती है। अगर हम उसे अपना साधन, अपना खिलौना मानें और अपनी निजी समृद्धि को ही एकमात्र लक्ष्य बनाएँ, तो शीघ्र ही यह समाज-व्यवस्था हमारे लिए दुष्ट बन जाती है। हम इसे गन्दी पतित भ्रष्ट और अनाध्यात्मिक कहते हैं और पूछते हैं कि हम इससे हमेशा के लिए कैसे बच सकते हैं। किन्तु अगर हम फिर मुड़ कर केवल अपनी ही नहीं वरन् समाज-व्यवस्था की सेवा करते हैं तो हम शीघ्र ही पाते हैं कि हम जिसकी सेवा कर रहे हैं वह शारीरिक रूप में केवल हमारी अपनी उच्चतम आध्यात्मिक निर्मिति है। यह कभी भी वस्तुतः गन्दी या भ्रष्ट या अनाध्यात्मिक नहीं होगी। 'हम' ही ऐसे होते हैं जब हम अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं।[1]

१ जोसिया रॉयस 'कैलिफ़ोर्निया ए स्टडी ऑफ़ अमेरिकन कैरेक्टर' (बोस्टन १८८६) पृष्ठ ५०१।

एक रोमानी भाववादी के लिए यह आरम्भ कितना उपयुक्त था। उनका बड़ा सिर और ऊँचा माथा प्रीमिथियस शेलिंग और शोपेनहॉर से भरा हुआ था और इसी मग्न स्थिति में उन्होंने अपना पहला चमत्कारिक दार्शनिक धर्मोपदेश लिखा, जिसका शीर्षक था दी रेलिजस आस्पेक्ट ऑफ फिलॉसफी (दर्शन का धार्मिक पक्ष)।

इस रचना में निराशावाद और संशयवाद का प्रचुर द्वन्द्वात्मक उपयोग किया गया है। इसके तर्क के दो भाग हैं—निराशावाद की 'नैतिक' समस्या और निर्णय की तार्किक समस्या। नैतिक शंका कैसे सम्भव है? त्रुटि कैसे सम्भव है? वे शोपेनहॉर के निराशावाद से आरम्भ करते हैं जो अन्तिम विश्लेषण में इस तथ्य से उत्पन्न नैतिक निराशा प्रमाणित होता है कि किसी विशिष्ट आदर्श का हर तार्किक आत्मा द्वारा स्वीकृत होना 'वांछनीय' है, इसे प्रमाणित करना असम्भव है। किन्तु इस शंका की कड़वी घूँट पीते ही उन्हें पता चला कि 'मामले का सत्य शंका में ही छिपा है।' कोई विशिष्ट परम वांछनीयता खोजने में उसकी असफलता खोजने वाले को निराशावादी बनाती है, इस तथ्य में ही निहित है कि उनमें यह नैतिक संकल्प या माँग है कि सभी विशिष्ट आदर्शों में 'समरसता लाना वांछनीय है।' ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे नैतिक संघर्ष अब आनुभविक निराशावादी बनाता है नैतिक शान्ति की सच्चाई अपने आप में स्पष्ट होगी। निराशावाद इसी कारण सम्भव है कि निराशावाद की घटना में ही एक परम आदर्श का आग्रह किया जाता है। इस परम आदर्श को वे इस प्रकार निरूपित करते हैं—इस प्रकार जियो जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारा और तुम्हारे पड़ोसी का जीवन एक ही हो।

यह सद्भावना के कांटवादी नीति-शास्त्र का एक पुनर्वक्तव्य है। बाद में उन्होंने निष्ठा के दर्शन के रूप में इसे पुनर्निरूपित किया जिसका निष्काम नियोग है कि निष्ठा के प्रति निष्ठावान् रहो। निम्नलिखित उक्तियों के द्वारा वे इस सूत्र को ठोस सम्पत्वस्तु प्रदान करने की चेष्टा करते हैं—(१) व्यक्ति के रूप में सुखी होने की चेष्टा मत करो—कोई विशिष्ट वस्तु अन्तिम नहीं हो सकती। (२) सारे जीवन को संगठित करो। यानी सभी नैतिक मानवता के जीवन के लिए ऐसा कार्य उपलब्ध करो जो इतना व्यापक और निश्चित हो कि उस दोषरहित स्थिति में चाहे मनुष्य का जीवन कितना भी समृद्ध और बहुमुखी क्यों न हो, हर मनुष्य के जीवन का हर क्षण उस एक सर्वोत्तम निर्वैयक्तिक कार्य की पूर्ति में लगे।'[1] संगठन की सम्पूर्ण रूप में उपलब्धि विधान और राज्य में

---

[1] जोसिया रॉयस 'दी रेलिजस आस्पेक्ट ऑफ फिलॉसफी (बोस्टन, १८८५), पृष्ठ १११।

होती है। राज्य के बारे में वे किसी मेनवासी (मेन) या कैलिफ़ोर्नियावासी के से उत्साह से बात करते हैं। कला संगठन का केवल एक दोषपूर्ण माध्यम है, क्योंकि कलाकार वैयक्तिकता को विकसित करते हैं।

यह नैतिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने के बाद रॉयस अब धर्मशास्त्रीय संशयवाद की ओर मुड़ते हैं। क्या ईश्वर है? इस प्रश्न के दो अर्थ हो सकते हैं। इसका अर्थ हो सकता है कि क्या सृष्टि का कोई सूत्रधार और संचालक है, अर्थात् क्या कोई परम शक्ति है? या इसका अर्थ हो सकता है—क्या कोई परम आधार सिद्धान्त कोई परम सत्य है? शक्ति के रूप में ईश्वर का उन्हें कोई प्रमाण नहीं मिलता। बाह्य शक्तियों के समक्ष विश्व के आधार-सिद्धान्त निरूपित करना बिल्कुल आवश्यक नहीं है उसके बारे में पूर्ण शंका की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कोई एक परम कारण अपने परिणाम के साथ एकरूप होगा। अतः कारणों का बाह्य विश्व मूलतः बहुलवादी है संघर्ष शंका विघटन और विकास, अच्छाई और बुराई निरन्तर विरोध का क्षेत्र है।

किन्तु आधार-सिद्धान्तों के क्षेत्र में हमारे सामने वैसी ही स्थिति आ जाती है, जैसी नैतिक आदर्शों के क्षेत्र में। परिमित त्रुटि की स्वीकृति में परम सत्य निहित है। यह उनके जॉन्स हॉपकिन्स में प्रस्तुत निबन्ध का मुख्य विषय है। कारण कि त्रुटि कैसे सम्भव है?

हम अपने महान् हास्य-लेखक की अब सुपरिचित बात को लें कि दो व्यक्तियों के बीच हर वार्ता में छह व्यक्ति भाग लेते हैं। अगर जॉन और थॉमस आपस में बात कर रहे हैं, तो वास्तविक जॉन और थॉमस क्रमशः अपने सम्बन्ध में उनके विचार एक-दूसरे के सम्बन्ध में उनके विचार ये सब उस बातचीत में भाग लेते हैं। हम इनमें से चार व्यक्तियों पर विचार करें अर्थात् वास्तविक जॉन और थॉमस थॉमस की दृष्टि में जॉन और जॉन की दृष्टि में थॉमस। जब जॉन निर्णय करता है, तो किसके बारे में सोचता है? स्पष्टतः उसके बारे में जो उसके विचार की वस्तु बन सकता है अर्थात् 'अपने' थॉमस के बारे में। किसके बारे में वह गलती कर सकता है? अपने थॉमस के बारे में? नहीं क्योंकि उसे वह बहुत अच्छी तरह जानता है। वास्तविक थॉमस के बारे में? नहीं क्योंकि अपने विचार में वास्तविक थॉमस से उसका कोई सम्बन्ध नहीं कारण कि वह थॉमस कभी उसके विचार का कोई अंग बनता ही नहीं। 'किन्तु', कोई कह सकता है 'यहाँ कोई तर्कदोष अवश्य होगा क्योंकि हम निश्चित हैं कि जॉन वास्तविक थॉमस के बारे में गलती कर सकता है। हम कहते हैं कि हाँ सचमुच वह ऐसा कर सकता है, किन्तु यह तर्कदोष हमारा नहीं है। सामान्य बुद्धि से यह गलती हुई है। सामान्य बुद्धि भी कहती है—थॉमस कभी भी जॉन

के विचारों के नहीं होता फिर भी जोन, थॉमस के बारे में कोई भूल कर सकता है। इस गुत्थी को हम कैसे सुलझायें?

कोई वर्तमान विचार और कोई बीता विचार वस्तुतः अलग होते हैं जैसे जोन और थॉमस अलग थे। हर एक का अर्थ वह वस्तु होता है जिसे वह सोचता है। उनका कोई सामान्य सत्य कैसे हो सकता है? क्या वे सदैव के लिए भिन्न विचार नहीं होते जिनमें हर एक का अपना अलग सत्य होता है? किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तथ्य की वस्तुओं के सम्बन्ध में त्रुटि के अस्तित्व को बोधगम्य बनाने के लिए, हमें यह अबोधगम्य मान्यता स्वीकारनी होगी कि इन दो भिन्न विचारों का एक ही सत्य है और ये एक ही हैं।

या तो त्रुटि जैसी कोई चीज ही नहीं है जो स्पष्टतः एक अन्तर्विरोधपूर्ण वक्तव्य है या फिर चेतन विचार की एक असीम एकता है, जिसमें सारा सम्भव सत्य विद्यमान है।[1]

दूसरे शब्दों में कोई विचार अपने प्रति सच या झूठ नहीं हो सकता केवल किसी अन्य विचार के प्रति हो सकता है और यह कड़ी अनन्त चली जाती है। अतः अगर कोई विचार गलत है, तो वह ऐसा केवल इस कारण है कि एक असीम निर्णायक है। अन्य भाववादियों को सत्य की सम्भावना के बारे में चिन्ता हुई थी। एक रायस की प्रतिभा ही यह देख सकी कि भाववादी सिद्धान्तों के आधार पर त्रुटि की उपलब्धि भी उतनी ही कठिन है जितनी सत्य की।

क्या त्रुटि 'वास्तविक' हुए बिना 'सम्भव' नहीं हो सकती? या परिवर्तित रूप में यह हमारी असफलता क्या मात्र इतना ही प्रमाणित नहीं करती कि परम सत्य की सम्भावना' असीम रूप में दूरस्थ है? रायस के अनुसार नहीं। इसलिए कि 'मात्र' सम्भावना कोई सम्भावना है ही नहीं। जो स्थितियाँ त्रुटि को सम्भव बनाती हैं उनका वास्तविक होना आवश्यक है। और चूँकि असीम निर्णायक त्रुटि की सम्भावना की एक आवश्यक शर्त है अतः त्रुटि' वास्तविक है, तो यह भी वास्तविक होगा। अतः रॉयस ने लगभग आत्मसम्मानपूर्ण उत्साह के साथ और अपनी कैलिफोर्निया की पार्थिवता का पूर्ण उपयोग करते हुए कहा—"असीम त्रुटि और बुराई वास्तविक हैं और एक व्यापक असीम विचार समस्त रूप में उन्हें ऐसा निर्णीत करता है। इस धार्मिक अन्तर्दृष्टि में मन विश्राम कर सकता है। रॉयस अच्छी तरह समझते हैं कि यह 'परम' धर्मों का ईश्वर नहीं है, किन्तु यह 'दर्शन का धार्मिक पक्ष' है। यह रोमांसी निराशावाद और परम एकता का मेल है। यह वह औपचारिक समरसता है जो संघर्ष को सम्भव बनाती है।

१ वही, पृष्ठ ४०८ ४१९-४२०, ४२४।

जैसे-जैसे बाद की विवेचनाओं में रॉयस ने इस तर्क का उपयोग किया वैसे वैसे इसकी निर्दोषिता कम स्पष्ट होती गयी। आयु बढ़ने के साथ, उन्होंने नीतिशास्त्र और विज्ञान में इसके ठोस उपयोग की ओर अधिक ध्यान दिया और फलस्वरूप इस तर्क के गठन को बनाये रखकर इसकी शब्दावली को वे निरन्तर बदलते रहे।

पहली आनुभविक कठिनाई जो रॉयस के सामने आयी वह अलग-अलग मनों या व्यक्तियों के एकीकरण की कठिनाई थी। यह कहना आसान है, 'ऐसे जियो जैसे तुम्हारा और तुम्हारे पड़ोसी का जीवन तुम्हारे लिए एक ही हो।' किन्तु ऐसा करना कैसे सम्भव है? दोनों एक नहीं हैं और कितना भी 'जैसे' जीने से वे सचमुच एक नहीं हो जायेंगे। जहाँ तक 'परम' का सम्बन्ध है, उसके लिए मुख्यतः दोनों इस प्रकार एकमेक हैं कि उनका दो होना असम्भव है। ईश्वर वैयक्तिकता का अनुभव कैसे कर सकता है और मनुष्य व्यक्ति के रूप में कैसे कार्य कर सकता है यद्यपि वह केवल ईश्वर की एक कृति है? यहाँ शोपनहॉर ने रॉयस को बचाया। विचार के विश्व या रॉयस के शब्दों में 'वर्णन के विश्व' की दृष्टि से यह असम्भव है। दो चेतनाएँ एक में नहीं मिल सकतीं। दो विचार, दो विचार हैं और मिश्रित नहीं किये जा सकते। किन्तु संकल्प या रॉयस के शब्दों में परिबोध के विश्व की दृष्टि से एकता सम्भव है। दो संकल्प मिलकर कार्य कर सकते हैं। 'प्रेम' या पारस्परिक परिबोध के द्वारा मनुष्य अपने व्यक्ति आत्म की सीमा लाँघ कर उच्चतर एकता में जा सकते हैं। इसी प्रकार यद्यपि ईश्वर के विचार हमारे विचार नहीं हैं किन्तु वह प्रेम या ध्यान के किसी कार्य के द्वारा किसी व्यक्ति को अपने परिबोध की वस्तु के रूप में चुन सकता है। ऐसा है जैसे हम चारों ओर से बिल्कुल बन्द किन्तु ऊपर आकाश की ओर खुली हुई कोठरियों में रहते हों। हम एक-दूसरे के साथ केवल अप्रत्यक्ष रीति से भाषा द्वारा, विज्ञान द्वारा प्रतीकों द्वारा सम्पर्क कर सकते हैं यद्यपि अपने ऊपर उसी आकाश की चेतना हम सब को है और हम सब एक सामान्य ज्योति या संकल्प के 'परावर्ती प्रकाशन' में सहभागी हैं। इसके विपरीत ईश्वर हमें ऊपर से एक साथ और इकट्ठा देखता है। किन्तु हमारा परिबोध उसे केवल व्यक्तियों के रूप में एक समय में एक का हो सकता है। अतः यह तथ्य कि हमारा अस्तित्व व्यक्तियों के रूप में है, इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर मात्र निरीक्षक या विचार ही नहीं है, वह एक संकल्प एक ध्यानपूर्ण आत्म है।

१८९५ में 'फिलोसॉफ़िकल यूनियन ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया' (कैलिफ़ोर्निया दार्शनिक संघ) के समक्ष अपने भाषण में (१८९७ में 'दी कान्सेप्शन ऑफ़ गॉड' शीर्षक से प्रकाशित) रॉयस ने 'परम' के अस्तित्व के प्रमाण के प्रश्न का एक

भिन्न कोण से अनुभव के सन्दर्भ में फिर से उठाया। यहाँ वे हॉबिसन और अन्य वैयक्तिकतावादियों की आपत्तियों का समाधान करने की चेष्टा करते हैं। इसमें यह विचार विकसित किया गया है कि मानव अनुभव में परम अनुभव निहित है।

'किन्तु किसी अनुभव की बुद्धिपूर्ण व्याख्या करने में हमें इस खण्ड अनुभव को अनुभव की किसी अधिक संगठित पूर्णता के सन्दर्भ में देखना पड़ता है जिसके बारे में हम समझते हैं कि यह खण्ड उसकी एकता में अपना आंगिक स्थान प्राप्त करता है। किसी ऐसे यथार्थ की बात करने में जिसकी ओर यह अनुभव इंगित करता है, हम इस यथार्थ की अवधारणा उस अधिक संगठित अनुभव की अन्तर्वस्तु के रूप में करते हैं। इसका आग्रह करना कि हमारा अनुभव किसी परम यथार्थ तथ्य की ओर संकेत करता है इस यथार्थ को एक परम संगठित अनुभव में स्थित मानना है, जिसमें हर खण्ड अपना स्थान पाता है।

तब हमारा परिणाम यह निकलता है—एक परम अनुभव है जिसके लिए परम यथार्थ की अवधारणा की पूर्ति इस अनुभव में स्थित अन्तर्वस्तुओं से ही होती है। इस परम अनुभव का हमारे अनुभव से वही सम्बन्ध है जो किसी अंगांगि सम्पूर्ण का उसके अपने खण्डों से होता है।' [1]

यहाँ रॉयस का भाववाद लगभग वही है जो ब्रैडले-बोसांक्वे धारा का और हमें इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि वैयक्तिकतावादियों ने इसे स्वीकार नहीं किया। 'परम अनुभव' की ऐसी व्यवस्था में जिसमें व्यक्ति मात्र केवल 'खण्ड' है व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कैसे सम्भव है? ऐसा प्रतीत होता है कि रॉयस को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की चिन्ता उतनी गहरी थी जितनी '[illegible] या संवित्वाद' की चिन्ता की जिसमें वैयक्तिकतावादी उन्हें ढकेलना चाहते थे।

रॉयस यहाँ तक पहुँचे थे जब उन्हें एक उत्तम शब्द मिल गया जिससे उन्हें पता चला कि यथार्थ के दोनों आयाम (संकल्प और विचार, परितोष और वर्णन) किस प्रकार सम्बद्ध हैं। यह शब्द था—तात्पर्य। तात्पर्य की दोहरी भूमिका है। मेरा तात्पर्य कुछ करने से हो सकता है अर्थात् मेरा कुछ इरादा हो सकता है और मेरा तात्पर्य किसी बाह्य वस्तु से उसके बारे में बात करने के अर्थ में हो सकता है। पहले को इरादे या उद्देश्य के अर्थ को उन्होंने आन्तरिक तात्पर्य कहा और दूसरे को सन्दर्भ के अर्थ को बाह्य तात्पर्य कहा। हमारे आन्तरिक तात्पर्य

---

१ जोसिया रॉयस और अन्य 'दी कॉन्सेप्शन ऑफ़ गॉड ए फिलॉसॉफिकल डिस्कशन कन्सर्निंग दी डिवाइन आइडिया ऐज़ ए डिमॉन्स्ट्रेबिल रियलिटी' (न्यूयॉर्क १८६७) पृष्ठ ४२-४४।

संकल्प या उद्देश्य वस्तु-करण या बाह्य सिद्धि की माँग करते हैं। हमारे बाह्य तात्पर्य या विचार हमारे आन्तरिक तात्पर्य की पूर्तियों या सन्तुष्टियों के रूप में गृहीत होने की माँग करते हैं। अतः जिसे हम बाह्य विश्व कहते हैं उसका अस्तित्व उस आदर्श या लक्ष्य के रूप में है जिसकी ओर हमारे उद्देश्य हमें खींचते हैं। व्यक्तिकरण किये हुए तथ्यों की वस्तुपरक पूर्ति ही यथार्थ है।

यह सब जर्मन भाववाद के पुनः प्रतिपादन से अधिक विशेष कुछ नहीं है सिवाय इसके कि इसमें परम संकल्प पर जोर दिया गया है और विलियम जेम्स के चयनात्मक ध्यान के सिद्धान्त को धर्मशास्त्र का रूप दे दिया गया है। इंगलिस्तान में एफ॰ एच॰ ब्रैडले भी उसी द्वन्द्वात्मकता से जूझ रहे थे जो रॉयस को परेशान कर रही थी और ब्रैडले के इस कथन ने रॉयस को काफी उद्वेलित किया कि असीम पूर्णांत आदर्श या अमूर्त है उसे अस्तित्व में नहीं पाया जा सकता। दूसरे शब्दों में अधिकांश दार्शनिकों की भाँति, ब्रैडले अचानक ऐसी स्थिति में आकर उलझन में पड़ गये जिसमें असीम प्रतिगमन निहित था। इसके विपरीत असीम को समस्या के रूप में नहीं वरन् निश्चयात्मकता के आधार के रूप में देखकर रॉयस उसके प्रति बड़े उत्साहपूर्ण रहे थे। अब रॉयस के लिए यह प्रदर्शित करना कठिन हो गया कि असीम का वास्तविक अस्तित्व सम्भव है।

किन्तु यहाँ आकर चार्ल्स पीयर्स ने रॉयस पर कृपा की और एक ऐसा परामर्श दिया जिसने उनके दर्शन में मौलिक परिवर्तन कर दिया। पीयर्स ने जो कुछ कहा उसका तात्पर्य था—रॉयस तुम गणितीय तर्कशास्त्र का अध्ययन क्यों नहीं करते ? इससे तुम्हारी समस्या स्पष्ट होगी और तुम्हारी दार्शनिक व्यवस्था में कसाव आयेगा। रॉयस ने यह सलाह मान ली और उन्हें वही कुछ मिल गया जिसकी उन्हें आवश्यकता थी असीम श्रेणी का गणितीय विचार और व्यवस्था के समूह का विचार। इन विचारों के आधार पर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था को पुनः निरूपित किया। 'दी वर्ल्ड ऐण्ड दी इण्डिविजुअल' (विश्व और व्यक्ति) के पहले खण्ड के पूरक निबन्ध में उन्होंने यही कार्य किया। पीयर्स के सुझावों के आधार पर उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि असीम, अस्तित्व में अतार्किकता का चिह्न नहीं है वरन् 'दोषरहित व्यवस्था का अर्थात् एक सुव्यवस्थित श्रेणी का चिह्न है।

उदाहरण के लिए, पूर्ण संख्याओं का अनुक्रम लें—पृथक संख्याओं की इस असीम श्रेणी को परम में स्थित व्यक्ति आत्मों की श्रेणी मान लें। किन्हीं दो पूर्ण संख्याओं के बीच भिन्नों की एक असीम श्रेणी की रचना सम्भव है, इस प्रकार की दो पूर्ण संख्याओं को जोड़ने वाली भिन्नों की श्रेणी पूर्ण संख्याओं की श्रेणी के गठन की व्याख्या करती या उस पुनर्निर्माण करता है। ऐसी श्रेणी

आत्म-निरूपित या 'अपनी व्याख्या स्वयं करने वाली' होती है। यह असीम इस कारण नहीं है कि अनन्त है, वरन् अपने गठन में ही असीम है अर्थात् इसके अन्य सम्पूर्ण के गठन के सन्दर्भ में एक-दूसरे की व्याख्या करते हैं। ऐसी अपनी व्याख्या स्वयं करने वाली स्थितियों या श्रेणियों का अस्तित्व सम्भव है और ये केवल गणितीय निर्मितियाँ ही नहीं होतीं। रॉयस ने कहा कि उदाहरण के लिए, ऐसे नक्शे में, जिसमें अंकित वस्तुओं में वह नक्शा भी सम्मिलित है, नक्शों की एक असीम श्रेणी निहित है। इसी प्रकार विचार के विचार आदर्श के आदर्श आत्मचेतनाओं की आत्मचेतना और ज्ञान के ज्ञान में। ऐसी स्थितियाँ केवल गणितीय दृष्टि से सुव्यवस्थित श्रेणी के अस्तित्व सम्बन्धी उदाहरण हैं। फिर पूर्ण संख्याओं की अपनी श्रेणी को लें। कल्पना करें कि उनमें से दो बीच के पदों (निदों) के द्वारा एक-दूसरे से सम्पर्क की चेष्टा करते हैं। यद्यपि सम्पर्क की यह असीम श्रेणी उन्हें एकत्राबद्ध होने से रोकती है किन्तु पूर्ण संख्याएँ किस प्रकार एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं इसका यह वास्तविक वर्णन करती है। इसी प्रकार व्यक्ति त्रिमूर्तीय रीति से व्याख्या के एक समूह में सम्बद्ध होते हैं। 'क' 'ख' की व्याख्या 'ग' से करता है। यह त्रिमूर्तीय सम्बद्धता असीम है और यथार्थ का मूल प्रतिरूप है।

इस प्रकार रॉयस, ज्ञान की परम्परागत समस्या से—और उसकी विचार और वस्तु, उद्देश्य और सत्य के सम्बन्ध की द्वैतवादी समस्या से—अपने तर्क को हटा कर बिल्कुल भिन्न भूमि पर भाषा और प्रतीकों के सामाजिक प्रयोग की भूमि पर ले गये। ज्ञान की समस्या को ज्ञान-मीमांसा के द्विमूर्तीय सम्बन्धों से हटाकर व्याख्या के त्रिमूर्तीय सम्बन्धों पर ले जाकर रॉयस भाववादी दर्शन की एक नयी और महत्त्वपूर्ण पुनः रचना में सफल हुए। इस अवधारणा में उन्हें न केवल पीयर्स से, वरन् हॉमिमन के 'ईश्वर के नगर' के सिद्धान्त से भी सहायता मिली।

अब उन्होंने साफ-साफ देखा कि ज्ञान सामाजिक है और अगर यथार्थ का यही गठन प्रदर्शित करना हो तो वह भी सामाजिक होगा। उन्होंने अन्तिम सत्य के सहयोगी प्रयास में लगे हुए वैज्ञानिकों के असीम समुदाय के पीयर्स के सिद्धान्त को ज्यों का त्यों लेकर उसे एक तत्त्व-मीमांसा का रूप दे दिया। विश्व व्यक्तियों का अपनी व्याख्या स्वयं करने वाला समुदाय है।

'व्याख्या की किसी प्रक्रिया में अवश्यमेव ही व्याख्या के कार्यों का एक असीमित क्रम सम्मिलित होता है। जिनकी इस प्रकार परस्पर व्याख्या होती है उन सभी आत्माओं में एक अनन्त विविधता भी इसमें निहित है। ये आत्म मिल कर अपनी सारी विभिन्नताओं सहित एक ही 'व्याख्या के समुदाय' का जीवन

निर्मित करते हैं जिसका केन्द्रीय सदस्य समूह की वह आत्मा है, जिसके मूल कार्य का हमें ज्ञान है। अतः ठोस रूप में सृष्टि व्याख्या का एक समूह है जिसका जीवन उन सारी सामाजिक विभिन्नताओं और सारे सामाजिक समुदायों में है और उन्हें एकीकृत करता है जिनके बारे में किसी कारण से, हम जानते हैं कि वे उस आनुभविक जगत् में यथार्थ हैं जिसका अध्ययन हमारे सामाजिक और ऐतिहासिक विज्ञान करते हैं। सृष्टि का इतिहास काल की पूरी व्यवस्था इस सार्विक समूह का इतिहास उसकी व्यवस्था और उसकी अभिव्यक्ति है।[1]

इस सिद्धान्त को उन्होंने पारमार्थिक व्यवहारवाद कहा। उन्होंने ज्ञान के व्यवहारवादी सिद्धान्त को अपनाया और उसे प्रसारित करके यथार्थ के एक सिद्धान्त पर लागू किया।

मानवी सम्पर्कों की आनुभविक सीमाओं के अन्दर उन्हें अपनी व्यवस्था का अर्थ समझाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। किन्तु, सामान्यतः प्राकृतिक वस्तुओं के बीच सम्पर्क के सम्बन्ध में उन्हें बहुत-कुछ अनर्गल स्थापनाओं का सहारा लेना पड़ेगा। यहाँ उन्होंने फिर ईश्वरीय ज्ञान के कार्यों के अपने सिद्धान्त को अपनाया। ईश्वर सारी श्रेणी को एक इकाई के रूप में एक साथ एक शाश्वत वर्तमान में देखता है किन्तु व्यक्तियों की ओर वह क्रमशः ध्यान देता है। इससे कालिक प्रकारों की विभक्त भी प्रतीति उत्पन्न होती है। समय की व्याख्या ईश्वर उसी प्रकार करता है जैसे हम संगीत की किसी धुन की करते हैं। सम्पूर्ण संरचना का रूप हर अंश को समझने में आवश्यक है। महाद्वीपीय संगीत के हम परिमित अंश संरचना की योजना का केवल अनुमान लगा सकते हैं और केवल कभी-कभी ही किन्हीं गुनगुनाहटों और लयों को पहचान सकते हैं। अधिक लम्बी लयों या काल विस्तारों वाले पदार्थ और मकान अगर हमसे सम्पर्क कर सकें तो शायद अधिक बड़े पैमाने पर हमारे लिए ईश्वर की व्याख्या करें। किन्तु हम केवल उन्हीं के साथ सम्पर्क कर सकते हैं जिनका काल-विस्तार या ऐसा कह सकते हैं कि जिनकी कम्पन-गति हमारे जितनी ही होती है। जिन काल के जो विशिष्ट रूप हमारे सम्पर्क (या विज्ञान) को सीमित करते हैं उन्हें पूरे समूह के गठन का गुण नहीं मानना चाहिए। तथाकथित 'प्रकृति के नियम' वस्तुतः सम्पर्क के रूप हैं। इस प्रकार भौतिक विज्ञान का अपना सापेक्ष कार्य है और वह भौतिक सम्पर्क की सीमाओं के अन्दर भौतिक वस्तुओं को एक-दूसरे के लिए कम या ज्यादा बोधगम्य बनाता है।

---

१ जोसिया रॉयस, 'दी प्रॉब्लेम ऑफ़ क्रिश्चियानिटी' (न्यूयार्क, १९१३), खण्ड दो, पृष्ठ २०७-२०८।

रॉयस का तात्पर्य जिस प्रकार के समुदाय से है, वह विज्ञान में भी अधिक अर्थ में दिखाई पड़ता है। सच्चा चर्च (धर्म-संगठन) और यहाँ रॉयस का भाववाद काल्विनवाद पर वापस आ जाता है, स्मृति और आशा का एक समुदाय है आस्था और उद्धारक प्रसाद की एकता है। अपने पाप में व्यक्ति एक भटकी हुई आत्मा है और उसके द्वारा निष्ठाहीनता के किसी कार्य का प्रायश्चित्त दूसरों को अधिक निष्ठा के द्वारा करना पड़ता है। सामान्य राजनीतिक समाज इस प्रकार के समुदाय के अनुरूप नहीं होता क्योंकि वह व्यभिचार का आश्रय करता है और व्यभिचार 'पवित्र आत्मा' के विरुद्ध पाप है। यथार्थ व्यक्ति होने के लिए, निष्ठापूर्ण सदस्य होना आवश्यक है क्योंकि समुदाय में ईश्वर के प्रसाद द्वारा ही परित्राण, स्वत्व सम्भव है। कारण कि ईश्वर केवल 'समुदाय-की-आत्मा' है, निष्ठा का सार-तत्त्व है। ईश्वर के प्रति प्रेम में अर्थात् निष्ठा के प्रति निष्ठा में उसकी इच्छा के सम्मुख पूर्ण समर्पण निहित है।

इस सच्चे चर्च को रॉयस कहाँ पाते हैं? ईसाई चर्च इस सन्त पॉल के जैसे आदिम आदर्शों से बहुत दूर भटक गये हैं। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, आधुनिक राज्य सच्चा समुदाय नहीं है। सच्चा-समुदाय ऐसे सदस्य नहीं उत्पन्न करेगा जो स्वतन्त्र होने की इच्छा करें। विज्ञान जहाँ तक सत्य की अपनी सहकारी तलाश के प्रति सच्चा रहता है वहाँ तक वह व्याख्या का एक सच्चा समुदाय है। किन्तु 'महान् समुदाय' इस कारण यथार्थ नहीं है कि वह भौतिक रूप में कहीं स्थित है वरन् इस कारण कि वह व्यवस्था का शाश्वत नैतिक आधार है। यह वह है जिस पर मुझे विश्वास करना चाहिए जिसके प्रति मुझमें निष्ठा होनी चाहिए। इसका यथार्थ मुक्त संकल्प के साथ इसके सम्बन्ध में है—यह एक ऐसा कार्य है जो हर धार्मिक प्राणी को करना पड़ता है।

अपनी अन्तिम पुस्तकों में से एक में रॉयस ने संकेत किया कि आर्थिक समाज में 'महान् समुदाय की आशा' का मुख्य आधार बीमा है। इसलिए, कि बीमा व्याख्या के त्रिमूर्तीय सिद्धान्त पर आधारित सम्बन्ध है—बीमा कराने वाला, बीमा करने वाला और लाभ पाने वाला। बाधा संघों में संघ-स्थापन के मार्ग की बाधा ही संघ का आधार बन जाती है निष्ठाहीनता ही निष्ठा का अवसर बन जाती है। रॉयस ने युद्ध के विरुद्ध बीमा की सिफारिश की। मगर ध्यान है कि आज अगर वे जीवित होते तो बेकारी, कार्य-मुक्ति, भ्रष्टाचार और अन्य प्रकार की निष्ठाहीनताओं के विरुद्ध बीमे की सिफारिश करते। बीमा के विरुद्ध बीमा इच्छात्मक दृष्टि से सर्वोत्तम समुदाय होगा यद्यपि इसका कार्य-विस्तार निस्सन्देह बहुत थोड़ा होगा। बैंक और बीमा कम्पनी के साथ यह मानसम्बन्ध निश्चय ही

यूरोपीय दृष्टि वाले पाठक को यांकी मार्गों की पुरानी चतुराई प्रतीत होगा। फिर भी यह इस अर्थ में शिक्षाप्रद है कि इसमें एक निर्भय और अन्तर्भावनाशील भाववादी द्वारा अपने विचार को बदलते हुए यथार्थों के अनुरूप परिवर्तित करने की मान्यता व्यक्त होती है।

तब से अब तक

भाववाद की धाराएँ अब अलग अलग और स्पष्ट नहीं हैं। पिछले दिनों प्रकाशित ऐसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ तो हैं जो मुख्यतः इनमें से किसी एक धारा की परम्परा को आगे ले जाती हैं किन्तु पिछले दिनों भाववादियों के नेताओं ने अपने परम्परागत आधार छोड़ दिये हैं और वे इस हद तक भाववाद की पुनःरचना कर रहे हैं कि 'भाववाद' शब्द भी धुंधला पड़ गया है और भाववाद से आगे जाने की इच्छा भाववादियों ने बहुधा व्यक्त की है। रॉयस के काल के बाद व्यवस्थाओं में एक सामान्य अविश्वास आया है और किसी भी 'वाद' को अधिक गम्भीरता से न लेने की प्रवृत्ति आयी है। अब जितने भाववादी हैं, लगभग उतने ही प्रकार के भाववाद हैं और इतनी विविधता में जो इतिहासकार प्रवृत्तियाँ और उद्गामी एकरूपताएँ खोजना चाहे, उसे पैगम्बर बनना पड़ेगा। ऐसी परिस्थितियों में जो पाठक अमरीकी भाववाद का पिछला इतिहास जानना चाहे, उसके लिए ज्यादा अच्छा होगा कि आगामी पृष्ठों में सामान्य प्रवृत्तियों का पता लगाने के प्रयास की ओर ध्यान देने के बजाय तत्काल साहित्य की ओर मुड़ जाये, और वहाँ तथ्यों की उलझन में डालने वाली भीड़ का सामना करे। जिस व्यक्ति ने इसके अतीत पर नजर डाली हो उसकी अपेक्षा वर्तमान व्यवस्था उस व्यक्ति के लिए अधिक बोधगम्य होगी जो भविष्य में देख सकता है। फिर भी कुछ सामान्य निरूपण परीक्षणात्मक तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं 'भावी अनुभव मेरी सहायता करे'—जैसा रॉयस ने जेम्स के व्यवहारवाद के सम्बन्ध में कहा था।

पिछले दिनों के भाववादी साहित्य में स्वयं भाववाद का एक प्रश्न बनाने की चेष्टा कम दिखाई देती है।[1] यह दृष्टिकोण अंशतः भाववाद को उस सन्देहास्पद

---

१ विशेषतः कूलिज, कनिंघम, डी लागुना, पार्कर, लोवेनबर्ग और अर्बन की रचनाएँ देखिए।

और आकस्मिक ज्ञान-मीमांसा से मुक्त करने की आकांक्षा का फल है, जिसने लॉक के समय से ही इसे दूषित कर रखा है, और जिसे उदाहरणार्थ, वुडब्रिज 'दार्शनिक रोग मनोविज्ञान-रोग' कहते हैं। परिकल्पनात्मक और सत्तात्मक भाववाद की धाराएँ तथाकथित बाह्य विश्व की समस्याओं का तिरस्कार करना भी और उनके अनुयायी ऐसे आलोचकों¹ से अधिकाधिक स्पष्ट प्रतीत होते हैं जो समझते हैं कि भाववाद, ईस्मिसवानी तत्ववाद से या जर्मन घटना-क्रिया-विज्ञान से भी जुड़ा हुआ है। उनमें से बहुतों के लिए भाववाद उतना ही प्राचीन और व्यापक है, जितना प्लेटोवाद और बुद्ध के लिए (विशेषत: जर्मन और हाल में कैम्ब्रिज प्लेटोनिस्टों के मत-पूर्वंगद ऐल्डस हक्सले) 'शाश्वत दर्शन' कहलाने वाली प्लेटोवाद और अरस्तूवाद की एक योग-वैधानिक संश्लिष्टि। किसी 'शाश्वत दर्शन' की ऐतिहासिक सत्यता सम्बन्धी विशिष्ट विचार को छोड़ें तो भी भाववाद को आधुनिक दर्शन में एक धारा मात्र से अधिक व्यापक रूप में देखने का और इस वस्तुपरक मन की युगों-पुरानी खोज का ही एक रूप मानने का व्यापक प्रयास है।

वस्तुपरक मन के सिद्धान्त का जो निश्चय ही भाववादियों का एक मुख्य विषय रहा है विभिन्न धाराओं के तर्कशास्त्रियों और तत्त्व-मीमांसकों ने प्रतिभापूर्ण रीति से विकास किया है, जिसके फलस्वरूप यह एक अपेक्षतया संश्लिष्ट फलदायक और स्वतन्त्र दार्शनिक प्रस्थापना और सिद्धान्त बन गया है। इसने तर्कशास्त्र को एक नया जीवन और आलोचनात्मक आधार प्रदान किये हैं और सार-तत्त्व विज्ञान से तर्कशास्त्र के सम्बन्ध की पुरातन समस्या का पुन: परीक्षण करने के लिए न केवल भाववादियों का, वरन् यथार्थवादियों व्यवहारवादियों वस्तुनिष्ठवादियों को भी बाध्य किया है। दूसरे शब्दों में पदार्थों के वस्तुवादी सिद्धान्त की समर्थी आलोचनाएँ एक ऐसी तत्त्वमीमांसा के पुनर्जीवन में फलीभूत हुई हैं जो ज्ञान-मीमांसात्मक विचारों से अपेक्षतया मुक्त है।

कोहेन, स्टुअर्ट मैकिनेरी पेरी, मेयरी स्मिट, ह्वाइटहेड और वुडब्रिज जैसी आलोचनात्मक बुद्धियाँ भी जिनके प्रारम्भिक विचार लॉक के अध्ययन से ओत-प्रोत थे और जिनकी विचार-व्यवस्थाएँ प्राकृतिक ज्ञान के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि के संपोषण के रूप में हैं—दार्शनिक 'आदर्शवादिता' से पता चलता है कि अगर हम उनके नैतिक विचारों के धुँधले कोनों में ध्यान से देखें तो भाववादी परम्परा को अब भी पहचाना जा सकता है किन्तु अपनी मुख्य रचनाओं में

---

१ उदाहरण के लिए कुमारी कान्स्टेन्स जैसे मार्सिकतावादियों और कुछ अपविकतावादियों की रचनाओं को और पेरी, ब्रट, मॉन्टेगु और अन्य यथार्थवादियों की ज्ञान मीमांसात्मक आलोचनाओं को देखिए।

आठवाँ अध्याय



मौलिक अनुभववाद

व्यवहारवादी बुद्धि

जब विलियम जेम्स ने मनोविज्ञान को एक प्राकृतिक विज्ञान बनाना चाहा तो अमरीकी दार्शनिकों को एक तेज झटका लगा। अपनी 'आलोचनात्मक' *मताग्रही नींद में* वे प्राकृतिक और नैतिक विज्ञान के वैपरीत्य के आदी हो गये थे जैसे सारी पाठ्य-पुस्तकों का रीतिबद्ध आधार होने के अतिरिक्त वह आस्था का अटल आधार भी हो। यूरोप में इंगलिस्तान के संवेदनावाद (*वह सिद्धान्त कि सारे विचार संवेदना से उत्पन्न होते हैं—अनु०*) और फ्रान्स तथा जर्मनी के गत्यात्मक मनोविज्ञान ने इस विचार के लिये द्वार खोल दिया था कि बुद्धि की अवधारणा एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है। किन्तु डार्विन भी जो अन्तरात्मा और भावनाओं सम्बन्धी अपनी रचना में मनो-जीवविज्ञान के क्षेत्र में गवेषणा आरम्भ कर रहे थे अत्यधिक सतर्क थे। जेम्स १८७८ में डार्विन हेल्महोल्ट्ज़, चारकोट और अन्य प्रकृतिवादियों से प्रेरणा ले यूरोप से लौटे थे। *किन्तु उन पर भी कॉम्ट का प्रभाव इतना काफ़ी था कि नैतिकता के आधार अन्*आनुभविक होने पर उनका विश्वास बना रहा। किन्तु बुद्धि, आत्मा का जीवन मानसिक क्रिया, यह क्षेत्र जो अपनी उद्देश्यवादी प्रकृति के कारण नैतिक विज्ञान के अधीन रखा गया था उस कलाओं के क्षेत्र को अब जीव-विज्ञान में समाहित होना था। अब तर्क-बुद्धि की व्याख्या पशु-बुद्धि की स्वाभाविक सन्तान के रूप में की जाती थी। 'सत्तात्मक' भाववादियों ने भी इस विचार का विरोध किया। उनके मतानुसार कोई तात्विक आदर्श या नैतिक लक्ष्य 'जो सारी प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है, उन्हें अर्थ देता और संयुक्त करता है, उसका आधार यथार्थ की तात्विक और आध्यात्मिक संरचना में ही हो सकता है। अगर हम 'मौलिक *कारणों को तार्किक उद्देश्य के सम्बन्ध में समझें', तभी हम* यथार्थ के गठन में हो

नैतिक सत्यों को' समाविष्ट कर सकते हैं। भौतिक विज्ञान, मनुष्य को यान्त्रिक बनाने और प्रकृति से उसकी भिन्नता छीनने की चेष्टा में, केवल विज्ञान को मनमानी बनाता है।[1] और जे॰ एच॰ हिस्लोप ने सामान्य विश्वास को सशक्त रीति से व्यक्त किया, जब उन्होंने लिखा—'विकासवाद व्याख्यात्मक है, नीतिशास्त्र विधि-निर्मायक है। क्या हम मात्र शक्ति के आधार पर मनुष्य जाति के लिये विधि-निर्माण कर सकते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि वस्तुएँ कैसी हैं उनका निर्धारण करने में शक्ति के वास्तविक प्रभाव का वर्णन प्रकृतिवादी सिद्धान्त बहुत अच्छा करता है।[2]" किन्तु 'शिशुओं और जंगलियों के मस्तिष्क को टटोल कर और तब मनुष्य की 'प्रकृति' के सिद्धान्त की घोषणा करना जिसमें सारी प्रकृति' बाहर ही छूट जाती है हर उच्च विश्वास का विध्वंस करने वाला कार्य है। "विषय की इस दृष्टि से, हमें इसकी चिन्ता नहीं कि जंगलियों के व्यवहार वास्तव में क्या है। हम फिर भी इसकी जाँच कर सकते हैं कि उन्हें क्या वह होना चाहिये जो वे हैं।'[3] वस्तुतः विज्ञान हमें सद्गुण, कर्तव्य या भलाई की चेतना के बारे में कुछ नहीं बता सकता उनका औचित्य अन्तिम विश्लेषण में एक अजेय चेतना में है कि उनका हम पर अधिकार है, उनसे हम पर सत्ता है।"[4] भाववादी तर्क यह था कि जो कुछ हमारी नैतिक प्रकृति के लिए सच है, वह हमारी धार्मिक प्रकृति के लिए भी सच है और इस कारण मनोविज्ञान सामान्य रूप में चेतना की हमारी 'अजेय चेतना' पर ही आधारित हो सकता है।

इन परिचित और पूर्णतः संगत आपत्तियों को जीव-वैज्ञानिक और आनुवंशिक अनुभववादियों की नयी धारा ने अनसुना कर दिया। उनका मत था प्राकृतिक विज्ञान इससे सम्बन्धित नहीं था कि हमें क्या सोचना चाहिये वरन् इससे कि हम कैसे सोचते हैं और जो कुछ हम विश्वास करते हैं वह क्यों

---

१ यहाँ उद्धत अंश और प्रस्तुत विचार जॉन डूई के 'एथिक्स ऐण्ड फ़िज़िकल सायन्स' से लिये गये हैं—'ऐण्डोवर रिव्यू', खण्ड सात (१८८७), पृष्ठ ५७३-५९१।

२. जे॰ एच॰ हिस्लोप, 'इवोल्यूशन ऐण्ड एथिकल प्राब्लेम्स' 'ऐण्डोवर रिव्यू,' खण्ड नौ (१८८८), पृष्ठ ३४८-३६६।

३ ये दो उद्धरण जे॰ एच॰ हिस्लोप द्वारा गुरर्नेन की रचना, 'एथिकल इम्पोर्ट ऑफ़ डार्विनिज़्म' की समीक्षा से लिये गये हैं, 'ऐण्डोवर रिव्यू' खण्ड नौ, (१८८८), पृष्ठ २०३-२०६।

४ जे॰ जी॰ गुरर्नेन, 'दी एथिकल इम्पोर्ट ऑफ़ डार्विनिज़्म' (न्यूयार्क १८८७) पृष्ठ १६४।

उनका पर्याप्त विकास करने के लिए न उनके पास वैज्ञानिक साधन थे न मनोवैज्ञानिक रुचि ही थी। उनके लिए ज्ञान का यह यथार्थवादी सिद्धान्त केवल वैज्ञानिक देववाद' और संघटनात्मक ब्रह्माण्ड-दर्शन की भूमिका था। अतः कॉम्ट की ऐसी आलोचना के साथ चेतना और मन के एक अधिक विकासात्मक जीव-वैज्ञानिक सिद्धान्त को जोड़ने का काम एकमात्र मॉण्टगोमरी जैसे प्रकृतिवादियों के हिस्से में आया। हैमिल्टन की तत्त्व-मीमांसा पर ऐबट से भिन्न चॉन्सी राइट की निर्भरता को हिलाने में ऐबट के तर्क असफल रहे थे, किन्तु जे० एस० मिल द्वारा हैमिल्टन की आलोचना और डार्विन की रचना 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज' (जातियों का उद्भव) ने उन्हें हिला दिया। १८७२ में वे डार्विन के साथ 'मनो-प्राणि-विज्ञान' की चर्चा कर रहे थे जब डार्विन ने उनसे यह बार-बार उठने वाला प्रश्न किया कि वस्तुएँ मन में हैं ऐसा कब कहा जा सकता है? राइट ने अपने उत्तम निबन्ध 'दी इवॉल्यूशन ऑफ सेल्फ-कान्शसनेस'[1] (आत्म-चेतना का विकास) में मानसिक प्रक्रियाओं और मन-शक्तियों को एक जीव-वैज्ञानिक ढाँचा प्रदान करने का मौलिक किन्तु परिकाल्पनिक प्रयास किया।

जिस प्रकार ऐबट यथार्थवाद को राइट से नहीं मनवा सके, उसी प्रकार राइट लगभग निरन्तर की चर्चाओं में सी० एस० पीयर्स से जीव-वैज्ञानिक उपयोगितावाद को स्वीकार नहीं करा सके। फिर भी पीयर्स ने समस्या को देखा और वे सार्विकताओं का स्वयं अपना एक व्यवहारवादी सिद्धान्त विकसित कर रहे थे। बर्कले के फ्रेजर संस्करण की समीक्षा में इसका सर्वप्रथम संकेत मिला कि पायर्स के विचार किस दिशा में जा रहे हैं।[2] यहाँ पीयर्स ने ऐसी स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं जो कई पीढ़ियों तक विवाद का विषय बनी रहीं और जिनका व्यवहारवाद के इतिहास में आधारभूत महत्त्व है—(१) ज्ञान की वैधता के प्रश्न को एक वैज्ञानिक समस्या के रूप में आगमन की पद्धति से देखा और सुलझाया जा सकता है, (२) प्रयोगात्मक सत्यापन निरीक्षकों में अन्ततोगत्वा सहमति होने के विश्वास पर आधारित है, और ज्ञानियों के समुदाय द्वारा अन्ततोगत्वा मान्य सार्विकताएँ ही यथार्थ और सत्य हैं (३) कॉम्ट के इस सिद्धान्त की व्याख्या कि यथार्थ वस्तु मन द्वारा निर्धारित होती है, इस अर्थ में की जानी चाहिये कि वस्तुओं के हमारे अनुभव में वस्तुपरक दृष्टि से वैध सार्विकताएँ, मानसिक क्रिया'

---

१ इसकी चर्चा छठे अध्याय में 'परिकल्पनात्मक बोध-विज्ञान' के अन्तर्गत देखिए।

२ चार्ल्स एस० पीयर्स, 'दी वर्क्स ऑफ जॉर्ज बर्कले,' 'दी नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू,' खण्ड [illegible] (१८७१) पृष्ठ ४४६-४७२।

/

के एक समुदाय की सामान्य उत्पत्तियाँ हैं अज्ञेय कारण नहीं (४) गणितीय तर्कशास्त्र के द्वारा यथार्थवाद को पुनर्जीवित करके विज्ञान को नाम सिद्धान्त व्यक्तिवाद और भौतिकवाद के दोषों से मुक्त करना है, (५) दर्शन और गणित को अपना सम्प्रति शासित्व छोड़ कर समुदाय के यथार्थ को प्रमाणित करने की समस्या में अपने को लगा कर व्यावहारिक रूप ग्रहण करना चाहिये।

आठवें दशक में राइट पीयर्स, जेम्स, ऐबट और तथाकथित 'मेटाफ़िज़िकल क्लब के कुछ अन्य सदस्यों के बीच इन स्थापनाओं पर लम्बी बहसें हुईं। इस क्लब की बैठकों का वर्णन करते हुए पीयर्स ने लिखा—

'सम्भव है कि हमारे कुछ पुराने साथी अब ऐसी मुखा-मुखम मूर्खताओं का सार्वजनिक प्रकाशन पसन्द न करें यद्यपि उस समूह में कोई दुर्गुणमय तत्त्व नहीं था। किन्तु मेरा विश्वास है कि वास्टिस होम्स इस बात से बुरा नहीं मानेंगे कि उनकी सदस्यता को हम गर्व से याद करते हैं न ही जोसिफ़ वार्नर ही बुरा मानेंगे। निकोलस सेन्ट जॉन ग्रीन एक कुशल और विद्वान् वकील तथा जरमी बेन्थम के शिष्य सबसे अधिक रुचि लेने वाले सदस्यों में थे। भीभत्स और सप्राण सत्य पर से पिटे-पिटाए सूत्रों का आवरण हटाने में उनकी असाधारण शक्ति हर जगह लोगों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करती थी। विशेषतः वे बहुधा विख्यातनामी बेन द्वारा प्रस्तुत इस परिभाषा को लागू करने के महत्व पर जोर देते थे कि (विश्वास) वह है जिस पर मनुष्य कार्य करने को तैयार हो। इस परिभाषा के बाद व्यवहारवाद बहुत दूर नहीं रह जाता। अतः मैं उन्हें व्यवहारवाद के पितामह के रूप में देखता हूँ। राइट जेम्स, और मैं वैज्ञानिक दृष्टि के व्यक्ति थे। तत्त्व-मीमांसकों के सिद्धान्तों को आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मानने के बजाय हम उनके वैज्ञानिक पक्ष का निरीक्षण करते थे। हमारे विचार का स्वरूप निश्चय ही इंग्लिस्तानी था। हममें से केवल मैं ही कांट के माध्यम से दर्शन की भूमि पर आया था और मेरे विचारों में भी इंग्लिस्तानी स्वर आ रहा था।

हमारी तत्त्व-मीमांसात्मक कार्यवाहियाँ सारी ही पंख लगे शब्दों में हुई थीं (और वह भी अधिकांश ठेठ ढंग)। अन्त में यह सोच कर कि हमारा क्लब कहीं कोई भौतिक 'स्मारिका' छोड़े बिना ही विघटित न हो जाये मैंने एक छोटा सा निबन्ध तैयार किया जिसमें मैंने कुछ ऐसे मत व्यक्त किये जिन्हें मैं व्यवहारवाद के नाम पर बराबर प्रतिपादित करता आ रहा था। इस निबन्ध का ऐसी अप्रत्याशित उदारता से स्वागत हुआ कि लगभग छः वर्ष बाद महान् प्रकाशक श्री डब्लू॰ एच॰ ऐप्लिटन के निमन्त्रण पर मैंने इसे कुछ विस्तार देकर 'पॉपुलर

सायन्स मन्थली' के नवम्बर १८७७ और जनवरी १८७८ के अंकों में देने का साहस किया।'[1]

इन तीन 'विज्ञान के व्यक्तियों' में वस्तुनिष्ठतावाद के मार्ग से सबसे कम विचलित राइट हुए और इस कारण पीयर्स ने उन्हें 'तीक्ष्ण पर सिकुड़ा व्यक्ति' कहा।[2] वे अपने इस मत पर स्थिर रहे कि विज्ञान में अमूर्त सिद्धान्तों के विकास का औचित्य और कुछ नहीं है सिवाय प्रकृति के हमारे मूर्त ज्ञान के विस्तार में उनकी उपयोगिता के।[3]

किन्तु उन्होंने स्वीकार किया कि जहाँ धर्मशास्त्रीय और तत्त्वमीमांसात्मक परिकल्पनाओं की उपयोगिता पूर्णतः नैतिक या व्यावहारिक होती है, वहाँ वैज्ञानिक अमूर्तनों की उपयोगिता संज्ञानात्मक हो सकती है, इस सीमा तक कि उनके 'परिणामों का ऐन्द्रिय सत्यापन हो सकता है, या वे परिणाम ऐसे विचारों से संयुक्त होते हैं जिनका सत्यापन सम्भव होता है।'[4] यह सिद्धान्त केवल अनुभववाद के मूल सिद्धान्त का पुनर्प्रतिपादन है, जिसमें विचारों के उद्गम की समस्या के बजाय विचारों के सत्यापन की समस्या पर आग्रह किया गया है। किन्तु राइट परम्परागत अनुभववाद से काफ़ी आगे बढ़ गये जब उन्होंने व्यक्ति और वस्तु (सब्जेक्ट ऐण्ड ऑब्जेक्ट) के अन्तर की ठोस उपयोगिता का प्रश्न उठाया और कहा कि यह अन्तर 'अन्तःप्रज्ञात्मक' नहीं है, जैसा कि अधिकांश तत्त्वमीमांसक मानते हैं' वरन् 'एक समुदाय के सदस्यों के बीच सम्पर्क' के सामाजिक उद्देश्यों के लिये निरीक्षण और विश्लेषण द्वारा किया गया वर्गीकरण' है।[5] यह एक नया स्पष्टतः निरूपित, सामाजिक अनुभववाद था। दुर्भाग्यवश

१ चार्ल्स हार्टशार्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित 'कलेक्टेड पेपर्स ऑफ़ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स' (कैम्ब्रिज १९३१-३५) खण्ड ५, पृष्ठ ७८।

२ राल्फ़ बार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड करेक्टर ऑफ़ विलियम जेम्स' (बोस्टन, १९३५), खण्ड २ पृष्ठ ४१९।

३ 'दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ हर्बर्ट स्पेन्सर' (१८६५), चॉन्सी राइट 'फ़िलॉसॉफ़िकल डिस्कशन्स' (न्यूयॉर्क, १८७७) में पुनर्मुद्रित, पृष्ठ ५६। उन्होंने आगे कहा— 'ज्यामितीय यान्त्रिकी और कतिपय जिन विचारों पर आधारित है प्राकृतिक इतिहास के आकृति विज्ञान से सम्बद्ध विचार, और रसायन के सिद्धान्त ऐसे ही कार्यकारी विचार हैं—सत्य के मात्र सारांश नहीं, वरन् उसे प्राप्त करने वाले' —('द ग्रोथ ऑफ़ दी हिस्टरी ऑफ़ साइंसेज़' न्यूयॉर्क, १९१५, खण्ड १, पृष्ठ ४६८)।

४ राइट 'फ़िलॉसॉफ़िकल डिस्कशन्स', पृष्ठ ४७।

५. 'इवोल्यूशन ऐण्ड सेल्फ़-कान्शसनेस' वही, पृष्ठ २१७-२१९।

इसे निश्चित करने के थोड़ा बाद ही राइट की मृत्यु हो गयी और कोई नहीं कह सकता कि अगर वे और कुछ समय जीवित रहते तो इसका विकास पीयर्स की दिशा में करते या जेम्स की दिशा में ।

पीयर्स ने भी उसी वस्तुनिष्ठतावादी सूक्ति से आरम्भ किया जिस पर राइट ने जोर दिया था — किसी वस्तु का हमारा विचार उसके संवेद्य प्रभाव का हमारा विचार होता है' और अगर हम सोचते हैं कि हमारा विचार कुछ अन्य होता है, तो हम धोखे में हैं और विचार के साथ होने वाली मात्र संवेदना को विचार का ही एक अंग मानने की भूल करते हैं । ऐसा कहना निरर्थक है कि विचार के एकमात्र कार्य से असम्बद्ध उसका कोई अर्थ होता है । अतः किसी वस्तु की हमारी अवधारणा यह विचार करने से स्पष्ट हो सकती है कि हमारी वस्तु के 'क्या प्रभाव हैं जिनकी व्यावहारिक प्रासंगिकता सोची जा सकती हो । हाउ टु मेक आवर आइडियाज क्लीयर' (अपने विचारों को स्पष्ट कैसे करें — १८७८), शीर्षक अपने अब प्रसिद्ध लेख में पीयर्स अगर इसके आगे न जाते तो उनमें और राइट के वस्तुनिष्ठवाद में विशेष अन्तर न होता । किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि इन वस्तुनिष्ठतावादी सन्दर्भों में भी 'अमूर्तनों' और तार्किकताओं के यथार्थ और उनकी उपयोगिता को समझाया जा सकता है ।

"हर अन्य गुण की भाँति यथार्थ भी उन विशिष्ट संवेद्य प्रभावों में होता है जो उसमें भाग लेने वाली वस्तुएँ उत्पन्न करती हैं । यथार्थ वस्तुओं का एकमात्र प्रभाव विश्वास उत्पन्न करना होता है क्योंकि उनके द्वारा उद्दीपित सारी संवेदनाओं का चेतना में विश्वासों के रूप में उद्गम होता है । अतः प्रश्न यह है कि सच्चे विश्वास (या यथार्थ में विश्वास) और झूठे विश्वास (या कल्पना में विश्वास) के बीच अन्तर कैसे किया जाये । अब सच और झूठ के विचारों का सम्बन्ध अपने पूर्ण विकास में केवल मत निश्चित करने की प्रयोगात्मक पद्धति से होता है ।

"चूंकि विश्वास कार्य का एक नियम है, जिसके प्रयोग में और अधिक संशय तथा और अधिक विचार सम्मिलित होते हैं अतः विश्वास एक विराम-बिन्दु होने के साथ साथ ही एक नया प्रस्थान बिन्दु भी होता है । इसी कारण मैंने विश्वास को विश्राम-स्थित विचार कहा है, यद्यपि विचार मूलतः एक क्रिया होता है । विचार करने का 'अन्तिम परिणाम होता है संकल्प-शक्ति का प्रयोग और विचार अब इसका अंग नहीं रह जाता । किन्तु विश्वास केवल मानसिक क्रिया का थोड़ा [illegible] है विचार द्वारा हमारी प्रकृति पर डाला गया प्रभाव है, जो भविष्य के विचारण को प्रभावित करेगा ।

"आदत का निर्माण विश्वास का सार-तत्व है । विभिन्न विश्वासों को

विशिष्टता कार्य की विभिन्न रीतियाँ होती हैं जिन्हें ये विश्वास उत्पन्न करते हैं। अगर विश्वासों में कोई अन्तर इस प्रसंग में नहीं होता अगर ये कार्य का वही नियम उत्पन्न करके उसी शंका का समाधान करते हैं तो उनकी चेतना भिन्न *प्रकार होती है इससे सम्बन्धित कोई अन्तर उन्हें भिन्न विश्वास नहीं बना* सकता। उसी प्रकार जैसे किसी धुन को भिन्न सप्तकों में बजाने पर भिन्न धुनें नहीं बन जाती।[1]

दूसरे शब्दों में पीयर्स सोचते थे कि उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया था कि चेतना या भावना की किसी विशिष्ट स्थिति से भिन्न किसी अवधारणा सार्थकता या विचार को व्यावहारिक रूप में विश्वास की आदतों के सन्दर्भ में परिभाषित किया जा सकता था और यह कि ये विश्वास की आदतें स्वयं व्यावहारिक रूप में *कार्य की आदतें हैं। आदत किसी सामान्य विचार की दैहिक प्रतिमूर्ति होती है।* सार्थकताओं के यथार्थ की यह व्याख्या पीयर्स को व्यवहारवाद का केन्द्रीय सिद्धान्त प्रतीत होती थी। उनकी रुचि एक अति विशिष्ट प्रकार की 'क्रिया' में थी—सामान्यीकरण की क्रिया।

'मैंने इसे पहले की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझ लिया है कि मात्र पशु-शक्ति के प्रयोग के रूप में क्रिया सब का उद्देश्य नहीं है, वरन् जिसे हम सामान्यीकरण कह सकते हैं—ऐसी क्रिया जो विचार को नियमित करती और उसका *वास्तविकीकरण करती है जो (विचार) क्रिया के बिना अविचारित रह* जाता है। ऐसा बहुत-कुछ है जिसके फलस्वरूप मैं पहले से भी अधिक यह मानता हूँ कि अवधारणा का एकमात्र वास्तविक अर्थ अलग-अलग कार्य में होता है। किन्तु पहले से भी अधिक मैं अब यह देख पाता हूँ कि कार्य की मात्र स्वेच्छ शक्ति मूल्यवान नहीं होती वरन् विचार को वह जो जीवन प्रदान करता है, वह *मूल्यवान होता है।*[2]

पीयर्स ने आग्रह किया कि एकमात्र अन्तर्वैयक्तिक और पूर्णता तक जाने वाला व्यवहारवाद वही था जो 'काम दे'—

'जिन व्यावहारिक तथ्यों की ओर वह ध्यान खींचता है, वे अन्तिम रूप में, एकमात्र अच्छा कार्य यही कर सकते हैं कि ठोस रूप में तार्किकता के विकास को आगे बढ़ावें। अतः इस अवधारणा का अर्थ किन्हीं व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं में

---

१ जस्टस बुक्लर द्वारा सम्पादित 'दी फिलॉसफी ऑफ् पीयर्स सेलेक्टेड राइटिंग्ज' (न्यूयॉर्क, १९४०) पृष्ठ १६ १७, २८ २९।

२. पेरी की पुस्तक खण्ड दो पृष्ठ २२२।

बिल्कुल भी नहीं है, वरन् इसमें है कि ये प्रतिक्रियाएँ किस प्रकार उस विकास में योग देती हैं।'[1]

किन्तु जेम्स सर्वप्रथम एक व्यक्तिवादी थे और वे इसमें पीयर्स से सहमत नहीं हो सके कि 'एक अवधारणा का अर्थ किन्हीं व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं में बिल्कुल भी नहीं है।' उन्होंने व्यवहारवाद का अपना एक संस्करण विकसित किया। इसका पहला प्रकाशित आभास १८७८ में 'ब्रूट ऐण्ड ह्यूमन इण्टेलेक्ट' (पशु और मानव बुद्धि) शीर्षक एक लेख में मिला जो 'जर्नल ऑफ स्पेकुलेटिव फिलॉसफी' में प्रकाशित हुआ। फिर इंगलिस्तान में समानान्तरवाद पर वाद-विवाद में भाग लेने के लिये लिखे गये और 'माइण्ड' में प्रकाशित लेख 'आर वी ऑटोमेटा ?' (क्या हम स्वचालित यन्त्र हैं) में पहले लेख के वैज्ञानिक तर्क को उन्होंने अधिक दार्शनिक और विवादात्मक रूप दिया। इन लेखों में जेम्स पर चॉन्सी राइट का प्रभाव स्पष्ट है यद्यपि जेम्स ने उनका जिक्र नाम लेकर नहीं किया और अपने इस मत का औचित्य प्रतिपादित करने के लिये कि भावना या चेतना में उपयोगिता होती है उन्होंने अपने दृष्टिकोण को डार्विनवादी कहा।

"मैंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि सारी तर्कना मन की इस योग्यता पर निर्भर करती है कि जिस घटना के बारे में तर्क किया जा रहा हो उसकी पूर्णता को आंशिक खण्डों या तत्वों में विभाजित कर सके और उनमें से उस विशिष्ट तत्व को चुन सके जो हमारी विशिष्ट सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या में हमें उचित परिणाम तक ले जा सके। किसी अन्य समस्या को किसी अन्य परिणाम की आवश्यकता होगी और उसके लिये किसी अन्य तत्व को चुनना होगा। प्रतिभाशाली व्यक्ति वह होता है जो हमेशा सही स्थान पर उँगली रख कर सही तत्व को चुन लेता है—अगर समस्या सैद्धान्तिक हुई, तो सही 'तर्क' को व्यावहारिक हुई तो सही 'साधन' को। मैं यह प्रदर्शित कर चुका हूँ कि समानता द्वारा साहचर्य प्रस्तुत वस्तुओं को उनके तत्वों में विभाजित करने में महत्वपूर्ण सहायक होता है। किन्तु यह साहचर्य केवल उसी चयन का न्यूनतम है जिसका अधिकतम है सही तर्क को चुनना।... तर्कना उस चयनात्मक क्रिया का ही एक रूप है जो मानसिक स्वतःस्फूर्ति का वास्तविक सार प्रतीत होती है।

"मन की स्वतःस्फूर्ति वस्तुपरकता के किन्हीं नये अन-अभिवेदनात्मक गुण को

---

१ हार्टशॉर्न और वीस की पुस्तक में उद्धृत, खण्ड ५, पृष्ठ २। जे० एम० बाल्डविन द्वारा सम्पादित 'डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी ऐण्ड साइकोलॉजी' में पीयर्स के लेख 'प्रैग्मैटिक ऐण्ड प्रैग्मैटिज़्म' से।

इस परिणाम पर पहुँचते ही उन्होंने इसे विचार के अधिकतम परिकल्पनात्मक रूपों पर लागू किया और 'रिफ्लेक्स ऐक्शन ऐण्ड थीइज्म' (सहज-क्रिया और ईश्वरवाद) शीर्षक निबन्ध लिखा। इसमें उनका अपना व्यवहारवाद अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत हुआ—

"हमारी प्रकृति का संकल्प विभाग अवधारणा विभाग और भावना विभाग दोनों पर प्रभावी होता है। या सीधी-सादी भाषा में, प्रत्यक्ष-ज्ञान और विचारणा केवल आचरण के लिए होते हैं। मुझे विश्वास है कि आधुनिक शरीर क्रियात्मक अन्वेषण की सम्पूर्ण धारा हमें जिस ओर ले जाती है, उसके आधारभूत निष्कर्षों में इसे भी एक मानना गलत नहीं होगा। अगर पूछा जाये कि पिछले वर्षों में मनोविज्ञान को शरीर-क्रिया-विज्ञान की क्या देन रही है, तो मुझे विश्वास है कि हर सक्षम अधिकारी व्यक्ति का यही उत्तर होगा कि उसका प्रभाव अन्यत्र कहीं भी इतना गम्भीर नहीं रहा जितना इस व्यापक और सामान्य दृष्टिकोण के लिए विशाल मात्रा में उदाहरण सत्यापन और समर्थन प्रस्तुत करने में।"[1]

यद्यपि १८९५ में 'समर स्कूल ऑफ़ एथिक्स' में उनका 'दी विल टु बिलीव' शीर्षक भाषण जोरदार ढंग से हुआ किन्तु इसमें उन्होंने पहले लेख के संकल्पवाद और 'दिव्य ज्ञान विराम' को पुनः प्रतिपादित करने के अतिरिक्त, विशेष कुछ नहीं कहा। फिर भी पहले लेख और कुछ अन्य लेखों के साथ १८९७ में इसके प्रकाशन का बड़ा जबरदस्त प्रभाव पड़ा। उनके मित्रों को भी यह लेख पसन्द नहीं आया। उन्होंने इसे क्रिया-के-लिए-क्रिया का समर्थन और जो कुछ विश्वास करना चाहो उस पर विश्वास करने की वकालत के रूप में देखा। पीयर्स के अनुसार, जिन्हें यह पुस्तक समर्पित की गयी थी यह 'एक बहुत ही

अण्डे [illegible] को मशीन में गरम रखा गया—चाहे अण्डे सेने की मशीन से उसे वह सब कुछ मिल जाये जो उसे माँ-मुर्गी से मिल सकता हो। भौतिकवाद के साथ क्या एक कठिनाई यह नहीं है कि वह विश्व को एक अण्डे सेने की मशीन में परिवर्तित कर देता है? (जेम्स को पत्र, २९ अक्टूबर १८९८। पेरी की पुस्तक में प्रकाशित खण्ड २, पृष्ठ ४६४) इस प्रश्न पर, 'माइण्ड एज़ बिहेवियर' (कोलम्बस ओहियो, १९२४) में ई० ए० सिंगर की और 'दी मीनिंग ऑफ ट्रुथ' (न्यूयॉर्क, १९०९) पृष्ठ १८९ एफ, में विलियम जेम्स की विवेचना भी देखिए।

१ विलियम जेम्स, 'दी विल टु बिलीव एण्ड अदर एसेज इन पॉपुलर फ़िलॉसफ़ी' (न्यूयॉर्क १८९७) पृष्ठ ११४।

अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्य था, जैसे वक्तव्य किसी गम्भीर व्यक्ति को बहुत अधिक हानि पहुँचाते हैं। उन्होंने जेम्स को एक यथासम्भव सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है और 'मात्र क्रिया' का विरोध करने के बाद अन्त में कहा—

"जहाँ तक विश्वास' और अपना मत बनाने की बात है, अगर उनका अर्थ इससे अधिक कुछ हो कि हमारी एक कार्यप्रणाली है और इस प्रणाली के अनुसार हम आचरण का कोई विशिष्ट वर्णन करने की चेष्टा करेंगे तो मैं समझता हूँ कि उनसे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।[1]

जेम्स के मित्र जॉन जे० चैपमैन ने लिखा—

'जो व्यक्ति आपके बताये उपायों से आस्था का औचित्य सिद्ध करता है उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन ठीक ही है। वह अपने आप को सन्तुष्ट कर लेता है। उसकी झोंपड़ी उसके जीवन भर चल जायेगी। उसके पास किसी प्रकार का अन्तःकरण या धारणाएँ होती हैं जो उसके अन्दर आस्था को बनाये रखेंगी और उसे उड़ जाने से रोकेंगी। किन्तु वह उसे कभी किसी अन्य व्यक्ति तक पहुँचा नहीं पायेगा उसे किसी अन्य व्यक्ति में जगा या उत्पन्न नहीं कर पायेगा। ऐसा कह कर हम कुछ घुमा फिरा कर यही कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति में आस्था है ही नहीं। जिस आस्था की आप बात करने लगते हैं, वह इस प्रकार पुष्ट की गयी है और उचित ठहराई गयी है, नाप-तौल कर और सिलवटें निकाल कर उसे हर जगह लगाने की चेष्टा की गयी है—मैं उसे आस्था नहीं कहता! वस्तुतः मैं उसे आस्था नहीं कहता।

"यह सारी झंझट क्यों—कोई मनुष्य विश्वास करता है या नहीं इससे अन्तर क्या पड़ता है? यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है कि इस पर बहस की जाये? मैं समझता था कि विश्वास और आचार के सम्बन्ध (का विचार) दुनिया के अस्वीकृत विचारों में से है, जैसे ज्योतिष या जमीन में पानी का पता लगाने वाली छड़ी—ऐसी वस्तु जिसमें सत्य का कोई तत्त्व है जो शायद अन्वेषण के योग्य हो, किन्तु जो (इस समय) अपनी व्यापक त्रुटि के कारण तिरस्कृत है। स्वयं अपने अध्ययन के फलस्वरूप मैं यह विश्वास करने लगा हूँ कि ऐसे मनुष्य हो सकते हैं जो कुछ मामलों में कभी-कभी अपने धार्मिक विश्वासों के रूप से प्रभावित होते हैं और अगर कोई विशिष्ट मताग्रह न होता तो उनके कार्य और भावनाएँ वैसी न होतीं जैसी कि होती हैं। किन्तु यह बड़ी दुर्लभ और बड़ी उलझी हुई घटना है और निस्सन्देह बड़ी तेजी से लुप्त हो रही है।[2]

1 पेरी की पुस्तक, खण्ड २ पृष्ठ २९२।

2 वही पृष्ठ २११।

जेम्स ने इसका उत्तर दिया—

"भली आत्मा ! यकीनन मैं भी इसे आत्मा नहीं मानता । यह केवल दार्शनिक-वस्तुनिष्ठतावादी दृष्टि से प्रमुख वैज्ञानिक कक्षाओं के रोगी कृत्रिम ऊष्मा वाले वातावरण के लिये है । रोग का जो पक्षाघात से अध्ययन उत्पन्न करते हैं, उनके रोगियों के लिये होमियोपैथी उपचार वस्तुतः लाभदायक होता है, यद्यपि आपको शायद उस पर विश्वास न हो ।[1]

मनोवैज्ञानिक की वैज्ञानिक रुचि यहाँ स्पष्ट रूप में व्यक्त हुई है । किन्तु विश्वास के रोग-विज्ञान और एक तत्त्व-मीमांसा के रूप में 'फ़िडेइज़्म'[2] (विश्वासवाद) का सम्बन्ध 'विश्वास की इच्छा' पर होने वाली जीवन्त बहस के जारी रहने के साथ-साथ अधिकाधिक उलझता गया । जेम्स ने अन्त में स्वीकार किया कि उन्हें अपने निबन्ध का शीर्षक 'शुद्ध आस्था की आलोचना' रखना चाहिये था ।

यह प्रश्न १८९७ में फिर सामने आया जब जेम्स ने कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय के दार्शनिक संघ के समक्ष अपना अब प्रसिद्ध 'फ़िलॉसॉफ़िकल कान्सेप्शन्स एण्ड प्रैक्टिकल रिज़ल्ट्स' (दार्शनिक अवधारणाएँ और व्यावहारिक परिणाम) शीर्षक भाषण दिया जिसमें उन्होंने पहले अपने दृष्टिकोण को व्यवहारवाद कहा और उसे पीयर्स द्वारा १८७८ में किये गये निरूपण से सम्बद्ध किया । पीयर्स की तार्किक पद्धति को जेम्स ने जो व्यक्तिवादी रूप दिया पीयर्स ने पहले से भी अधिक उसका खण्डन किया और इसके बाद वे स्वयं अपने सिद्धान्त को 'व्यावहारिकतावाद' (प्रैग्मैटिसिज़्म) कहने लगे । व्यवहारवाद के इतिहास की वास्तविक उलझनों को पीयर्स के शब्दों में प्रस्तुत करना सर्वोत्तम होगा ।

'एक सामान्योक्त अर्थ में जो अभिवृद्धि और जीवन्तता की दृष्टि के पक्ष में प्रतीत होता है, 'व्यवहारवाद' शब्द ने साधारण मान्यता प्राप्त कर ली है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जेम्स ने यह देखकर कि उनका 'मौलिक अनुभववाद' इस लेखक द्वारा व्यवहारवाद की परिभाषा के सर्वथा अनुकूल था यद्यपि दृष्टिकोण

---

१ वही खण्ड २ पृष्ठ २१७ ।

२. जेम्स के पूर्वकालिक और अधिक सामान्य संकल्पवाद से भिन्न, उनके व्यवहारवाद के अधिक विशिष्ट सिद्धान्तों के लिए पेरी ने 'फ़िडेइज़्म' शब्द का प्रयोग प्राविधिक अर्थ में किया है और इन दोनों व जेम्स की तत्त्वमीमांसा के बीच भी अन्तर किया है । अपने व्यापक पूर्ण विश्लेषण में पेरी ने इन अन्तरों को भलीभाँति प्रस्तुत किया है, किन्तु इस संक्षिप्त चर्चा में मुझे इन शब्दों का प्रयोग कुछ अधिक ढीले-ढाले रूप में करना पड़ा है । (फ़िडे का शाब्दिक अर्थ है विश्वास, अतः इसे 'विश्वासवाद' कहा जा सकता है ।—अनु०)

का कुछ मस्तर उनमें था, सर्वप्रथम इसे अपनाया। इसके बाद प्रशंसनीय रूप में स्पष्ट और प्रतिभाशाली विचारक श्री फर्डिनेण्ड सी॰ एस॰ शिलर, अपने 'रिडिल्स ऑफ़ दी स्फिंक्स'[1] के 'मानवसमरूपवाद' के लिए अधिक आकर्षक शब्द की तलाश करते हुए, 'ऐक्सियम्स ऐज़ पॉस्टुलेट्स' अभिधारणाओं के रूप में स्वयं तथ्य), पर अपने अति उत्तम निबन्ध में इसी संज्ञा 'व्यवहारवाद' को पा गये जो अपने मूल अर्थ में सामान्यतः उनके अपने सिद्धान्त को व्यक्त करता था। इस बीच में अपने सिद्धान्त के लिये उन्होंने एक अधिक उपयुक्त संज्ञा मानववाद प्राप्त कर ली है, जबकि कुछ अधिक व्यापक अर्थ में वे व्यवहारवाद" का अब भी उपयोग करते हैं। वहाँ तक तो सब ठीक था, किन्तु अब यह शब्द कभी कभी साहित्यिक पत्रिकाओं में मिलने लगा है जहाँ इसका वैसी ही निर्दयता से दुरुपयोग होता है, जिसकी अपेक्षा किसी शब्द के साहित्यिक हाथों में पड़ जाने पर की जाती है। कभी कभी अंग्रेजों ने शिष्टाचार की मर्यादा थोड़ी ढीली करके, इस शब्द के अनुपयुक्त होने पर बुरा-भला कहा है —अर्थात् उस अर्थ को व्यक्त करने के लिये अनुपयुक्त जिसे सम्मिलित न करना इसका उद्देश्य था। अतः यह लेखक अपने शिशु व्यवहारवाद को यह तरक्की हुई देखकर अनुभव करता है कि अब इससे विदा लेकर, इसको उच्चतर नियति के लिये इसे छोड़ देने का समय आ गया है। मूल परिभाषा को व्यक्त करने वाले सही उद्देश्य के उपयोग के लिए, वह 'व्यावहारिकवाद' शब्द के जन्म की घोषणा करता है, जो इतना भद्दा कुरूप है कि अपहर्त्ताओं से सुरक्षित रहेगा।[2]

यहाँ एफ॰ सी॰ एस॰ शिलर की चर्चा से स्वतः यहीं-कहीं संकेत मिल जाता है कि व्यवहारवाद" को उनकी विशिष्ट देन क्या थी। पीयर्स द्वारा जेम्स के मानना या लोकव्यवहारिता के तर्क के सृजन के समय शिलर ने इसे व्यावहारिक धारणा" शब्द पर उचित समय पर उसका समर्थन किया। उनका सामान्य दार्शनिक अभिस्थापन ऐकान्तिक वैयक्तिक मानववाद का था और वे तर्कशास्त्र और विज्ञान में

---

१ मिस्र में स्थित एक प्राचीन पत्थर विशालकाय मूर्ति जिसका सिर *किसी सुन्दर स्त्री का है और शरीर सिंह का। एक यूनानी पुराकथा के अनुसार* यह थीबे के निवासियों को पहेली बुझाती थी और उत्तर न दे पाने वालों को मार डालती थी। ओडिपस ने जब पहेली हल कर दी तो यह जिस चट्टान पर बैठी थी, उस पर से कूद पड़ी और मर गयी। अतः स्फिंक्स की पहेली'।—अनु॰

२. 'दी मोनिस्ट', खण्ड १५ (१९०५) १६१ १८१। हार्टसोर्न और वीस की पुस्तक में उद्धृत, खण्ड ५, पृष्ठ २७६ २७७।

वैयक्तिक तत्व पर जोर देना चाहते थे। किन्तु उनका दुर्भाग्य था कि इसका प्रतिपादन वे गलत जगह पर कर रहे थे। कॉर्नेल में, जहाँ वे १८९१ से १८९७ तक शिक्षक रहे, ऐसा वैयक्तिक भाववाद इष्ट नहीं था और वे ऑक्सफ़ोर्ड वापस चले गये। वहाँ भी यह इष्ट नहीं था किन्तु वहाँ यह अधिक आकर्षक और हलचल पैदा करने वाला था। अपने अन्तिम वर्षों में जो उन्होंने दक्षिणी कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में बिताये वे इतने मानववादी बन चुके थे कि वहाँ बने हुए वैयक्तिकतावादी ईश्वरवादी उनसे प्रसन्न नहीं हो सकते थे। 'ऐक्सियम्स ऐज़ पॉस्टुलेट्स' पर उनके प्रथम महत्वपूर्ण निबन्ध ने अनुभववादी तर्क को एक प्रयोगवादी मोड़ दिया। 'ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कॉन्ट के पदार्थों को और तथाकथित आवश्यक प्राग्-अनुभव सत्यों की व्याख्या करने के बजाय और उन्हें प्रतीत अनुभव तथा विकासात्मक संघर्ष द्वारा प्रमाणित मानने के बजाय उन्होंने उनको दार्शनिक मन की समस्याएँ या प्रयोगात्मक जाँच के लिए उपयुक्त स्थापनाएँ माना। वे इस अर्थ में प्राग्-आनुभविक हैं कि वे विशिष्ट अनुभवों का फल नहीं हैं। वे माँग'-अभिधारणाएँ हैं जो आरम्भ या पूर्व के रूप में कार्यरत जीव समग्र विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है।

'*जब हम सार ज्ञान के अस्तित्व में निहित प्राग्नुभव सिद्धान्तों की बात* करते हैं तो हमारा तात्पर्य *तार्किक रूप में*' निहित से होता है या मनोवैज्ञानिक रूप में? अर्थात्, यह *तार्किक*' विशेषण का रूप है, या 'मानसिक तथ्यों का? जिस प्राथमिकता' की बात कही जाती है, वह समय में' प्राथमिकता (मानसिक तथ्य) है, या विचार में प्राथमिकता (तार्किक व्यवस्था)? या भयंकर बात है, क्या यह सम्भव है कि 'प्राग्नुभव' जैसा कि इसका प्रयोग होता है, थोड़ा-बहुत दोनों है, या बारी-बारी से दोनों है और यह कि हमारे स्वयंतथ्यों का सारा प्राग्-आनुभविक विवरण इस आधारभूत संभ्रम पर आधारित है?

न तो प्राग् आनुभविक विवरण आर्य है, *न अनुभववादी*। दोनों असन्तोषजनक प्रमाणित हुए हैं। पहला इस कारण कि उसने स्वयंतथ्यों को हमारे मानसिक संगठन के मात्र पशु तथ्यों के रूप में प्रस्तुत किया (या तो पूर्णतः असम्बद्ध या केवल अपने बीच सम्बन्धित) और दूसरे ने एक पूर्णतः निष्चेष्ट मन पर एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव अनुभव को काल्पनिक खातों के रूप में।

मूलतः दोनों विवरणों की असफलता का कारण एक ही है। दोनों ही एक ऐसे बुद्धिवाद से दूषित हैं जो हमारी प्रकृति का अपमान है और जिसके फलस्वरूप हमारी प्रकृति के नैसर्गिक गुणों के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि बड़ी संकीर्ण है। इस सामान्य बुद्धिवाद के कारण वे उस केन्द्रीय तथ्य को समझ नहीं पाते जो हमेशा उस समय हमारे सामने आ जाता है, जब हम निम्नतर विचारों के

असूर्त दृष्टिकोणों को छोड़ कर अपने सम्पूर्ण अनुभव के साथ अपने सम्बन्ध को समझने की चेष्टा करते हैं—यह तथ्य कि समस्त जीव-गठन एक इकाई के रूप में कार्य करता है। या इस केन्द्रीय तथ्य के पक्षों को अलग-अलग प्रस्तुत करने के लिये जिसकी अनुभववाद और प्रायनुभववाद अपने-अपने ढंग से पृथक व्याख्याएं करते हैं हम कह सकते हैं कि जीव-गठन सक्रिय है और जीव-गठन एक है।

विचार को क्रिया की सन्तान के रूप में देखना चाहिए ज्ञान को जीवन की ओर बुद्धि को संकल्प की सन्तान के रूप में। मस्तिष्क को जो बौद्धिक चिन्तन का साधन बन गया है, जीवन की आवश्यकताओं के प्रति अनुकूलताएं लाने वाला सूक्ष्मतम अन्तिम और सर्वाधिक सशक्त अंग मानना होगा।

जब हम अनुभव को उसकी सम्पूर्णता में समझने की चेष्टा करते हैं तो हमें अपने आपको उस मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के बोझिल अमूर्तनों से ऊपर रख कर देखना चाहिये जो अपनी वैधता की सीमाओं का उल्लंघन कर गया है। स्वयंतथ्यों को मुख्यतः अभिधारणाओं के रूप में देख कर जिनकी निर्मिति एक अन्ततोगत्वा व्यावहारिक उद्देश्य के लिए हुई है, हम अपनी प्रकृति के विभिन्न कार्यों के बीच कृत्रिम रीति से उत्पन्न की गयी खाई को पाटते हैं और बुद्धिवाद की त्रुटियों को दूर करते हैं। हम स्वयंतथ्यों को मनुष्य की आवश्यकताओं से ...त्पन्न धारक के रूप में उसकी आकांक्षाओं द्वारा प्रेरित उसके स्वरूप द्वारा ...िन्त संक्षेप में उसकी भावनात्मक और संकल्पात्मक प्रकृति द्वारा शासित और ...पित देखते हैं।[1]

ऐसा तार्किक सिद्धान्त स्पष्टतः जेम्स के व्यवहारवाद के निकट था और शिलर इसे अच्छी तरह समझते थे। उन्होंने लिखा—

व्यावहारिक अभिधारणा उनके 'विश्वास के संकल्प' के सिद्धान्त का वास्तविक तात्पर्य है जिसे बड़े भ्रमक रूप में समझा गया है। भविष्य में हमें क्या करना चाहिये यह सिद्धान्त इसका प्रयोजन उतना नहीं है जितना इसका विश्लेषण कि अतीत में हमने क्या किया है। और इस सिद्धान्त के आलोचकों ने अधिकांश 'विश्वास के संकल्प' में छोड़ी गयी सारभूत बात अपने जोखिम पर की उपेक्षा की है। इस बात का छोड़ देने पर मान्य विश्वास के व्यावहारिक परिणामों के अनुभव द्वारा उनकी जाँच करने की पूरी गुंजाइश बनी रहती है।[2]

१ हेनरी स्टर्ट द्वारा सम्पादित, 'पर्सनल आइडियलिज्म फिलॉसॉफिकल एसेज बाइ एट मेम्बर्स ऑफ दी युनिवर्सिटी ऑफ् ऑक्सफोर्ड (लन्दन, १९०२) पृष्ठ ७२, ८४, ८५, ८६।

२. वही पृष्ठ ६१ एफ।

किन्तु जेम्स के लिए पियर्स के जैसे व्यवहारवादी तर्कशास्त्र का मुख्य सम्प्रेक्षणस्थल था। पीयर्स और प्राकृतिक वैज्ञानिकों की आलोचनाओं के अतिरिक्त, ब्रैडले रॉयस, और अन्य वस्तुनिष्ठ भाववादी उन पर व्यक्तिनिष्ठतावाद का आरोप लगा रहे थे। अतः जेम्स को इसका ध्यान रखना था कि 'व्यावहारिक' की परिभाषा अति व्यावहारिक रूप में न हो।

अच्छा होता कि हमारे आलोचक यह समझते कि यहाँ हमारी समस्याएँ और उलझनें संकीर्ण रूप में व्यावहारिक होने के अतिरिक्त सैद्धान्तिक क्यों नहीं हो सकतीं। वे यह मान कर चलते हैं कि किसी व्यवहारवादी में कोई सच्ची सैद्धान्तिक रुचि नहीं हो सकती। विचार के 'नकद-मूल्य' शब्द का प्रयोग करने पर एक पत्र-लेखक ने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं इसे बदल दूँ, क्योंकि हर कोई समझता है कि आपका तात्पर्य केवल आर्थिक हानि-लाभ से है। ऐसा कहने पर कि हमारे विचारणा में जो इष्ट-कर है वही सच है एक अन्य विद्वान् पत्र-लेखक ने मुझे डाँटा है कि इष्ट-कर शब्द का अर्थ स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसकी सिद्धि के प्रयास के फलस्वरूप राष्ट्रीय बैंकों के बहुतेरे अफ़सर जेलों में पहुँच गये। *जिस दर्शन के ऐसे परिणाम हों वह निश्चय ही उपयुक्त नहीं हो सकता।*

किन्तु 'व्यावहारिक' शब्द का सामान्यतः इतना ढीला-ढाला प्रयोग होता है कि इस सम्बन्ध में अधिक उदारता की अपेक्षा की जा सकती थी। जब हम कहते हैं कि रोगी व्यक्ति व्यवहारतः अच्छा हो गया है, या कोई उद्यम व्यवहारतः असफल हो गया है तो आम तौर पर हमारा तात्पर्य इसके शाब्दिक अर्थ से बिल्कुल उलटा होता है। हमारा तात्पर्य होता है कि पूर्णतः व्यवहार में असत्य होने पर भी जो कुछ हम कहते हैं वह सिद्धान्त में सत्य है, शाब्दीय रूप में सत्य है, उसका सत्य होना निश्चित है। फिर व्यावहारिक से हमारा तात्पर्य बहुधा अमूर्त सामान्य और निश्चेष्ट के विरुद्ध स्पष्टतः मूर्त व्यक्तिगत विशिष्ट और प्रभावी से होता है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, जब भी मैंने सत्य के व्यावहारिक रूप पर जोर दिया है, तो मेरे मन में यही बात थी। वस्तुएँ अपने बहुत्व में व्यवहार-तत्त्व (प्रैग्मेटा) होती हैं। और कैलिफ़ोर्निया के उस पुराने भाषण में जिसमें मैंने कहा था कि व्यवहारवाद के अनुसार किसी भी स्थापना के अर्थ को हमेशा हमारे भावी व्यावहारिक अनुभव में किसी विशिष्ट परिणाम तक लाया जा सकता है, चाहे वह अनुभव सक्रिय हो या निष्क्रिय मैंने स्पष्टतापूर्वक ये विशेषक शब्द भी जोड़ दिये थे— अनुभव के सक्रिय होने की अपेक्षा उसका विशिष्ट होना इस तर्क में अधिक महत्त्वपूर्ण है।[1]

१ विलियम जेम्स, 'दी मीनिंग ऑफ़ ट्रुथ; ए सीक्वेल टु प्रैग्मेटिज़्म' (न्यूयॉर्क १९०९), पृष्ठ २०८-२१०।

किन्तु अमिय की अपेक्षा 'विशिष्ट' पर और देने से पीयर्स और शिकागो धारा को आपत्तियाँ सामने आ गयीं। कोई भी उनसे सन्तुष्ट नहीं प्रतीत होता था।

आनुभविक सत्यापन पर जेम्स का आग्रह ब्रैडले और रॉयस को स्वीकार्य था बशर्ते कि जेम्स अपनी बारी में यह स्वीकार कर लेते कि सत्यापन की प्रक्रिया को एक अर्थहीन और निष्फल तलाश बनने से रोकने के लिए एक 'परम' का व्यावहारिक राशि से अभिधारण आवश्यक था। रॉयस की आलोचना तीखी प्रासंगिक थी।

मान लें कि कोई गवाह अदालत के कटघरे में आता है और साधारण शपथ पर आपत्ति करता है, क्योंकि उसकी अन्तरात्मा इस कारण संकोच करती है कि वह हाल ही में व्यवहारवादी बना है, उसके पास सत्य की एक नयी परिभाषा है और वह केवल उसी की शब्दावली में शपथ ले सकता है। यहाँ हम यह भी मान लें कि उसे अपनी शपथ को अपने ढंग से व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाती है। तदनुसार वह प्राविधिक यथातथ्य रीति से मेरे सहयोगी द्वारा की गयी सत्य की परिभाषा को बोलेगा – 'मैं वादा करता हूँ कि जो कुछ इष्ट-कर है वही कहूँगा और जो कुछ इष्टकर है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहूँगा भावी अनुभव मेरी सहायता करे।' मैं आपसे पूछता हूँ क्या आप सोचते हैं कि इस गवाह ने, पर्याप्त रूप में सत्य की प्रकृति सम्बन्धी उस दृष्टि को व्यक्त किया है, जो आप सचमुच चाहते हैं कि किसी गवाह के मन में हो? निस्सन्देह अगर यह प्रतिनिधि व्यवहारवादी हुआ तो गवाही के कटघरे में या अन्यत्र कहीं भी उसकी गवाही सुन कर आप सचमुच आनन्दित होंगे। किन्तु क्या आप उसके सूत्र का स्वीकार कर लेंगे?

सत्य को स्पष्टता के स्तर पर ले आना एक ऐसे क्षेत्र में 'शहर-शहर का पुकार मचाना' है, जिसमें उस प्रकार का 'शहर' कुछ नहीं जिसको निष्ठा की आवश्यकता होती है, जो हर वैज्ञानिक मान्यता की पूर्व मान्यता है और जिसे हम केवल एक में बहुतों के अनुभवों की एकता में ही पाते हैं।

अतः अगर विभिन्न किस्मों के व्यवहारवाद का हमें एक व्यावहारिक उपाय के रूप में ही देखना है—मेरे सहयोगी की शब्दावली आग्रहपूर्वक इस तुलना को निमन्त्रित करती है—तो मैं उनकी स्थिति को इस प्रकार रखने को बाध्य हूँ—प्रथम वह यथार्थ स्पष्टता और धारणीय सम्पत्ति के साथ जहाँ तक सार्थक सत्य की वास्तविक रूप में आवश्यक मानकर अन्यायी का प्रश्न है, अपने दीवालियेपन को स्वीकार करता है। दूसरे, एक बार भी वह किसी वास्तविक मामला के हाथ में आना स्वीकार नहीं करता क्योंकि अति परम प्रतीत होने वाली को"

वस्तु उसे प्रिय नहीं। और तीसरे, उसका सीधा सा खुला इरादा सत्य के पुराने नाम और ढंग के अन्तर्गत व्यापार चलाते रहने का है। उसका कहना है कि 'आखिरकार, क्या हम सब को ही उधार-मूल्य प्रिय नहीं है' ? [1]

उत्तर में जेम्स ने बौद्धिक आराम या नैतिक छुट्टियों के आधार पर उन लोगों के लिए किसी परम प्रतिमान के व्यवहारवादी मूल्य की अनुमति दे दी जिन्हें कभी-कभी या अन्तिम रूप से विश्राम की आवश्यकता थी। किन्तु उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि तार्किक रूप में कोई 'परम' आवश्यक है।

यह बताते हुए कि मैं स्वयं परम में विश्वास क्यों नहीं करता फिर भी यह देख कर कि इससे उनको 'नैतिक छुट्टियाँ' मिल सकें जिन्हें उनकी आवश्यकता है और (अगर नैतिक छुट्टियाँ प्राप्त करना अच्छा है तो) इस हद तक इसे सच समझ कर मैंने इसे एक समाधानकारक शान्ति-चिह्न के रूप में अपने शत्रुओं के समक्ष रखा। किन्तु उन्होंने जैसा कि ऐसी भेंटों के साथ सामान्यतः होता ही है, इस भेंट को पैरों तले कुचल दिया और उलट कर देने वाले पर टूट पड़े। अवधारणाओं के अर्थ के व्यवहारवादी परीक्षण का प्रयोग करते हुए, मैंने यह प्रदर्शित कर दिया था कि परम की अवधारणा का अर्थ और कुछ नहीं केवल छुट्टी देने वाला महाप्राचीन भय को दूर करने वाला है। जैसा मैंने दिखाया, जब कोई कहता है कि 'परम का अस्तित्व है', तो उसकी वस्तुपरक घोषणा सिर्फ इतनी ही होती है कि सृष्टि की विद्यमानता के समक्ष सुरक्षा की भावना का कुछ औचित्य है और यह कि सुरक्षा की भावना को विकसित करने से अगर कोई निरन्तर समझ-बूझ कर इनकार करता है, तो वह अपने भावनात्मक जीवन की ऐसी प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करता है, जिसे भविष्यदर्शी मान कर उसका आदर किया जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे परमवादी आलोचक ऐसे किसी चित्र में स्वयं अपने मनों की कार्यप्रणाली नहीं देख पाते। फलस्वरूप मैं केवल माफी माँग कर अपनी भेंट वापस ले सकता हूँ। अत: 'परम' किसी भी रूप में सत्य नहीं है और मेरे आलोचकों के निर्णय के अनुसार, उस रूप में तो बिल्कुल भी नहीं जो मैंने उसे प्रदान किया था। [2]

'सत्य' और 'सत्यता' में अन्तर करके और यह मान कर कि उन्हें केवल 'सत्यता' से मतलब था वे सत्य की 'अमूर्त' प्रकृति के प्रश्न पर पीयर्स और

---

१ जोसिया रॉयस 'दी फिलॉसफी ऑफ लायल्टी (न्यूयॉर्क १९०८) पृष्ठ ३११-३१२, ३४६ ३४७।

२ जेम्स, 'दी मीनिंग ऑफ ट्रुथ', पृष्ठ ८१०।

मानवादियों के आगे हार मानने वाले थे जब हुई थी उन्हें नीचे लिखी कड़ी चेतावनी दी—

'किसी व्यवहारवादी का यह कहना कि प्रश्न लगभग पूर्णतः शास्त्रीय है क्या विरोधियों को बहुत अधिक आलोचना का अवसर नहीं दे देता ? दूसरी ओर, अगर यह एक लगभग पूर्णतः शास्त्रीय प्रश्न है तो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि 'सत्यता बहुत अधिक महत्वपूर्ण विचार है, जैसा कि अन्तिम पैरा में इंगित मिलता है। मैं इस सम्बन्ध में आपको लिखने का साहस न करता अगर मुझे निश्चित रूप में यह जानकारी न होती कि ये दोनो पैरा उन लोगों के मार्ग में बाधक रहे हैं जिन्होंने अपना मन नहीं बनाया था और व्यवहारवाद के विरोधियों के लिए प्रसन्नता का कारण रहे हैं।

'यह लिखने में मेरा मुख्य उद्देश्य उपयुक्तता का प्रश्न उठाना है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्ट्रांग का लेख बड़ी स्पष्टता के साथ आपके आलोचकों के उलझन को सामने लाता है, 'सत्य' और 'सत्यता' के बीच अन्तर करके आप जिसका उत्तर देने की चेष्टा कर रहे हैं। 'क्या यह सच है कि मार्च १८१४ के अन्तिम दिन नेपोलियन एल्बा में उतरा ? अगर इसका कुछ अर्थ है, तो इसका इन दो में से कोई एक अर्थ ही हो सकता है—(क) क्या यह 'वक्तव्य' 'विचार या विश्वास कि नेपोलियन इस प्रकार उतरा सच है ? या (ख) क्या नेपोलियन का उतरना (मात्र अस्तित्व का तथ्य) सत्य है। अब जहाँ तक मैं समझता हूँ अन्तिम परिणति पर आने वाला वर्णनावादी (जैसे रॉयस) मानता है कि मात्र अस्तित्व का तथ्य तथ्य 'रूप में स्वयं ही सत्य की प्रकृति का एक रूप है अर्थात्, वह पहले से ही कम से कम बाह्य रूप में एक सत्य व्यवस्था (और इसलिए बौद्धिक व्यवस्था) में समाहित एक तत्व है। अब स्ट्रांग (और आपके बहुतेरे अन्य आलोचक) इसे नहीं मानते जैसे आप स्वयं नहीं मानते। स्ट्रांग का कथन सच है कि नेपोलियन उतरा केवल घुमा-फिरा कर यही बात हो सकती है कि विचार या विश्वास सच है।' अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अगर हम आलोचकों को (जो परम भाववादी प्रकार के नहीं हैं, केवल पशु अस्तित्वों या घटनाओं (जो निश्चय ही सत्य' नहीं है) और इन अस्तित्वों सम्बन्धी बौद्धिक वक्तव्यों (केवल जिनकी ही सच झूठ की प्रकृति सम्बन्धित है) के अन्तर के प्रश्न पर पकड़ें तो हम उन्हें दिखा सकते हैं कि सम्भ्रम उनमें है, और यह कि सत्य (मात्र सत्यता ही नहीं) आलोच्य अन्तिम के 'प्रमाणों और सामान्य बौद्धिक स्थिति या उक्ति के 'प्रमाणों का सम्बन्ध हो सकता है।

'आप मेरे इस कथन के लिये मुझे क्षमा करें किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि बेहतर समझ के लिये किसी आलोचक की यह बात मान लेना कि अच्छा

यही है जो सत्य, उसी बात को मान लेता है जिसमें आलोचक का सम्भ्रम स्थित है और उस सम्भ्रम को प्रोत्साहित करके आप उसी बेहतर समझ को रोकते हैं जो आपका लक्ष्य है। [1]

यह एक कुशल मीमांसक की उत्तम विचारात्मक सलाह थी। किन्तु जेम्स के लिए यह बहुत अधिक थी। सारे 'सत्य' सम्बन्धी विवाद से वे ऊबने लगे थे। उन्होंने कहा कि उनके लिए व्यवहारवाद केवल एक पद्धति-सम्बन्धी भूमिका थी जिससे उनके असली दर्शन—मौलिक अनुभववाद पर फलदायक चर्चा हो सके। जो उनके लिए केवल एक 'चर्चा चलाने की पद्धति' थी, शिलर और कुई अगर उसमें से किसी दर्शन का निर्माण करना चाहें तो करें।

'सत्य' से 'हमारा तात्पर्य क्या है ? यह किस रूप में ज्ञात है ? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर अगर चर्चा आरम्भ हो जाये तो हर पक्ष दूसरे पक्ष का आदर कुछ अधिक करने लगे। विचार के इस सारे ढंग के जनक के रूप में मेरा नाम जिस ढंग से घसीटा गया है, उस पर मुझे हँसी आती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि इसमें उन प्रासंगिक विचारों को आगे बढ़ाया गया है, जो मैंने व्यक्त किये हैं। किन्तु मेरे लिये व्यवहारवाद' चर्चा चलाने की एक पद्धति (यह सच है कि एक सर्वोत्तम पद्धति) से अधिक कभी कुछ नहीं रहा और आपने व ड्युई ने इस अवधारणा को जो व्यापक क्षेत्र प्रदान किया है, वह मेरे अधिक तीव्र दार्शनिक विचारण की सीमा से आगे बढ़ गया है। मैं इसका स्वागत करता हूँ, इसकी प्रशंसा करता हूँ किन्तु मैं अभी इसके कुछ अंगों को निरूपित नहीं कर सकता। परन्तु मेरे अन्दर यह विश्वास जरूर है कि उन्हें सफलतापूर्वक निरूपित किया जा सकता है और यह कि दार्शनिक मनुष्य के लिये वह एक महान् दिन होगा।

'निश्चय ही मैं बड़ी गीली, धीमी जलने वाली बारूद हूँ और अन्य लोगों का विद्वान बहुत ज्यादा करता हूँ क्योंकि मैं स्वीकार करता हूँ कि इन चीजों को पढ़ने के बाद ही (इसी तात्पर्य से आपने जो कुछ लिखा है, उसके और पापमय विश्व को फ़ैसला सुनाने वाले आपके स्वर के बावजूद) ऐसा प्रतीत होता है कि मैं जीवन और पुनरुद्धारण के लिए कार्यक्रम के पूर्ण महत्त्व को और उसके 'महान् परिप्रेक्ष्य' को तथा मानववाद के 'सभी वस्तुओं का नवीकरण करने वाले चरित्र को समझ पाया हूँ और रात की हवा में हिल कर जीवन का आभास देने वाले कौवाईकाम के वस्त्रों की तरह सारे बुद्धिवाद के विक्षेपण को और बुद्धिवादी मूर्तियों की पूजा करने वाले सभी लोगों की दृष्टिहीनता और प्राणहीनता को भी समझ पाया हूँ। एक नये महान् युग के जन्म में जिसमें जीवन धर्म और दर्शन एक साथ हैं सहायक होना विचित्र सा लगता है।

१ पेरी की पुस्तक खण्ड २, पृष्ठ ५१०-५११।

लोगों को यह दिखाना महत्वपूर्ण है कि अवधारणाओं का कार्य व्यावहारिक होता है, किन्तु युग-युग में ही यह भूल कर आदमी उलझन में पड़ जाता है कि ऐसा करने में आप जिन अवधारणाओं का प्रयोग करते हैं वे स्वयं ही तरल होते हैं। और आखिरकार हमारे अनुभव को अब तक उनमें से 'कुछ' को व्यवहारवादी जनता में प्रतिष्ठित कर देना चाहिये था। इस प्रकार मैं नैतालिक रीति से यह दरार जानता हूँ जिसे आगे बढ़ा कर आप (शिलर) और डुई ज्ञानमीमांसा को चीरने में लगे हैं। इन दोनों को ही पद्धतियों के लिये स्थान है किन्तु आपकी टीकाओं और आलोचनाओं का परिणाम यह होगा कि मैं अपने के अपने रूपों की अनन्तिमता को अधिक स्पष्ट रूप में स्वीकार करूँ।

लोगों को यह दिखाना कि 'अवधारणाओं का कार्य व्यावहारिक होता है' सचमुच जॉन डुई और उनकी शिकागो धारा के लिये महत्वपूर्ण था। डुई का ध्यान आरम्भ से ही व्यवहार के तर्कशास्त्र पर केन्द्रित रहा था और जेम्स की साइकोलोजी में उन्होंने वह उपकरणवादी तर्कशास्त्र पाया जिसने उनके नीतिशास्त्र के सिद्धान्त में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। १८९१[1] में डुई की पुस्तक आउटलाइन्स ऑफ़ ए क्रिटिकल थियरी ऑफ़ एथिक्स (नीतिशास्त्र के एक आलोचनात्मक सिद्धान्त की रूपरेखा) के प्रकाशन के बाद जेम्स को लिखे गये उनके एक पत्र से पता चलता है कि अपने आप को 'उपदेशात्मक नीतिशास्त्र' से मुक्त करने में जेम्स ने किस प्रकार उनकी सहायता की थी।

सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में ही वर्तमान उपेक्षात्मक रवैया इतना बढ़ा है और इतना बलवान है कि पुस्तक की सफलता की मुझे कोई आशा नहीं है। किन्तु जब आप जैसा एक आदमी भी यह कुछ कहता है जो आपने मुझे लिखा तो पुस्तक सफल हो गयी।

किन्तु जैसा आपने कहा है अगर कोई व्यक्ति कानून के बजाय पहले से ही मान्य सिद्धान्त के अधीन नहीं रह रहा है तो उसे सम्बोधित किये गये शब्द हवा की तरह होते हैं। वह समझेगा नहीं कि आपका तात्पर्य क्या है और अगर समझ ले तो विश्वास नहीं करेगा कि आप का यह तात्पर्य है। इसी नई पीढ़ी में ही आशा प्रतीत होती है। मैं देखता हूँ कि मेरे कई छात्रों में भारी भूख है। बोझ के नीचे से निकलने और अपने जीवन में विश्वास करने के किसी अवसर का वे बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं।...

मुझे याद नहीं मैंने आपको बताया था या नहीं कि मेरे पास इस वर्ष चार स्नातकों की एक कक्षा थी जो आपके मनोविज्ञान का अध्ययन कर रहे थे और

---

१ वही, पृष्ठ ५०२, ५. ५. ५१२।

हम सब को उसमें बड़ा आनन्द आया। मुझे विश्वास है कि आप को बड़ा सन्तोष हो अगर आप देख सकें कि आप की पुस्तक हमारे लिए कहाँ तक मानसिक स्वतन्त्रता की उद्दीपक होने के साथ-साथ पद्धतियाँ और सामग्रियाँ प्रदान करने वाली रही है।[1]

जब कि जेम्स इस प्रकार एक मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र निरूपित करने में ड्युई की सहायता कर रहे थे जो उपदेशों के बजाय वास्तविक सक्रिय आकांक्षाओं पर आधारित था फ्रैंकलिन फ़ोर्ड नामक एक पत्रकार ने उन्हें बताया कि सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी किस प्रकार बुद्धि और नैतिकता को प्रयोगात्मक अन्वेषण के एक विषय के रूप में लिया जा सकता था। ड्युई ने अपनी १८९१ में प्रकाशित रचना 'एथिक्स' की भूमिका में विशेष रूप से 'एक आदर्श क्रिया के रूप में, वास्तविक परिवेश के विरुद्ध आकांक्षा के विचार की ओर ध्यान खींचा। क्षमता और वातावरण सहित व्यक्तित्व का कार्यरूप में विश्लेषण विज्ञान और कला के सामाजिक सम्बन्धों की विवेचना (जिसके सम्बन्ध में मैं अपने मित्र श्री फ्रैंकलिन फ़ोर्ड का ऋणी हूँ)।[2] सत्तात्मक भाववाद के आधार पर बड़ी मेहनत और बड़ी पूर्णता के साथ उन्होंने जो विचार-व्यवस्था निर्मित की थी, अब उन्होंने उसे पूरी तरह त्याग दिया और दो भागों में नीतिशास्त्र की एक नयी व्यवस्था (और पाठ्य-क्रम) निरूपित की—मनोवैज्ञानिक नीतिशास्त्र और सामाजिक नीतिशास्त्र। इसी नीतिशास्त्रीय व्यवस्था की दोहरी सन्दर्भ योजना के अन्तर्गत ड्युई और उनके सहयोगियों ने प्रसिद्ध 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' (तर्कशास्त्र के सिद्धान्त की विवेचनाएँ—१९०३) की अवधारणा की जिसका प्रकाशन उपकरणवाद की शिकागो धारा के उदय का आरम्भ-बिन्दु था।

मिशिगन और शिकागो में ड्युई और अन्य लोगों द्वारा भाववाद की जो जीव वैज्ञानिक और विकासवादी पुनः रचना हो रही थी उसे हम पहले ही देख चुके हैं।[3] ड्युई विचार को क्रिया के रूप में और विचार के नियमों को गति या क्रिया के नियमों के रूप में देखने के अभ्यस्त थे। उन्होंने द्वन्द्वात्मक शब्दावली में निर्णय के मध्यस्थता कार्य को भी निरूपित किया था। जब सार-तत्वों की उद्देश्यवादी प्रकृति के सिद्धान्त को लेकर जेम्स की 'साइकॉलॉजी' प्रकाशित हुई और तार्किकताओं के आदर्शों में स्थित होने का सिद्धान्त लेकर पीयर्स के लेख

१ वही, पृष्ठ ५१७।

२. पेरी की पुस्तक में उद्धृत, पृष्ठ ५१८ एन।

३ इसकी चर्चा छठे अध्याय में 'प्रागुर्वीतिक सामाजिक विज्ञान' और सातवें अध्याय में 'भाववाद की धाराएँ' के अन्तर्गत देखिए।

सामने आये, तो डुई ने समझ लिया कि कार्य के 'नियामक विचारों' के रूप में पदार्थों की व्याख्या का सामान्यीकरण करके उसे सभी विचारों पर लागू किया जा सकता है। सभी विचार उद्देश्यात्मक या उपकरणात्मक होते हैं। इस स्थापना के विश्लेषण को अब आनुवंशिक परिकल्पना की भूमि से हटा कर आनुभविक मनोविज्ञान की भूमि पर ले आया जा सकता था। डुई इस प्रकार अब अनुभव की 'मध्यस्थता' का वर्णन प्रतिवर्त-चाप की अवधारणा के सन्दर्भ में करने को और क्रिया की भाववादी तत्त्व-मीमांसा को छोड़ कर निर्णय कार्य के शरीर क्रियात्मक विश्लेषण को अपनाने के लिए तैयार थे। इस सिद्धान्त को व्यवस्थित रूप में सर्व प्रथम डुई ने अपने लेख 'लॉजिकल कण्डिशन्स ऑफ़ ए साइन्टिफ़िक ट्रीटमेण्ट ऑफ़ मोरालिटी' (नैतिकता की वैज्ञानिक विवेचना की तार्किक शर्तें) में मीड ने अपने लेख 'डेफ़िनिशन ऑफ़ दी साइकिकल' मानसिक की परिभाषा) में और ए० डब्ल्यू मूर ने अपने लेख सम लॉजिकल आस्पेक्ट्स ऑफ़ परपज़ (उद्देश्य के कुछ तार्किक पक्ष) में एक साथ ही प्रतिपादित किया। इनमें से मूर की दृष्टि सर्वाधिक प्रत्यक्ष और सरल थी। उन्होंने कहा कि रॉयस और जेम्स दोनों ही विचारों की सोद्देश्यता को मानते हैं किन्तु वे इसकी व्याख्या करने में असफल रहते हैं कि जब 'बेचैनी और असन्तोष का संघविहीन सम्बन्ध में डालने वाले यदु यथार्थ' का अनुभव 'परिपूर्ण अर्थ के अनुभव में रूपान्तरित हो जाता है तो वस्तुतः होता क्या है। विस्तार में उन्होंने रॉयस की आलोचना की कि वे अपनी समस्या को ध्यानपूर्वक हल करने के बजाय अस्पष्ट रीति से परम अनुभव का सहारा लेते हैं।

'मानवी अनुभव का यह पूर्णतः 'खण्ड चरित्र अपेक्षतया उस विचरित स्थिति का एक अमूर्तन है, जिसमें अनुभव अस्थायी रूप से पड़ जाता है। फिर इस तथ्य की उपेक्षा करके कि अनुभव खण्डित इसीलिए होता है कि फिर से सम्पूर्ण बने इस अमूर्तन का एक निश्चित गुण के रूप में पुनः प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। परम व्यवस्था, अन्तिम परिपूर्ति के साथ भी ऐसा ही है। यह भी पूर्ण बनने के कार्य का, पूर्ण बनाने और परिपूर्ण करने के कार्य का जो सन्तुष्टि के विरामों के बीच व्यक्त होता है, एक अमूर्तन है जिसे दैवी व्यक्तित्व का रूप दे दिया गया है।

बेचैनी शून्य में नहीं उत्पन्न होती। किन्तु यह क्रिया ऐसी स्थिति में क्यों आ जाती है जिसे अनिश्चित बेचैनी और असन्तोष कहा जाय?

'एक तार्किक चर्चा में मनो-शरीर-क्रियात्मक और जीववैज्ञानिक सिद्धान्तों का समावेश बहुतों को अरुचिकर तो लगेगा किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि इस बिन्दु पर आकर प्रश्न का प्रत्यक्ष रीति से सामना करने पर मैं कोई अन्य उपाय

नहीं देखता और मुझे ऐसा लगता है कि इस बिन्दु पर आकर, महान् तत्त्ववादियों के भय ने ही तर्कशास्त्र को इतने वर्षों तक बियाबान में भटकाये रखा है।

अतः इस कारण ही कि इस बेचैनी की प्रतिक्रिया में विचार एक योजना के रूप में प्रक्षेपित और निर्मित होता है, विचार की परिपूर्ति इस बेचैनी से सम्भव होगी। जब बेचैनी के इस आधार-द्रव्य से उत्पन्न, उद्देश्य या योजना रूपी विचार परम व्यवस्था की आकांक्षा करने लगता है और अपने नीचे स्तर के पूर्व-भाव की उपेक्षा करने या उसे अस्वीकार करने की चेष्टा करता है, तभी परिपूर्ति सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। ये कठिनाइयाँ हर उस महत्त्वाकांक्षा के सामने आती हैं जो ऐसी वस्तुओं की आकांक्षा करता है जो उसकी वंशागत शक्तियों और उपकरणों के लिए विजातीय होती हैं।

'निश्चय ही हम (यथार्थ को) विचारों की एक निश्चित परम 'व्यवस्था' में नहीं पाएँगे जो प्रेम और आशा आकांक्षा और संकल्प आस्था और कार्य की 'वस्तु' है लेकिन कभी भी वर्तमान प्राप्ति की नहीं। बल्कि प्रेम और आशा करने आकांक्षा और संकल्प करने विश्वास और कार्य करने में ही हम उस यथार्थ को पायेंगे जिसके लिए तथ्य रूप में विश्व और 'विचार रूप में विश्व' दोनों का ही अस्तित्व है।'[1]

ड्युई के लेख, 'दी लॉजिकल कण्डिशन्स ऑफ ए साइण्टिफिक ट्रीटमेण्ट ऑफ मॉरालिटी' में परम भाववाद का विरोध कम था और तथ्य-निर्णय तथा मूल्य निर्णय सम्बन्धी कोष्ठवादी ढंग को तोड़ने का प्रयास अधिक। उन्होंने इस सिद्धान्त का विकास किया कि विचारों या सार्विकताओं को निश्चय करने की आदतों या योजनाओं के रूप में अनुभव में स्थित देखा जा सकता है और यह कि विचारों की प्रकृति सम्बन्धी यह कार्यात्मक दृष्टि न केवल कार्य और निर्णय के बीच वरन् वैज्ञानिक निर्णय और नैतिक निर्णय के बीच भी निरन्तरता पर विशेष आग्रह करती है। उन्होंने खास तौर पर पीयर्स के सिद्धान्त का जिक्र किया कि 'भिन्न मार्गों पर' चल कर वह इन्हीं परिणामों पर पहुँचता है।

"निर्णय करने वालों की आदतों और आवेगों प्रवृत्तियों के माध्यम से ही विज्ञान की व्यापक स्थापनाएँ या सार्विकताएँ प्रभावी हो सकती हैं। उनकी अपनी कोई कार्य-प्रणाली नहीं होती।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, इस सिद्धान्त की ओर सर्वप्रथम ध्यान खींचने वाले और इसके आधारभूत तार्किक महत्त्व पर जोर देने वाले श्री चार्ल्स एस

---

१ जॉन ड्युई, 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' (शिकागो १९०३) पृष्ठ १६६, १७४, १७५, १८२।

पयर्स से (देखिए, 'मानिस्ट' खण्ड दो पृष्ठ २१४ २१ ५४८ ५६)। श्री पीयर्स इसे निरन्तरता के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं—कोई अतीत विचार उसी हद तक कार्य कर सकता है जहाँ तक उसका मानसिक रूप में उससे नैरन्तर्य हो जिस पर वह कार्य करता है। सामान्य विचार केवल एक जीवित और फैलती हुई भावना है और आदत किसी विशिष्ट मानसिक नैरन्तर्य के कार्य करने की विशिष्ट प्रणाली का वक्तव्य है। मैं उक्त परिणाम पर इनसे भिन्न मार्गों से चल कर पहुँचा हूँ कि श्री पीयर्स के वक्तव्य की प्रबलता और उसके अधिक सामान्यीकृत तार्किक चरित्र का महत्व किसी प्रकार कम किये बिना मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे अपने वक्तव्य का मूल्य बहुत कुछ एक स्वतन्त्र पुष्टि का सा है।

'सभी व्यापक वैज्ञानिक व्याख्याओं सभी नियम-वक्तव्यों सभी समीकरणों और सूत्रों का चरित्र पूर्णतः प्रावर्तक होता है। उनके अस्तित्व का एक मात्र औचित्य उनके मूल्य का एक मात्र कसौटी व्यक्तिगत मामलों के वर्णनों का नियमन करने की उनकी क्षमता होती है। यह मत कि वे वीजलिपि के रजिस्टर या अमूर्त वर्णन होते हैं उक्त मत का खण्डन करने के बजाय उसकी पुष्टि करता है। प्रोग्र सेवि में और अयथार्थ वक्तव्य प्रस्तुत हो क्या किया जाये अगर यथार्थ के साथ सम्बन्ध में वह उपकरण का कार्य नहीं करता?

अगर हम वैज्ञानिक निर्णय का एक कार्य के रूप में स्वीकार करते हैं तो मान्य विज्ञानों की सामग्री के तर्क और आचार के तर्क के बीच कोई सीमारेखा खींचने का कोई प्राण अनुभव कारण नहीं रह जाता।...

'निस्सन्देह यहाँ प्रस्तुत दृष्टिकोण निश्चित रूप में व्यवहारवादी है। किन्तु व्यवहारवाद के कुछ रूपों में अभिप्रेत अर्थों के सम्बन्ध में भी पूर्णतः निश्चित नहीं हूँ। कभी-कभी उनकी यह मंशा प्रतीत होती है कि तर्कनापरक और तर्कसंगत वक्तव्य एक सीमा तक ठीक होते हैं किन्तु उनकी निश्चित साध्य सीमाएँ होती हैं जिनके फलस्वरूप भावुक अवसरों पर ऐसे विचारों का अवलम्बन करना पड़ता है, जो निश्चित ही अतर्कनापरक और अतर्कसंगत प्रकार के होते हैं और इस अवलम्बन को चुनाव और 'क्रिया' के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार व्यावहारिक और तार्किक एक-दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। मैं जो कुछ स्थापित करने की चेष्टा कर रहा हूँ वह इसके बिल्कुल विपरीत है। अर्थात् यह कि जो तार्किक है वह व्यावहारिक की अन्तर्निहित या आंगिक अभिव्यक्ति होता है और इस तरह व्यावहारिक रूप में कार्य करते समय वह स्वयं अपने तार्किक आधार और लक्ष्य की परिपूर्ति करता है। मेरा यह तात्पर्य नहीं है कि जिसे हम 'विज्ञान' कहते हैं 'बाहरी' नैतिक विचार उसे मनमाना रूप से शामिल करते हैं और इससे दृष्टिसम्पन्न विज्ञान का नैतिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं—

हो सकता, बरन् इसके बिल्कुल विपरीत मेरा तात्पर्य है कि विज्ञान अनुभूत वस्तुओं के विश्व के साथ हमारे सम्बन्धों को नियन्त्रित करने की प्रणाली है और इस कारण ही नैतिक अनुभव को ऐसे नियमन की बहुत अधिक आवश्यकता है और 'व्यावहारिक' से मेरा तात्पर्य केवल अनुभूत मूल्यों में नियमित परिवर्तन से है।'[1]

फिर 'स्टडीज इन लॉजिकल थियरी' में डुई ने विचारों के इस उपकरणवादी सिद्धान्त को तार्किक वस्तुओं के सिद्धान्त पर लागू किया। उन्होंने अपने तर्क को लॉट्जे की रचना 'लॉजिक' की आलोचना के रूप में प्रस्तुत किया। वे यह स्पष्ट करना चाहते थे कि लॉट्जे द्वारा विचार और उसकी विषय-वस्तु के मौलिक अलगाव की वस्तुपरक भाववादियों ने जो आलोचना की थी, उससे सहमत होते हुए भी वे उनके इस निष्कर्ष से सहमत नहीं थे कि विचार ही यथार्थ का 'निर्माण' है। उन्होंने यह तर्क किया कि विचारों अमूर्तनों या तार्किक वस्तुओं' की अनुभव में विशिष्ट भूमिका है, अर्थात्, वे सम्भावित क्रियाओं का स्पष्टीकरण करते हैं। इस प्रकार, बिना इस भाववादी सिद्धान्त को स्वीकार किये कि विचार ही यथार्थ है, वे लॉट्जे के विचार बनाम यथार्थ के द्वैत से बच सके। डुई और उनके सहयोगियों के लिये इसका अर्थ था न केवल भाववाद से वरन् सभी प्रकार की ज्ञानमीमांसा से ज्ञान के सिद्धान्त की मुक्ति। इन्हें मुक्ति का एक विज्ञान प्राप्त हो गया था।

अगर विलियम जेम्स १६३८ में डुई की पुस्तक 'लॉजिक : दी थियरी ऑफ इन्क्वायरी' (तर्क शास्त्र : अन्वेषण का सिद्धान्त) का प्रकाशन देखने को जीवित रहते, जिसमें ज्ञान के प्रयोगवादी सिद्धान्त को पूर्णतम अभिव्यक्ति मिली है तो शायद वे इस ग्रन्थ को उस 'अमर रचना' के समकक्ष पाते जिसे लिखने के लिए वे जीवित नहीं रहे। डुई की 'लॉजिक' में जेम्स की कई विशिष्टियां मौजूद हैं। जेम्स ने लिखा—

'अगर मैं कर सकूँ, तो एक ग्रन्थ अमर रचना लिखना और प्रकाशित करना चाहता हूँ जो 'प्रेग्मेटिज्म' से कम लोकप्रिय किन्तु अधिक मौलिक होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी इसे (प्रेग्मेटिज्म को) ठीक तरह नहीं समझता—कहा जाता है कि यह इन्जीनियरों, बिजली के कारीगरों और डॉक्टरों के उपयोग के लिए बनाया गया दर्शन है, जबकि वस्तुतः पिछले दार्शनिक ऐसा करने को

---

[1] जॉन डुई, 'लॉजिकल कण्डिशन्स ऑफ ए साइन्टिफिक ट्रीटमेण्ट ऑफ मोरालिटी' (शिकागो १९०३), पृष्ठ १४, १४ एन०, ११ एन, १० एन०।

तैयार थे जानने के कार्य के उससे अधिक सूक्ष्म और बारीक सैद्धान्तिक विश्लेषण से इसका विकास हुआ।[1]

अनुभव और प्रकृति

जब विलियम जेम्स मनोविज्ञान के अपने 'प्राकृतिक विज्ञान' के निरूपण में लगे थे तो वे जानबूझ कर तत्वमीमांसा की समस्याओं को अलग रखते रहे— स्वयं अपने मन से नहीं जहाँ वे दृढ़ रूप में स्थित थीं वरन् मन के अपने विज्ञान से। सर्वप्रथम उनका इरादा रीत्यात्मक अर्थ में अनुभववादी होने का था और अपनी रचना 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलोजी' (मनोविज्ञान के सिद्धान्त) के पाठक को वे समय-समय पर सूचित करते रहे कि वे कुछ ऐसी समस्याओं को जिन्हें आनुभविक प्रमाण द्वारा सुलझाया नहीं जा सकता रचना के अन्त के लिये स्थगित कर रहे थे। किन्तु जब वे अन्त पर आये और अपना अन्तिम तत्वमीमांसात्मक अध्याय 'नैसेसरी ट्रूथ्स ऐण्ड दी एफेक्ट्स ऑफ एक्स पीरिएन्स' (आवश्यक सत्य और अनुभव के प्रभाव) लिखा तो सभी स्थगित समस्याओं की विवेचना सम्भव नहीं थी। अधिक से अधिक वे इतना ही कर सकते थे कि अनुभव में उठने वाली समस्याओं को प्राकृतिक तथ्य सम्बन्धी समस्याएँ बनाने के लिए उन्हें जिस रूप में ढालना आवश्यक था उसे बतायें। इस 'दार्शनिक' समस्या को उन्होंने इस प्रकार निरूपित किया—

'हम वस्तुओं की आनुभविक व्यवस्था और उनकी तुलना की वर्णनापरक व्यवस्था में (अन्तर करते हैं) और यथासम्भव हम पहले को दूसरे में रूपान्तरित करने की चेष्टा करते हैं क्योंकि वह हमारी बुद्धि के अधिक अनुकूल है।

'वस्तुओं का ऐसे वर्गों में समावेश जिनके बीच ऐसे वर्गीकरणात्मक सम्बन्ध अपने दूरस्थ और बीच के व्यवहारों सहित कायम हों वस्तुओं को एक अधिक वर्णनापरक योजना के अन्तर्गत लाने की एक रीति है।

इस प्रकार प्राग्नुभव या अन्तःप्रज्ञात्मक रूप में आवश्यक सत्यों का एक बड़ा समूह है। सामान्यतः वे केवल तुलना के सत्य होते हैं और सर्वप्रथम वे मात्र मानसिक पदों के बीच सम्बन्धों को व्यक्त करते हैं। किन्तु प्रकृति इस प्रकार कार्य करती है जैसे उसके कुछ यथार्थ इन मानसिक पदों से एकरूप

1 पेरी की पुस्तक, भाग दो पृष्ठ ४६८।

हैं। जहाँ तक यह ऐसा करती है, हम प्राकृतिक तथ्य के सम्बन्ध में प्राग अनुभव स्थापनाएँ कर सकते हैं। विज्ञान और दर्शन दोनों का लक्ष्य है कि ऐसे पहचाने जा सकने वाले पदों की संख्या बढ़ायें। अभी तक भावनात्मक प्रकार के मानसिक पदों की अपेक्षा यान्त्रिक प्रकार के मानसिक पदों की प्राकृतिक वस्तुओं के साथ एकरूपता दर्शित करना ज्यादा आसान साबित हुआ है।

'तार्किकता की अधिकतम व्यापक अभिधारणा यह है कि विश्व, 'किसी' आन्तर्य व्यवस्था के अनुरूप पूरी तरह तार्किक रूप में बोधगम्य है। दर्शनों का सारा युद्ध आस्था के इस प्रश्न पर है।'[1]

इस प्रकार जेम्स एक आदर्श व्यवस्था निर्मित करने के प्रयास के साथ 'दर्शनों के युद्ध' में प्रवेश करने को तैयार थे, ऐसी व्यवस्था जो यान्त्रिक व्यवस्था से अधिक व्यापक हो और परम ईश्वरवाद की व्यवस्था से कम कठोर हो। इस व्यवस्था को उन्होंने 'मौलिक अनुभववाद' कहा। इसका लक्ष्य एक रीतिविधान बनना नहीं था वरन् 'मानसिक पदों से एकरूप देखी जा सकने वाली' प्रकृति की एक व्याख्या बनना था।

अ-आनुभविक 'तत्त्वमीमांसात्मक' समस्याओं को साफ करने के लिए उन्होंने व्यवहारवाद निकाला। इसका उद्देश्य 'दार्शनिक चर्चा' को सुविधा और स्पष्टता प्रदान करना था। दुर्भाग्यवश इसका परिणाम उलटा ही हुआ। यह विवाद का एक और प्रश्न बन गया जिन आस्थाओं की प्रामाणिकता जाँची नहीं जा सकती उनका औचित्य सिद्ध करने की एक और योजना बन गयी। दीक्षात्मक विवाद के उलझनों और उलझनों के बीच जहाँ तक हो सकता था, जेम्स ने अपनी दार्शनिक व्यवस्था को आगे बढ़ाया।

व्यवहारवाद से अधिक गम्भीर बाधा थी चेतना की प्रकृति की समस्या जो उनके समकालीन अन्य लोगों की भाँति जेम्स को भी बार-बार परेशान करती रही और जिसे वे कभी इस प्रकार हल नहीं कर पाये कि उससे उन्हें स्वयं सन्तोष होता। चेतना के कार्य का विश्लेषण उन्होंने पर्याप्त रूप में कर लिया था। चेतना 'लक्ष्यों के लिए लड़ने वाली' है या कम से कम ऐसी प्रतीत होती थी'। लेकिन चेतना का अस्तित्व — वह क्या हो सकता था? इस समस्या के साथ उनके संघर्ष का उनका अपना विवरण विवादपूर्ण ढंग से प्रदर्शित करता है कि मौलिक अनुभववादी होना कितना कठिन है। उन्हें चेतना का वर्णन एक 'धारा' के रूप में, निरन्तर चलने वाली वस्तु के रूप में करने में सफलता

1 विलियम जेम्स दी प्रिन्सिपिल्स ऑफ़ साइकोलॉजी (न्यूयार्क १८९०), पृ० ६७६, ६७७।

मिली थी जिसके हिस्से संघातीय रूप में सम्मिलित थे और इस कारण जिससे एक 'अंग' के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जा सकती थी। किन्तु जब उन्होंने इस एकीकृत मानसिक क्रिया का मेल भौतिक विश्व के साथ बिठाने की चेष्टा की जिसके तत्व आणविक थे और जिसके सम्बन्ध बाह्य थे तो उन्होंने देखा कि उनका यह कार्य दुष्कर था।

"कणिकात्मक या यान्त्रिक दर्शन के सिद्धान्तों के अनुसार अलग-अलग अणु, या अधिक से अधिक जीव-कोष ही, एकमात्र यथार्थ हैं। 'मस्तिष्क' में उनका संग्रह सामान्य बोली की एक कल्पना है। ऐसी कल्पना किसी भी मानसिक स्थिति के वस्तुपरक रूप में यथार्थ प्रतिरूप का स्थान नहीं नहीं ले सकती। केवल कोई सचमुच भौतिक तत्व ही ऐसा कर सकता है। किन्तु आणविक तथ्य ही एकमात्र असली भौतिक तथ्य हैं। फलस्वरूप ऐसा प्रतीत होता है कि अगर हम कोई प्राथमिक मनो-भौतिक नियम बनाना ही चाहें, तो हमें पीछे जाकर पुनः मनो तत्व सिद्धान्त[1] जैसी किसी वस्तु का सहारा लेना पड़ेगा क्योंकि आणविक तथ्य मस्तिष्क का एक तत्व होने के कारण स्वभावतः सम्पूर्ण विचारों के बजाय विचार के तत्वों के अनुरूप प्रतीत होता है।

"तब हम क्या करें? इस बिन्दु पर आकर, बहुतेरे लोग अज्ञेय के रहस्य को सोत्साह स्वीकार करके और ऐसे सिद्धान्त के हाथों अपनी उलझनों को अन्तिम रूप से सौंपने में जैसी हमसे अपेक्षा की जाती है, उस तरह 'चकित' होकर चैन की साँस लेंगे। अन्य लोग प्रसन्न होंगे कि जिस परिमित और असमानपूर्ण दृष्टिकोण को लेकर हमने आरम्भ किया था उसके आत्मविरोध अब सामने आ गये हैं और वह शीघ्र ही हमें द्वन्द्वात्मक रीति से किसी 'उच्चतर सिंथिसिस' की ओर ले जायेगा जिसमें असंगतियाँ परेशान करना बन्द कर देती हैं और तर्क विश्राम की स्थिति में आ जाता है। यह एक स्वभावगत दोष हो सकता है किन्तु बौद्धिक पराजय में आनन्द लेने के ऐसे तरीके का सहारा मैं नहीं ले सकता। इनसे केवल आध्यात्मिक बेहोशी उत्पन्न होती है। इससे अच्छा है कि हमेशा तीखी धार पर रहें, समस्या को सुलझाने के अन्तहीन प्रयास में लगे रहें।"[2]

यथासम्भव ईमानदारी और धीरज के साथ मैं वर्षों तक इस समस्या से लड़ता रहा। इन कठिनाइयों[3] के सम्बन्ध में स्वयं अपने मन में उठने वाले विरोधी विचारों से और टिप्पणियों व साथियों से मैंने झगड़े खड़े कर डाले। कई

---

१ मनो-तत्व सिद्धान्त—यह सिद्धान्त कि मानसिक अस्तित्व का कोई मात्रक ही यथार्थ है, और भौतिक द्रव्य उसी का एक पक्ष है। —अनु०

२. वही, खण्ड एक, पृष्ठ १०८-१०९।

चेतनाएँ एक ही समय में, एक चेतना कैसे हो सकती हैं ? एक और वही एक तथ्य, अपना अनुभव इतनी भिन्न रीतियों से कैसे कर सकता है ? सारा संघर्ष व्यर्थ हुआ। मैंने अपने को गतिरोध की स्थिति में पाया। मैंने देखा कि मेरे सामने दो ही रास्ते थे। या तो मैं 'आत्मा के बिना मनोविज्ञान' को अन्तिम रूप से त्याग दूँ, जिसके साथ मेरी सारी मनोवैज्ञानिक और कॉम्टवादी शिक्षा ने मुझे बाँध रखा था अर्थात्, संक्षेप में मानसिक स्थितियों के ज्ञान के लिए मैं आध्यात्मिक कारकों को वापस ले आऊँ कभी अलग-अलग तो कभी संयुक्त रूप में। या फिर मैं स्पष्टतः स्वीकार कर लूँ कि समस्या का हल असम्भव है और तब या तो अपने बुद्धिवादी तर्कशास्त्र को, एकरूपता के तर्कशास्त्र को छोड़ दूँ और तर्कणा के किसी उच्चतर (या निम्नतर) रूप को स्वीकारूँ या अन्ततः इस तथ्य का सामना करूँ कि जीवन तार्किक दृष्टि से अ-तर्कणापरक है।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने अपने को 'इस तर्कशास्त्र को' साफ़-साफ़, प्रत्यक्ष रूप में और हमेशा के लिए 'छोड़ देने को' मजबूर पाया। मानव जीवन में इसकी एक स्थायी उपयोगिता है, किन्तु यह उपयोगिता यथार्थ की सारभूत प्रकृति से हमारा सैद्धान्तिक परिचय कराने की नहीं है।

'मैं अभी भी मुक्त न होता इतने हल्के दिल से तर्कशास्त्र की अधीनता का त्याग न देता या वजन के अधिक गम्भीर क्षेत्र से हटा कर उसे सरल मानवी व्यवहार के क्षेत्र में अपना उपयुक्त और आदरणीय स्थान लेने को न भेजता अगर मैं एक अपेक्षतया युवा और अत्यधिक मौलिक फ्रांसीसी लेखक, प्रोफ़ेसर हेनरी बर्गसन से प्रभावित न होता। उनकी रचनाएँ पढ़ कर ही मैं साहसी बना हूँ। ...

'मेरे अपने विचार को इतने दिनों तक शिकंजे में जकड़ रखने वाली विशिष्ट बुद्धिवादी कठिनाई थी यह समझ पाने की असम्भवता कि 'तुम्हारा' अनुभव और 'मेरा' अनुभव जो अपनी 'इस रूप में' परिभाषा के अनुसार एक-दूसरे के प्रति सचेत नहीं हैं, फिर भी किस प्रकार, उसी समय एक विश्व-अनुभव के सदस्य हो सकते हैं जिसकी स्पष्ट परिभाषा यह है कि उसके सारे अंग इकट्ठा चेतन या ज्ञात हैं।'[१]

जेम्स की द्विविधा इस कारण इतनी अभेद्य हो गयी थी कि उन्होंने 'साइकॉलोजी' और 'प्ल्यूरलिस्टिक यूनिवर्स' के बीच के बीस सालों में इस मान्यता का परित्याग कर दिया था—जो 'साइकॉलोजी' के समय इस दार्शनिक

---

१ विलियम जेम्स, 'ए प्ल्यूरलिस्टिक यूनिवर्स (न्यूयॉर्क १९०८), पृष्ठ २०६, २०७-२०८, २१२, २१४ २२१।

विचारधारा की आधारभूत मान्यता थी—कि चैतन्य अस्तित्व का एक अलग प्रकार है और इसके स्थान पर चेतना के एक सम्बन्धात्मक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। साइकॉलोजी में भी इसके संकेत मिलते हैं कि इस एक मान्यता के सम्बन्ध में उन्हें शंका थी। समान्तरवाद की द्विविधा से बचने की सम्भावना उन्होंने इस नये 'पिछले दरवाजे' में देखी थी कि वे अस्तित्व के दोनों प्रकारों के एक-दूसरे के लिए बाध्य होने से इनकार करें। किन्तु वे यह निश्चय नहीं कर पाये कि दोनों में प्रथम कौन है। 'साइकॉलोजी' में वे पूरी पुस्तक में ही बारी-बारी से व्यावहारिक जीव-वैज्ञानिक दृष्टि और अन्तर्मुखी 'विचार की धारा' वाली दृष्टि अपनाते हैं। दोनों ही आनुभविक दृष्टियाँ थीं किन्तु उनमें संगति तभी तक थी जब तक जेम्स ने 'दार्शनिक' प्रश्नों को अलग रखा और यह समझते रहे कि उनका सम्बन्ध एक वस्तुनिष्ठ प्राकृतिक विज्ञान से है। हर पाठक जानता था और पाठकों से अधिक स्वयं जेम्स जानते थे कि कभी न कभी उन्हें तत्त्वमीमांसा के प्रश्न पर राय बनानी पड़ेगी।

निश्चय १९०४ में उनके लेख 'डज कान्शसनेस एग्ज़िस्ट' (क्या चेतना का अस्तित्व है ?) में प्रकट हुआ। यह लेख उनकी पुस्तक 'एसेज इन रैडिकल एम्पिरिसिज़्म' (मौलिक अनुभववाद के निबन्ध) का प्रारम्भिक अध्याय था। यहाँ भी जेम्स स्वयं अपना इतिहास बताते हैं —

'जैसा आपको कुछ उन लेखों से पता चलेगा जो मैं पिछले दिनों आपको भेजता रहा हूँ मैं मनोवैज्ञानिक रीतियों से बिल्कुल अलग होकर काम करने लगा हूँ। मेरी रुचि एक तत्त्वमीमांसात्मक व्यवस्था (मौलिक अनुभववाद) में है, जो मेरे अन्दर निर्मित होती रही है। वस्तुतः इतनी रुचि मुझे पहले कभी किसी चीज़ में नहीं रही। [1]

पिछले बीस वर्षों से मेरे मन में 'चेतना' के अस्तित्व तत्त्व के बारे में शंका रही है। पिछले सात या आठ वर्षों से मैं उसके अनस्तित्व की बात अपने छात्रों के समक्ष रखता रहा हूँ और अनुभव के यथार्थों में उसके व्यावहारिक पर्याय बताने की चेष्टा करता रहा हूँ। मेरा ख्याल है अब समय आ गया है कि इसे खुलेआम और सर्वत्र त्याग दिया जाये।

'चेतना' का अस्तित्व है इससे सीधे इनकार करना देखने में इतना अनर्गल प्रतीत होता है—क्योंकि 'विचारों' का अस्तित्व है इससे इनकार नहीं किया जा सकता—कि मुझे भय है कि कुछ पाठक मेरी बात इसके आगे नहीं पढ़ेंगे। मैं

---

१ राल्फ बार्टन पेरी 'दी थॉट ऐण्ड कैरेक्टर ऑफ विलियम जेम्स (बोस्टन १९३५), खण्ड २, पृष्ठ ३८७।

तत्काल ही कहता हूँ कि इस शब्द से किसी अस्तित्व का बोध होने को ही मैं अस्वीकार करता हूँ किन्तु पूरे ज़ोर के साथ आग्रह करता हूँ इससे एक कार्य का बोध होता है।

'मौलिक होने के लिए, कोई अनुभववादी अपनी निर्मितियों में किसी ऐसे तत्त्व को सम्मिलित नहीं कर सकता जो प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत न हो और न किसी प्रत्यक्ष रूप में अनुभूत तत्त्व को छोड़ सकता है। ऐसे दर्शन के लिए अनुभवों को जोड़ने वाले सम्बन्धों का स्वयं भी अनुभूत सम्बन्ध होना आवश्यक है और किसी भी प्रकार के अनुभूत सम्बन्ध की व्याख्या उतने ही 'यथार्थ' रूप में करनी आवश्यक है, जैसे व्यवस्था में किसी अन्य वस्तु की' ।..

'अब बावजूद इसके कि संयोजक और वियोजक सम्बन्ध अनुभव के पूर्णतः समंग भागों के रूप में प्रस्तुत होते हैं साधारणतः अनुभववाद में हमेशा यह प्रवृत्ति होती है कि यह वस्तुओं के संयोजनों को छोड़कर वियोजनों पर ही सर्वाधिक आग्रह करता है।

''यहाँ नैरन्तर्य एक निश्चित प्रकार का अनुभव है। उतना ही निश्चित जितना विच्छेद-अनुभव जिससे बचना मैं उस समय असम्भव पाता हूँ, जब मैं अपने किसी अनुभव से आपके किसी अनुभव में संक्रमण करना चाहूँ। इस मामले में मुझे बस कर फिर रुकना पड़ता है जब मैं एक दी गयी वस्तु से एक अन्य केवल अवधारित वस्तु को पुकारता हूँ।[1]

वस्तुतः जेम्स ने किया यह था कि उन्होंने चेतना में नैरन्तर्य के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को विस्तार दे कर, उसे 'वस्तुओं और विचारों' के बीच अस्तित्व में नैरन्तर्य का तत्त्वमीमांसात्मक सिद्धान्त बना दिया। जिस सामान्य विश्व में हम दोनों का अस्तित्व वस्तु और विचारक दोनों रूपों में होता है, उसे उन्होंने 'शुद्ध अनुभव के विश्व' के रूप में देखा अनुभव का ऐसा विश्व जो साथ ही प्रथम से किसी का अनुभव नहीं था। व्यवहारवादी तर्क के प्रयोग से उन्हें 'तटस्थ' अनुभव की ऐसी अभिधारणा का समर्थन करने में सहायता मिली।

आपकी वस्तुएं बारम्बार वही होती हैं जो मेरी। अगर मैं आप से पूछता हूँ कि आपकी कोई वस्तु 'कहाँ' है मिसाल के लिए हमारा पुराना मैमोरियल हाल तो आप 'अपने' हाथ से जिसे मैं देखता हूँ 'मेरे मेमोरियल हाल को इंगित करते हैं। अगर आप अपने विश्व में किसी वस्तु को परिवर्तित करते हैं मिसाल के लिए, मेरी उपस्थिति में मोमबत्ती बुझाते हैं तो मेरी' मोमबत्ती

---

१ विलियम जेम्स 'एसेज़ इन रेडिकल एम्पिरिसिज़्म' (न्यूयॉर्क १९१२), पृष्ठ ४२ ४२ ४३ ४४।

'अपने-आप' सूझ जाती है। आपके अस्तित्व का अनुमान मैं इसी से लगाता हूँ कि आप मेरी वस्तुओं को बदलते हैं। अगर आपकी वस्तुओं का मेरी वस्तुओं से सम्मिलन नहीं होता अगर वे उस एक ही स्थान पर नहीं होतीं जहाँ मेरी हैं, तो उनका निष्यात्मक रूप में कभी अलग होना प्रमाणित करना पड़ता। किन्तु उनका कोई अन्य स्थान निर्देशित नहीं किया जा सकता। अतः उनका स्थान एक ही होगा जैसा कि प्रतीत होता है।

अतः व्यवहार में हमारे मन वस्तुओं के जगत् में मिलते हैं, जो उनके लिये सामान्य होती है।' १

अगर मौलिक अनुभववाद केवल यह सामान्य-बुद्धि का यथार्थवादी दृष्टिकोण होता कि 'हमारे मन वस्तुओं के जगत् में मिलते हैं' तो उसमें एक तत्त्वमीमांसा के रूप में उतनी नवीनता न होती जितनी व्यवहारवादी पद्धति में है, जिसके द्वारा उसका समर्थन किया गया है। किन्तु जेम्स के लिए, मन के आश्रित हुए बिना उसका 'प्रत्यक्ष अनुभव' नहीं किया जा सकता था। उनके अनुभववाद में भावना-जगत् का चरम स्थान था और चेतना के अस्तित्व में अपनी विश्वास का परित्याग कर देने के बाद भी उन्होंने क्रिया प्रयास और सम्बन्ध की 'भावनाओं' पर ज़ोर दिया। उन्होंने भावात्मक अनुभव के क्षेत्र पर ज़ोर दिया, क्योंकि परम्परागत रूप में प्रकृतिवादी इसे वस्तु जगत् से अलग रखते थे और इस कारण कि वे रॉयस के इस मत से सहमत थे कि 'वर्णन के विश्व' की अपेक्षा 'परिबोध के विश्व' में अनुभव का एकीकरण अधिक तत्काल हो सकता था।

विश्व' निश्चय ही सम्पूर्ण' विश्व है, जिसमें हमारी मानसिक प्रतिक्रिया भी शामिल है। विश्व से अगर हम इसे 'निकाल दें' तो वह एक अमूर्तन रह जाता है, किन्हीं उद्देश्यों के लिए उपयोगी किन्तु हमेशा आवरित हो सकने वाला। शुद्ध प्रकृतिवाद निश्चय ही अधिक व्यापक उद्देश्यात्मक या परिबोधक निर्धारणों में, आवरित हो सकने वाला होता है। अधिकांश व्यक्ति उसे इस प्रकार मानने की चेष्टा करते हैं। आप इस प्रकार बात करते हैं जैसे सत्य के दृष्टिकोण से ऐसे प्रयोग पहले से ही त्याज्य हों किन्तु हम व्यवहारवादी न केवल इसे उचित समझते हैं वरन् यह भी कहते हैं कि स्वयं प्राकृतिक विश्व की संरचना को उसे परिबोधात्मक सत्य के समकक्ष लाकर ही समझा जा सकता है। २

अब उन्होंने चेतना के एक 'मातृ-समुद्र' में निजी अनुभव के विषय या चेतन के 'संयोजन' के अर्थ में 'मनों के मिलने' की मनोवैज्ञानिक सम्भावना

---

१ वही पृष्ठ ७९।

२ पेरी की पुस्तक खण्ड १ पृष्ठ ४७६।

उन्होंने सर्व-मनोवाद को हमेशा गम्भीरता से लिया था और अब उन्हें भय था कि कहीं उनकी स्थिति मानसिक एकतत्त्ववाद की न हो जाये जिसमें वैयक्तिकता का उसी प्रकार पूर्ण लोप हो जाता है, जैसे मायावादियों के 'परम अनुभव' में या निर्वाण के समुद्र में। मनों के 'संयोजन' को स्वीकार करने के बाद वे अपनी 'बहुलवादी सृष्टि' और व्यक्तिवाद का समर्थन कैसे कर सकते थे ? क्या उनकी नैरन्तर्य की तत्त्व-मीमांसा उनके नैतिक दर्शन के अनियतत्ववाद को खतरे में डाल रही थी ?

'परम वैसा असम्भव अस्तित्व नहीं है जैसा मैं कभी सोचता था। मानसिक तथ्य एक ही समय में अलग-अलग और इकट्ठे, दोनों रूपों में कार्य करते हैं। और हम परिमित मनों को साथ-साथ ही एक अतिमानवी बुद्धि में एक-दूसरे की सह-चेतना हो सकती है। केवल परम की ओर से जगत्-यथार्थता के अनुचित्पूर्ण दावों का ही प्रागनुभव तर्क के द्वारा खण्डन करना आवश्यक है। साहस या सामञ्जस्य के आधारों पर अपनी सम्भाव्यता प्रस्तुत करने की चेष्टा करने वाली स्थापना के रूप में यह उचित है कि हम परम के पक्ष को धैर्य से सुनें।

"जो कुछ भी विशिष्ट वैयक्तिक और स्वास्थ्यकर है, उसके प्रति तर्कना-वाद के तिरस्कार के बावजूद, वह सारा प्रमाण जो हमारे पास है, हमें बड़ी तेजी से इस विश्वास की ओर ले जाता प्रतीत होता है कि किसी प्रकार का अति मानवी जीवन है, जिसके साथ हम अनजाने में ही सह-चेतन हो सकते हैं। सृष्टि में हम वैसे ही हो सकते हैं जैसे हमारे पुस्तकालयों में कुत्ते और बिल्लियाँ, जो किताबों को देखते हैं और बातचीत सुनते हैं, किन्तु इस सब के अर्थ का उन्हें जरा भी ज्ञान नहीं होता।"[1]

विलियम जेम्स अन्त तक इस प्रकार परिकल्पनाएँ करते रहे। उनका अनुभववाद उनकी आश्चर्यजनक कल्पना और असाधारण सहिष्णुता द्वारा संस्कारित था। कोई भी 'तार्किक दृष्टि से सम्भव वस्तु, गम्भीरता से विचार करने योग्य सुझाव के रूप में इन्हें आकर्षित करती थी। उनके अनुभव की अपेक्षा उनका मन था जिसने उनके विश्व को उन्मुक्त रखा।

पीयर्स की नैरन्तर्य की अनुभववादी तत्त्व-मीमांसा ने जेम्स की तत्त्व-मीमांसा से बिल्कुल भिन्न दिशा ली। उनकी दार्शनिक व्यवस्था अनुभव का तत्त्व-मीमांसात्मक विवरण नहीं थी, वरन् वैज्ञानिक अन्वेषण की भूमिका के रूप में अनुभव का एक नक्शा थी। उन्होंने इसे पदार्थों के परात्परवादी निगमन के स्थान पर

---

१ जेम्स, 'एसेज इन रैडिकल एम्पिरिसिज्म ए प्लुरलिस्टिक यूनिवर्स', खण्ड २, पृष्ठ १६२ २६३ १९६।

रखा। उन्होंने इसे घटना-क्रिया-विज्ञान, या दृश्यमान-परीक्षण कहा। पीयर्स की शब्दावली में, मन की कोई भी वस्तु घटना या दृश्यमान् है, उसका यथार्थ चाहे जो भी हो। अनुभव के सर्वाधिक सामान्य लक्षणों का निरीक्षण, स्वयं अनुभव द्वारा ही हम पर आरोपित एक अनुशासन है, क्योंकि भविष्य के अनुभवों का पूर्वानुमान लगाने और उन्हें शासित करने के लिए, तथ्य हमें अपने मनोराज्य जगत् का पुनर्निर्माण करने को बाध्य करते हैं।

"हम दो संसारों में रहते हैं, एक तथ्य का संसार और दूसरा मनोराज्य का संसार। हममें से हर एक यह सोचने का अभ्यस्त है कि वह अपने मनोराज्य के संसार का जनक है। उसके आदेश देते ही, वह संसार बिना प्रतिरोध और बिना प्रयास के अस्तित्व में आ जाता है और यद्यपि यह बात सत्य से इतनी दूर है कि मुझे भय है कि पाठक के श्रम का अधिकांश मनोराज्य के संसार में ही लग जाता है, फिर भी प्रथम अनुमान के रूप में वह सत्य के काफी निकट है। इस कारण हम मनोराज्य के जगत् को आन्तरिक जगत् कहते हैं और तथ्य के जगत् को बाह्य जगत्। इस बाह्य जगत् में हममें से हर एक केवल अपनी ऐच्छिक पेशियों का ही स्वामी होता है, अन्य किसी वस्तु का नहीं। किन्तु मनुष्य चतुर है और इसे अपनी आवश्यकता से कुछ अधिक बना लेता है। इसके आगे, वह अपने ऊपर सन्तुष्टि और अभ्यास का आवरण डाल कर, कठोर तथ्य की नोकों से अपनी रक्षा करता है। इस आवरण के बिना वह अपने आन्तरिक जगत् को बहुधा बुरी तरह अस्त-व्यस्त पाता और बाहर से विचारों के कठोर अतिक्रमण उसके आदेशों को उलट देते। हमारी विचार प्रणालियों के ऐसे बलात् संशोधन को मैं तथ्य-जगत् या 'अनुभव' का प्रभाव कहता हूँ। किन्तु वे अतिक्रमण क्या हो सकते हैं इसका अनुमान लगा कर और हर ऐसे विचार को अपने आन्तरिक जगत् से बाहर रख कर, जिसके इस प्रकार अस्त-व्यस्त हो जाने की सम्भावना हो, वह अपने आवरण की मरम्मत कर लेता है। अनुभव के कुसमय पर आने की प्रतीक्षा करने के बजाय वह इसे ऐसे समय उत्तेजित करता है जब उससे कोई हानि नहीं हो सकती और अपने आन्तरिक जगत् के शासन में तदनुसार परिवर्तन कर लेता है।"[1]

घटना-क्रिया-विज्ञान, दर्शन के तीन अंगों में प्रथम है और निम्नलिखित योजना के अनुसार विभागों से सम्बन्धित है—

---

१ चार्ल्स हार्टशोर्न और पॉल वीस द्वारा सम्पादित, कलेक्टेड पेपर्स ऑफ़ चार्ल्स सैण्डर्स पीयर्स (कैम्ब्रिज १९३१-३५), खण्ड १, पृष्ठ १११।

सैद्धान्तिक विज्ञान

१ अन्वेषण (निरीक्षण के विज्ञान)

(क) गणित (काल्पनिक वस्तुओं का निरीक्षण)

(ख) दर्शन (सामान्य निरीक्षण अर्थात् साधारण निरीक्षण जिसमें किन्हीं विशेष उपकरणों या प्रविधियों की आवश्यकता नहीं होती)

(१) आवश्यक (सार्विक अनुभव का निरीक्षण)

(क) घटना-क्रिया-विज्ञान

(ख) आदर्शक *विज्ञान* (*तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र सौन्दर्य-शास्त्र*)

(ग) तत्त्व-मीमांसा (जिसे पुराने लोग 'भौतिकी' कहते थे सामान्य प्राकृतिक विज्ञान)

(२) *मार्मिक रूप में महत्वपूर्ण सत्य और भावुक अनुदारता*', 'मार्मिक रूप से महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में सारी बुद्धिपूर्ण बात अतिसामान्य होगी उनके बारे में सारे तर्क असंगत होंगे और उनका सारा अध्ययन संकीर्ण और गन्दा होगा।

२. समीक्षा

व्यावहारिक विज्ञान

'शिक्षण-शास्त्र सुनारी शिष्टाचार कबूतरबाजी हिसाब-किताब, मद्यसार? सर्वेक्षण नौकाचालन आदि मैं स्वीकार करता हूँ कि इसकी बहुरंगी भीड़ मुझे बिल्कुल सम्भ्रमित कर देती है।'[1]

सार्विक अनुभव के सर्वाधिक सार्विक पक्षों के सामान्य निरीक्षण से हमें तीन पदार्थ मिलते हैं—गुण तथ्य और विचार, जिन्हें पीयर्स सुविधा के लिए प्रथमता द्वितीयता और तृतीयता कहते हैं।

पीयर्स के पदार्थ-सिद्धान्त के चिह्न तो १८६० में भी देखे जा सकते हैं, जब उन्होंने गणित में किन्हीं सूचकों और प्रतीकों के बीच अन्तर किया और १८६७ में भी, जब उन्होंने मसलों का वर्गीकरण गुणों, सम्बन्धों और निरूपणों में किया।[2] किन्तु अपने व्यवस्थित घटना-क्रिया-विज्ञान का आरम्भ उन्होंने १८६

---

१ वही, खण्ड १, पृष्ठ १७७, २४१।

२. वही, खण्ड १, पृष्ठ ५६०-५६७। पीयर्स ने इसका वर्णन किया है कि युवावस्था में किस प्रकार अपने यशस्वी पिता की प्रेरणा से उन्होंने कॉण्ट के पदार्थों के सिद्धान्त का अध्ययन किया और इस नतीजे पर पहुँचे कि कॉण्ट का यह कथन सही था कि विचारों के पदार्थ एक प्रकार से औपचारिक तर्कशास्त्र पर निर्भर होते हैं और फिर किस प्रकार अरस्तू और डन्स स्कोटस के अध्ययन

के समय में किया, जब उन्होंने 'ए गेस ऐट दी रिडिल' (पहेली बूझने की एक चेष्टा) शीर्षक रचना का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे के प्रारम्भ में उन्होंने कहा, "और यह पुस्तक अगर कभी लिखी गयी और अगर मैं ऐसा करने की स्थिति में हुआ तो शीघ्र ही लिखी जायेगी तो काल के ग्रन्थों में से एक होगी।"[1] उन्हीं की शब्दावली का प्रयोग करते हुए, इस पहले मसौदे को हम प्रसव-पीड़ा कह सकते हैं। इसमें वे बहुतेरी चतुर परिकल्पनाएँ प्रस्तुत करते हैं और हेल्मुमान से लेकर ईश-तत्त्व तक हर प्रकार की विशिष्ट विषय-वस्तु पर अपने तीन पदार्थों को लागू करते हैं। किन्तु शताब्दी के अन्तिम दशक में उन्होंने गणित के तर्कशास्त्र के सम्बन्ध में इस सिद्धान्त को अधिक व्यवस्थित रूप में विकसित किया। १९०२ में घटना-क्रिया-विज्ञान उनके 'बृहत् तर्कशास्त्र' (ग्राण्ड लॉजिक) का एक प्रमुख अंग बना और १९०३ में उन्होंने उसे 'व्यवहारवाद सम्बन्धी भाषण' (लेक्चर्स ऑन प्रैगमैटिज्म) में स्थान दिया।

पीयर्स का दृश्यमान् परीक्षण (या घटना-क्रिया-विज्ञान) वह नहीं है जिसे आजकल सामान्यतः घटना-क्रिया-विज्ञान के रूप में जाना जाता है। यह किसी विशिष्ट विषय-वस्तु का घटना-क्रिया-विज्ञान नहीं है, रूप-सम्बन्धों का घटना-क्रिया-विज्ञान तो बिल्कुल ही नहीं है। यह 'जो प्रकट होता है उसका कथन' नहीं है, वरन् 'जो प्रतीत होता है उसका अध्ययन' है। यह किसी दी हुई वस्तु का वर्णन या किसी तथ्य का आग्रह नहीं है वरन् एक विश्लेषण है। अन्य घटना-क्रिया-विज्ञानों से यह इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें यथार्थ का कोई सिद्धान्त सम्मिलित नहीं है। अपने सिद्धान्त का विस्तृत विकास करते हुए पीयर्स ने पदार्थों के पूर्णतः आकारी विश्लेषण और उनके वस्तुपरक विश्लेषण में अन्तर किया। एकसूत्र, द्विसूत्र और बहुसूत्र ये आधारभूत आकारी पदार्थ हैं, किन्तु बहुसूत्रों को संयोजित त्रिसूत्रों में विश्लेषित किया जा सकता है। एकसूत्र व्यक्ति हैं। द्विसूत्र युगीय सम्बन्धी होते हैं। त्रिसूत्र व्याख्याएँ होते हैं। उदाहरण के लिए, मैं एक अतिरिक्तीय निकास हूँ जिसका प्रयोग पीयर्स ने नहीं किया है।

के द्वारा वे एक तार्किक और ज्ञानमीमांसात्मक यथार्थवाद पर पहुँचे। उनका निबन्ध 'ऑन ए न्यू लिस्ट ऑफ़ कैटेगोरीज़' (पदार्थों की नयी सूची पर) अमेरिकन ऐकेडेमी ऑफ़ आर्ट्स एण्ड साइन्सेज की १८६७ की 'प्रोसीडिंग्स' (कार्यवाही) में छपा था। १८९३ में उनका इरादा इसे अपनी रचना 'ग्राण्ड लॉजिक' का पहला अध्याय बनाने का था।

१ वही, खण्ड १, पृष्ठ १८१ एफ॰। दूसरे अध्याय में 'आह्लादरोध दर्शन' के अन्तर्गत भी देखिए।

अगर क ख, ग तीन बिन्दु हों तो ये बिन्दु एकसूत्र हैं, क ख ख ग और क ग रेखाओं के अन्तिम बिन्दु, जोड़ों में द्विसूत्र हैं और क ख ग त्रिकोण का क्षेत्रफल त्रिसूत्र है। जब इन गठनात्मक अन्तरों की जो तार्किक रूप में किसी भी घटना पर लागू किये जा सकते हैं किसी घटना के वस्तुपरक 'तत्वों' के रूप में व्याख्या की जाये तो उनसे हमें गुण तथ्य और नियम के आधारभूत 'तत्वमीमांसात्मक' अन्तर प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी गुणात्मक अद्वितीयता में भावनाएँ व्यक्ति हैं घटनाएँ या तथ्य नहीं। इस रूप में वे शाश्वत हैं, दुहरायी जा सकने वाली हैं, 'मात्र सम्भाव्य जिनकी सिद्धि आवश्यक नहीं' हैं तार्किक दृष्टि से सामान्य नहीं हैं सुख या पीड़ाएँ नहीं हैं वे घटित न होने वाली, मात्र 'ऐसापन' हैं। 'मात्र सम्भाव्यता बिना किसी सिद्धि के चल जाती है।'[1] किन्तु तथ्य घटनाएँ, अस्तित्व अपनी प्रकृति में द्विसूत्रीय युगीन होते हैं उनमें संघर्ष तनाव संकल्प का समावेश होता है। विचार या अर्थ त्रिसूत्री होते हैं उनमें नियमन आदत, सामान्यता का समावेश होता है। इस प्रकार हम तत्व-मीमांसात्मक दृष्टि से होने के तीन मूल प्रकार देख सकते हैं – सम्भवता अस्तित्व और सामान्यता।

कहीं-कहीं पीयर्स ने सुझाया कि पदार्थों का विकास एक-दूसरे से हुआ और इस प्रकार अपने घटना-क्रिया-विज्ञान को अपने विकास सिद्धान्त से जोड़ने की चेष्टा की।

'जब मैं कहता हूँ कि मुख्यता एकसूत्र की सम्भवता है, कि इकाई, द्विसूत्र की सम्भवता है, आदि तो ऐसे कथनों का स्वर हीगेलवादी प्रतीत होता है। निस्सन्देह उनकी आन्तरिक प्रकृति नहीं है। ऐसे मतों में मैं एक विकास-क्रम के अनुसार चलता हूँ—सम्भवता से वास्तविकता का विकास होता है। हीगेल भी ऐसा ही करते हैं। हर पदार्थ पर वे पिछले पदार्थ से चल कर जैसे 'अगला!' पुकार कर पहुँचते हैं। अगले को लाने की ओर उसके आने पर उसे पहचानने की उनकी प्रक्रिया क्या (है) यह चाहे कितनी भी महत्त्वपूर्ण बात हो अपेक्षतया एक विस्तार की बात है जिसमें मैं कभी उस महान् आदर्शवादी से सहमत होता हूँ और कभी मेरा मार्ग उनसे भिन्न होता है। ऐसा इस कारण कि मेरी अपनी प्रणाली तर्कशास्त्र के यथातथ्य सिद्धान्त के अधिक विमर्शपूर्ण परीक्षण का परिणाम है (जिसमें हीगेल का गुण विशिष्ट उनका अपना देश और उससे भी अधिक वे स्वयं निश्चित रूप में दुर्बल थे)। फलस्वरूप मेरी प्रणाली का रूप अधिक व्यापक है, उसमें वैविध्य की ऐसी क्षमता है जिससे वह अपनी को मूल अवधारणा

---

१ वही खण्ड १, पृष्ठ १०४।

के किसी विशेष रूप के अनुकूल बना सके। अभी उसे निरूपित करने का समय नहीं है। मैं उसका प्रयोग करता हूँ। पाठक अगर ऐसा कर सकता है तो सहमति से उसका अनुसरण करता है।[1]

इन पंक्तियों की व्याख्या सम्भवतः पीयर्स द्वारा हीगेल की 'फ़ेनॉमिनॉलॉजी' (घटना-क्रिया-विज्ञान) से एक कदम आगे जाने के अर्द्ध-गम्भीर प्रयास के रूप में करनी चाहिये। अपनी श्रेष्ठ विनोदप्रियता में पीयर्स अपने जीवन के अन्त तक अपने पदार्थों से खिलवाड़ करते रहे। ये पदार्थ एक उत्तम खिलौना प्रमाणित हुए। सम्भवतः हम उनके साथ अधिक न्याय करेंगे अगर हम उनके घटना-क्रिया-विज्ञान को परिकल्पनात्मक रीति से उसके सम्भव प्रयोगों में देखें, बजाय इसके कि तत्त्वमीमांसा के जंगल में उनके बहुसंख्यक अभियानों को सिद्धान्त के एक सीधे, सरल राजमार्ग का रूप देने की चेष्टा करें। पीयर्स का 'निर्देशक सिद्धान्त' बड़े प्रिय थे किन्तु वे उन्हें जिन दिशाओं में ले जाते थे उसके प्रति वे अत्यधिक उदासीन प्रतीत होते थे।

मौलिक अनुभववाद के तत्त्वमीमांसकों में एक अन्य 'सृजनात्मक बुद्धि' जॉर्ज एच० मीड की थी।[2] मीड सर्वप्रथम एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने मन को व्यक्ति चेतना के सन्दर्भ में नहीं वरन् सामाजिक कार्यों के सन्दर्भ में देखना सीखा था। उनके लिए इस लोभ में पड़ जाना आसान था कि जिसे वे 'सम्पूर्ण यथार्थ को अनुभव के अन्तर्गत लाने की पिपासा' आलोचना करते थे उसमें (अपने शिक्षक) रॉयस जैसे भाववादियों का अनुसरण करें और एक परम समुदाय के ढाँचे पर आधारित यथार्थ का एक सिद्धान्त निर्मित करें। किन्तु उन्होंने इसके बिलकुल विपरीत कार्य किया। उन्होंने समुदायों और मनों के उद्भव की व्याख्या, प्राकृतिक उद्भव की अधिक सामान्य प्रक्रिया के एक उदाहरण के रूप में की। उनके मतानुसार, यथार्थ और अनुभव दोनों को ही अस्तित्वमय रूप में समझना होगा और 'अस्तित्व में होने का अर्थ है, वास्तविक वर्तमान में होना जिसका एक अतीत और एक भविष्य हो। क्षणिक वर्तमान, अस्तित्व का परम रूप और स्थान है और 'विश्व, घटनाओं का विश्व है।' 'होने का अर्थ है—नवीनताओं का अन्तहीन उद्भव प्राकृतिक घटनाओं और गुज़रते हुए परिप्रेक्ष्यों में भाग लेना अस्तित्व में आने का संकटपूर्ण अस्तित्व। ऐसे संक्रमणशील और महत्त्वपूर्ण वर्तमान प्रकृति को किसी शाश्वत व्यवस्था में

१ वही, खण्ड ६ पृष्ठ ४२३।

२ उनके मनोविज्ञान का विवरण छठे अध्याय में 'आधुनिक सामाजिक दर्शन' के अन्तर्गत देखिए।

अधिक नहीं होते। प्रकृति अपनी सम्पूर्णता में अबोधगम्य है और शाश्वत वर्तमान एक अन्तर्विरोधी शब्द है। अतः अस्तित्व और ज्ञान की वस्तुपरकता को वहाँ और अभी परिप्रेक्ष्यों की पारस्परिकता या सम्बद्धता में खोजना होगा। चूँकि अनुभव न तो परम है और न व्यक्तिपरक अतः सापेक्षता के सिद्धान्त में वस्तुपरकता को जिस अर्थ में लिया जाता है, उस अर्थ में अनुभव वस्तुपरक हो सकता है। यह सम्बन्धात्मक भी है और तरल भी अधीन भी है और कालिक भी।

मीड के अनुसार यथार्थ कालिक परिप्रेक्ष्यों या 'स्थितियों' का एक समुच्चय है, जिसमें हर स्थिति उतनी ही चरम है जितनी अन्य कोई। और हर अस्तित्व किसी ऐसी नवीनता या 'विरोधी तथ्य' के सन्दर्भ में परिभाषित होता है, जिसके एक वस्तुपरक व्यवस्था में समाहित हो सकने के पहले पूर्वस्थित परिप्रेक्ष्यों की पुनःरचना आवश्यक होती है। हर स्थिति या वर्तमान का अपना अतीत होता है, जिसके अस्तित्व रूप में अपरिवर्तनीय होने पर भी, जिसकी निरन्तर पुनर्व्याख्या और पुनरुपलब्धि होती रहती थी। हर वर्तमान का अपना भविष्य भी होता है, जिसका पूर्वानुमान उसकी भी वर्तमान चेष्टा करता है, किन्तु जो अस्तित्व में आने पर नयी घटनाएँ नये परिप्रेक्ष्य लाता है और इस तरह नयी स्थितियाँ उत्पन्न करता है। इस प्रकार जीवन केवल एक स्थिति के बाद दूसरी होता है, और इससे भी बुरा, एक स्थिति में दूसरी स्थिति होता है। हर घटना कई परिप्रेक्ष्यों के सापेक्ष होने के कारण उलझ जाती है। जब कभी घटनाएँ कई वर्तमानों की क्रियाओं में भाग लेती हुई पुनः प्रस्तुत होती हैं, तो अनुवाद और अनुभव की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। अनुभव के समुदायों के दो मूल आयाम होते हैं—कालिक आयाम भविष्य की दृष्टि से अतीत का पुनर्निर्माण होने के कारण मानसिक होता है। और दिक्-आयाम या 'दूरी' का आयाम 'क्रिया-कौशल का क्षेत्र' होता है। अतीत की पुनः रचना के द्वारा और एक जैव सङ्गठन के कार्यों में दूरस्थ वस्तुओं के गृहीत होने के द्वारा बहुल परिप्रेक्ष्यों का प्रक्रम निर्मित होता है। यह प्रक्रम एक वर्तमान के लिए अपने आप को उसी रूप में देखना सम्भव बनाता है, जिस रूप में उसे दूसरे देखते हैं और इस प्रकार आत्म ज्ञान की प्राप्ति को सम्भव बनाता है। 'क्रिया-कौशल के क्षेत्र' में ऐसी वृद्धि *से प्राकृतिक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है।* गतियाँ प्रतीकात्मक प्रतिक्रियाएँ बन जाती हैं समूह सामाजिक वातावरण बन जाते हैं और व्यक्ति आत्म बन जाते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक प्रक्रियाओं में बुद्धिपूर्ण अनुभव का आगमन स्वयं एक ऐसी घटना है जो किसी प्राकृतिक 'स्थिति' में जबरदस्त परिवर्तन कर देती है, किन्तु कभी भी उसके कालिक और आकस्मिक चरित्र को पूरी तरह नष्ट नहीं करती।

"सहस्मान्तरी विश्व, 'किसी सम्भव क्रिया के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया के संगठन को उत्तर देता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कोई गतिशील वस्तु अपार वह स्थान की वस्तु है, सर्वजन की अभिवृत्ति उत्पन्न करती है। वस्तु की स्थिति में हर परिवर्तन के साथ, सुदृश्य की एक संकेतित समरूपी पुनः रचना होती है। पुनः रचना की मात्रा उन संकेतित प्रतिक्रियाओं की मात्रा पर निर्भर रहती है जो गतिशील वस्तु से उत्पन्न होती है।

"हम एक ऐसे विश्व में रहते हैं जिसका अतीत उसके वैज्ञानिक विवरण में होने वाले हर परिवर्तन के साथ बदलता है। फिर भी हममें यह प्रवृत्ति होती है कि हम अपने बौद्धिक और सामाजिक जीवन का अर्थ ऐतिहासिक संस्थाओं के बने हुए रूपों में और अतीत की घटनाओं के क्रम में देखते हैं। हम परिवार, राज्य, धर्म और स्कूल को उन रूपों के द्वारा समझना पसन्द करते हैं जो इतिहास ने उनके सामाजिक भवनों को प्रदान किये हैं बजाय इसके कि इन संस्थाओं के इतिहास का अर्थ उन कार्यों और सेवाओं में देखें जो हमारा सामाजिक विज्ञान अर्जित करता है।

"किन्तु सामाजिक संस्थाओं का सारा विकास धर्मशास्त्रीय व्याख्या से दूर हट गया है और उसने जीवन का अर्थ अतीत या भविष्य के बजाय वर्तमान में पाया है। व्यवहारवाद के प्रकार की तत्वमीमांसा एक स्वाभाविक अमरीकी उत्पत्ति थी। प्रकृति की समझ के द्वारा व्यक्ति के संगठन के साथ यह पूर्णत समरस है।'[1]

सामाजिक कार्यों और नैतिक आचरण पर आग्रह मीड की अधिकांश तत्वमीमांसा की विशेषता है। किन्तु आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान में सापेक्षता के विकास से, और ह्वाइटहेड व्हेल मैक्गिलवैरी की विचार-व्यवस्थाओं जैसी अहंविरोधी यथार्थवाद की व्यवस्थाओं की रचना से उन्हें प्रेरणा मिली कि अपने 'कार्य के दर्शन' को भौतिक विज्ञान पर लागू करें। 'दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ दी प्रेज़ेण्ट' (वर्तमान का दर्शन) शीर्षक अपने कारस भाषणों में जो उनकी मृत्यु के कुछ बाद १९३२ में प्रकाशित हुए, उन्होंने ह्वाइट हेड की रचना 'प्रोसेस ऐण्ड रियलिटी' (प्रक्रिया और यथार्थ) का एक व्यवहारवादी रूपान्तर प्रस्तुत किया। अपने मौलिक सापेक्षवाद का अधिक विस्तृत विश्लेषण उन्होंने कुछ उत्तम लेखों में किया, जिनमें मुख्य थे, 'दी एक्सपेरिमेण्टल बेसिस ऑफ़ नैचुरल साइन्स' (प्राकृतिक विज्ञान का प्रयोगात्मक आधार) और 'दी प्रोसेस ऑफ़ माइण्ड' इन

---

१ जॉर्ज हर्बर्ट मीड, 'दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ दी प्रेज़ेण्ट' (शिकागो, १९३८) पृष्ठ २२८, ६२६ ।

नेचर' (प्रकृति में मन की प्रक्रिया) इन लेखों को पढ़ना बहुत ही कठिन है, क्योंकि इनमें न केवल शिकागो काल के प्रारम्भिक काल की अनगढ़ 'क्लासिकल' भाषा दिखाई देती है, बल्कि वैज्ञानिक पद्धति की ऐसी नयी अवधारणाओं की तलाश भी परिलक्षित होती है जो न्यूटन द्वारा 'प्रकृति के विभाजन' और यथार्थवादियों द्वारा अनुभव के अमूर्तन, दोनों को निष्प्रभावित कर सकें। किन्तु अपनी सारी कठिनाइयों और गवेषणात्मक भटकावों के बावजूद, ये लेख किसी मौलिक अनुभववादी द्वारा भौतिकी के लिए एक तत्त्व-मीमांसा निर्मित करने का सर्वाधिक पूर्णता तक जाने वाला प्रयास है।

मीड ने प्राकृतिक विज्ञान के लिए जो कुछ करने का प्रयास किया, डुई ने 'एक्सपीरिएन्स ऐण्ड नेचर' (अनुभव और प्रकृति) शीर्षक अपने कारस भाषणों में (१९२५) वही प्रयास प्रकृति के साथ मनुष्य के अधिक सामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में किया। मानव अस्तित्व के सर्वाधिक 'व्यावहारिक' और सामान्य विषय जिन्हें पीयर्स ने अत्यधिक 'सम्भ्रमित करने वाले' कह कर छोड़ दिया और जिनका मीड ने इस तरह परिष्कार किया कि उनका रूप ही बदल गया उनकी विवेचना इन भाषणों में असाधारणतः अत्यन्त अनौपचारिक और आकर्षक रीति से की गयी है। डुई के भाषणों को तत्त्वमीमांसात्मक-व्यवस्था कहना कठिन है, किन्तु मानव जीवन के जितने पक्षों के साथ जैसा न्याय उनमें किया गया है, वैसा मौलिक अनुभववाद को किसी अन्य अमरीकी की देन में अब तक नहीं किया गया है।[1] स्वयं प्रकृति का वर्णन करने की कोई चेष्टा नहीं की गयी है, और इस कारण ऐसे लोग हमेशा ही रहेंगे जो मानव अस्तित्व के उनके दर्शन की व्याख्या व्यक्तिनिष्ठतावाद से दूषित एक प्रकृति-सिद्धान्त के रूप में करेंगे। किन्तु जॉर्ज एस० मॉरिस और मिचिगन के अन्य भाववादियों की भाँति डुई भी तथाकथित 'बाह्य' विश्व के अस्तित्व को पहले से मान कर चलते थे, और उन्होंने प्रकृति के अस्तित्व को कभी किसी गम्भीर शंका का विषय नहीं माना था। १९०९ में ही डुई ने जेम्स को लिखा था कि उनका 'ज्ञान का उपकरण-

---

१ 'यद्यपि डुई की पुस्तक अविश्वसनीय रूप से खराब ढंग से लिखी गयी है, किन्तु कई बार पढ़ने के बाद, मुझे लगा कि उसमें ब्रह्माण्ड की वास्तविकता के साथ निकटता की एक ऐसी भावना है, जो अतुलनीय है। मुझे ऐसा लगा कि ईश्वर में अगर अभिव्यक्ति की क्षमता न होती, किन्तु यह बताने की तीव्र इच्छा होती कि ब्रह्माण्ड क्या है, तो वह इसी प्रकार बोलता।"—[ओलिवर वेण्डेल होम्स, एम० डी० हॉवे द्वारा सम्पादित 'होम्स-पोलॉक लेटर्स' (कैम्ब्रिज, १९४१) में खण्ड २, पृष्ठ २८७।]

सिद्धान्त स्पष्टतः अन्तर्विरोधपूर्ण है, अगर ऐसे स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं जिन्हें विचार ध्यान में रखते हैं और जिनके रूपान्तरण के लिए वे कार्य करते हैं। उन्होंने आगे कहा, "मैं न जाने कितनी बार कह चुका हूँ कि संज्ञानात्मक स्थितियों और उद्देश्यों के पहले और बाद में अस्तित्व होते हैं और 'इसका सारा अर्थ' (संज्ञानात्मक स्थितियों और उद्देश्यों का) इसमें है कि स्वतन्त्र अस्तित्वों के नियन्त्रण और पुनर्मूल्यांकन में वे किस प्रकार हस्तक्षेप करते हैं।"[1] फिर भी डुई के विचार धीरे-धीरे प्रकृतिवाद की ओर मुड़े। इस अर्थ में नहीं कि उन्होंने प्रकृति का कोई सिद्धान्त निरूपित किया वरन् इस अर्थ में कि मानव अस्तित्व के अपने सिद्धान्त के सार-तत्वीय अभिप्रायों को उन्होंने अधिकाधिक समझा। १९०७ में उन्होंने जेम्स को लिखा—

"मेरे अपने मत कहीं अधिक प्रकृतिवादी हैं और मैं न केवल बुद्धिवादी और एकतत्ववादी भाववाद के वरन् नैतिक आदर्शों को छोड़ कर, सभी प्रकार के भाववाद के विरुद्ध मेरी प्रतिक्रिया है। मुझे लगता है कि इस प्रश्न पर मैं शिलर की अपेक्षा आपके अधिक निकट हूँ किन्तु मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। दूसरी ओर अपने पिछले लेखन में शिलर उस अच्छे परिणाम पर भार देते प्रतीत होते हैं, जो किसी विचार की कसौटी होता है—अच्छा स्वयं अपनी प्रकृति में उतना नहीं जितना इसमें कि चाहे जो भी विचार हो, उसकी माँग की पूर्ति कहाँ तक होती है। और यहाँ मैं आपकी अपेक्षा उनके अधिक निकट प्रतीत होता हूँ।"[2]

जिसे डुई और मीड 'सक्रिय प्रक्रिया' कहते थे वह उन्हें इतनी व्यापक और प्रकृति तथा मानवी अनुभव दोनों को अपने में समेटने वाली प्रतीत होती थी कि उसके सम्पूर्ण रूप का कोई सिद्धान्त न आवश्यक था न सम्भव।

"मैं ऐसा सोचे बिना नहीं रह सकता कि किसी का कोई पर्याप्त विश्लेषण तथ्य-जगत् और विचार जगत् को स्वयं सक्रिय प्रक्रिया के ही दो अनुषंगी वस्तुपरक कथनों के रूप में प्रस्तुत करेगा—अनुषंगी इस कारण कि हर एक को अपना एक कार्य करना रहता है जिसे करने में उसे दूसरे की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। सक्रिय प्रक्रिया स्वयं किसी सम्भव वस्तुपरक कथन के परे होती है (चाहे तथ्य के सन्दर्भ में या विचार के) महज इस कारण कि वे वस्तुपरक कथन अन्ततः उसके अपने कार्य कलाप से सम्पन्न होते हैं—उसके लिए होते हैं। प्रत्यय-आत्मक या यथार्थतावादी किसी भी प्रकार के वस्तुपरक

---

१ पेरी की पुस्तक, खण्ड २, पृष्ठ ५२२।

२ वही, पृष्ठ ५२८-५२९।

रूप से यह परे होता ही मुझे स्वतन्त्रता, स्वतः स्फूर्ति आदि के सङ्केत विद्ध प्रमाण करता प्रतीत होता है। और संयोग को ईश्वरीय रूप देने को जैसा पीयर्स करते प्रतीत होते हैं, यह अनावश्यक बनाता है। मैं हमेशा अनुभव करता हूँ कि (अपने 'संयोग' के सम्बन्ध में) वे उसी प्रकार की अवधारणात्मक संरचना करते हैं जिसका वे अन्यथा विरोध करते हैं। फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि मैं बहुत दूर बचा आया हूँ जब मैं देखता हूँ कि इस वर्ष मैं पीयर्स से कितना कुछ ग्रहण कर लेता हूँ और कितनी आसानी से उन्हें समझ लेता हूँ, जब कि कुछ वर्ष पहले वे मेरे लिए अधिकांश एक बन्द किताब थे।[1]

पीयर्स से भी अधिक बुकलिन में डुई को प्रोत्साहित किया कि वे प्रकृतिवादी ढंग से सोचें, तत्त्व-मीमांसा को आनुभविक दृष्टि से देखें और 'एक्सपीरियन्स ऐण्ड नेचर' लिखें।

मीड की भाँति डुई के लिए भी प्रकृति न्यूनाधिक समन्वितकालिक परिवर्तनों या घटनाओं का नाम है। इस कल्पनात्मक या 'सक्रिय' जगत् का अपना निर्धारित अतीत है और भावी सम्भावनाएँ हैं। 'वर्तमान' में, यह 'निर्धारण' या मध्यस्थता' की एक प्रक्रिया है—एक सचित, निर्धारित, बढ़ते हुए 'अतीत' का, अनुकूल विश्व का निर्माण करने में सम्भावनाओं का निरन्तर उपयोग हो रहा है। घटनाओं का क्रम बँधा हुआ नहीं है और यद्यपि हम इसे विकास कह सकते हैं, किन्तु विकास का कोई निश्चित क्रम नहीं है, क्योंकि अस्तित्व किसी भी समय अनिश्चित होता है।

'जो दृष्टिगोचर है,वह अदृश्य में स्थित है। और अन्त में, अदृश्य इसका निश्चय करता है कि दृश्य में क्या होता है। जो मूर्त है, वह अछूते और अगृहीत पर अस्थिर रूप में आधारित है। वस्तुओं के तात्कालिक स्पष्ट और सामीप्य पक्ष का उन अप्रत्यक्ष और गुप्त कारकों से विरोध और सम्भाव्य असामंजस्य, जो विद्यमान के उद्गम और अतिक्रम को निर्धारित करते हैं, हर अनुभव के अपरिहार्य धर्म हैं। इस विरोध को हमारे पुरखों ने जिस रूप में लिया, उसे हम अन्धविश्वासपूर्ण कह सकते हैं, किन्तु यह विरोध स्वयं अन्धविश्वास नहीं है। यह किसी भी अनुभव की प्राथमिक आधार-सामग्री है।

"हमने अन्धविश्वास के स्थान पर नागर-संस्कारों को रख दिया है, कम से कम इस हद तक कि इसे देखा जा सकता है। किन्तु ये संस्कार बहुधा उतने ही अ-तर्कनापरक और शब्दों पर निर्भर होते हैं जितना वे अन्धविश्वास जिनका स्थान ये ग्रहण करते हैं। विश्व के अनिश्चित चरित्र के विरुद्ध हमारी

---

१ वही, पृष्ठ ५२२-५२३।

चामत्कारिक सुरक्षा इसमें है कि संयोग के अस्तित्व से इनकार करें, सार्विक और आवश्यक नियम, कारण-कार्य की सर्वव्यापकता, प्रकृति की एकरूपता, सार्विक प्रगति और सृष्टि की अन्तर्निहित तर्कनापरकता के बारे में कुछ गुनगुनाएँ। ये चामत्कारिक सूत्र अपनी शक्ति ऐसी स्थितियों से प्राप्त करते हैं जो चामत्कारिक नहीं हैं। विज्ञान के द्वारा हमने एक हद तक भविष्यवाणी और नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त कर ली है। औजारों, यन्त्रों और उनकी सहचर प्रविधि के द्वारा हमने संसार को अपनी आवश्यकताओं के अधिक अनुकूल बना लिया है, अधिक सुरक्षित आवास बना लिया है। अपने और संसार के जोखिमों के बीच हमने समृद्धियों और आराम के साधनों का ढेर लगा लिया है। हमने पलायन और विस्मृति के एक साधन के रूप में मनोरंजन को व्यावसायिक बना लिया है। किन्तु इस सब के बाद भी संसार के मूलतः जोखिमभरे रूप के समाप्त होने की बात तो दूर, उसमें कोई गम्भीर परिवर्तन भी नहीं हुआ है।

'जो कुछ कहा गया है, वह निराशावादी प्रतीत होता है। किन्तु हमारा सम्बन्ध नैतिकता से नहीं तत्त्वमीमांसा से है, अर्थात्, जिस सत्तामय विश्व में हम रहते हैं उसकी प्रकृति से है। सौभाग्य प्रसाद, अप्रत्याशित और अनायास आनन्द पर, उन आकस्मिक घटनाओं पर जिन्हें हम बड़े अर्थपूर्ण रूप में सुख कहते हैं आग्रह करना आसान और अधिक सुखकर होता। [अंग्रेजी में 'हैपेनिंग' (घटना) और 'हैपिनेस' (सुख) दोनों की व्युत्पत्ति हैप (संयोग आकस्मिकता) से हुई है।—अनु.] प्रकृति में जोखिम के इस महत्त्वपूर्ण लक्षण के प्रमाण में हम सौभाग्य को पेश कर सकते थे। सुखान्तिकी उतनी ही सच्ची होती है जितनी दुःखान्तिकी। किन्तु यह परम्परानुकूल है कि दुःखान्तिकी की अपेक्षा सुखान्तिकी का स्तर अधिक छिछला होता है और विश्व की अनिश्चित प्रकृति के प्रमाण में दुर्भाग्यों और प्रमक्रिया को प्रस्तुत करने का एक और भी अच्छा कारण है। जब हम कोई बेर तोड़ते हैं तो हम इसे विश्व में कारण-कार्य की यथार्थ व्यवस्था का एक प्रमाण मानते हैं। इस कारण अनिष्टता की दुर्घटनाओं की तुलना में अच्छाइयों के लिए प्रकृति के अनिश्चित चरित्र के निदर्शनीय प्रमाण प्रस्तुत कर पाना कठिन है। दुर्घटनाओं को ही हम आकस्मिक मानते हैं अच्छाइयों को नहीं, चाहे उनका चरित्र कभी उतने ही निश्चित रूप में आकस्मिक क्यों न हो।[1]

ऐसे घटनाक्रम में यह स्वाभाविक है कि ऐसे प्राणियों का काम हो, या

---

१ जॉन डूई, 'एक्सपीरिएन्स ऐण्ड नेचर' (शिकागो, १९२५), पृ. ४१-४४, ४५।

उसे साथना उचित नहीं। इतना काफी होगा कि हम उपर्युक्त विभागों में ऐसी अवधारणाओं और स्थापनाओं से मुक्त करने की, जो प्रयोगशाला में बेकार हों, और उपयोगी अमूर्तनों को पीयर्स द्वारा सुझाये गये सम्बन्धों में परिभाषित करने की सामान्य प्रवृत्ति को देख लें। इस प्रकार अमरीकी विज्ञान में बाहर से लाये गये अधिक निकट अतीत के तार्किक वस्तुनिष्ठावाद के आन्दोलन की नींव पड़ी जिसने व्यवहारवादी आन्दोलन के कुछ पक्षों को प्राविधिक विस्तार प्रदान किया है और कुछ अन्य पक्षों को भ्रष्ट किया है। व्यवहारवादियों ने कभी भी वैसा सोचा था उससे अधिक 'विज्ञान की एकता' के प्रवर्तन के लिये इसने चेष्टा की है और वैज्ञानिक तर्कशास्त्र का आग्रह सम्पादक प्रयोगशीलता से हटा कर शाब्दिक या भाषा के जोड़-तोड़ पर लगाया है। इसमें व्यवहारवाद का वस्तुनिष्ठवाद अधिक पराकाष्ठावादी हो गया है और अनुभववाद इतना तार्किक हो गया है कि मौलिक नहीं रह गया।

पिछले दिनों के वैज्ञानिक इतिहास की अपेक्षा धर्म में व्यवहारवाद के प्रयोग का इतिहास ज्यादा आसानी से बताया जा सकता है, क्योंकि यहाँ उसका प्रभाव उलटा पड़ा था—इसका प्रभाव प्रविधि-विरोधी लोकप्रिय और मनुष्य था। जेम्स ने जिस हल्के ढंग से उनकी 'गम्भीरतम' समस्याओं को खत्म कर दिया उससे धर्मशास्त्री और दार्शनिक दोनों ही बड़े क्षुब्ध हुए। वे आस्था को अधिक तर्कसंगत और धर्मशास्त्र को अधिक दार्शनिक बनाना चाहते थे। जेम्स की यह पूर्वमान्यता थी कि धर्म स्वतःस्फूर्त रूप में जिस प्रकार जिया जाता है उसमें मूलतः कुछ अमर अलौकिक नहीं तो 'अतिपूर्ण' और अधि-तार्किक होता है। वह तर्कनापरक प्रतीत हो इसके सारे प्रयास असफल सिद्ध होंगे। निश्चय ही यह विश्वास उन्होंने शुरू-शुरू में अपने पिता से प्राप्त किया और यद्यपि उन्होंने अपने पिता के एकत्ववाद और 'समाजवाद' का परित्याग कर दिया, किन्तु उनके पादरियत-विरोध तर्कनावाद के विरोध और नैतिकता-विरोध पर उनका विश्वास बना रहा।

"१८७५ में ही उन्होंने बेंजामिन पॉल ब्लड की रचना 'ऐनेस्थेटिक रैवेलेशन' (संवेदनहारी दिव्य-ज्ञान) पढ़ी थी और उसके बाद के उनके सारे विचार में वह एक आधार-शिला बनी रही। उनके अपने जीवनकाल में लिखित और प्रकाशित अन्तिम रचना में इसी लेखक की प्रशंसा थी और उसका शीर्षक था 'ए प्लूरलिस्टिक मिस्टिक' (एक बहुतत्त्ववादी रहस्यवादी)। १८८८ में उन्हें एडमण्ड गर्नी के 'हाइपोथिटिकल सुपरनैचुरलिज्म' (परिकल्पनात्मक अलौकिकवाद) ने आकर्षित किया था जिसमें 'प्रकृति की वर्तमान व्यवस्था से निरन्तर एक

अदृश्य व्यवस्था' का विचार प्रस्तुत किया गया था और यहाँ से १९०२ के 'तथ्य' या स्थूल अलौकिकवाद को एक स्वाभाविक संक्रमण है। [1]

धर्मशास्त्रीय ज्ञान के प्रति उनकी सामान्य अवज्ञा उनके प्रारम्भिक लेख 'रिफ्लेक्स ऐक्शन ऐण्ड थीइज़्म' (सहज-कार्य और ईश्वरवाद) में ही स्पष्ट थी, किन्तु १९०२ तक जब उन्होंने अपनी प्रसिद्ध गिफ़ोर्ड भाषण 'दी वेराइटीज ऑफ़ रिलिजस एक्सपीरिएन्सेज' (धार्मिक अनुभव के विभिन्न रूप) लिखे वे अपने विचारों में अधिक मताग्रही हो गये थे।

'दर्शन का तर्क है कि धर्म को एक सार्विक रूप में विश्वसनीय विज्ञान में परिवर्तित किया जा सकता है। तथ्य (है) कि किसी भी धार्मिक दर्शन ने विचारकों के समूह को सचमुच आश्वस्त नहीं किया।

'पूरी तरह ईमानदारी से मैं समझता हूँ कि हमें यह मान लेना चाहिये कि पूर्णतः बौद्धिक प्रक्रियाओं के द्वारा प्रत्यक्ष धार्मिक अनुभव के कथनों की सत्यता प्रदर्शित करने का प्रयास सर्वथा निष्प्रयोजन है।

'अतः मैं समझता हूँ कि हमें मताग्रही धर्मशास्त्र से निश्चयात्मक विदा ले लेनी चाहिये। पूर्ण ईमानदारी से हमारी आस्था को इस अभिपत्र के बिना ही काम चलाना होगा। मैं फिर कहता हूँ कि आधुनिक आदर्शवाद ने इस धर्मशास्त्र से हमेशा के लिये विदा ले ली है। क्या आधुनिक भाववाद आस्था को ज्यादा अच्छा अभिपत्र प्रदान कर सकता है, या आस्था को अब भी स्वयं अपनी गवाही पर ही निर्भर करना होगा?

'सब कुछ कहने-सुनने के बाद क्या प्रिन्सिपल केर्ड ने—और उनका जिक्र मैं केवल उस सारी विचार-पद्धति के एक उदाहरण के रूप में कर रहा हूँ—भावना और व्यक्ति के प्रत्यक्ष अनुभव के क्षेत्र के परे जाकर, निष्पक्ष तर्कबुद्धि में धर्म की नींव डाली है? क्या उन्होंने सबल तर्कों के द्वारा धर्म को सार्विक बनाया है उसे निजी आस्था से सार्वजनिक नैश्चित्य बनाया है? क्या उन्होंने उसके अभिकथनों को दुरूहता और रहस्यमयता से निकाल लिया है?

मुझे विश्वास है कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया वरन् उन्होंने केवल अधिक सामान्यीकृत शब्दावली में व्यक्ति के अनुभवों की पुनः पुष्टि कर दी है। और फिर, मेरे लिये प्रामाणिक रूप में यह प्रमाणित करना आवश्यक नहीं है कि परात्परवादी तर्क धर्म को सार्विक नहीं बनाते क्योंकि मैं इस सीधे-सादे तथ्य की ओर इशारा कर सकता हूँ कि अधिकांश विद्वान धार्मिक दृष्टि रखने वाले विद्वान् भी उन्हें विश्वसनीय मानने से दृढ़तापूर्वक इनकार करते हैं।

१ राल्फ़ बार्टन पेरी, 'दी थॉट ऐण्ड कैरेक्टर ऑफ़ विलियम जेम्स' (बोस्टन, १९३५) खण्ड २, पृष्ठ ३३४।

'दर्शन ग्रन्थों में जीवित रहता है, किन्तु सत्य और तथ्य उभर कर ऐसी रीतियों से हमारे जीवन में आते हैं, जो शाब्दिक निरूपण की सीमाओं से बाहर चली जाती हैं। प्रत्यक्ष-ज्ञान के जीवित कार्य में हमेशा कुछ ऐसा होता है जो चमचमाता और झिलमिलाता है, लेकिन पकड़ में नहीं आता और जिसके लिए विमर्श बड़ी देर से आता है। कोई इसे उतनी अच्छी तरह नहीं जानता जितना दार्शनिक। उसे अपनी अवधारणात्मक बन्दूक से नयी धारणाओं की बौछार करनी पड़ती है क्योंकि यह उद्योग ही उसके व्यवसाय का रूप है, लेकिन मन ही मन वह इसके खोखलेपन और अयथार्थिकता को जानता है।

"धर्म का एक आलोचनात्मक विज्ञान शायद अन्ततोगत्वा उतनी ही सामान्य जन-स्वीकृति प्राप्त कर ले, जितनी किसी भौतिक विज्ञान को प्राप्त होती है। निजी रूप में अ-धार्मिक व्यक्ति भी सम्भवतः इसके निष्कर्षों को भरोसे के आधार पर स्वीकार कर लें, बहुत कुछ वैसे ही जैसे अन्धे व्यक्ति प्रायः दृष्टि सम्बन्धी तथ्यों को स्वीकार कर लेते हैं—उनसे इनकार करना उतना ही मूर्खतापूर्ण प्रतीत हो सकता है। किन्तु सर्वप्रथम दृष्टि-विज्ञान के लिए देखने वाले व्यक्तियों द्वारा अनुभूत तथ्य प्रस्तुत करने पड़ते हैं और उनकी प्रामाणिकता की निरन्तर जाँच करनी पड़ती है। अतः धर्म का विज्ञान अपनी मौलिक सामग्री के लिए निजी अनुभव के तथ्यों पर निर्भर होगा और अपनी सारी आलोचनात्मक पुनः रचनाओं में उसे निजी अनुभव के साथ मेल बिठाना होगा। ठोस जिन्दगी से वह अपने को कभी अलग नहीं रख सकेगा।"[1]

यहाँ धर्मशास्त्र और दर्शन को उपकरण या 'माध्यम' भी नहीं माना गया है, वरन् धार्मिक अनुभव की सारभूत विविधता निजता और अ-वर्णनापरकता से प्रत्यक्ष रूप में विरुद्ध माना गया है।

"धर्म को जीवित रखने वाली वस्तु अमूर्त परिभाषाओं और तार्किक रूप में सम्बन्धित विशेषणों की व्यवस्थाओं से भिन्न है और धर्मशास्त्र के संकायों और प्रोफेसरों से बिल्कुल अलग है। ये सारी चीज़ें बाद की उत्पत्तियाँ हैं ऐसे ठोस धार्मिक अनुभवों के समूह में जुड़ जाने वाले गौण तत्व हैं जो सामान्य निजी मनुष्यों के जीवन में पीढ़ी दर पीढ़ी अपना नवीकरण करने वाली भावना और आचरण से अपने को परस्पर सम्बद्ध करते हैं। अगर आप पूछें कि ये

---

१ विलियम जेम्स, 'दी वैराइटीज़ ऑफ़ रिलिजस एक्सपीरिएन्स: ए स्टडी इन ह्यूमन नेचर' (न्यूयॉर्क १९०२), पृष्ठ ४५४ एफ०, ४५५, ४८८, ४८९ ४५४, ४५६-४५७, ४५९।

अनुभव क्या है तो ये अदृश्य के साथ बातचीत है, स्वर और दृष्टियाँ हैं, प्रार्थना के उत्तर हैं, हृदय के परिवर्तन हैं, भय से मुक्ति है, सहायता का पहुँचना है।[1]

अतः जेम्स के 'धार्मिक अनुभव' का सहारा लेने का मतलब था धार्मिक विश्वासों के बौद्धिक पक्षों और संस्थागत धर्म के परम्परागत पक्षों का परित्याग। जेम्स केवल धार्मिक अनुभवों की विविधता को ही नहीं वरन् धार्मिक चेतना की असामान्यता को उसके 'असीमितता' के गुण को धर्म का सारभूत तथ्य मानते थे। उन्होंने 'बीमार आत्माओं' के वैज्ञानिक मामले मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ बताने के लिए नहीं वरन् यह दिखाने के लिये प्रस्तुत किये कि 'मन का स्वास्थ्य' धर्म के लिए असामान्य है। इस कारण उन्होंने यह माना कि किसी भी अच्छे धर्म के साथ किसी प्रकार का 'स्थूल अलौकिकतावाद' किसी प्रकार की दैववादी तत्त्व-मीमांसा या ब्रह्माण्ड-दर्शन जरूर जुड़ा रहेगा। और इस कारण भी ऐसे ईश्वर में विश्वास को जिसके गुण मुख्यतः 'नैतिक' या मानवी अनुभव सम्बद्ध हों धार्मिक अनुभव का एक आवश्यक तत्त्व मान कर उसका समर्थन किया जा सकता है यद्यपि वह किसी तर्कनापरक धर्मशास्त्र का आधार नहीं बन सकता।

धर्म के मामलों में डुई का अनुभववाद इतना 'अतिपूर्ण' नहीं है। जेम्स की भाँति उनका विश्वास है कि अनुभव में एक धार्मिक गुण होता है जो संस्थागत धर्मों के परम्परागत विश्वासों और आचारों से अपेक्षतया स्वतन्त्र होता है। किन्तु वे 'धार्मिक मूल्यों' को सभी प्रकार के ब्रह्माण्ड-दर्शन और अलौकिकता से मुक्त रखना चाहते हैं। वे मानववादी हैं। 'धार्मिक मूल्यों' को वे जिस रूप में देखते हैं उनमें और धर्मों में जो विरोध है उसे मिटाया नहीं जा सकता। इन मूल्यों की विमुक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण ही धर्मों के मतों और सम्प्रदायों से उनका सम्बन्ध-विच्छेद आवश्यक है।[2] वे मानवी अनुभव का

---

१ 'कलेक्टेड एसेज़ एंड रिव्यूज़' (न्यूयार्क, १९२०) में 'फ़िलॉसॉफ़िकल कॉन्सेप्शन्स ऐण्ड प्रैक्टिकल रिज़ल्ट्स' पर जेम्स के कैलिफ़ोर्निया में दिए गये भाषण से, पृष्ठ ४२७-४२८।

२. जॉन डुई, 'ए कॉमन फ़ेथ' (न्यू हैवेन १९३४), पृष्ठ २८। उनके जीवन सम्बन्धी उनकी पुत्री का निम्नलिखित वक्तव्य भी देखें—श्रीमती डुई की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है— 'उनका स्वभाव गम्भीर रूप में धार्मिक था किन्तु किसी चर्च के मताग्रह को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उनके पति ने उनसे ही यह विश्वास ग्रहण किया कि धार्मिक दृष्टिकोण प्राकृतिक अनुभव से ही उत्पन्न होता है, और यह कि धर्मशास्त्र तथा धर्म-संघटनात्मक तत्त्वों ने

धार्मिक तत्त्व निजी चेतना की असामान्यताओं में नहीं वरन् 'सहभागी अनुभव' में पाते हैं। वे धार्मिक आस्था को ऐसी वस्तु मानते हैं जो मनुष्यों में सामान्य हो सकती है और होनी चाहिये। मनुष्य जो कुछ यथार्थ रूप में इकट्ठा अनुभव करते हैं और जिसे इकट्ठा आदर्श मानते हैं उन्हें सम्भव करने के मौलिक उद्यम में धार्मिक आस्था मनुष्यों में एकता लाती है। विश्वास करने वालों की इस एकता के प्रतीक और वास्तविकता तथा आदर्श की धार्मिक एकता के नाम के रूप में ईश्वर, स्वीकृति के बजाय निष्ठा का पात्र है। अतः डुई न्यूनतम धर्मशास्त्र और ब्रह्माण्ड-दर्शन तथा अधिकतम प्रकृतिवादी उदारवाद से सन्तुष्ट हो जाते हैं।

धार्मिक अनुभववादी आमूल-परिवर्तनवाद के अन्य कई महत्त्वपूर्ण रूपों की चर्चा की जा सकती है, किन्तु जेम्स और डुई के इन दो उदाहरणों से पता चल जाता है कि व्यवहारवाद ने किस प्रकार आस्था के एक सिद्धान्त को पुनःप्रतिष्ठित करने के साथ साथ सभी परम्परागत संस्थाओं सत्ताओं धर्मशास्त्रों और मतों को अविश्वसनीय सिद्ध करना चाहा। किन्तु आस्था के व्यवहारवादी सिद्धान्त से भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह धारणा रही है कि धार्मिक अनुभव भावनात्मक तात्त्विक रहस्यात्मक होता है, जिसे मनोविज्ञान या सम्भवतः मानव-विज्ञान के सन्दर्भ में समझा जा सकता है और यह समग्र सृष्टि के बजाय मानव-प्रकृति और मानवी 'समंजनों' पर प्रकाश डालता है।

धर्म और दैववाद में जेम्स की निरन्तर रुचि के कारण जो निश्चय ही व्यवहारवाद की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण था उनके कुछ अधिक 'कठोर प्रवृत्ति' के मित्र उनसे दूर हो गये। वे मित्र नैतिक दर्शन से भावना को निकाल देना चाहते थे और व्यवहारवाद को राजनीतिक और आर्थिक यथार्थवाद का सा ठोस रूप देना चाहते थे। इनमें सर्वाधिक स्पष्ट-वक्ता जस्टिस ओलिवर वेण्डेल होम्स थे जिन्होंने बहुत पहले हार्वर्ड में हुई तत्त्वमीमांसात्मक चर्चाओं में से कइयों में भाग लिया था जेम्स की 'साइकॉलॉजी' का स्वागत किया था और जो क़ानूनी व्यवहारवाद के मान्य नेता बन गये थे। किन्तु जब जेम्स की रचना 'प्रैग्मैटिज़्म' प्रकाशित हुई तो उन्होंने अपने मित्र सर फ़ेडरिक पोलॉक को लिखा—

मैं समझता हूँ कि विलियम जेम्स के प्रशंसनीय और सुनिश्चित जीवन के [illegible] ज्ञान से भिन्न उनकी अधिकांश परिकल्पनाओं के समान व्यवहारवाद भी एक मनोरंजक धारणा है। मुझे ये सारी परिकल्पनाएँ अन्धेरे में की गयी

उसे आगे बढ़ाने के बजाय गतिहीन बना दिया था।"—[जेन एम॰ डुई, 'बायग्राफी ऑफ़ जॉन डुई,' पी॰ ए॰ शिल्प द्वारा सम्पादित 'दी फ़िलासफ़ी ऑफ़ जॉन डुई' में, (एवान्स्टन, इलिनोयस १९३९), पृष्ठ २१।]

प्रार्थना को उनके उत्तर के ही रूप प्रतीत होती है—डोमा का यह वादा कि अगर आप रोशनी कम कर दें तो वह चमत्कार दिखायेगा। जैसा मैं बहुधा कह चुका हूँ, सत्य से मेरा तात्पर्य उसी से होता है जिसे माने बिना मैं न रह सकूँ। बहुत दिन पहले लिखा गया एक उदाहरण है, जो मुझ संशयी के पक्ष में विलियम जेम्स का तर्क भी मुझे उसी कोटि का प्रतीत हुआ था जिसका जिक्र मैंने ऊपर किया है। वह तर्क स्वतन्त्र विचार वाले एकत्ववादी पादरियों और महिलाओं को प्रसन्न करने वाला था। मुझे हमेशा हक्सले की एक बात याद आती है कि दार्शनिकों को आराम से रहने वाले वर्ग ने यह प्रमाणित करने के लिए भाड़े पर लगा रखा है कि सब कुछ ठीक है। मैं भी समझता हूँ कि सब कुछ ठीक 'है' किन्तु बिल्कुल भिन्न कारणों से। सारी बात का मर्म और उद्देश्य धार्मिक है। अगर यह निष्कर्ष न होता तो मैं समझता हूँ हम उनसे इस विषय पर कभी कुछ न सुनते। सारी बात का महत्व इसी को मान कर मैं उसे नमस्कार करता हूँ।[1]

किन्तु जस्टिस होल्म्स में उनकी अपनी भावुकता थी—जीवन के संघर्ष की महिमा निर्वाचक कार्य का मुख्य अन्तिम अर्थों को तलाश की व्यर्थता।

'जीवन क्रिया है, अपनी शक्तियों का प्रयोग। उनकी सीमा तक उनका प्रयोग हमारा आनन्द और कर्तव्य है। अतः यही लक्ष्य है जिसका औचित्य अपने आप में है।[2]

'जीवन को अपने-आप में एक लक्ष्य समझें। जो कुछ है कार्यात्मकता है—जिसे हम उच्चतर प्रकार की कार्यात्मकता कहते हैं उसी में हमारी अधिकतम प्रसन्नता है। मैं सोचता हूँ कि क्या विचार, सैनिकों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता है।[3]

ऐसा 'मात्र नैतिक उत्तेजना' का प्रचारक जेम्स का उतना ही अप्रिय था जितना जेम्स की धार्मिक परिकल्पनाएँ होल्म्स को थीं।

'मुझे यह विचित्र लगता है, और मैं देखता हूँ हमेशा वह भूल जाते हैं कि उनके अपने शब्दों में कर्तव्यहीन लोग भी उनके नियम की पूर्ति करते हैं। वे भी सक्रिय जीवन बिताते हैं और अपने विरोधी तत्वों से अपने संघर्ष का

---

१ एम० डी० हॉवे द्वारा सम्पादित 'होल्म्स-पोलॉक लैटर्स' (कैम्ब्रिज १९४१), खण्ड १ पृष्ठ १३८-१४० ।

२ ओलिवर वेण्डेल होल्म्स, 'स्पीचेज' (न्यूयॉर्क, १९११)

३ 'होल्म्स-पोलॉक लैटर्स' खण्ड २, पृष्ठ २२ ।

आनन्द लेते हैं। अतः उन्हें असम्भ छोड़ दें। आत्म सन्तोषमात्र एक अभीष्ट आदर्श है, सर्वोच्च-न्यायालय के अधिकृत अनुमोदन के अयोग्य है। [1]

होम्स ने जिस भावुक पक्ष व्यक्तिवाद का प्रचार किया, वह भावी लोगों के लिए कोई नया पदार्थ नहीं था और उसका व्यवहारवाद से कोई प्रत्यक्षसम्बन्ध नहीं था। किन्तु जब उन्होंने क़ानूनी निर्णय में उसका आलोचनात्मक प्रयोग किया, तो उन्होंने विधिशास्त्र का एक हलचल मचा देने वाला सिद्धान्त निर्मित किया, जिससे क़ानूनी व्यवहारवाद या यथार्थवाद के नाम से प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण आन्दोलन आरम्भ हुआ। होम्स ने जेम्स के 'रिक्त-ज्ञान विरोध' को सामान्य क़ानून पर लागू किया।

'क़ानून का जीवन तर्कशास्त्र नहीं रहा अनुभव रहा है। मनुष्य जिन नियमों द्वारा शासित हों उनका निर्धारण करने में हेत्वनुमान की अपेक्षा समय की अनुभूत आवश्यकताओं का प्रचलित नैतिक और राजनीतिक सिद्धान्तों का सार्वजनिक नीति की घोषित या अव्यक्त अन्तःप्रज्ञाओं का यहाँ तक कि उन पूर्वाग्रहों का भी जो अन्य मनुष्यों के साथ-साथ न्यायाधीशों में भी होते हैं बहुत अधिक हाथ रहा है।' [2]

ऐसे अनुभववाद को प्रस्थान-बिन्दु बना कर उन्होंने १८९७ में क़ानून की अपनी प्रसिद्ध व्यवहारवादी परिभाषा निरूपित की कि (क़ानून) 'अदालतों के माध्यम से सार्वजनिक शक्ति के घटन का पूर्व-कथन है। और इसी श्रेष्ठ आलेख 'दी पाथ ऑफ़ दी लॉ' (क़ानून का मार्ग) में उन्होंने आगे कहा—

'मुझे बहुधा सन्देह होता है कि अगर क़ानून से नैतिक महत्त्व का हर शब्द बिल्कुल निकाल दिया जाए, और अन्य शब्द अपना लिये जाएँ जो क़ानूनी विचारों को क़ानून के बाहर के प्रभावों से बिल्कुल मुक्त रख कर प्रस्तुत करें तो क्या इससे लाभ नहीं होगा। हम इतिहास के अच्छे बड़े हिस्से के पुराने अभिभूत अभिलेखों का और नैतिक सम्बन्धों से प्राप्त बहुतायत को खो देंगे किन्तु अनावश्यक सम्भ्रम से अपने को मुक्त कर लेने में विचारों की स्पष्टता की दृष्टि से हमें बड़ा लाभ होगा। *न्यायिक निर्णय की भाषा मुख्यतः* तर्कशास्त्र की भाषा होती है और तार्किक पद्धति और रूप निश्चय और स्थिरता की उस आकांक्षा को सन्तुष्ट करते हैं जो हर मानव मन में होती है। किन्तु तार्किक रूप के पीछे विधि निर्माण के प्रतियोगी आधारों के सापेक्ष मूल्य और महत्त्व सम्बन्धी निर्णय होता है। विधि-निर्माण की नीति के प्रश्न पर एक छिपा हुआ, अर्ध-चेतन संघर्ष

---

१ पेरी की पुस्तक खण्ड २, पृष्ठ २५१।

२ ऑलिवर वेण्डेल होम्स, 'दी कॉमन लॉ' (बोस्टन १८८१) पृष्ठ १।

होता है और अगर कोई ऐसा सोचता है कि निगमन के द्वारा या हमेशा के लिए इसे सुलझाया जा सकता है, तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे विचार से वह सैद्धान्तिक गलती करता है।

'क़ानून अपने लिए मनुष्य की गम्भीरतम मूल प्रवृत्तियों से ज़्यादा अच्छा औचित्य नहीं माँग सकता।

'दर्शन उद्देश्य नहीं प्रदान करता किन्तु वह मनुष्यों को दिखाता है कि जो कुछ वे पहले से ही करना चाहते हैं उसे करना मूर्खता नहीं है।'[1]

क़ानूनी दर्शन में यह नैतिक संशयवाद केवल क़ानून के प्राचीन निगमन सिद्धान्त की आलोचना ही नहीं था, जिसे विधि-शास्त्र की ऐतिहासिक और विकासवादी धारा ने पहले ही समाप्त कर दिया था। यह व्यावहारिक कार्यपद्धति की अवधारणात्मक परिभाषा सम्बन्धी पीयर्स की उक्ति का प्रभावकारी प्रयोग था। होम्स की परिभाषा के अनुसार, किसी क़ानून का अर्थ निर्धारित करने के लिये जज उसके आनुभविक परिणामों की ओर ध्यान दे सकता था। जिसे समाज शास्त्रीय विधि-शास्त्र कहा गया उसके लिये इससे द्वार खुल गया और अदालतें स्पष्ट सरकारी नीति की एजेन्ट बन गयीं। विधि-निर्माण में समूहवादी प्रवृत्तियों के प्रति होम्स का अपना दृष्टिकोण 'छिद्रान्वेषणपूर्ण सीनिसिज़्म' का था। किन्तु उनमें इतनी काफ़ी सहिष्णुता थी कि जब ये प्रवृत्तियाँ विधान-मण्डल की इच्छा का स्पष्ट रूप में व्यक्त करतीं तो वे उन्हें लागू करते यद्यपि एक नागरिक के रूप में वे उन्हें अत्याचारपूर्ण कह कर उनकी निन्दा करते। वे अपनी 'तर्कबुद्धि' का लाखों की गम्भीरतम मूल प्रवृत्तियों के विरुद्ध खड़ा करने को तैयार नहीं थे और न वे इसे अपना नैतिक कर्तव्य समझते थे कि जनसामान्य के मनोवेगों का रोकें जैसा कि संयम और सन्तुलन का पुराना सिद्धान्त सिखाता था। निजी रूप में वे नैतिकता के विरोधी थे और मानते थे कि क़ानून को धर्म-दण्ड की इच्छा शासित के आवरण और धर्मगोष्ठों में उसकी विशेषाधिकारयुक्त स्थिति से मुक्त करके वे क़ानून की सच्ची सेवा कर रहे थे ताकि उस व्यापार की सख़्त ज़मीन पर [illegible] उपयोगितावादी आधार पर खड़ा किया जा सके।[2]

---

१ ओलिवर वेंडेल होम्स, कलेक्टेड लीगल पेपर्स (न्यूयार्क, १९२०), पृष्ठ १७९-१८३, २००, ३१६। अन्तिम उद्धरण 'नेचुरल लॉ' (प्राकृतिक नियम) पर उनके निबन्ध से लिया गया है।

२ किन्तु निजी रूप में वे एक कठोर पुरुष का संस्कार-युक्त जीवन ही बिताते थे। उस कठिन परिश्रम के प्रति वे स्वयं तिरस्कार का अनुभव करते थे, भावी नस्लों के लिए जिसकी व्यवस्था उनके अपने सिद्धान्त कर रहे थे। पर [illegible]

यह कार्य सैद्धान्तिक क्षेत्र में रोस्को पाउण्ड और व्यवहार में जस्टिस ब्रैण्डीज और जस्टिस कारडोज़ो के हिस्से में आया कि एक समाजशास्त्रीय विधि-शास्त्र का विकास करें जिसके सन्दर्भ में नैतिक सिद्धान्त और सामाजिक नीति एक-दूसरे का समर्थन कर सकें।

सिद्धान्तों नियमों और प्रतिमानों के ठोस मामलों में परीक्षण की प्रक्रिया के द्वारा जज वास्तविक क़ानून बनाता है। वह उनके व्यावहारिक प्रयोग को देखता है और बहुतेरे उदाहरणों के अनुभव से धीरे-धीरे पता लगाता है कि उनका प्रयोग किस प्रकार करे जिससे उनके द्वारा न्याय कर सके।

सुनीति के विकास के द्वारा क़ानून में नैतिकता का प्रवेश, विधि-निर्माण की उपलब्धि नहीं, वरन् अदालतों का कार्य था। व्यापारियों के चलनों का क़ानूनों में समावेश, प्रतिनियमों के द्वारा नहीं हुआ, वरन् न्यायिक निर्णयों के द्वारा हुआ। एक बार वैधानिक विचार और न्यायिक निर्णय की धारा के किसी नये मार्ग पर मुड़ने के बाद न्यायिक अनुभववादी की हमारी ऐंग्लो-अमरीकी पद्धति हमेशा

पोलॉक के नाम एक पत्र के निम्नलिखित अंश उनकी निजी रुचियों और उनके लोकतान्त्रिक विधि-शास्त्र के विरोध को व्यक्त करते हैं—"अभियोगों में मैं जो काम करता हूँ, उनके सम्बन्ध में ब्रैण्डीज ने उस दिन मुझे एक बड़ी तीखी बात कही। उन्होंने कहा, आप अपना विचार सुधारने की बात करते हैं, किन्तु आप उसका प्रयोग केवल उन विषयों पर करते हैं, जिनसे आप परिचित हैं। आप किसी नई चीज़ के लिए प्रयास क्यों नहीं करते, तथ्य के किसी क्षेत्र का अध्ययन क्यों नहीं करते? मैसाचुसेट्स के वस्त्र उद्योगों को ले लें और सम्बन्धित रपटों का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद आप लॉरेन्स जा सकते हैं और कुछ जान सकते हैं कि वास्तव में है क्या। मुझे तथ्यों से नफ़रत है। मैं हमेशा कहता हूँ कि मनुष्य का मुख्य लक्ष्य सामान्य स्थापनाओं का निरूपण करना है—फिर यह जोड़ देता हूँ कि सारी सामान्य स्थापनाएँ मूल्यहीन होती हैं। बेशक सामान्य स्थापना केवल तथ्यों को पिरोने का धागा होता है और मुझे इसमें सन्देह नहीं कि अगर मैं उनमें पैठूँ, तो मेरी अन्तरतर आत्मा को लाभ होगा, अपने कार्य के सम्पादन में भी मुझे लाभ होगा। लेकिन मैं इस ढंग से बचता हूँ—बल्कि ऐसा नहीं कि इस या उस चीज़ को पढ़ने का अवसर खोना नहीं चाहता, जिसे एक भद्र-पुरुष को मरने के पहले पढ़ लेना चाहिए। मुझे याद नहीं कि मैंने कभी मकियावेली की रचना 'प्रिन्स' पढ़ी हो—और मैं (ईश्वरीय) निर्णय के दिन की बात सोचता हूँ।"—('होम्स-पोलॉक लेटर्स', खण्ड २, पृष्ठ ११-१४)।

पर्याप्त सिद्ध हुई है। हमारे सामान्य क़ानून में ऐसे साधन हैं कि नये आधार-सूत्रे को लेकर वह न्याय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्हें विकसित करे और परिणामों को एक वैज्ञानिक व्यवस्था में लाये। इसके अतिरिक्त उसमें नये आधारों को ग्रहण करने की शक्ति है जैसा उसने सुनीति (ईक्विटी) के विकास में और व्यापारिक नियमों को समाविष्ट करने में किया। वस्तुतः लगभग प्रन वाले ही, हमारी क़ानूनी व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन होते रहे हैं, हमारे निर्णय विधि में एक परिवर्तन होता रहा है। हमारी विधि-निर्माण नीति में परिवर्तन इतना स्पष्ट होने के पहले ही हम उन्नीसवीं शताब्दी के व्यक्तिवादी न्याय से जिसे क़ानूनी न्याय का अर्थपूर्ण नाम दिया गया था आज के सामाजिक न्याय की ओर बढ़ रहे थे।[1]

यही दृष्टिकोण जेम्स और होम्स के संघर्षवाद से कुछ हट कर लुई डी. ब्रैण्डीस और कारडोज़ो के सामाजिक नीतिशास्त्र पर आ गया है। क़ानून का अस्तित्व, उस संघर्ष में जो जीवन है विभिन्न शक्ति-संघर्षों की सेवा के लिये नहीं, वरन् उस कला के द्वारा जो शासन है आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये है।

विधि-शास्त्री मानवी संघर्षों के बजाय मानवी आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के सम्बन्ध में सोचने लगे। वे सोचने लगे कि उन्हें केवल संघर्षों में समानता या समरसता नहीं लानी थी वरन् आवश्यकताओं की पूर्ति में अगर समानता नहीं तो कम से कम समरसता लानी थी। वे दावों या आवश्यकताओं या आकांक्षाओं का तुलन या सन्तुलन और समाधान करने लगे उसी प्रकार जैसे पहले वे संघर्षों का सन्तुलन या समाधान करते थे। वे सोचने लगे कि क़ानून का लक्ष्य अधिकतम स्वातंत्र्य नहीं वरन् आवश्यकताओं की अधिकतम पूर्ति है। फलस्वरूप कुछ समय तक वे नीतिशास्त्र, विधिशास्त्र और राजनीति की समस्या को मुख्यतः मूल्यांकन की समस्या, हितों के सापेक्ष मूल्य की कसौटियाँ खोजने की समस्या मानते रहे। विधि-शास्त्र और राजनीति में उन्होंने देखा कि हमें न्यायिक या प्रशासनीय सरकारी कार्य के द्वारा हितों को प्रभावी बनाने की सम्भावना की व्यावहारिक समस्याओं को भी जानना होगा। किन्तु पहला प्रश्न यह था कि किन आवश्यकताओं को मान्यता दी जाये—किन हितों को स्वीकार और सुरक्षित किया जाये। ऐसी आवश्यकताओं दावों और हितों की सूची तैयार करने के बाद, जिनका आग्रह किया जा रहा है और जिनके लिये क़ानूनी सुरक्षा

---

१ रोस्को पाउण्ड 'दी स्पिरिट ऑफ़ दी कॉमन लॉ' (बोस्टन, १९२१), पृष्ठ १७५ १८७-१८८।

मांगी जा रही थी। हमें उनका मूल्यांकन करना था जिन्हें मान्यता देनी थी उनका चयन करना था और अन्य मान्य हितों की दृष्टि में उन सीमाओं का निर्धारण करना था जिनके अन्दर उन्हें प्रभावी बनाना था और पता लगाना था कि क़ानूनी कार्यवाही की अन्तर्निहित सीमाओं की दृष्टि में, कहाँ तक हम उन्हें क़ानून द्वारा प्रभावी बना सकते हैं। [1]

हम अमरीकी न केवल सामाजिक न्याय से बँधे हैं उन चीजों से बचने के अर्थ में जिनसे कष्ट और हानि होती है, जैसे धन का असमान वितरण, वरन् हम मुख्यतः लोकतन्त्र से बँधे हैं। जिस सामाजिक न्याय के लिए हम प्रयास कर रहे हैं वह हमारा मुख्य लक्ष्य नहीं वरन् हमारे लोकतन्त्र की एक घटना है। यह कहना अधिक उचित होगा कि यह लोकतन्त्र का फल है—शायद उसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति—किन्तु यह लोकतन्त्र पर ही आधारित है, जिसमें जनता द्वारा शासन निहित है और इस कारण, जिस लक्ष्य के लिये हमें प्रयास करना है, वह जनता द्वारा शासन की उपलब्धि है, जिसमें राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ-साथ औद्योगिक लोकतन्त्र भी निहित है।

कोई ऐसा व्यक्ति क्या सचमुच स्वतन्त्र हो सकता है, जिसे निरन्तर यह खतरा हो कि उसे मात्र जीवन-निर्वाह के लिये स्वयं अपने प्रयास और आचरण से भिन्न किसी वस्तु या व्यक्ति पर निर्भर होना पड़े? आर्थिक निर्भरता की संगति स्वतन्त्रता के साथ तभी होती है, जब अनुतोषण का दावा अधिकार पर आधारित हो अनुग्रह पर नहीं।

'व्यक्ति की स्वतन्त्रता सफल लोकतन्त्र की उतनी ही आवश्यक शर्त है, जितनी उसकी शिक्षा। अगर शासन ऐसी स्थितियों की अनुमति देता है, जो नागरिकों के बहुसंख्य वर्गों को आर्थिक दृष्टि से पराधीन बनाती हैं तो राज्य को चाहिये कि स्वयं उनकी कमियों से उत्पन्न बोझ को किसी रूप में स्वयं अपने ऊपर लेकर, या तो ऐसा करके कि दूसरे उसे अपने ऊपर ले लें पराधीनता की जबर्दस्त बुराई को कम से कम करें।

'स्वतन्त्रता प्राप्ति का मूल्य आमतौर पर बहुत अधिक होता है।' [2]

अमरीकी क़ानून के इस अनुभववादी आन्दोलन में वामपक्ष में तथाकथित यथार्थवादियों का एक समूह है, जो नैतिक सिद्धान्तों, 'विधीय अभिधारणाओं',

१ रॉस्को पाउण्ड, 'ऐन इण्ट्रोडक्शन टु दी फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ लॉ' (न्यू हैवेन, १९२२) पृष्ठ ८९-९।

२ अल्फ्रेड लीफ़ द्वारा सम्पादित 'दी सोशल ऐण्ड एकॉनमिक व्यूज ऑफ़ मिस्टर जस्टिस ब्रेण्डीस' (न्यूयार्क १९३०) पृष्ठ ३८२, ३९६।

और अन्य प्रकार की 'परात्परवादी बकवास' से मुक्त क़ानून के एक वस्तुपरक विज्ञान की आकांक्षा रखता है। उन्हें आशंका है कि सामान्य युग के उपयोगितावादी सिद्धान्तों की आड़ में, समाजशास्त्रीय विधि शास्त्र के समर्थक पुराने-पुराने कुछ सामान्य सामाजिक सत्यों को लोकतान्त्रिक मतावग्रहों को, क़ानूनी व्यवस्था के सिद्धान्तों को और अन्य नैतिक कसौटियों का ले आना चाहते हैं जो वास्तव में आनुभविक नहीं हैं। वे एक 'यथार्थ विज्ञान' चाहते हैं, जो सामान्य सत्यों और मूल्यों पर नहीं वरन् मनुष्यों के वास्तविक आदर्शों और हितों पर निर्भर हो। उनका आग्रह आपराधिक कानून की अपेक्षा दीवानी क़ानून पर अधिक है और वे क़ानून को समस्याओं को किसी वकील की सी दृष्टि से देखते हैं—न्यायिक निर्णयों के पूर्वानुमान की समस्याओं के रूप में। वे आश्वस्त होना चाहते हैं कि विधि-शास्त्र में जो भी क़ानूनी नियम या नैतिक मूल्य सम्मिलित किये जाएँ, वे केवल प्रतिद्वन्द्वी दावों को सुलझाने की व्यावहारिक प्रक्रिया के उपकरण हों उनका आनुभविक सत्यापन हो सके और वे केवल आलंकारिक रूप में कही गयी बातें न हों जो किसी निर्णय के बाद उसे आकर्षण तो प्रदान करें, लेकिन कोई बौद्धिक कार्य न करती हों।

क़ानून के प्रति व्यवहारवादी दृष्टियों में जो विभिन्नता दिखाई देती है, वैसी ही विभिन्नता राजनीति के प्रति व्यवहारवादी दृष्टियों की समीक्षा करने पर सामने आती है। विलियम जेम्स स्वभाव से और दार्शनिक रूप में व्यक्तिवादी थे। उन्हें 'विशालता' अपने आप में अप्रिय थी, अधिकतम स्थानीय राजनीति के अतिरिक्त सारी राजनीति से अरुचि थी, साम्राज्यवाद से आवेशपूर्ण घृणा थी यहाँ तक कि 'कुतिया-देवी सफलता' से भी नफ़रत थी। वे जोरदार और मेहनती जीवन में विश्वास करते थे लेकिन इन गुणों को बिल्कुल निजी रूप में और छोटे पैमाने पर लेते थे। बहुसंख्यक छोटे-मोटे निजी संघर्ष करने वालों से उन्हें सहानुभूति थी और उनकी वे सहायता करते थे, किन्तु, साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के अतिरिक्त, बड़े पैमाने के राजनीतिक प्रश्नों और संघर्षों में उन्होंने दार्शनिक रुचि बहुत कम प्रदर्शित की। इसके विपरीत ड्यूई ने अपना नीतिशास्त्र बहुत-कुछ अपने काल के मुख्य राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों के सन्दर्भ में विकसित किया था। वे जनता और उसकी समस्याओं में इतना अधिक उलझे रहे हैं कि कभी-कभी शिकायतें हुई हैं कि वे निजी व्यक्तियों में विश्वास ही नहीं करते। किन्तु ड्यूई का सामाजिक दर्शन उनके आत्म सिद्धि के नीतिशास्त्र पर आधारित है और जिसे वे 'नया व्यक्तिवाद' कहते हैं वह यह विश्वास है कि किसी व्यक्ति को 'प्रभावी स्वतन्त्रता' प्रदान करने के लिए और उसमें विशिष्ट हितों और आवश्यकताओं के अधिकारों का व्यावहारिक समंजन प्रदान करने के लिये सामूहिक कार्य और

सार्वजनिक अनुभव आवश्यक है। वे लोकतान्त्रिक समाजवाद के मुख्य अमरीकी व्याख्याता और संरक्षक बन गये हैं।

किन्तु हमारे इतिहास की दृष्टि से, व्यवहारवादी दार्शनिकों के राजनीतिक मतों से अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चिन्तन की वे व्यवहारवादी आदतें हैं जो व्यावहारिक राजनीतिज्ञों में न्यूनाधिक स्वतःस्फूर्त ही विकसित हो गयी हैं यहाँ तक कि पिछले दिनों के अमरीकी सामाजिक अनुभव के एक चेतन विचार-दर्शन का निर्माण हो गया है। यह विचार-दर्शन अभी एक सुनिश्चित व्यवस्था में मठित तो नहीं हुआ है फिर भी इसे एक विशिष्ट अमरीकी सामाजिक सिद्धान्त के रूप में पहचाना जा सकता है। हमारे उद्देश्यों के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस सिद्धान्त को एक मत-समूह की अपेक्षा एक सामाजिक शक्ति के रूप में ज्यादा आसानी से पहचाना जा सकता है। किन्तु हम मोटे तौर पर प्रयोगात्मक रूप में इसकी मुख्य विशेषताओं का चित्रण कर सकते हैं यह याद रखते हुए कि इनके बिना पूर्व सूचना के तो नहीं किन्तु 'स्थिति' से जरा सी भी चेतावनी मिलने पर ही परिवर्तित हो जाने की सम्भावना है। सर्वप्रथम इस विचार-दर्शन की यह नकारात्मक प्रमुख विशेषता है कि इसने कोई इतिहास-दर्शन निरूपित नहीं किया और यह असफलता इसके व्यवहारवादी स्वभाव का सुन्दर प्रमाण है। अमरीकी इतिहास की आर्थिक व्याख्या भी जिसने मार्क्सवादियों की प्रेरणा से इतिहासकारों में कुछ प्रगति की थी और यह सम्भावना थी कि उससे अमरीकी राजनीति को परम्परागत इतिहासों की अपेक्षा अधिक यथार्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य प्राप्त होगा ऐसा प्रतीत होता है कि बीयर्ड और उनके अन्य मित्रों द्वारा (बस्तुतः भी में) छोड़ो जा रही है। और इतिहास की यह व्याख्या भी सामान्य इतिहास की एक दार्शनिक रूपरेखा होने के बजाय इतिहासकारों का एक प्राविधिक औजार ही रही है। हीगेलवादी उत्साह के ह्रास के बाद न तो मार्क्सवादी इतिहास दर्शन ने और न किसी अन्य इतिहास-दर्शन ने ही अमरीकी सामाजिक दर्शन पर कोई गम्भीर प्रभाव डाला है। अमरीकी काल्पनिक-समाजवादी और अमरीकी बन चुके ईसाई दार्शनिक कभी-कभी जन-मानस पर छा जाते हैं किन्तु सब मिला कर, वे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करने में उतने प्रभावशाली नहीं है—जितने एक ओर मानव प्रकृति' सम्बन्धी प्रभावी चिन्ता में और दूसरी ओर प्रगति में आस्था से अपना योग देने में। पिछले दिनों प्रगति में अमरीकी आस्था इतिहास पर नहीं बरन् अपने मानवी और प्राकृतिक प्रसाधनों पर हमारे विश्वास पर आधारित रही है। इससे हम राजनीतिक व्यवहारवाद के दूसरे लक्षण पर आ जाते हैं—मुख्यतः यह शक्ति का, या ऐसा कहें कि शक्तियों का बहुतत्ववादी, अवसरवादी सिद्धान्त है। ड्युई ने सामान्यतः दर्शन के लिए जो कुछ कहा था,

यह विशिष्ट रूप में पिछले दिनों के अमरीकी राजनीतिक दर्शन की भावना को परिलक्षित करता प्रतीत होता है।

'अगर अमरीकी दर्शन अमरीका की अपनी आवश्यकताओं और अप्रकट कार्यों के उसके अपने निहित सिद्धान्त को चेतना के स्तर पर नहीं ले आता तो वह बहुत पहले ही मकड़ी हो चुके ऐतिहासिक धारे को बचाते रहने या परित्यक्त समस्याओं (प्राकृतिक विज्ञान में परित्यक्त) की ओर से सफ़ाई देने में या एक शास्त्रीय आयोजनात्मक नियम-निष्ठा में खो जायेगा।'[1]

इस दर्शन का मुख्य केन्द्र शिकागो था। वहाँ डुई, टफ्ट्स, मीड और वेबलेन द्वारा विकसित सामाजिक मनोविज्ञान का विवरण हम पहले दे चुके हैं।[2] उन्होंने लोकतन्त्र के एक सिद्धान्त का निरूपण मात्र शासन के एक रूप की शक्ल में नहीं वरन् साहचर्यपूर्ण जीवन की एक पद्धति के रूप में किया। यह सिद्धान्त इन विचारों पर आधारित था कि वैयक्तिकता और स्वतन्त्रता स्वयं सामाजिक उपलब्धियाँ हैं और लोकतान्त्रिक समाज वह है जो अपनी संस्थाओं को अपने सदस्यों को बौद्धिक और भावनात्मक विकास का अवसर देने के आधारभूत लक्ष्य के अधीन रखता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये वह उनके चिन्तन 'सहभागी' के क्षेत्रों को अधिक व्यापक बनाता है, संचार और सार्वजनिक अभिव्यक्ति के साधनों में वृद्धि करता है और सभी को सामाजिक और भौतिक नियन्त्रण की प्रक्रियाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण भाग प्रदान करता है। इस आदर्श को डुई ने शिक्षा सुधार पर लागू किया, जेन ऐडम्स ने नगर समाज और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सुधार पर, वेबलेन और एयर्स ने औद्योगिक प्रबन्ध और निहित स्वार्थों के सुधार पर। शासन-सिद्धान्त के रूप में इस दर्शन को आर्थर एफ॰ बेन्टले और शिकागो की त्रिमूर्ति—चार्ल्स ई॰ मेरियम एच॰ डी॰ लासवेल और टी॰ वी॰ स्मिथ ने अधिक प्राविधिक और व्यवस्थात्मक विस्तार प्रदान किया। स्मिथ ने विशेष रूप में यह प्रदर्शित किया है कि व्यवहारवादी दर्शन को किस प्रकार समानता के सिद्धान्त, समझौते की कला, और 'लोकतान्त्रिक अनुशासन' के नीति शास्त्र पर लागू किया जा सकता है। स्वार्थ गुटों की परस्पर प्रक्रिया के सन्दर्भ में राजनीति को निरूपित करने में बेन्टले, बीयर्ड और मेरियम अगुआ रहे हैं और इस प्रकार, उन्होंने एक ऐसे समाज में जिसमें वर्ग अस्पष्ट हैं किन्तु संघर्ष निरन्तर चलते हैं वर्ग-संघर्ष की मार्क्सवादी धारणाओं के स्थान पर एक व्यावहारिक बहुत्ववादी धारणा प्रस्तुत की। 'प्रयोगात्मक

---

१ जॉन डुई और अन्य, 'क्रिएटिव इन्टेलिजेन्स' (न्यूयॉर्क १९१७) पृष्ठ ६०।

२ छठे अध्याय में 'प्राकृतिक सामाजिक ज्ञान' के अन्तर्गत देखिए।

सर्वसाधारण' के रूप में टगवेल और 'न्यू डील' (१९२६ की मन्दी के बाद, राष्ट्रपति रूजवेल्ट के शासन में १९३२ से चलाया गया सामाजिक और आर्थिक सुधार का कार्यक्रम अनु०) के अन्य प्रतिपादक इस दर्शन को वाशिंगटन ले गये जहाँ इसे व्यावहारिक प्रयोग की अग्नि-परीक्षा से गुजरना पड़ा।

भौतिक व्यवहारवाद जब इन बहुत कुछ अव्यवस्थित सामाजिक कलाओं से ललित कलाओं की ओर मुड़ा, तो एक कहीं अधिक नाजुक कार्य उसके सामने आया। कलात्मक क्रिया-कलाप का विश्लेषण करने और यह दिखाने के प्रयासों में कि ललित कलाएँ और 'परिणति अनुभव' के अधिकतम कल्पनामय आनन्द किस प्रकार नित्य-प्रति के जीवन की चिन्ताओं से जुड़े हुए हैं जॉन डुई और ऐल्बर्ट सी० बार्नेस ने आनुभविक और व्यवहारवादी विश्लेषण का अन्तिम प्रयोग किया। बार्नेस ने बताया कि कलाकार, जिसके लिये कला एक कौशल या सृजन की प्रविधि है और भावक जो दूसरों की कला-कृतियों का आनन्द लेता है, दोनों के ही लिए किस प्रकार विश्लेषणात्मक बुद्धि अनुशासन और सम्प्रयणीयता आवश्यक है। अतः सौन्दर्यात्मक अनुभव उतना ही भौतिक और सामाजिक है, जितना वैज्ञानिक या मशीनी अनुभव। डुई ने इस सिद्धान्त का अधिकतम उपयोग किया, क्योंकि इससे उन्हें यह दिखाने का उत्तम अवसर मिल गया कि साध्यों का उपभोग और सम्यों का प्रयास किस प्रकार सम्बद्ध है।

' जब कलात्मक वस्तुएँ उद्गम की स्थितियों और अनुभव की क्रिया दोनों से अलग कर दी जाती है तो उनके चारों ओर एक दीवार खड़ी कर दी जाती है जिससे उनकी वह सामान्य अर्थवत्ता लगभग अपारदर्शक हो जाती है जो सौन्दर्य शास्त्र के सिद्धान्त का विषय है। कला को एक अलग क्षेत्र में डाल दिया जाता है, जहाँ अन्य हर प्रकार के मानवी प्रयास अनुभव और उपलब्धि की सामग्रियों और लक्ष्यों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है। अतः जो व्यक्ति ललित कलाओं के दर्शन पर लिखने बैठता है, उसकी एक प्राथमिक जिम्मेदारी हो जाती है। यह जिम्मेदारी है, अनुभव के परिष्कृत और घनीभूत रूपों जो कला-कृतियाँ हैं और सार्विक रूप में अनुभव मानी जाने वाली नित्य-प्रति की घटनाओं कार्यों और पीड़ाओं के बीच निरन्तरता को पुनः स्थापित करना। '

"हम उपयोगी कलाओं और ललित कलाओं के सम्बन्ध के बारे में ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, जो अतरगामवादी सौन्दर्यशास्त्रियों के अभिप्राय के ठीक विपरीत है, अर्थात् ललित कला का चेतन रूप में किया गया निर्माण अपने आप में, विशिष्ट उपयोगी गुण वाला होता है। यह शिक्षा के लिये बजायी गयी

प्रयोग की एक पद्धति है। इसका अस्तित्व एक विशेष उपयोग के लिये है। यह उपयोग है प्रत्यक्ष-ज्ञान की पद्धतियों का एक नया प्रशिक्षण। सफल होने पर ऐसी कला-कृतियों के निर्माता वैसी ही कृतज्ञता के पात्र हैं जैसी हम सूक्ष्मदर्शी या ध्वनिवर्धक यन्त्रों के आविष्कारकों के प्रति अनुभव करते हैं। अन्ततोगत्वा वे हमारे निरीक्षण और उपभोग के लिये नयी वस्तुएँ प्रस्तुत करते हैं। यह एक सच्ची सेवा है। किन्तु सम्भ्रम और दम्भ की संयुक्ति का युग ही इस विशेष उपयोगिता की पूर्ति करने वाली कृतियों को ललित कला का अलग नाम देगा।[1]

इस अन्तिम उद्धरण से और वस्तुतः डुई के अधिकांश लेखन से ऐसा लगता है कि सब वस्तुएँ 'शिक्षा के लिए' बनायी जाती हैं। उन्होंने कहा कि 'दर्शन शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त है।' और हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कलाएँ शिक्षा का सामान्य व्यवहार हैं। निस्सन्देह मन के जीवन को इस प्रकार शिक्षा की एक प्रक्रिया कहना 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में करना है। किन्तु, मौलिक अनुभववाद की दृष्टि से यह मात्र संयोग नहीं है कि शिक्षा को इतने व्यापक अर्थ में समझा जाये। जैसा अपनी प्रारम्भिक और सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तकों में से एक 'स्कूल ऐण्ड सोसायटी' (स्कूल और समाज) में डुई ने कहा था कला का अनुशासन केवल मानव जीवन के आधारभूत अनुशासन का एक प्रारम्भिक सोपान है। सीखने में शाश्वत कुछ भी नहीं है और इस प्रक्रिया की कोई सीमाएँ नहीं बाँधी जा सकतीं।

'हमारी वर्तमान शिक्षा अत्यधिक विशेषज्ञतापूर्ण एकांगी और संकीर्ण है। यह ऐसी शिक्षा है जो लगभग पूर्णतः सीखने की मध्ययुगीन धारणा से प्रभावित है। अधिकांश यह केवल हमारी प्रकृति के बौद्धिक पक्ष का सीखने की जानकारी एकत्र करने की हमारी आकांक्षा को और शिक्षण के प्रतीकों पर नियन्त्रण प्राप्त करने की इच्छा को ही आकर्षित करती है। उपयोगिता या कला के रूप में बनाने या करने की सृजन या उत्पन्न करने की प्रवृत्तियों और आवेगों को यह आकर्षित नहीं करती। शारीरिक प्रशिक्षण कला और विज्ञान के सम्बन्ध में आपत्ति की जाती है कि वे व्यावसायिक हैं। इनमें मात्र विशेषता की प्रवृत्ति है, यह तथ्य ही इसका बड़ा से बड़ा सम्भव प्रमाण है कि एक विशेषज्ञतापूर्ण लक्ष्य प्रचलित शिक्षा का नियन्त्रण करता है। अगर शिक्षा को लगभग पूरी तरह मात्र बौद्धिक प्रयास मात्र अध्ययन ही न मान लिया गया होता, तो इन सारी सामग्रियों और पद्धतियों का स्वागत होता इनका अधिकतम सत्कार किया जाता।

१ जॉन डुई, 'एक्सपीरियंस ऐण्ड नेचर' (शिकागो, १९२५), पृष्ठ ३९२।

'अध्ययन के व्यवसाय के प्रशिक्षण को संस्कृति का प्रतिरूप माना जाता है उदार शिक्षा माना जाता है, जबकि कारीगर, संगीतज्ञ वकील डाक्टर, किसान व्यापारी या रेल कम्पनी के प्रबन्धक के प्रशिक्षण को पूर्णतः प्राविधिक और व्यावसायिक माना जाता है। फलस्वरूप हम अपने चारों ओर 'सुसंस्कृत' लोगों और 'मजदूरों' का विभाजन सिद्धान्त और व्यवहार का अलगाव देखते हैं। हमारे शिक्षा-जगत् के नेता शिक्षा के लक्ष्य और साध्य के रूप में संस्कृति की व्यक्तित्व के विकास की बातें करते हैं, जबकि स्कूलों के शिक्षण से गुजरने वालों का बहुत बड़ा बहुमत इसे केवल संकीर्ण रूप में व्यावहारिक औजार मानता है, जिसकी मदद से वह एक सीमित जिन्दगी बिताने भर को रोटी कमा सके। अगर हम अपने शैक्षणिक लक्ष्य और साध्य को इतने असमानतापूर्ण ढंग से न देखें, ऐसे लोगों को आकर्षित करने वाली क्रियाओं को भी शैक्षणिक प्रक्रियाओं में सम्मिलित करें, जिनकी मुख्य रुचि करने और बनाने में होती है, तो अपने सदस्यों पर स्कूलों का प्रभाव अधिक जीवन्त अधिक दीर्घ और अधिक संस्कार युक्त हो जायेगा।

'सक्रिय कामों का प्रकृति के अध्ययन प्रारम्भिक विज्ञान कला और इतिहास का समावेश मात्र प्रतीकात्मक और औपचारिक ज्ञान को गौण स्थान पर रखना; स्कूल के नैतिक वातावरण में छात्र और अध्यापक के सम्बन्ध में अनुशासन सम्बन्धी परिवर्तन अधिक सक्रिय अभिव्यंजनात्मक और आत्म-निर्देशक तत्वों का समावेश—ये सब मात्र संयोग नहीं हैं वरन् अधिक व्यापक सामाजिक विकास की आवश्यकताएँ हैं।

'अगर हम एक बार जीवन में विश्वास करें, तो सभी कार्य और उपयोग तो सारा इतिहास और विज्ञान कल्पना के और उसके द्वारा (जीवन की) समृद्धि और व्यवस्था के विकास के उपकरण और संस्कार की सामग्री बन जायेंगे। जहाँ हम आज केवल बाह्य कर्म और बाह्य उत्पत्ति देखते हैं वहाँ सारे दृश्य परिणामों के पीछे मानसिक दृष्टिकोण का पुनस्समंजन है अधिक व्यापक और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि है, बढ़ती हुई शक्ति का अनुभव है और अन्तर्दृष्टि तथा क्षमता दोनों को ही विश्व तथा मनुष्य के हितों से एकरूप मानने की तत्पर योग्यता है। अगर संस्कृति केवल ऊपरी पॉलिश नहीं है पोतल पर सोने का पानी चढ़ाना नहीं है, तो वह कल्पना की व्यापकता लचीलेपन और सहानुभूति की अभिवृद्धि है जब तक कि वह जीवन जिससे व्यक्ति जीता है, प्रकृति और समाज के जीवन से अनुप्रेरित न हो जाये।'

१ जॉन डुई 'दी स्कूल ऐण्ड सोसायटी' (शिकागो, १९००), पृष्ठ ४१-४४, ७१-७१।

डुई की विचार-व्यवस्था में 'लोकतन्त्र' और 'शिक्षा' लगभग पर्यायवाची हैं और दोनों ही शब्दों का उद्देश्य यह व्यक्त करना है कि मौलिक अनुभववाद के सिद्धान्तों पर चलने का क्या अर्थ है।

"लोकतन्त्र यह विश्वास है कि मानवी अनुभव में ऐसे लक्ष्यों और पद्धतियों को जन्म देने की योग्यता है जिनके द्वारा और अधिक अनुभव व्यवस्थित समृद्धि में विकसित हो सके। अन्य हर प्रकार का नैतिक और सामाजिक विश्वास इस विचार पर आधारित है कि अनुभव पर किसी प्रकार का बाह्य नियन्त्रण—अनुभव की प्रक्रिया के बाहर की किसी 'सत्ता' का नियन्त्रण—किसी न किसी बिन्दु पर आवश्यक होता है। लोकतन्त्र यह विश्वास है कि अनुभव की प्रक्रिया किसी विशेष उपलब्ध परिणाम से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। फलस्वरूप उपलब्ध विशेष परिणाम अन्ततः वहीं तक मूल्यवान् होते हैं, जहाँ तक उनका उपयोग चल रही प्रक्रिया को समृद्ध और व्यवस्थित बनाने के लिये होता है। अनुभव की प्रक्रिया में शैक्षिक होने की क्षमता है अतः लोकतन्त्र में आस्था और अनुभव तथा शिक्षा में आस्था एक ही है। सारे साध्य और मूल्य जो चल रही प्रक्रिया से कटे हुए होते हैं रुकावट और बन्धन बन जाते हैं। वे लाभ का उपयोग मार्ग को उन्मुक्त करने और नये तथा बेहतर अनुभवों की ओर निर्देश करने में, करने के बजाय बाँधने की चेष्टा करते हैं।

"अगर कोई पूछे कि इस प्रसंग में अनुभव का अर्थ क्या है तो मेरा उत्तर है कि अनुभव वातावरण की स्थितियों के साथ विशेषतः मानवी वातावरण के साथ व्यक्ति मनुष्यों की अन्योन्य-क्रिया है, जो वस्तुओं की यथास्थिति का ज्ञान बढ़ा कर आवश्यकता और आकांक्षा की पूर्ति करती है। सम्प्रेषण और सहभाव के लिए यथास्थिति का ज्ञान ही एकमात्र ठोस आधार है। अन्य सारे सम्प्रेषण का अर्थ है किन्हीं व्यक्तियों के मत के प्रति किन्हीं अन्य व्यक्तियों की अधीनता। आवश्यकता और आकांक्षा—जिनसे उद्देश्य और ऊर्जा के निर्देशन का विकास होता है—वर्तमान अस्तित्व के आगे जाती हैं और इस कारण ज्ञान और विज्ञान के भी आगे जाती हैं। वे निरन्तर अनदेखे और अनुसन्धेय भविष्य का मार्ग उन्मुक्त करती हैं।'[1]

१ जॉन डुई, 'दी फ़िलॉसफ़र ऑफ़ दी कॉमन मैन' (न्यूयॉर्क, १९४०), में 'क्रिएटिव डेमोक्रेसी—दी टास्क बिफ़ोर अस,' पृष्ठ २२७।

नवाँ अध्याय

•

नये प्रकृतिवाद और यथार्थवाद का उदय

विलियम जेम्स के दो दर्शन

जेम्स की पुस्तक 'प्रिंसिपिल्स ऑफ़ साइकोलॉजी' के दो बड़े-बड़े खण्डों के पाठक का ध्यान रचना के संगठन की असम्बद्धता की ओर जाता है। निश्चय ही उन दिनों (१८९०) मनोविज्ञान एक शिशु-विज्ञान ही था और तब तक उसका कोई परम्परागत ढाँचा नहीं था, फिर भी अध्यायों के अनुक्रम के प्रति लेखक की उदासीनता स्पष्ट है। हर अध्याय अपने आप में एक निबन्ध के रूप में है, और उनमें से कई वस्तुतः लेखों के रूप में प्रकाशित भी हुए थे। किन्तु बहुसंख्यक पाद-टिप्पणियों का पाठक देखेगा कि लगभग हर अध्याय में ही लेखक ने कुछ समस्याएँ उठाई हैं और कहा है कि वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिये इनका हल अनावश्यक या असम्भव है। दर्शन में इन समस्याओं की परिकल्पनात्मक या तत्त्वमीमांसात्मक प्राथमिकता के कारण, वे अन्तिम अध्याय में इनकी चर्चा करने के इरादे से इन्हें स्थगित कर देते हैं। अपने-आप में यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि विक्टोरिया-कालीन तथ्य-घटनावादी सामान्यतः ऐसा करते थे, उसी प्रकार जैसे इधर घटना-क्रिया-वैज्ञानिक कुछ तत्त्वमीमांसात्मक प्रश्नों को सामान्यतः 'ब्रैकेट' कर देते हैं। बहुतेरे दार्शनिक पाठक इस ढंग से भ्रम में पड़ गये और उन्होंने जेम्स की रचना के अधिकांश को मात्र अनुभववाद कह कर छोड़ दिया और जेम्स के दर्शन की रूपरेखा अन्तिम अध्याय में खोजनी चाही। किन्तु यह एक गम्भीर भूल है, क्योंकि 'नेसेसरी ट्रुथ्स ऐण्ड दी एफ़ेक्ट्स ऑफ़ एक्सपीरिएन्स' (आवश्यक सत्य और अनुभव का प्रभाव) शीर्षक अन्तिम अध्याय में, जेम्स *द्वारा उठाये गये परिकल्पनात्मक प्रश्नों में से केवल एक की ही* चर्चा है। इसे उन्होंने 'मनो-उत्पत्ति' की समस्या कहा है, यह प्रश्न कि मानसिक गठन का मूल बीजातीत है या आनुभविक। प्रश्न इस पर वे अपना मत तत्काल

प्रकट कर देते हैं।[1] जिसका सारांश यह है—परात्परतावादी तथ्य के प्रश्न पर सही हैं और प्रकृतिवादी 'कारण' के प्रश्न पर सही हैं। प्रकृतिवादियों से उनका तात्पर्य डार्विनवादियों से था। नैतिक घटनों को समझाने के लिये हर्बर्ट स्पेन्सर द्वारा प्रयोग रीति से 'जाति के अनुभव' का सहारा लेने की जेम्स ने जो आलोचनाएँ की, वह अध्याय भी उनमें से एक है। जेम्स 'कारण' की एक डार्विनवादी व्याख्या के पक्ष में हैं, अर्थात्, मनुष्य का पदार्थीय मानसिक और नैतिक गठन उन बहुतेरे सम्भव 'स्वतःस्फूर्त परिवर्तनों' में से एक है जो घटना क्रम में उपस्थित हुए और वह अपनी उपयोगिता के कारण बचा रहा। ऐसे डार्विनवादी कारण स्पष्टतः प्रकृतिवादी व्याख्याएँ नहीं हैं, वरन् विकासवादी अभिधारणाएँ हैं। इस प्रकार, यह सारी चर्चा इसका एक और उदाहरण है कि एकरूपता में और अनुभव में साहचर्य के नियम की न्यूनाधिक यान्त्रिक क्रिया में स्पेन्सर के विश्वास की अपेक्षा जेम्स प्रकृति के परिवर्तनों की 'स्वतः स्फूर्ति' में डार्विनवादी विश्वास के पक्ष में थे। अपनी मनोविज्ञान में जेम्स जिन उन्नयनवादी पदार्थों का प्रयोग करने के अभ्यस्त थे, उनके लिये प्रकृति में स्वतः स्फूर्ति उन्हें एक अपेक्षया वैज्ञानिक स्थापना प्रतीत होती थी। अनुभव में विचार के कार्यात्मक स्थान सम्बन्धी अपने पुराने लेख के विषय को फिर से उठाकर वे अपने सारे दर्शन का सारांश प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। इसमें वे चार आधारभूत धर्मों के सम्बन्ध परिभाषित करने की चेष्टा करते हैं—

१ यथार्थ या तथ्य जिसका अस्तित्व 'सम्भव आकाश' के रूप में है,

२ अनुभव प्रस्तुत, बिना (विचार के) जवनात्मक कार्य के अन्य अनुभवों की पराश्रयता या हमारे अनुभव की मूल व्यवस्था,

३ विचार, या संकल्प के हित में (२) को विचार के प्राक्-अनुभविक गठन में बैठाता है,

४ संकल्प मनुष्य के निश्चित क्रमिक उद्देश्य, अभिप्रायताएँ।

'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलोजी' में (२) (३) और (४) के परस्पर सम्बन्धों की विवेचना है। इस पुस्तक में जेम्स ने (१) और (४) के सम्बन्ध की चर्चा नहीं की है, जो उनके बाद सामान्य को सम्बोधित लेखों और भाषणों का विषय है, और जिसमें निजी रूप से उनकी आधारभूत नैतिक रुचि थी।[2]

---

१ विलियम जेम्स, 'प्रिन्सिपिल्स ऑफ साइकॉलोजी' (न्यूयॉर्क, १८९०) भाग २, पृष्ठ ६१८।

२, वही, खण्ड २, पृष्ठ ६३४ और 'दी विल टू बिलीव' (न्यूयॉर्क १९०८) में पुनर्मुद्रित निबन्ध सम्बन्धी बाद टिप्पणी।

यथार्थ या तथ्य के सिद्धान्त को न केवल 'साइकॉलोजी' में वरन् अपने सारे लेखन में जेम्स ने इतना ही स्पष्ट कर दाख़ दिया है कि वे अस्तित्व को मान कर चलते हैं या वे एक सरल-विश्वासपूर्ण सामान्य-बुद्धि यथार्थवादी हैं, या कि मायावादी प्रश्न को वे उठा ही नहीं रहे हैं।"[1] उनकी दार्शनिक समस्याओं का विषय भी केवल (२), (३) और (४) के साथ (१) के तथ्य सम्बन्ध हैं।

किन्तु यह तथ्य-विश्लेषण 'मन' के दो बिल्कुल भिन्न विवरणों में बँट जाता है, हर एक अपने में पूर्ण जो इस पर निर्भर है कि वे अपना विश्लेषण (२) से आरम्भ करते हैं या (४) से। (२) पर आधारित दर्शन को उनका 'मन का अन्तर्दर्शनवादी सिद्धान्त' या 'चेतना का घटना-क्रिया-विज्ञान' कहा जा सकता है। साइकॉलोजी में इसका आरम्भ सातवें और आठवें अध्याय में रीति-विज्ञान सम्बन्धी प्रारम्भिक चर्चा के बाद नवें अध्याय से होता है। 'विचार की धारा' (दी स्ट्रीम ऑफ़ थॉट) शीर्षक यह अध्याय १८८४ में ही ऑन सम ओमिशन्स ऑफ़ इन्ट्रॉस्पेक्टिव साइकॉलोजी' (अन्तर्दर्शनात्मक मनोविज्ञान की कुछ कमियाँ) नाम से प्रकाशित हो चुका था। इस निबन्ध में प्रतिपादित विषय किन परिस्थितियों में उनके दिमाग़ में आया इसकी चर्चा उन्होंने स्वयं बाद में की है।

'कई वर्ष पहले, जब टी० एच० ग्रीन के विचार अत्यधिक प्रभावशाली थे उनके द्वारा अंग्रेज़ी 'संवेदनावाद' की आलोचना मुझे काफ़ी परेशान करती थी। उनका एक शिष्य विशेषतः मुझसे हमेशा कहता—'हाँ! सचमुच 'शब्दों' का मूल सम्भवतः संवेदनात्मक हो सकता है। लेकिन 'सम्बन्ध' क्या हैं सिवाय संवेदनाओं पर ऊपर से आने वाले शुद्ध रूप में बुद्धि के और एक उच्चतर प्रकृति के कार्यों के? मुझे अच्छी तरह याद है कि एक दिन यह समझ कर मुझे अचानक कितनी राहत मिली थी कि कम से कम दिक्-सम्बन्ध उन शब्दों के सजातीय हैं जिनके बीच वे मध्यस्थता करते हैं। शब्द स्थान थे और सम्बन्ध बीच में आने वाले अन्य स्थान थे।'[2]

स्थान के प्रत्यक्ष-ज्ञान सम्बन्धी अध्याय में और पुस्तक के इस सारे अंश में जेम्स का ध्यान स्पष्टतः उस समस्या पर है जो अंग्रेज़ी भाववाद की केन्द्रीय समस्या है, अर्थात्, सम्बन्धों को प्रस्तुत करने के लिये कैसे सम्बन्धित किया जा सकता है? जेम्स का सीधा सा उत्तर था कि सम्बन्ध और शब्द दोनों ही प्रस्तुत होते हैं। उन्होंने 'सापेक्षता की भावना' पर ज़ोर दिया। इस आधार पर उन्होंने

---

१ देखिए, 'दी मीनिंग ऑफ़ ट्रुथ' (न्यूयॉर्क, १९०९), पृष्ठ ५० एफ०, १९१।

२. वही, पृष्ठ ११२ एफ।

दसवाँ अध्याय 'दी कान्शसनेस ऑफ़ सेल्फ' (आत्म चेतना) निमित किया जिसमें उन्होंने यह विचार विकसित किया कि 'गुजरता हुआ विचार ही विचारक है।' इसके बाद ग्यारहवें से उन्नीसवें अध्याय तक की परिणति उनके 'यथार्थ के प्रत्यक्ष-ज्ञान' के सिद्धान्त में होती है। इस क्रम के अन्तिम इक्कीसवें अध्याय में वे विश्वास के भावनात्मक पक्ष को उठाते हैं—वे कहते हैं कि कोई विश्वास एक दृष्टिकोण होता है। यहाँ वे स्पष्ट रूप में ह्यूम का अनुसरण करते हैं। अन्त में वे चर्चा का सारांश इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि 'विश्वास और ध्यान एक ही तथ्य है। किसी वस्तु में हम जिसकी ओर ध्यान देते हैं वह यथार्थ होता है।'[1] इस चर्चा को पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ जेम्स निरन्तर एक मनोवैज्ञानिक हैं और वे यथार्थ की चर्चा ऊपर दिये विश्लेषण में (२) के अर्थ में नहीं, वरन् चेतना में यथार्थ के अर्थ या प्रत्यक्ष-ज्ञान के अर्थ में कर रहे हैं।

इस प्रकार 'साइकोलॉजी' के इस मध्य-भाग में चेतना का एक परस्पर सम्बद्ध विवरण है, जिसका आरम्भ प्रस्तुत की 'पशु-व्यवस्था या 'बड़े, फैले, और भरे संभ्रम' से होता है, और जिसकी परिणति विश्वास के मनोविज्ञान में होती है जिससे बाद में उनके व्यवहारवाद का विकास हुआ। मन का यह सारा विवरण प्रस्तुत के रूप में मन सम्बन्धी आन्तरिक तात्कालिक दृष्टि पर ध्यान केन्द्रित करता है और इसमें मुख्यतः उसका विस्तृत निरूपण है जिसे आजकल 'प्रस्तुत की सोद्देश्यता' कहा जाता है। वे 'परिचय ज्ञान और 'सम्बन्ध ज्ञान' या तर्कनात्मक ज्ञान के अन्तर के सन्दर्भ में अपनी स्थिति स्पष्टतः निरूपित करते हैं।[2]

इन शब्दों में उनके मन के सिद्धान्त को परिचय ज्ञान के 'सम्बन्ध में ज्ञान' क्या है, इसका विवरण कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से मन विचारक और गुजरते हुए विचार' की एकरूपता है। और सारा विचारण किसी न किसी प्रकार का दृष्टिकोण या भावना है। दूसरे शब्दों में, चेतना के ऐसे विज्ञान की परिणति भावनाओं के स्वरूप के विश्लेषण में होती है उनके कारणों या परिणामों के विश्लेषण में नहीं। जेम्स का यह सिद्धान्त भावनात्मक जीवन का एक घटना-क्रिया-विज्ञान है, जिसमें विश्वास करने और जानने के दृष्टिकोणों पर जोर दिया गया है।

किन्तु जेम्स की 'साइकोलॉजी' में एक और दर्शन भी है, जिसे हम उनका प्रकृतिवाद या क्रियावाद कह सकते हैं। एक से दस अध्याय से चौदह, और बाद में सम्मीलित इन अध्यायों में उनके द्वारा मानसिक कार्यों के जीव-वैज्ञानिक विवरण

---

१ 'प्रिंसिपिल्स ऑफ़ साइकोलॉजी', भाग २ पृष्ठ ३२८ एन।

२ वही, खण्ड १, पृष्ठ १८४-२२१।

की सम्बद्ध विवेचना है जिसकी परिणति संकल्प की प्रकृतिवादी विवेचना में होती है। वे कहते हैं कि 'मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है'।[1] 'लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास' मानसिक कार्यों की उनकी जीव-वैज्ञानिक परिभाषा है।[2] फिर मस्तिष्क के कार्य के शरीर-क्रियात्मक विश्लेषण के बाद 'आदत' सम्बन्धी उनका प्रसिद्ध अध्याय आता है। वे कहते हैं कि जीव आदतें 'जैव सामग्रियों के लचीलेपन के कारण होती हैं'।[3] तब वे आदत को प्रयत्न से जोड़ते हैं और अपनी विशिष्ट उक्ति निर्मित करते हैं, जो उनके नीतिशास्त्र की एक आधारभूत स्थापना है—'प्रयत्न की क्षमता को जीवित रखें'।[4] इससे वे ध्यान के जीव-विज्ञान पर और तर्कना के पूरे सिद्धान्त पर आ जाते हैं जिसकी परिणति अवधारणा और तर्कना सम्बन्धी दो अध्यायों में होती है। इस सिद्धान्त में महत्वपूर्ण मत यह है—'सार-तत्व का एकमात्र अर्थ उद्देश्यवादी है'।[5] यह वर्णन पशु-बुद्धि या चातुर्य के तर्क-बुद्धि में विकास का सिद्धान्त है। इसमें कहा गया है कि मन का व्यावहारिक रूप में कार्य करना सामान्यीकरण की आदतों पर और कार्य के लिये प्रासंगिक सार-तत्वों का चयन करने की योग्यता पर निर्भर है। यहाँ मन उपर्युक्त (१) के अर्थ में एक प्राकृतिक तथ्य या 'यथार्थ' है और उसकी क्रिया (४) द्वारा नियन्त्रित एक प्रकार का जीवन या कार्य है किन्तु (४) अर्थात् संकल्प भी इन्हीं जीव-वैज्ञानिक तथ्यों के लचीलेपन के तथ्यों के क्षेत्र में है। जेम्स की साइकोलॉजी के इस पक्ष में स्पष्टतः पशु-बुद्धि और मानवी तर्क-बुद्धि के सम्बन्ध में एक विकासवादी दृष्टि है।

जेम्स ने 'साइकोलॉजी' के अन्तिम अध्याय में मन के इन दो बिल्कुल भिन्न सिद्धान्तों को सम्बद्ध करने का प्रयास किया है—चेतना का घटना-क्रिया-विज्ञान (जिसकी परिणति मानसिक रूपों की प्रागनुभव प्रकृति के समर्थन में होती है) और बुद्धि का जीव-विज्ञान (जिसकी परिणति प्राकृतिक स्वतःस्फूर्ति में उनके विश्वास में होती है)।

कई वर्षों तक जेम्स दोनों दर्शनों पर कुछ-कुछ स्वतन्त्र रूप में कार्य करते रहे, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कभी-कभी उन्हें अनुभव होता था कि वे बड़े गहरे फँस गये हैं। जिन दो दृष्टिकोणों से जेम्स बँधे हुए थे उनके आधारभूत

---

१ वही, खण्ड १, पृष्ठ १८३।
२ वही, खण्ड १, पृष्ठ ५, ११।
३ वही, खण्ड १, पृष्ठ १०५।
४ वही, खण्ड १, पृष्ठ १२६।
५ वही, खण्ड २, पृष्ठ ३३५।

अन्तर के सम्बन्ध में जेम्स की चेतना का एक दयनीय उदाहरण उनके द्वारा भावनात्मक आधार पर 'स्वचालित सम्म सिद्धान्त' की आलोचना में मिलता है। वे मन की एक पूर्णतः यान्त्रिक व्याख्या पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे जब (अपने अनुमान के बीच) उन्हें यह ख्याल आया कि कोई स्वचालित प्रेमिका यान्त्रिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष होने पर भी पारस्परिक संवेदना बोध या आन्तरिकता के अभाव में पूर्ण या सन्तोषजनक प्रेमिका नहीं होगी। उस समय और उसके बाद बार-बार उन्होंने कहा कि उद्देश्य या मन का एक पूर्णतः प्रकृतिवादी दर्शन कभी भी 'मनुष्यों' के लिए संतोषजनक नहीं होगा वैज्ञानिकों को यह चाहे जितना विश्वसनीय लगे।१०

अन्त में, अपने दर्शन में निहित टकराव के सम्बन्ध में उनकी चिन्ता ने यह निर्णय करने की असमर्थता का रूप लिया कि विचारों का संयोजन हो सकता है या नहीं। उनके सामने द्विविधा थी कि वे या तो मानसिक अणुओं में विश्वास करें या सर्वमनोवाद में क्योंकि दोनों को ही वे अपने अनुकूल नहीं पाते थे। यहां बर्गसन ने यह विश्वास दिला कर उनकी रक्षा की कि उनका भावनात्मक 'एकरूपता का तर्क एक स्वाम्य बुद्धिवाद' था।

किन्तु जेम्स यहीं रुके नहीं।११ मान कर कि चेतना स्वयं कोई अस्तित्व न होकर एक अनुभव है, उन्होंने मन के एक सम्बन्धात्मक सिद्धान्त का विकास किया, जिसे उन्होंने 'शुद्ध अनुभव का दर्शन' कहा यद्यपि परवर्ती यथार्थवादियों ने उसकी व्याख्या 'वस्तुपरक सापेक्षवाद' के रूप में की। किन्तु इस नये यथार्थवाद पर नजर डालने से पहले जिसकी ओर जीवन के अन्तिम वर्षों में जेम्स का झुकाव था हमें इस विकास के विवरण को बीच में ही छोड़ कर, देखना होगा कि जेम्स के एक छात्र ने उनके मनोविज्ञान के विरोधी विचारों को किस प्रकार एक व्यवस्थित द्वैतवाद में विकसित किया।

सान्तायना का व्यवस्थित द्वैतवाद

कुछ अमरीकी यथार्थवादी अब भी सान्तायना के शब्दों का प्रयोग धर्म वाक्यों की तरह करते हैं इसलिए नहीं कि वे एक यथार्थवादी दार्शनिक थे वरन् इसलिए कि उनकी भाषात्मक आलंकारिकता यथार्थवादी उपदेशों के लिये अति उत्तम सामग्री है। उन्होंने यथार्थवादी आन्दोलन को सर्वप्रथम ही व्याख्या और उत्साह दोनों ही प्रदान किये। उन्होंने अमरीकी यथार्थवाद के लिये एक

प्राकृतिक आधार' और एक 'आदर्श परिपूर्ति' दोनों का निरूपण किया। फिर भी सान्तायना स्वयं कभी आधे दिल से ज्यादा यथार्थवादी नहीं रहे और अमरीकी तो उतने भी नहीं। अमरीकी यथार्थवादी मत के सर्वाधिक सामान्य और आधारभूत अंशों में से एक विज्ञान के प्रति निष्ठा है। यथार्थवाद की महत्त्वाकांक्षा अब भी एक ऐसी तत्त्वमीमांसा या कम से कम अस्तित्व का सिद्धान्त निर्मित करने की है, जो पूर्णतः वैज्ञानिक हो। सान्तायना में यह आवेग बहुत कम था और यथार्थवाद के विचारों में मुख्यतः उनके मित्र चार्ल्स आगस्टस स्ट्रांग उन्हें खींच लाये। इस विचार से सान्तायना की रचना 'स्केप्टिसिज्म ऐण्ड ऐनिमल फ़ेथ' (संशयवाद और पशु आस्था—१९२३) का जन्म हुआ जिसमें निश्चय ही उनका तत्त्ववाद अपने सर्वोत्तम रूप में व्यक्त हुआ है। (सान्तायना के प्रकृतिवाद का विवरण छठें अध्याय में 'कुलीन प्रकृतिवाद' के अन्तर्गत देखिए।) बाद में जब उन्होंने अपने 'अस्तित्व के 'चार' क्षेत्रों' की खोज की तो 'आत्मा के जीवन' पर इतना जोर दिया कि उनके अधिकांश वैज्ञानिक दृष्टि वाले और यथार्थवादी मित्र बड़े आशंकित हुए। उनका ख्याल था कि सान्तायना इटली से सम्भवतः पवित्र रोम (रोमन कैथोलिक चर्च) से प्रभावित हो गये थे। उन्होंने स्वयं कहा कि उनके स्टायको मित्र वियोन विचारों ने उन्हें आत्मा को गम्भीरता से लेना सिखाया था। इसका मतलब था कि उन्होंने तर्कबुद्धि की अपेक्षा अन्तःप्रज्ञा को विज्ञान की अपेक्षा कल्पना को अधिक गम्भीरता से लेना सीख लिया। जब उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचना 'रीज़न इन कॉमन सेन्स' (सामान्य-बुद्धि में तर्कना) को देखा तो उसके सम्भ्रमों से उन्हें बड़ा धक्का लगा, और उन्होंने सोचा कि उसे पूरी तरह फिर से लिखें। किन्तु, फिर यह सोच कर कि ऐतिहासिक संकेत-चिह्न के रूप में उसका कुछ मूल्य है, वे एक नयी भूमिका लिख कर ही सन्तुष्ट हो गये। 'रीज़न इन कॉमन सेन्स' से 'स्केप्टिसिज़्म ऐण्ड ऐनिमलफ़ेथ' को संक्रमण जेम्स के मनोविज्ञानों से द्वैतवादी यथार्थवाद के उदय की कहानी है।

'रीज़न इन कॉमन सेन्स' में 'दा लाइफ़ ऑफ़ रीज़न' (तर्कना का जीवन) का भूमिका-ग्रन्थ है, जेम्स के विचार प्रभावी हैं यद्यपि पुस्तक की भाषा शास्त्रीय है। पुस्तक के नाम में सामान्य-बुद्धि (कॉमन-सेन्स) का प्रयोग एक अनोखे किस्म का प्रमाद है, क्योंकि यह शब्द पुस्तक के अन्दर कहीं नहीं आता। यह स्पष्ट है कि सान्तायना इस शब्द का प्रयोग किसी प्राविधिक अर्थ में न करके जेम्स की भांति सरल विश्वासपूर्ण यथार्थवाद प्राकृतिक ज्ञान की वैधता पर बहस करने की अनिच्छा और अनुभव के सामान्य तथ्यों को पूर्ण-हृदय स्वीकृति को व्यक्त करने के लिये कर रहे थे। इस ग्रन्थ में जेम्स को 'साइकॉलॉजी' की भांति, मनुष्यों

में तर्कबुद्धि के विकास की प्राकृतिक या जीव-वैज्ञानिक व्याख्या का वर्णन है। विवरण कुछ इस प्रकार है—चेतना की धारा 'प्रवाह' और संकल्प या 'मूल प्रकृति' की जैविक एकता से दो प्रकार के 'मूर्तन' उत्पन्न होते हैं। किस प्रकार का मूर्तन उत्पन्न होता है यह इस पर निर्भर है कि अनुभव 'समानता के साहचर्य' द्वारा संगठित होता है या 'सन्निकटता के साहचर्य' द्वारा। 'मूर्तन' (कौंक्रीशन्स) एक चतुराई से गढ़ा गया अस्पष्ट शब्द है, जो अनुभव के 'स्फुरण' (फ्लिकरिंग) सम्बन्धी जेम्स की धारणा को व्यक्त करता है। समानता द्वारा साहचर्य पर आधारित मूर्तन, विचार या सार-तत्व या 'सम्भाषण में मूर्तन' होते हैं। सन्निकटता द्वारा साहचर्य पर आधारित मूर्तन 'वस्तु' होते हैं।[1] सार-तत्व के प्रत्यक्ष-ज्ञान' का वर्णन जेम्स की भाँति सान्तायना को भी इस स्थापना की ओर ले जाता है कि 'शुद्ध विचार व्यावहारिक होता है।'[2]

'प्रवाह' के सम्पूर्ण विषय का सूत्रपात अस्तित्व की अव्यवस्था [इसी अध्याय के पिछले खण्ड में वर्णित (१) के अर्थ में जेम्स का 'यथार्थ'] जिसे हम मान कर चल सकते हैं और मानवी अनुभव में प्रारम्भिक अव्यवस्था 'अव्यवस्थित' भावना की तात्कालिकता के बीच अन्तर से होता है। जेम्स की भाँति सान्तायना इन दोनों को एक दोहरी 'अव्यवस्था' के रूप में देखते हैं। वे घटनाओं के क्रम को 'परम प्रवाह' कहते हैं और इन्द्रिय-बोधन के प्रवाह को उसका एक उदाहरण मानते हैं। वे इस अव्यवस्था को प्रकृति नहीं कहते वरन् 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग आदर्शवादियों की भाँति प्रकृति की व्यवस्था के 'विचार' के लिये करते हैं, जिसका उदय सामान्य बुद्धि में होता है, किन्तु जिसे भौतिक विज्ञान और दार्शनिकों के विचार में ही पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। मूल प्राकृतिक शक्तियाँ, जिनका वे यहाँ जिक्र करते हैं 'मूल-प्रवृत्तियाँ' या अनुभव के तर्कहीन आवेग हैं।[3] आमतौर पर यह स्पष्ट है कि 'रीज़न इन कॉमन सेन्स' में जेम्स की भाँति हर जगह भाववादी शब्दावली का अपने ढंग से प्रयोग किया गया है। सान्तायना की भाषा जेम्स की अपेक्षा शोपेनहॉर के अधिक निकट है किन्तु विचार जेम्स के अधिक निकट हैं। 'यथार्थ' और 'घटनात्मक' में अन्तर है, लेकिन अलगाव नहीं।

बीस वर्ष बाद, दूसरे संस्करण की भूमिका में सान्तायना ने स्वयं इस अस्पष्टता का जिक्र करके स्वीकार किया है कि 'दी लाइफ ऑफ रीज़न'

---

१ विशेषतः 'रीज़न इन कॉमनसेन्स' देखिए, (न्यूयॉर्क, १९०५) पृष्ठ १६१-१६३।

२. वही, पृष्ठ १६६-१८२।

३ वही, पृष्ठ १८-४१।

सिखाने के बाद उन्होंने प्रकृति को अधिक गम्भीरता से और मनुष्य के मामलों को कम गम्भीरता से लेना सीखा। उन्होंने कहा कि इन्द्रिय-चेतन से प्रकृति का उदय बताने में उनका तात्पर्य प्रकृति सम्बन्धी विचार से था क्योंकि प्रकृति कभी किसी वस्तु से उदित नहीं होती।

'स्केप्टिसिज्म ऐण्ड ऐनिमल फ़ेथ' (१६२३) में जीव-वैज्ञानिक प्रकृतिवाद और अन्तर्दर्शनात्मक अनुभववाद का यह सारा मिश्रण जो जेम्स की और प्रारम्भिक काल में सान्तायना की विशेषता है, लुप्त हो जाता है। यहाँ प्रस्तुत और विश्वस्त के बीच एक बहुत ही साफ़ अलगाव है। चेतना के अस्तित्व के सम्बन्ध में जेम्स के परवर्ती सन्देहों की स्वयं अपनी व्याख्या करते हुए वे साफ़ कहते हैं कि किसी भी प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व नहीं है। मानव मन ('मानव' सान्तायना की शब्दावली में एक नया और महत्वपूर्ण शब्द) के दो मुख्य भिन्न कार्य होते हैं—प्रस्तुत की अन्तःप्रज्ञा और अप्रस्तुत में पशु आस्था। मात्र परिचय या तात्कालिकता, किसी भी अस्तित्व का ज्ञान नहीं है। फिर भी, उसकी अपनी उपयुक्त वस्तुएँ होती हैं अर्थात्, सारतत्व। यहाँ समानता द्वारा साहचर्य का सारा सिद्धान्त जिस पर उन्होंने और जेम्स ने सार-तत्व के प्रत्यक्ष ज्ञान सम्बन्धी अपनी उद्देश्यवादी दृष्टि को आधारित किया था समाप्त हो जाता है। उसके स्थान पर यह घटना-क्रियात्मक प्रतिपादन है कि किसी आधार-सामग्री की उपस्थिति मात्र में बिना किसी विश्वास के कोई पहचानी जा सकने वाली वस्तु निहित होती है। शुद्ध अन्तःप्रज्ञा के ऐसे कार्य में एक आध्यात्मिक अनुशासन आवश्यक है, क्योंकि सामान्यतः मन अपनी पशु-आस्था या मूल प्रवृत्ति को व्यक्त किये बिना नहीं रहता। सार-तत्वों में उद्देश्यवादी रुचि की सामान्य या 'पशु' आदतों का मुकाबला करने के लिये, सान्तायना अब तटस्थता या मनन की आदतों के विकास पर ज़ोर देते हैं। अब उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि केवल अस्तित्व के प्रसंग में सार-तत्वों के बारे में सोचने का अर्थ है अनुशासन से विज्ञान के पक्ष में कल्पना का पशु आस्था के प्रयास के पक्ष में सार-तत्व के उपभोग का बलिदान करना।

दूसरी ओर, 'स्केप्टिसिज्म ऐण्ड ऐनिमल फ़ेथ' में वे बताते हैं कि उन्होंने सर्वप्रथम 'प्रकृति सम्बन्धी संकोच के कारण' अन्तःप्रज्ञा की चर्चा करना आवश्यक समझा। उनका मौलिक संशयवाद मुख्यतः रीतिविधान सम्बन्धी है, प्राकृतिक ज्ञान के सिद्धान्त में चेतना से ही छुटकारा पाने का एक ढंग है। तदनुसार, हम देखते हैं कि उनकी विचार-व्यवस्था का 'पशु आस्था' वाला भाग बड़ा ही कट्टर आचरणवाद' (बिहेवियरिज्म) है, जैसा कि ऐसे सिद्धान्तों को अमरीका में कहा जाने लगा है। संशयवाद को रीतिविधान सम्बन्धी श्रद्धांजलि देने के बाद ह्यूम की भाँति वे जिस आस्था के कार्य की ओर मुड़ते हैं वह

केवल जेम्स के समान, परन्तु बुद्धि का कार्य होने के अर्थ में तो 'परन्तु' नहीं है। सान्तायना के लिए मन यह मुद्राओं, संस्कारों, सामाजिक आकृतियों की एक भावक वस्तुपरक व्यवस्था है। अपने ज्ञान और दूसरों के ज्ञान दोनों के ही लिये अर्थों या भौतिक गतियों के माध्यम से ही इन्द्रियजन्य प्रतीकात्मक समझ है। इस कारण कि सारतत्त्वों की चेतना या शुद्ध अन्तःप्रज्ञा में आत्म-चेतना निहित नहीं है। जिस प्रकार अन्तःप्रज्ञात्मक ज्ञान का सिद्धान्त पूरी तरह सार तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित है उसी तरह अस्तित्व सम्बन्धी ज्ञान पूरी तरह प्राकृतिक वस्तुओं के बीच बाह्य सम्बन्धों पर आधारित है। परन्तु आस्था और अस्तित्व सम्बन्धी ज्ञान के सान्तायना के आवरणवादी सिद्धान्त ने ही अमरीकी यथार्थवाद और नये प्रकृतिवाद के साहित्य में विशेष भाग लिया है।

किन्तु सान्तायना स्वयं अन्त तक अपने व्यवस्थित द्वैतवाद को विकसित करते रहे और सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में ही सम्पूर्ण जीवन और व्यावहारिक ज्ञान में निहित वैराग्य को स्वीकार करते रहे। वे अधिकाधिक एक संन्यासी का सा जीवन बिताने लगे और अधिकाधिक 'शुचिता और प्रभुता' से अपनी मुक्ति में आनन्दित हुए। अपनी अन्तिम पुस्तकों में से एक 'दी आइडिया ऑफ क्राइस्ट इन दी गॉस्पेल्स' (धर्म-सिद्धान्तों में ईसा सम्बन्धी विचार) में उन्होंने 'रूपान्तरित उद्धारक' को चित्रित करने की अपनी बड़ी पुरानी इच्छा को सन्तुष्ट किया। इसमें उन्होंने ईसा के जीवन के उस अंग को लिया है जो 'पुनर्जीवन' और 'स्वर्गारोहण' के बीच में आता है, जब सान्तायना के शब्दों में उनका एक पैर धरती पर था और दूसरा स्वर्ग में। ऐसा जीवन सान्तायना को न केवल दिव्य वरन् मानवी दृष्टि से भी अति उत्तम प्रतीत होता है।

'क्या अब ऐसा प्रतीत नहीं होने लगा कि नग्न आत्मा का एकाकीपन आखिर एकाकी न हो? जिस अनुपात में हम अपने गर्व, अधिकारों और दायित्वों का परित्याग करते हैं उस सीमा तक क्या हम अधिक ताजी और स्वास्थ्यवर्धक वायु में साँस नहीं लेने लगते? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हर वस्तु का परित्याग हर वस्तु को परिशुद्ध कर दे और हर वस्तु को उसके वास्तविक यथार्थ रूप में हमें वापस कर दे और साथ ही हमारे संकल्पों को भी परिशुद्ध करते हुए, हमें उदार बनने की क्षमता प्रदान करे।'[1]

अमरीका में भी इस प्रकार के शब्दों जैसे सम्बोधन की व्यापक प्रतिक्रिया होती है, किन्तु ऐसे आदर्शों के समक्ष समर्पण करते समय हम अमरीकी यथार्थवाद की भावना से बहुत दूर होते हैं।

---

१ स्पिनोज़ा के सम्मान में दिये गये एक भाषण 'अल्टिमेट रिलिजन' से।

मर्मों का व्यवहारवादी मिलन

१९०४ के अपने निबन्ध 'क्या चेतना का अस्तित्व है' में और 'मौलिक अनुभववाद' पर अपने बाद के निबन्धों में विलियम जेम्स ने उस द्वैतवादी दर्शन का साफ शब्दों में खण्डन किया जिसे एक 'नव-कॉण्टवादी' के रूप में उन्होंने मान्यता दी थी। और साथ ही व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ के अन्तर का जिसे वे द्वैतवाद का अन्तिम दुर्ग समझते थे ध्वंस करने में लग गये। अपने सम्बन्धों के अनुसार, वही 'वस्तुएँ' या 'पद' व्यक्तिपरक या वस्तुपरक रूप में कार्य कर सकते हैं। चेतना के बारे में सम्बन्धात्मक दृष्टि अपनाने के बाद जेम्स अब सरल-विश्वासपूर्ण यथार्थवादी नहीं थे। 'अस्तित्व के द्रव्यमय आकाश' और 'ऐन्द्रिक अनुभव की अव्यवस्था' के बीच सामान्य-बुद्धि का अन्तर करने के बजाय उन्होंने एक नये पदार्थ का आविष्कार किया जो अपने में दोनों को ही समाविष्ट करे और जो परिभाषा से न वस्तुपरक हो न व्यक्तिपरक। इस 'तटस्थ' सत्ता को उन्होंने 'शुद्ध' अनुभव कहा। अनुभववादी दृष्टि से उन्होंने इसे द्रव्य के स्थान पर रखा।

चेतना के संयोजन के किसी बोधगम्य सिद्धान्त की आवश्यकता स्वीकार करने के बाद से जेम्स इस दिशा में परिकल्पनाएँ करते रहे थे। 'शुद्ध अनुभव' का यह नया पदार्थ उनकी समस्या को हल करता प्रतीत हुआ क्योंकि मानसिक स्थितियों को अन्तरों में संयोजित करने के सम्बन्ध से उत्पन्न कठिनाइयों को वे अब सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओं में रूपान्तरित कर सकते थे। जैसा उन्होंने भाववाद के विरुद्ध अपने प्रारम्भिक निबन्धों में कहा था, सम्बन्धों का वस्तुपरक यथार्थ रहते हुए भी उनका व्यक्तिपरक अनुभव किया जा सकता था। अब वे अपने विचार की धारा के सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या, सन्दर्भों या सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओं की विविधता के सिद्धान्त के सन्दर्भ में कर सकते थे। इन सम्बन्धात्मक व्यवस्थाओं में 'शुद्ध' या तात्कालिक अन्तर्वस्तु, भिन्न संज्ञानात्मक उद्देश्यों के लिये व्यवस्थित की जा सकती थी। किन्तु 'शुद्ध' या तात्कालिक अनुभव का रूपक उनके यथार्थवाद के लिए दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरूप उन्होंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस तटस्थ क्षेत्र की व्याख्या भावनात्मक अनुभव के सन्दर्भ में की। भावनाएँ, विचार नहीं होतीं और इस कारण परम्परागत अर्थ में मानसिक नहीं होतीं। जेम्स ने इन्हें 'भावात्मक तथ्य' कहा और यह तर्क दिया कि इन तथ्यों का अविच्छिन्न तत्त्वमीमांसात्मक महत्त्व है, क्योंकि ये तर्कनात्मक ज्ञान और विज्ञान की अवधारणाओं की अपेक्षा 'यथार्थ के अधिक निकट' होते हैं। भावनाओं

के सारवान् होने के सिद्धान्त के पीछे काफ़ी बड़ी पृष्ठभूमि थी। इन निहितार्थों को समझते हुए, जेम्स ने अपने मौलिक अनुभववाद के स्वच्छन्दतावादी तात्पर्यों को समझा। कुछ तत्त्वमीमांसकों ने जिनमें ह्वाइटहेड प्रमुख थे इस विचार का वैज्ञानिक उपयोग करने की चेष्टा की। किन्तु अमरीकी यथार्थवादियों के विशाल बहुमत ने इसके व्यक्तिपरक और स्वच्छन्दतावादी दोषों के कारण इसे अस्वीकार किया। वे 'तटस्थ एकत्ववाद' की भाषा ज्यादा पसन्द करते थे।

इस बीच में, यह समझकर कि शुद्ध अनुभव का यह सिद्धान्त अनुभववाद के पहले से ही सम्भ्रमित लोगों में अधिक सम्भ्रम उत्पन्न कर रहा था जेम्स के कुछ मित्र, विशेषतः सी० ए० स्ट्रांग और डिकिन्सन मिलर व्यवहारवादी पद्धति से प्राप्त एक सुझाव लेकर उनकी रक्षा को आये। उन्होंने जेम्स से आग्रह किया कि वे मनोवैज्ञानिक के रूप में तात्कालिकता सम्बन्धी अपनी व्यस्तता को छोड़ें और सामान्य वस्तुओं के एक व्यवहारवादी सिद्धान्त का विकास करें। उन्होंने जेम्स का ध्यान इस तथ्य की ओर खींचा कि एक प्रारम्भिक लेख में उन्होंने स्वयं बताया था कि कई मनों में किस प्रकार सामान्य वस्तुएँ हो सकती हैं। व्यवहारवादी आधारों पर, क्या न ऐसा माना जाये कि विषय का सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यह सामान्य विषय आवश्यकता या निरपवाद का विषय उतना नहीं है, जितना अपने प्रत्यक्ष-ज्ञान की वस्तुओं के स्थान-निर्देश के लिये प्रयुक्त बहुतेरे निरीक्षकों का एक संयुक्त सन्दर्भ। और स्थान-निर्देश की इस प्रक्रिया की व्याख्या वस्तुपरक रीति से, सामाजिक रीति से की जा सकती है। जेम्स ने यह सुझाव सहर्ष स्वीकार किया और अपने मौलिक अनुभववाद में इसे समाविष्ट करने की चेष्टा की। जब आपके मोमबत्ती बुझाने पर मेरी मोमबत्ती भी बुझ जाती है, तो हम ऐसा क्यों न कहें कि हमारी एक सामान्य मोमबत्ती है? जेम्स ने कहा कि हमारी मोमबत्तियों के इस तरह आचरण करने पर हमारे मन मिलते हैं। जेम्स के दर्शन में चेतना के संयोजन सम्बन्धी उनके चिन्तनों का स्थान अब मनों का व्यवहारवादी मिलन की इस व्याख्या ने ले लिया। और विचित्र बात है कि इस सिद्धान्त को उन्होंने प्राकृतिक यथार्थवाद कहा। इससे उनके कई मित्रों और अनुयायियों को व्यवहारवादी पद्धति के साथ यथार्थवाद को जोड़ने में सहायता मिली किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जेम्स स्वयं अपने व्यवहारवाद और अपने 'प्राकृतिक यथार्थवाद' के सम्बन्ध को नहीं देख पाये।

फिर भी जेम्स और उनके साथी यथार्थवादियों के लिए, सिद्धान्त के इस मोड़ का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि उनके ज्ञान-मीमांसीय विचारों के अधिक निकट आ गये। जेम्स ने इस ओर संकेत किया कि हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान की वस्तुएँ

चाहे जितनी भी निजी क्यों न हों हम उनकी स्थिति सार्वजनिक स्थान में देखते हैं। व्यवहारवादी दृष्टि से रसेल और व्हाइटहेड का यह कथन सच नहीं है कि हम अपने प्रत्यक्ष ज्ञानों को पहले निजी स्थान में रखते हैं और फिर अपने स्थान को अन्य मनों के स्थानों पर परस्पर सम्बद्ध करना सीखते हैं। हमारे परिप्रेक्ष्य के अन्दर सार्वजनिक अन्तर होते हैं और एक सामान्य परिप्रेक्ष्य-स्थल या सन्दर्भ-क्षेत्र उनकी पूर्व-मान्यता होती है। इस प्रकार, जेम्स ने कहा कि 'दो या अधिक मनों की *शाब्दिक दृष्टि से एक सी अन्तर्वस्तु' पर विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं है।*[1]

ऐसे विचारों ने अपेक्षया के एक नये जगत् का ही मार्ग उन्मुक्त कर दिया और अमरीकी यथार्थवादियों को प्रेरित किया कि वे प्रत्यक्ष-ज्ञान की समस्याओं से सम्बन्धित अपनी ज्ञान-मीमांसात्मक व्यस्तता को छोड़ कर उन विचारों में बसें जो यूरोप में विज्ञान के दर्शन में पहले ही प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उन्होंने एक सम्बन्धों में अनुभववाद का एक नये सापेक्षवाद का मार्ग प्रशस्त किया। विलियम जेम्स इन विचारों तक मनोवैज्ञानिक विचारण के माध्यम से पहुँचे थे अतः अमरीका में मनोविज्ञान और अनुभववाद को जोड़ने में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योग दिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अन्यत्र कहीं से भी अधिक अमरीका में एक प्राकृतिक यथार्थवाद' की उपलब्धि एक मौलिक अनुभववाद' के माध्यम से हुई। अनुभव के विचार को विस्तार देकर उसमें न केवल भावना के क्षेत्र को बल्कि सामान्य क्रिया के क्षेत्र को भी सम्मिलित कर लेने से अमरीकी यथार्थवाद को इस योग्य बनाया कि वह आनुभविक पद्धति के प्रति अपनी निष्ठा को बनाये रखे। मौलिक' यथार्थवाद जैसा कि इसके कुछ अनुयायी इसे कहना पसन्द करते हैं जिस पर जेम्स और अन्य अमरीकी पहुँचे कोई सरल-विश्वासपूर्ण यथार्थवाद नहीं है। और न ही यह अमरीकियों के लिये एक स्वाभाविक' दृष्टिकोण था। यह परिश्रम से प्राप्त एक प्राविधिक उपलब्धि थी।

छह संघर्षरत यथार्थवादी

१९१० में, अर्थात्, लगभग जेम्स की मृत्यु के समय उनके कई भूतपूर्व छात्रों ने मिल कर भाववाद पर आक्रमण किया। दैविक क्षेत्रों में अब भी

---

१ विलियम जेम्स 'एसेज इन रेडिकल एम्पिरिसिज़्म' (न्यूयार्क, १९१२), पृष्ठ ८५।

भाववाद दृढ़ता से जमा हुआ था। (सातवें अध्याय में 'भाववाद की धाराएँ' के अन्तर्गत देखिए।) हार्वर्ड में जोसिया रॉयस अब भी उसके उत्साहपूर्ण समर्थक थे। कॉर्नेल में 'सेज स्कूल ऑफ फिलॉसफी' पनप रहा था और बोसांक्वे के युवा शिष्यों को सारे देश में शैक्षिक पदों पर भेज रहा था। नवनिर्मित अमरीकी दार्शनिक संघ का नेतृत्व भी भाववादी था। व्यवहारवादियों से और विलियम जेम्स की महान् लोकप्रियता से परेशान होने के बजाय भाववादियों ने व्यवहारवादी यथार्थों से उत्पन्न 'व्यक्तिनिष्ठावाद' और सम्भ्रम का पूरा उपयोग किया और परम भाववाद को दर्शन में वस्तुपरकता के एकमात्र पक्ष के रूप में प्रस्तुत किया। युवा यथार्थवादियों के एक समूह ने अपना अवसर देखा—वे भाववादियों से वस्तुनिष्ठा का झण्डा छीनने को तत्पर हुए।

इस समूह के नेता राल्फ बार्टन पेरी थे। विलियम जेम्स जिस अनुकूल ढंग से यथार्थवाद की ओर, विशेषतः पेरी द्वारा निरूपित यथार्थवाद की ओर बढ़े थे उससे उन्हें बड़ा सन्तोष मिला था। पेरी दर्शन को अन्तर्दर्शनात्मक मनोविज्ञान और ज्ञान-मीमांसा के सम्पर्क से बाहर निकालने को उत्सुक थे ताकि उसे अधिक वस्तुपरक विज्ञानों से सम्बद्ध कर सकें विशेषतः प्राकृतिक विज्ञानों और सम्बन्धों के तर्कशास्त्र के साथ। १९१० के आरम्भ में 'जर्नल ऑफ फ़िलॉसफ़ी' में प्रकाशित 'दी ईगो-सेंट्रिक प्रेडिकामेण्ट' (स्व-केन्द्रिक स्थिति) शीर्षक लेख से उन्होंने अपना अभियान आरम्भ किया। यह भाववादी पद्धति से स्वतन्त्रता की घोषणा थी और इस घोषणा के समर्थन में जो तर्क दिया गया उसे संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

'कर्ता (व्यक्ति) के रूप में स्पष्टतः मैं कोई वस्तु खोज रहा हूँ। जो कुछ भी मैं पाता हूँ वह 'अपने आप ही' मेरी अपनी वस्तु है। अतः कोई ऐसी चीज नहीं खोजी जा सकती जो मेरे लिये या किसी अन्य व्यक्ति के लिए 'प्रस्तुत' न हो। हर ज्ञात वस्तु किसी की ज्ञात होगी। ज्ञाता का ज्ञात से अलग करना असम्भव है। इस स्पष्ट तथ्य में ज्ञान की सामान्य प्रक्रिया या स्थिति का वर्णन है किन्तु जब इसका सामान्यीकरण किया जाता है, जैसा भाववादी करते हैं तो वह महत्त्वहीन हो जाता है। इसका अर्थ केवल इतना हो जाता है कि जो कुछ ज्ञात है वह ज्ञात है। भाववादियों के बावजूद, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि सभी वस्तुएँ ज्ञात हैं या कि उनका अस्तित्व केवल व्यक्तियों की वस्तुओं के रूप में है। अतः ज्ञान की स्थिति में जिसमें स्व-केन्द्रिक स्थिति वास्तविक है और अस्तित्व के अन्य ज्ञात प्रकारों के बीच अन्तर करना आवश्यक है। इसलिए कि ज्ञात सम्बन्धों में स्वाधीनता का सम्बन्ध भी है। दूसरे शब्दों में स्व-केन्द्रिक स्थिति के बावजूद स्वाधीन और पराधीन वस्तुओं के अन्तर का पता लगाना

सम्भव है। अतः स्व-केन्द्रिक स्थिति सार-तत्वीय नहीं है और तत्वमीमांसा, ज्ञान के सिद्धान्त पर निर्भर नहीं है।

इस तर्क का लक्ष्य स्पष्ट था। अमरीकी यथार्थवादी तत्वमीमांसात्मक विश्लेषण के व्यापक क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेष क्षेत्र के रूप में व्यक्तिनिष्ठ और प्रत्यक्ष-ज्ञान की समस्याओं की चर्चा करने को तैयार थे किन्तु वे सारे अस्तित्वों को वस्तुओं या व्यक्तियों में और सारे सम्बन्धों को संज्ञानात्मक सम्बन्धों में सीमित करने को तैयार नहीं थे। वे अपने अहम् से इनकार नहीं कर रहे थे किन्तु अब वे उसे केन्द्रिय बनाने को तैयार नहीं थे—वे सम्बन्धों का वस्तुपरक विश्लेषण करना चाहते थे। वे भाववाद-केन्द्रिक स्थिति से ऊब गये थे।

पेरी के साथ शामिल होने वालों में एक विलियम पेपरेल मॉन्टेगू थे जो हार्वर्ड में पेरी के छात्र रह चुके थे और बाद में कोलम्बिया विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफ़ेसर थे दूसरे अन्तर्दर्शन-विरोधी मनोवैज्ञानिक ई० बी० होल्ट थे और तीन अन्य व्यक्ति थे जिनके परवर्ती प्रकाशन यथार्थवादी आन्दोलन के लिये विशेष महत्व के नहीं थे। 'जर्नल ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी' के सम्पादक एफ़० जे० ई० वुडब्रिज और वेण्डेल टी० बुश दोनों ही भाववाद के विरुद्ध विवाद के लिये तैयार थे। उन्होंने अपनी पत्रिका में इन यथार्थवादियों को उदारता से स्थान दिया। मॉन्टेगू ने 'दी न्यू रियलिज़्म ऐण्ड दी ओल्ड' (नया और पुराना यथार्थवाद) शीर्षक एक लेख लिखा। यह भी भाववादी पद्धति के प्रति अधैर्य की घोषणा थी। और २१ जुलाई १९१० को 'जर्नल ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी' में 'दी प्रोग्राम ऐण्ड फ़र्स्ट प्लैटफ़ार्म ऑफ़ सिक्स रियलिस्ट्स' (छह यथार्थवादियों का कार्यक्रम और प्रथम मंच) प्रकाशित हुआ।[1]

सहयोग के प्रथम कार्य के रूप में इन छह 'नये' यथार्थवादियों ने (रॉयस और सान्तायना ने व्यंग्यपूर्वक उन्हें यह नाम दिया था) कुछ सिद्धान्त निरूपित किये जिन्हें वे सामान्य रूप में स्वीकार करते थे—तत्वमीमांसा ज्ञानमीमांसा से स्वतन्त्र होती है; बहुतेरी सत्ताएँ किसी भी रूप में अपने ज्ञात होने पर निर्भर नहीं होतीं; एकतत्ववाद की अपेक्षा बहुतत्ववाद अधिक सम्भाव्य है, तर्कशास्त्र आन्तरिक सम्बन्धों के बिना भी काम चला सकता है नियमानताएँ या अवधारणाएँ भी उतनी ही यथार्थ होती हैं जितने अस्तित्व। इन सभी सिद्धान्तों का लक्ष्य भाववाद का विरोध करना था। इनमें मुख्यतः उन कारणों का खण्डन ही था जिनके आधार पर वे भाववाद को प्रमाण्य करते थे। किन्तु इन यथार्थवादियों का

---

१ बाद में 'दी न्यू-रियलिज़्म' (न्यूयॉर्क, १९१२) के एक परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित।

सामान्य मंच स्पष्टतः बहुत सफल नहीं था क्योंकि इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन सामान्य रूप में नहीं किया गया। हर एक ने इन्हें अपने ही ढंग से रखना पसन्द किया यद्यपि वे सारे इस पर सहमत थे कि वे एक ही बात कहने की चेष्टा कर रहे थे। संशयालुओं को सन्देह था कि इस यथार्थवादी मासावना में बहुतत्ववाद बहुत अधिक था।

दो वर्षों के अन्दर इन छह यथार्थवादियों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई — दी न्यू रियलिज्म कोऑपरेटिव स्टडीज इन फिलॉसफी (नया यथार्थवाद : दर्शन में सहकारी अध्ययन)। 'प्रस्तुत रचना हमारे 'कार्यक्रम और प्रथम मंच' द्वारा प्रारम्भ कार्य को ही ज्यादा बड़े पैमाने पर आगे ले जाती है और हम आशा करते हैं कि इसके बाद अध्ययनों के अन्य संग्रह भी आयेंगे।' 'सहकारी अध्ययन' की अपेक्षा 'अध्ययन संग्रह' इस रचना के लिए अधिक उपयुक्त शब्द है। हर निबन्ध में उसके लेखक द्वारा किसी विशिष्ट विषय पर किया गया कार्य है। वे सभी व्यापक अर्थ में यथार्थवादी हैं किन्तु वे न परस्पर सम्बन्धित हैं न पूर्णतः संगत ही। इनमें से कुछ की ओर कुछ लोगों का ध्यान गया और उन पर टीकाएँ की गयीं, किन्तु सब मिला कर ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुस्तक के पाठक कम ही थे। पेरी और मॉन्टेगु का परिचयात्मक निबन्ध 'प्रथम मंच' और 'सुधार के *यथार्थवादी कार्यक्रम*' को कुछ अधिक पूर्ण और व्यवस्थित रूप में विकसित करता है। अन्य निबन्ध प्रकट रूप में बहुत ही 'वस्तुपरक' प्राविधिक और विशेषज्ञतापूर्ण हैं और किसी सुधार कार्यक्रम के लिये अत्यधिक नीरस हैं। सहकारी कार्यक्रम आगे विकसित नहीं हो सका। संयुक्त रूप में इसी का कोई और पराक्रम सामने नहीं आया। सम्मिलित आक्रमण शीघ्र ही समाप्त हो गया और समूह बिखर गया। कई वर्ष बाद पेरी और मॉन्टेगु ने अपने आपसे और एक-दूसरे से पूछा *हमारे सुधार कार्यक्रम का हुआ क्या?* निस्सन्देह 'नया यथार्थवाद' अमरीकी इतिहास में इस प्रकार अपना स्थान बना गया किन्तु किसी एक इकाई का रूप धारण करता वह कभी प्रतीत नहीं हुआ।

फिर भी, एक संक्षिप्त निर्णायक संघर्ष के रूप में इन छहों का 'नया यथार्थवाद' सफल रहा। भाववाद को रक्षात्मक दृष्टि अपनानी पड़ी और वह अधिकाधिक रक्षात्मक होता गया। यथार्थवादियों के परवर्ती कार्य को चाहे यथार्थवाद कहा जाये या नहीं दर्शन में भाववादी आत्ममीमांसा और परमवाद से मुक्त स्वतन्त्र, वस्तुपरक शास्त्रार्थ के प्रति व्यापक उत्साह पैदा हो गया और एक पूरी पीढ़ी के लिए ही दार्शनिक विषयों और प्रभावी प्रवृत्ति का रूप बदल गया। इस पीढ़ी के कार्य का वर्णन करने के लिये अधिक प्रमाण 'यथार्थवादियों' के बाद के बारे में बताना आवश्यक है क्योंकि वे स्वयं नव-यथार्थवादी' (जैसा वे क]

जाने गये) और 'आलोचनात्मक यथार्थवादियों' का प्रतिद्वन्द्वी समूह दोनों ही संगठित समूहों या 'धाराओं' के रूप में महत्वपूर्ण नहीं थे। बड़ी हद तक, 'सुधार वातावरण' दार्शनिक चर्चा और विचार को बन्धन-मुक्त करने में विलियम जेम्स की सफलता का परिचायक था। जैसा पेरी ने कहा ये व्यक्ति जहाँ विलियम जेम्स के विचारों का अनुसरण नहीं करते थे, वहाँ भी वे विलियम जेम्स की भावना के अनुसार' काम कर रहे थे। आन्दोलन का सर्व-वस्तुनिष्ठावाद किसी भी तरह उन्नीसवीं शताब्दी के 'विज्ञानवाद' का पुर्नस्थ अवशेष नहीं था। यह एक नया सृजन था एक रचनात्मक विद्रोह था।

वस्तुपरक विश्लेषण के पहले बड़े कार्य के रूप में राल्फ बार्टन पेरी ने यह दिखाना चाहा कि सोद्देश्य व्यवहार का अध्ययन और उसकी परिभाषा जीव विज्ञान की साधारण निरीक्षणात्मक पद्धतियों से की जा सकती है और उद्देश्यों या अभिमान्यताओं को हमेशा 'वैयक्तिक' तथ्य कहने की जेम्स की आदत का अनुसरण करने का कोई कारण नहीं है। एक लेखमाला में उन्होंने सोद्देश्य और निरुद्देश्य कार्यों के बीच पूर्णतः आचारणवादी अन्तर किया। यह कर चुकने के बाद वे 'निरोक्षित हितों' के सन्दर्भ में मूल्यों का एक सामान्य सिद्धान्त निर्मित करने को तैयार थे। कोई मानवी हित चाहे सामाजिक हो या नहीं स्थायी हो या भंगुर, अन्य हितों या मूल्यों से सम्बन्धित किया जा सकता है। हितों से बाधाओं के साथ मूल्य भी उत्पन्न होते हैं। हितों का टकराव हितों का संगठन मूल्यों की व्यवस्था आदि सभी वास्तविक अध्ययन के क्षेत्र थे जिसमें पेरी ने अपना अधिकांश जीवन लगाया। इस प्रकार पेरी का नीतिशास्त्र और मूल्य का सामान्य सिद्धान्त अमरीकी यथार्थवाद की एक ठोस उपलब्धि बन गये। वे प्रभावकारी रूप में परम्परागत भाववादी नीतिशास्त्र का सामना करने में समर्थ थे, जिसके अनुसार हितों और मूल्यों को प्रतिपक्षी माना जाता था। पेरी द्वारा हितों की पूर्ति के रूप में मूल्यों का व्यवस्थित विश्लेषण न केवल भाववाद को एक सीधी चुनौती है, वरन् उपयोगितावाद को एक वस्तुपरक आधार पर पुनर्निर्मित करने का प्रयास भी है।

विलियम पेपरेल मॉन्टेगु ने यथार्थवाद का कई मोर्चों पर, और न कई अवसरों पर भाववाद और व्यवहारवाद दोनों के ही विरुद्ध यथार्थवादी तत्त्वमीमांसा और ज्ञान के सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक बने। किन्तु उनकी सर्वाधिक विशिष्ट देन जिसपर व स्वयं सबसे अधिक जोर देते थे उनका चेतना ऊर्जा का भौतिकवादी सिद्धान्त था। प्रयोगात्मक आधारों पर उन्होंने इस स्थापना का समर्थन किया कि एक अस्तित्वमय यथार्थ के रूप में चेतना एक प्रकार की सम्भाव्य ऊर्जा है।[1] वे चेतना

[1] उदाहरण के लिए, देखिए 'दी न्यू रियलिज़्म' पृष्ठ २८४-२८५।

के ऐसे सिद्धान्त को यथार्थवाद के सामान्य विकास के लिए महत्त्वपूर्ण मानते थे क्योंकि वे चेतना के अस्तित्व के विषय पर जेम्स से असहमत थे और अपने अधिकांश नव-यथार्थवादी सहयोगियों से भी जो चेतना की सम्बन्धात्मक व्याख्या करते थे, उनका मत भिन्न था। वे इसे एक विशिष्ट, भौतिक ऊर्जा के रूप में पहचानना सम्भव समझते थे। उन्हें चेतन व्यवहार के कार्यात्मक अध्ययन पर जैसा कि पेरी ने किया था, कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु उनका विचार था कि कर्मों की शरीर क्रियात्मक व्याख्याएँ की जा सकती थीं। सामान्यतः मॉन्टेगु और रॉय वुड सेलर्स यथार्थवादी आन्दोलन के भौतिकवादी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु उनके भौतिकवाद एक जैसे नहीं हैं और आमतौर पर अमरीकी यथार्थवादी विचार में भौतिकवाद का स्थान गौण है। आन्दोलन को अपनी अन्य शैलों के माध्यम से मॉन्टेगु और सेलर्स कहीं अधिक प्रभावशाली थे—मॉन्टेगु एक परिकल्पनात्मक प्रकृतिवादी के रूप में और सेलर्स एक संघर्षशील मानववादी के रूप में।

कतिपय नवयथार्थवादियों की मनोविज्ञान में कोई विशेष रुचि नहीं थी और वे ज्ञानमीमांसा को बिल्कुल छोड़ देना चाहते थे। इसके विपरीत 'आलोचनात्मक यथार्थवादियों' का समूह था जो अब भी प्रत्यक्ष-ज्ञान के मनोविज्ञान और बाह्य विश्व के साथ अनुभव के सम्बन्ध की समस्या में व्यस्त था। इनमें से मैं केवल दो की चर्चा करूँगा यद्यपि यह समूह शायद नवयथार्थवादी समूह से बड़ा था क्योंकि उनके कार्य में नवीनता कम थी और वे सहयोग की बात कम करते थे।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर चार्ल्स ऑगस्टस स्ट्रांग जो अब अवकाश ग्रहण करके शान्ति के साथ पेरिस और फ्लोरेंस में रह रहे थे व्हाई दी माइण्ड हैज़ ए बॉडी (मन का एक शरीर क्यों है) के लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का यह एक बहुत ही गम्भीर और जानकारीपूर्ण नमूना है। किन्तु दार्शनिकों ने इसे बहुत गम्भीरता से नहीं लिया कुछ लेखक की सूक्ष्म और व्यंग्यपूर्ण विनोदप्रियता के कारण और कुछ इस कारण कि यह एक दुर्बोध मनोवैज्ञानिक रचना समझी जाती थी। इससे उद्विग्न हुए बिना स्ट्रांग ने अपने सामाजिक और बौद्धिक अकेलेपन में प्रत्यक्ष ज्ञान का एक विस्तृत 'सार' सिद्धान्त निरूपित किया। अपने समकालीनों की इस धारणा से त्रस्त होकर कि इस घटनाएँ मात्र आधार-सामग्रियाँ या उपस्थितियाँ होती हैं उन्होंने घोषित किया कि वे पचास वर्ष तक अनुयायियों की प्रतीक्षा नहीं करेंगे—जब तक कि उपस्थिति का विचार छोड़ नहीं दिया जाता। परम्परागत इन्द्रियघटनावाद के विरुद्ध उन्होंने कहा कि जिसे प्रस्तुत कहा जाता है, वह जर्मन दार्शनिकों की धारणा से अधिक स्पष्ट अर्थ में 'फोर्स्टेलुंग' (प्रतिनिधि-आरूप)

है और फ्रेंच शब्द 'रीप्रेज़ेन्टेशन' जैसा व्यक्त करता है उससे अधिक प्रतीकात्मक है। उन्होंने कहा कि हम वस्तुओं का अनुभव अपनी ज्ञानेन्द्रियों 'में' नहीं करते वरन् केवल उनके 'माध्यम से' करते हैं। वस्तुएं दूरी पर अनुभव की जाती हैं और हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ परिप्रेक्ष्य स्पेस में उन्हें इस प्रकार निर्दिष्ट करती हैं कि अगर हमारा शरीर उनसे प्रत्यक्ष सम्पर्क (स्पर्श) करना चाहे, तो वे वहीं पाई जा सकें जहाँ वे सचमुच हैं। दूसरे शब्दों में उन्होंने ऐन्द्रिक अनुभव को मूलतः प्रेरक प्रतिक्रिया के रूप में देखा जिसके साथ भौतिक वस्तुओं द्वारा हमारे अन्दर उद्दीपित प्रभावों का एक तीन आयामों वाले परिप्रेक्ष्य-पट पर, जो भौतिक यथार्थ नहीं है, अन्तरित करने की युक्ति (प्रत्यक्ष-ज्ञान परिप्रेक्ष्य) जुड़ी हुई है। हम जानते हैं कि हम वस्तुओं को वहीं देखते हैं जहाँ वे सचमुच हैं किन्तु हमारा देखना प्रतीकात्मक है।

जिस प्रकार स्ट्रॉग का ध्यान विश्व-प्रत्यक्षज्ञान पर केन्द्रित था उसी प्रकार जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के आर्थर ओ॰ लवजॉय का ध्यान क्रमिक प्रत्यक्षज्ञान पर केन्द्रित था। अनुपस्थित को किस प्रकार उपस्थित बनाया जाता है, इस सम्बन्ध में सार्त्र के कुछ विश्लेषणों का पूर्व रूप उनमें मिलता है। उनके अनुसार अतीत और भविष्य को प्रस्तुत करना अनुभव का मूल कार्य है। अतः अनुभव का क्रम और घटनाओं का क्रम ये दो बिल्कुल भिन्नकालिक गठन हैं। इस अन्तर्दृष्टि के फलस्वरूप लवजॉय ऐसे समय में एक द्वैतवादी दर्शन के समर्थक बन गये जब अमरीकी दार्शनिकों की बहुसंख्या द्वैतवाद के विरुद्ध विद्रोह कर रही थी। जिसे वे 'तेरह व्यवहारवाद' कहते थे प्रथम उन्होंने उसकी आलोचना की और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की कि व्यवहारवादी सिद्धान्त और सम्भ्रम ज्ञान की वास्तविक समस्या को टालने का प्रयास थे। अन्त में उन्होंने अपनी मुख्य विवादपूर्ण रचना दी रिवोल्ट अगेन्स्ट डुअलिज़्म' (द्वैतवाद के विरुद्ध विद्रोह) प्रकाशित की जिसमें उन्होंने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि द्वैतवाद से बचने के विभिन्न प्रकृतिवादी प्रयोगवादी और यथार्थवादी प्रयास असफल हुए थे।

चाहे वे असफल थे या नहीं किन्तु यह एक तथ्य है कि पिछले दिनों अधिकांश अमरीकी दार्शनिकों ने अपना ध्यान ज्ञान की समस्या के इस रूप से हटा लिया है जिसका आदर्शवादियों ने उपयोग और निरूपण किया था और ऐसे मार्गों की ओर मुड़े हैं जो उन्हें अधिक रचनात्मक प्रतीत हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि प्रत्यक्ष-ज्ञान, बोध-सामग्री और जिसे स्ट्रॉग ने 'चेतना की यान्त्रिकी' कहा था उसकी वास्तविक समस्याएँ शरीर-क्रियात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए छोड़ी जा सकती हैं। दर्शन के समक्ष अन्य अधिक आकर्षक और अधिक

सामान्य समस्याएँ थीं। यह अमरीकी 'यथार्थवाद' का विशिष्ट दृष्टिकोण है, जो उसे इंगलिस्तानी यथार्थवाद से अलग करता है। ड्यूई ने एक बार स्वीकार किया था कि 'हमने समस्या को हल नहीं किया हम उसे लाँघ गये।'

अमरीकी यथार्थवाद के अन्य स्रोत

भाववादी वस्तुओं के विरुद्ध छह यथार्थवादियों ने १९१० में जो युद्ध घोषित किया था, उसमें यथार्थवाद की पूर्ण विजय हुई। यथार्थवाद पनपा अधिकाधिक वैशिष्ट्यपूर्ण बना, वस्तुवस्तु में अधिक समृद्ध हुआ समर्थकों में सबल हुआ और दैशिक जगत् में अधिक प्रभावी हुआ। भाववाद पीछे हटा उसके समर्थक दो हिस्सों में बँट गये। व्यक्तिनिष्ठ या 'मानसिकतावादी' भाववादी जो अब भी बिशप बर्कले के सिद्धान्तों में विश्वास करते थे संख्या में बहुत कम रह गये। वे न केवल यथार्थवादियों के वरन् तथाकथित 'परिकल्पनात्मक दार्शनिकों, वस्तुनिष्ठ या 'कर्नेल' भाववादियों के व्यापक समूह की आलोचनाओं के भी शिकार हुए। ये परिकल्पनात्मक भाववादी उलझन में डालने वाली हद तक यथार्थवादी वस्तुनिष्ठता का स्वागत करते थे। वे भी विश्वास करते थे कि मन एक वस्तुपरक सत्ता है। वे भी प्रत्यक्ष-ज्ञान के मनोविज्ञान से ऊब गये थे। वे अपने मत को तार्किक आधारों पर रखने को तैयार थे। वे स्वीकार करते थे कि निस्सन्देह, वस्तुएँ हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वतन्त्र होती हैं, किन्तु जिन कारणात्मक सम्बन्धों के सन्दर्भ में हम वस्तुओं को अवधारित करते हैं क्या वे तार्किक सम्बन्धों से स्वतन्त्र हैं? बहुतेरे यथार्थवादियों को यह मत भाववाद का परित्याग प्रतीत होता था। जैसा जे० बी० प्रैट ने कहा 'भाववादी ऐसे तार्किक यथार्थवादी निकले जिनसे बहुतेरे यथार्थवादी सहमत होने को तैयार थे।' यद्यपि इस प्रश्न ने यथार्थवादियों को भी विभाजित कर दिया किन्तु उनमें इस मतभेद को सहने की क्षमता भाववादियों से अधिक थी। इस बीच में व्यवहारवादी आलोचना ने 'परम' के भाववादी सिद्धान्त को कमजोर कर दिया था और 'परम' के ह्रास के साथ इस भाववाद की लोकप्रियता भी बहुत-कुछ समाप्त हो गयी क्योंकि इसका 'धार्मिक पक्ष' पक्ष नहीं रहा। किन्तु भाववाद पर यथार्थवादियों की यह तार्किक विजय उन्हें कोई खास कार्यक्रम नहीं दे सकी, जिस पर वे एक हो सकें। उन्होंने तो आशा की थी कि युद्ध वर्षों तक चलेगा। अब क्या करें!

जिसे 'बाह्य' विश्व समझा जाता था उसके एक अंश के ......

पीयर्स ने अमरीकी यथार्थवाद के दो विषयों की नींव डाली—(१) उन्होंने सार्विकतावादों के सिद्धान्त को प्राकृतिक विज्ञान के एक अंग के रूप में देखा और (२) वे अपनी पदार्थों की व्यवस्था को एक प्रयोगात्मक तत्व-मीमांसा मानते थे, यद्यपि वैज्ञानिक कार्यपद्धति का एक औपचारिक विश्लेषण और एक सार-तत्व विज्ञान दोनों ही।

फ्रेडरिक जे० ई० वुडब्रिज ने भी यथार्थवाद के इन्हीं दो पक्षों पर जोर दिया यद्यपि वे यथार्थवाद तक एक बिल्कुल भिन्न मार्ग से पहुँचे थे। एक नव-कॉम्टवादी के रूप में प्रशिक्षित होने पर भी वे अधिकाधिक अरस्तूवादी बन गये। उन्होंने आधुनिक शब्दावली में और आधुनिक विज्ञान के लिए, एक 'प्रथम दर्शन' या अस्तित्व के सर्वाधिक सामान्य लक्षणों का सिद्धान्त निरूपित करने का प्रयास किया। ऐसे सिद्धान्त के लिए सर्वाधिक सामान्य ढाँचा उन्होंने 'तर्कशास्त्र के क्षेत्र' या 'वार्ता के विश्व' को पाया। तर्कशास्त्र और सार-तत्व-विज्ञान की एकता का सशक्त समर्थन करने के कारण वे यथार्थवादियों के एक ऐसे समूह के नेता बन गये जो मूलतः तार्किकतावादी न होने पर भी यह मानते थे कि यथार्थवादी दर्शन का आधार ज्ञान के मनोविज्ञान की अपेक्षा तार्किक गठन का सिद्धान्त होना चाहिये।

विषय-वस्तु और सार का अन्तर वुडब्रिज के यथार्थवाद का मूल तत्व है—अरस्तू के शब्दों में 'टु हाइपोकीमेनॉन' और 'औसिया' का अन्तर। वुडब्रिज ने 'टु हाइपोकीमेनॉन' की व्याख्या प्रस्तुत के रूप में नहीं की और निश्चय ही प्रस्तुत के 'अधिष्ठान' के रूप में भी नहीं वरन् खोजी और अन्वेषण की सभी सम्भव वस्तुओं की एक पदसंज्ञा के रूप में की। वार्ता का यह विश्व सर्वव्यापी है और इस कारण इसका गठन सर्वाधिक सामान्य है। इसी के अन्दर अस्तित्व के सारे अन्तर और प्रकार उठते हैं। इस विश्व तक भाषा के द्वारा पहुँचा जा सकता है, किन्तु इसमें अन्य पक्ष या कोने भी सम्मिलित हैं, जिन्हें अलग-अलग 'विश्वों' के रूप में पहचानना मनुष्य सीख लेता है जैसे द्रव्य या पदार्थ का विश्व प्राकृतिक वातावरण का दृश्य-जगत्, मानवी आशाओं आकांक्षाओं और सुख प्राप्ति के प्रयासों का जगत्, जो मूल्यों का जगत् है। इस प्रकार मानव अस्तित्व के चार आयामों में से तीन वस्तुपरक, यथार्थ गठन हैं।

इन विश्वों में सर्वाधिक व्यापक 'वार्ता के विश्व' को वुडब्रिज ने 'बौद्धिक मन' कहा।[1] इसका कारण कुछ तो यह था कि उन्होंने सान्तायना द्वारा इस

१ विशेषतः देखिए, 'नेचर एण्ड माइण्ड' (न्यूयॉर्क, १९३७), पृष्ठ १५५, १०१-१०२।

जगत् के प्रयोग को सामञ्जस्यपूर्ण पाया और कुछ यह कि वे यथार्थवादी उद्देश्यों के लिए मानववाद का उपयोग करना चाहते थे। यान्त्रिक जगत्, द्रव्य-जगत् में वे प्राकृतिक उद्देश्यवाद और मनुष्य के 'विचार-जगत्' की प्रक्रियाएँ, दोनों का स्वीकार करते थे। तीसरी व्यवस्था दृश्य-जगत्, प्रकाशीय परिप्रेक्ष्य का विश्व है। वुडब्रिज का विश्वास था कि आकाश ज्यामितीय होने की अपेक्षा प्रकाशीय है। या प्रकाश सही रूप में नहीं तो उनका विश्वास था कि दृष्टि का जगत्, जिसमें समानान्तर रेखाएँ क्षितिज की ओर बढ़ते हुए मिलने लगती हैं गति के जगत् के समान ही वस्तुपरक है, जिसमें समानान्तर रेखाएँ कभी नहीं मिलती और उसका सवर्गीय है। गति-जगत् के समान ही दृश्य-जगत् में स्थान-निर्देश करने में परिप्रेक्ष्यों की एक अपरिमित संख्या सम्मिलित होती है जिनमें से किसी का कोई विशेष स्थान नहीं होता। कोई परम दृष्टिकोण नहीं होता यद्यपि परिप्रेक्ष्यों का संघ अपने आप में परम होता है। इन तीन वस्तुपरक जगतों के विरुद्ध वुडब्रिज ने मानवी-मूल्यों के जगत् को रखा जिसमें मनुष्य सृजनकर्त्ता है। किन्तु मनुष्य सृजनशील वहीं तक होता है, जहाँ तक वह अपने मूल्यों को अपने अस्तित्व के अन्य क्षेत्रों से समन्वित करना सीख लेता है।

पीयर्स और वुडब्रिज के विचारों का मिलन मॉरिस आर० कोहेन के व्यक्तित्व में हुआ। कोहेन स्वयं एक महान् तार्किक और बड़े ही प्रभावशाली अध्यापक थे। प्रकृति के दर्शन और मानव-जीवन के दर्शन दोनों ही रूपों में वे इन दो व्यवस्थाओं की संश्लिष्टि में सफल हुए। उनका यथार्थवाद अमरीकी यथार्थवादी विधिशास्त्र के विकास के लिए विशेषतः महत्त्वपूर्ण था। कोहेन और उनके छात्रों के माध्यम से इस प्रकार का यथार्थवादी प्रकृतिवाद पिछले दिनों के अमरीकी विचार की एक विशिष्ट प्रवृत्ति बन गया। इस प्रवृत्ति में सामान्य यथार्थवादी आन्दोलन का तर्कशास्त्री पक्ष है जिसका एक लक्ष्य यह है कि तार्किक पद्धतियाँ और प्रमाणात्मक विज्ञानों के एक मानक का सभी समस्याओं पर विशेषतः सामाजिक और नैतिक विज्ञानों पर लागू किया जाये।

जिसे मैंने यहाँ 'यथार्थवाद' कहा है, जॉन डुई का कार्य भी पीयर्स की भाँति उसकी शाखाओं से बँधा नहीं है और ज्ञान व तत्त्वमीमांसा के यथार्थवादी सिद्धान्तों के कई आविर्भाव मतों से हुई मुठभेड़ थी। फिर भी आन्दोलन को उसकी देन विलियम जेम्स से अधिक थी। वे कभी भी तत्त्व-मीमांसामूलक यथार्थवादी नहीं रहे, जैसा जेम्स अपने को कहते थे और आरम्भ से ही उनका एक यथार्थ का सिद्धान्त था, जिसके अन्तर्गत अनुभव और प्रायोगिक पद्धति उनकी धारणा जेम्स से बिल्कुल भिन्न था (... अध्याय में ... देखिए। डुई के अन्तर्गत देखिए)। डार्विन और हेगेलीयवाद का अनुसरण करते हुए, उन्होंने

ह्वीगेल द्वारा निरूपित विचार के *द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त की आलोचना* की और विश्व को गति के पदार्थों या पुनर्रचनात्मक क्रिया के रूप में देखा। उनका विचार था कि परिवर्तन एक चरम यथार्थ है और अस्तित्व के पदार्थ अरस्तू के पदार्थों की भाँति गति के पदार्थ होंगे, जिनमें विचार की गतियाँ भी सम्मिलित होंगी। ट्रेंडेलेनबुर्ग की भाँति उन्होंने हेत्वनुमान के सिद्धान्त को वास्तविकीकरण के सिद्धान्त के अधीन रखा और वास्तविकीकरण को पुनर्रचना के। विशेषतः जेम्स के जीव-वैज्ञानिक मनोविज्ञान की जानकारी के बाद ड्यूई के लिये 'क्रिया' की प्रकृतिवादी और जीव-वैज्ञानिक परिभाषा करना आसान था। इस प्रकार ड्यूई के अनुसार, मनुष्य और उसके सारे कार्य कार्यों के एक प्राकृतिक विश्व के अन्तर्निहित अंग हैं। यथार्थ का चरम पदार्थ कार्यवस्तु है (लातिनी में 'रेस')। मनुष्य 'कार्य वस्तुओं के मध्य में' रहता है। मनुष्य जाति के कार्यों और पीड़ाओं को परिवर्तन के *अधिक सामान्य विश्व से अलग नहीं किया जा सकता और शारीरिक तथा* मानसिक कार्यों या क्रिया के बाह्य और आन्तरिक सोपानों के बीच एक व्यावहारिक रेखा से अधिक कोई विभाजन सम्भव नहीं है।

अनुभव की उपायात्मक वस्तु' की यह यथार्थवादी अवधारणा उनके प्रारम्भिक लेखन में भी मिलती है, और अन्तिम लेखन में भी।[1] अपनी बात को तीक्ष्णता प्रदान करने के लिये, अपने अन्तिम वर्षों में उन्होंने वस्तुओं के बीच परस्पर क्रिया के परम्परागत विचार के बजाय वस्तुओं के बीच 'व्यापार' की अवधारणाएँ अपनायीं। केवल मनुष्य ही अपनी कार्यवस्तुओं का व्यापार चलाता हो ऐसा नहीं है, क्योंकि शारीरिक कार्य भी समावेश और व्याख्या के कार्य हैं। यथार्थ के इस सिद्धान्त को मानने के कारण उन्होंने कभी भी सामान्य-बुद्धि के विश्व को पूर्व-मान्यता नहीं दी और तथाकथित बाह्य विश्व के अस्तित्व की समस्या को *न स्वीकार करने के लिए आलोचनात्मक कारण दिये।*

विचार की क्रियाओं जैसी विशेष क्रियाओं को विश्व की वस्तुपरक क्रियाओं के अधिक व्यापक आधार-स्थल से वियुक्त कर देने के खतरे पर ड्यूई का निरन्तर आग्रह एक नीतिज्ञ के रूप में यथार्थवाद को उनकी देन थी। क्रियाओं का संस्थाकरण बोधगम्य है और समन्वय तथा वस्तुपरक सिद्धि की प्रक्रिया के रूप में उसे उचित ठहराया जा सकता है। किन्तु वे इस खतरे की ओर बार-बार संकेत करते हैं कि क्रियाओं की प्राविधिक निष्पत्ति और व्यवसायीकरण संचार में बाधक हो सकते हैं और वियुक्त हितों और मूल्यों को उत्पन्न कर सकते हैं।

---

१ देखिए जॉन ड्यूई और आर्थर एफ़० बेण्टले, 'नोइंग ऐण्ड दी नोन' (बोस्टन, १९४९), पृष्ठ १०१ १२४।

मूल्यांकन की उनकी सामान्य पद्धति यह थी कि वे किसी विशिष्ट हित को सम्बद्ध कार्यों के अधिक व्यापक सन्दर्भ में रख कर यह अपेक्षा करते थे कि यह व्यापक सन्दर्भ विशेष हितों का मूल्यांकन करने में एक कसौटी का काम करेगा। वे नीतिशास्त्र को एक सर्वथा पृथक विषय-वस्तु के रूप में न पढ़ा कर मानकों के यथार्थवादी परीक्षण के रूप में पढ़ाते थे—ऐसे मानक जो परम्परागत कार्य को नयी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिये वास्तविक स्थितियाँ निरन्तर उत्पन्न करती रहती हैं। कानूनी मानकों के प्रयोगात्मक परीक्षण की व्याख्या में उन्होंने विधिनिर्माण-विचार-न्यायिक निर्णय के परस्पर सम्बन्ध का एक प्रभावी विश्लेषण किया। लोकतन्त्र में उनकी आस्था इस विश्वास पर आधारित थी कि प्रकाशन अर्थात् सामाजिक सम्बन्धों और तथ्यों के कार्यों और परिणामों की खुली स्वीकृति नियन्त्रण का सर्वोचित प्रभावकारी माध्यम है। उनका नीतिशास्त्र न उपदेश की नैतिकता थी न अनुसंधानों की और न परिणामों की उपयोगितावादी गणना ही थी वरन् ऐसे वास्तविक हितों और मूल्यों की खोज थी जिन्हें प्रभावी हित और मूल्य उपेक्षित या छिपे हुए पड़े रहने देते हैं। इन दबे हुए या छुपे हुए तथ्यों को चेतन या सार्वजनिक बना कर बन्द समाज अपने को एक खुला समाज बना लेता है और परम्परागत मानक वास्तविक आवश्यकताओं के आधार पर सुधारे जाते हैं। विश्लेषण की यथार्थवादी आदतों के कारण ड्यूई 'आदर्शक' नीतिशास्त्र से बचते रहे। उनका विचार था कि शुद्ध मानक निरुद्देश्य होते हैं। ऊपर से लादे गये विधानों को वे न्यूनाधिक स्वेच्छ और इस कारण प्रभावहीन मानते थे। दूसरे शब्दों में प्रयोगात्मक वैधता पर उनका आग्रह उनके व्यवहारवाद के समान ही उनके यथार्थवाद का भी एक पक्ष था।

शिकागो और मिशिगन विश्वविद्यालयों में ड्यूई के साथ अपनी सहभागिता के काल में जॉर्ज एच० मीड ड्यूई के इस सामाजिक यथार्थवाद से सहमत थे। किन्तु जब ड्यूई शिकागो छोड़ कर कोलम्बिया विश्वविद्यालय में चले गये तो मीड ने इस सामाजिक दर्शन को इस प्रकार प्राकृतिक प्रक्रिया और इतिहास के एक सामान्य सिद्धान्त में विकसित किया, जिसका ड्यूई ने कभी प्रयास नहीं किया। इस विचार-व्यवस्था को 'वस्तुगत सापेक्षता' कहा जाने लगा और प्रकृति के यथार्थवादी सिद्धान्त में इसका प्रमुख योग रहा है।

यह दर्शन परिप्रेक्ष्यों के समन्वय के सिद्धान्त पर आधारित है। जिस प्रकार किसी गुण या वस्तु के अन्य प्रभाव जैसे 'सामाजिक कार्य' में भाग लेने वालों की एक परिप्रेक्ष्य से हट कर दूसरे परिप्रेक्ष्य में आने की क्षमता आवश्यक होती है उसी प्रकार प्राकृतिक प्रक्रियाओं की अर्थमयता परिप्रेक्ष्यों के अन्तरण के योग पर निर्भर होती है। मीड का विचार था कि परिप्रेक्ष्यों में सह-सम्बन्ध का मुख

प्रकार कालिक अनुभव में मिलता है—वर्तमान के एक परिप्रेक्ष्य से दूसरे में जाने के साथ-साथ अतीत की व्याख्या की पुनः रचना। वर्तमान के परिवर्तित होने के साथ 'नये अतीत हमारे पीछे उदित होते हैं'। यद्यपि मीड अपने सिद्धान्त को पूरी तरह निरूपित करने के लिये जीवित नहीं रहे, किन्तु अपनी रचना दी फिलॉसफ़ी ऑफ़ दी प्रेजेंट (वर्तमान का दर्शन—१९३२) में उन्होंने इसकी एक रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने प्राकृतिक ज्ञान को ऐतिहासिक ज्ञान में समाविष्ट करने की चेष्टा की। आरम्भ में उन्होंने कहा कि विश्व एक घटनाओं का विश्व है और सारी घटनाएँ किसी वर्तमान में घटित होती हैं। अतीत और भविष्य हमेशा किसी वर्तमान के सापेक्ष होते हैं और जब तक वर्तमान परिवर्तित होता रहता है इतिहास की पुनर्व्याख्या करनी पड़ेगी। उन्होंने ऐतिहासिक ज्ञान में इस 'वस्तुपरक सापेक्षता' को भौतिक विज्ञान में सापेक्षता से जोड़ना चाहा और दिक्-काल में बिन्दु-क्षणों के एक चार आयामों के नैरन्तर्य को एक परम सन्दर्भ-क्षेत्र के रूप में स्वीकार करने के लिये उन्होंने हेर्मान मिन्कोव्स्की और व्हाइटहेड की आलोचना की। एक सच्चा 'उद्भवमूलक विकासवाद' अधिक पूर्ण रूप में सापेक्षवादी होगा ऐसा उनका दावा था। उक्त नैरन्तर्य उन्हें उसी तरह का अमूर्तन प्रतीत होता था जैसे कालावधि के अणुओं का सिद्धान्त जिससे किसी वर्तमान की रचना की जा सकती हो। उनका इरादा ऐतिहासिक और प्राकृतिक दोनों प्रक्रियाओं में 'यथार्थ' वर्तमान की विवेचना करने का था। अतः उन्होंने ड्यूरी के सापेक्षतावादी सिद्धान्त का स्वागत किया क्योंकि स्थानिक व्याख्या में ऐसा सापेक्षवाद 'कार्य के क्षेत्र' को या 'कार्य-कौशल के क्षेत्र' को अधिक व्यापक बनाता है, जिसके सन्दर्भ में अतीत और वर्तमान सम्बन्धित होते हैं। सभी तथ्य गुजरने के तथ्य होते हैं और ये तथ्य उसी हद तक 'प्रस्तुत' होते हैं जिस हद तक वे किसी वर्तमान के अतीत या उसके भविष्य से सम्बन्धित होते हैं। तदनुसार, धारा होना गुजरने के तथ्यों द्वारा उत्पन्न परिवर्तित परिप्रेक्ष्यों के कारण अतीत का वर्तमान में 'बनाना' होता है।

दूसरे शब्दों में, मीड का वर्तमान का दर्शन जेम्स के 'विश्वसनीय वर्तमान' के सिद्धान्त का वस्तुपरक प्रतिरूप है। चेतना की धारा में वर्तमान में घटनाओं की धारा वस्तुपरक रूप में सार्थक हो जाती है क्योंकि इस तरह से परिप्रेक्ष्य उत्पन्न और सह-सम्बन्धित होते हैं।

सामाजिकता' के सिद्धान्त को भौतिक सापेक्षता के सिद्धान्त के साथ संयुक्त करने के मीड के महत्वाकांक्षापूर्ण प्रयास को अमरीकी यथार्थवाद में आगे विकसित करने का प्रयास बहुत कम हुआ है। मीड जब इस पर कार्य कर रहे थे उस समय जैसा प्रतीत होता था शायद भविष्य के कार्य के लिये यह उतना व्यापक

आधार न प्रमाणित हो। जो भी हो, जिस प्रकार की दार्शनिक संरचना में अमरीकी यथार्थवाद पड़ गया उसके उदाहरण के रूप में इसे यहाँ अंकित कर देना उचित है। व्हाइटहेड के दर्शन के प्रभाव ने अमरीकियों के लिए इस प्रकार की संश्लिष्टि को उत्पन्न किया है। शायद इस दर्शन को भी अमरीकी यथार्थवादी आन्दोलन के एक प्रमुख अंग के रूप में शामिल कर लेना चाहिये। मैंने इस आधार पर इसे शामिल नहीं किया कि इसकी मुख्य विशेषताएं इंगलिस्तान से आयी हैं और मेरा ख्याल है कि इसका वर्तमान प्रचलन शायद एक गुजरती बाता तथ्य' हो। किन्तु मैं इस समय यह स्वीकार करता हूँ कि यह यथार्थवादी आन्दोलन अभी भी गतिशील है और इस सम्पूर्ण रूप में या इसके परिणाम को अंकित करने का सचमुच अभी समय नहीं आया है। कहानी अभी और है जो समय कहेगा और जिसे किसी दिन शायद कोई ऐसा इतिहासकार कह जो इसे अधिक पर्याप्त परिप्रेक्ष्य में रख सके।